पालि-ग्रन्थमाला-3

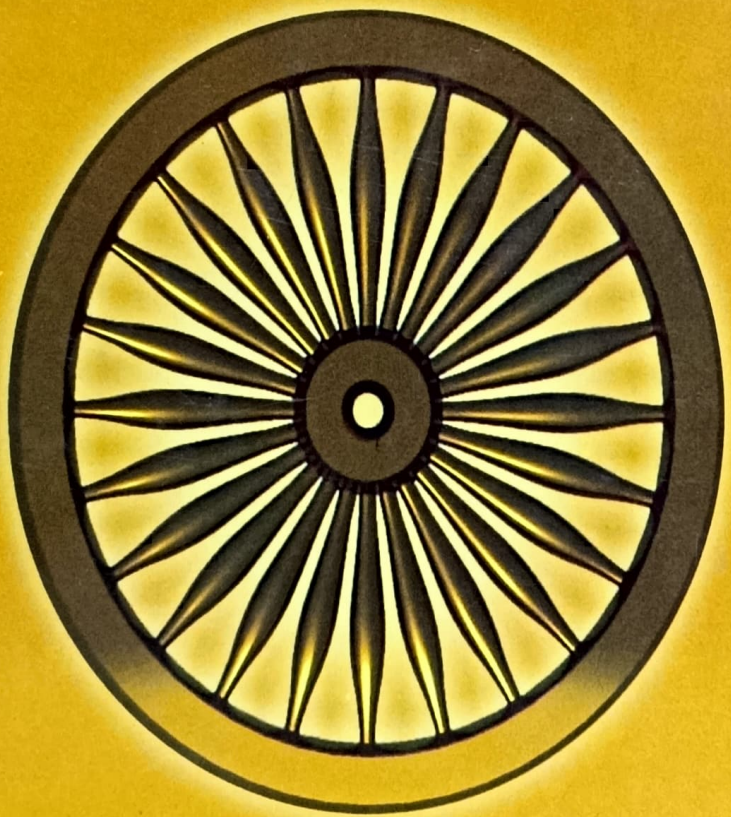
सुत्तपिटके खुद्दकनिकाये

विमानवत्थुपालि

एवं

पेतवत्थुपालि

(संस्कृतच्छाया-हिन्दी-अनुवादसहिता)



पालि-अध्ययन-केन्द्रम्

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् (मानित-विश्वविद्यालयः)
(केन्द्रीय-मानव-संसाधन-विकास-मन्त्रालयाधीनम्)
लखनऊ-परिसरः

ग्रन्थ के संदर्भ में

प्रस्तुत विमानवत्थुपालि एवं पेतवत्थुपालि नामक ग्रन्थों को संगीतिकारों ने सुत्तपिटक के पाँचवें निकाय खुद्दकनिकाय के 15 ग्रन्थों में से क्रमशः छठवें एवं सातवें स्थान पर रखा है। 'विमान' शब्द से तात्पर्य यहाँ देवावासों से है तथा 'वत्थु' से तात्पर्य कथा व कहानी है। अतः विमानवत्थु का तात्पर्य देववासों में रहने वाले देवों की कथा से है।

विमानवत्थुपालि (विमानवस्तु):– इस ग्रन्थ में 85 देवावासों (विमानों) का वर्णन किया गया है जिनको सात वर्गों में बाँटा गया है– 1. पीठवग्गो, 2. चित्तलतावग्गो, 3. पारिच्छत्तकवग्गो, 4. मञ्जिट्ठकवग्गो, 5. महारथवग्गो, 6. पायासिवग्गो एवं 7. सुनिक्खित्तवग्गो।

प्रथम चार वर्गों में स्त्री देवताओं के सत्कर्मों का निरूपण किया गया है। तथा शेष तीन वर्गों में पुरुष देवों के कुशल कर्मों का वर्णन किया गया है। प्रथम स्त्रीविमान के अन्तर्गत– 50 देवावासों का तथा द्वितीय पुरुषविमान के अर्न्तगत 35 देवावासों का वर्णन किया गया है। स्त्रीविमान तथा पुरुष विमान में क्रमशः 856 तथा 433 गाथाओं का वर्णन हुआ है।

पेतवत्थुपालि (प्रेतवस्तु):– यह खुद्दक-निकाय का सातवाँ ग्रन्थ है। इसमें अशुभकर्मों के फलस्वरूप जीवों के द्वारा प्राप्त प्रेतयोनियों का वर्णन किया गया है। जिसमें जीव विभिन्न प्रकार के नारकीय कष्टों को भोगता है।

इस ग्रन्थ को चार वर्गों में विभाजित किया गया है– 1. उरगवग्गो, 2. उब्बरिवग्गो, 3. चूलवग्गो तथा 4. महावग्गो जिनमें कुल मिलाकर 51 प्रेतों का वर्णन हुआ है।

विषयवस्तु की दृष्टि से देखा जाए तो इन ग्रन्थद्वय में कर्म तथा कर्मफल के सिद्धान्त का ही विभिन्न कथानकों के माध्यम से निरूपण किया गया है। विमानवत्थु में वर्णित कहानियों में मौद्गल्यायन द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर विभिन्न देवताओं ने जो अपने पूर्वजन्मकृत पुण्य फलस्वरूप देवावासों को यथायोग्य प्राप्त किया था, का वर्णन हुआ है। इसी प्रकार प्रेतवस्तु में विभिन्न प्रेतों के अपने पूर्वजन्मकृत पापकर्मों के फलस्वरूप प्राप्त अनेक नारकीय स्थानों का वर्णन किया गया है।

ग्रन्थद्वय की रचना विशेषकर सामान्यजन को दृष्टि में रखकर की गई है।

इस ग्रन्थ में मूलपालि, संस्कृतच्छाया एवं हिन्दी अनुवाद दिया गया है।

ISBN : 978-81-924536-2-0
Price : 500.00

ग्रन्थ के संदर्भ में

प्रस्तुत विमानवत्थुपालि एवं पेतवत्थुपालि नामक ग्रन्थों को संगीतिकारों ने सुत्तपिटक के पाँचवें निकाय खुद्दकनिकाय के 15 ग्रन्थों में से क्रमश छठवें एवं सातवें स्थान पर रखा है। 'विमान' शब्द से तात्पर्य यहाँ देवावासों से है तथा 'वत्थु' से तात्पर्य कथा व कहानी है। अत विमानवत्थु का तात्पर्य देववासों में रहने वाले देवों की कथा से है।

विमानवत्थुपालि (विमानवस्तु)– इस ग्रन्थ में 85 देवावासों (विमानों) का वर्णन किया गया है जिनको सात वर्गों में बाँटा गया है– 1. पीठवग्गो, 2. चित्तलतावग्गो, 3. पारिच्छत्तकवग्गो, 4. मञ्जिट्ठकवग्गो, 5. महारथवग्गो, 6. पायासिवग्गो एवं 7. सुनिक्खित्तवग्गो।

प्रथम चार वर्गों में स्त्री देवताओं के सत्कर्मों का निरूपण किया गया है। तथा शेष तीन वर्गों में पुरुष देवों के कुशल कर्मों का वर्णन किया गया है। प्रथम स्त्रीविमान के अन्तर्गत– 50 देवावासों का तथा द्वितीय पुरुषविमान के अर्न्तगत 35 देवावासों का वर्णन किया गया है। स्त्रीविमान तथा पुरुष विमान में क्रमशः 856 तथा 433 गाथाओं का वर्णन हुआ है।

पेतवत्थुपालि (प्रेतवस्तु):– यह खुद्दक-निकाय का सातवाँ ग्रन्थ है। इसमें अशुभकर्मों के फलस्वरूप जीवों के द्वारा प्राप्त प्रेतयोनियों का वर्णन किया गया है। जिसमें जीव विभिन्न प्रकार के नारकीय कष्टों को भोगता है।

इस ग्रन्थ को चार वर्गों में विभाजित किया गया है– 1. उरगवग्गो, 2. उब्बरिवग्गो, 3. चूलवग्गो तथा 4. महावग्गो जिनमें कुल मिलाकर 51 प्रेतों का वर्णन हुआ है।

विषयवस्तु की दृष्टि से देखा जाए तो इन ग्रन्थद्वय में कर्म तथा कर्मफल के सिद्धान्त का ही विभिन्न कथानकों के माध्यम से निरूपण किया गया है। विमानवत्थु में वर्णित कहानियों में मौद्गल्यायन द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर विभिन्न देवताओं ने जो अपने पूर्वजन्मकृत पुण्य फलस्वरूप देवावासों को यथायोग्य प्राप्त किया था, का वर्णन हुआ है। इसी प्रकार प्रेतवस्तु में विभिन्न प्रेतों के अपने पूर्वजन्मकृत पापकर्मों के फलस्वरूप प्राप्त अनेक नारकीय स्थानों का वर्णन किया गया है।

ग्रन्थद्वय की रचना विशेषकर सामान्यजन को दृष्टि में रखकर की गई है।

इस ग्रन्थ में मूलपालि, संस्कृतच्छाया एवं हिन्दी अनुवाद दिया गया है।

ISBN : 978-81-924536-2-0

Price : 500.00

पालि-ग्रन्थमाला-3

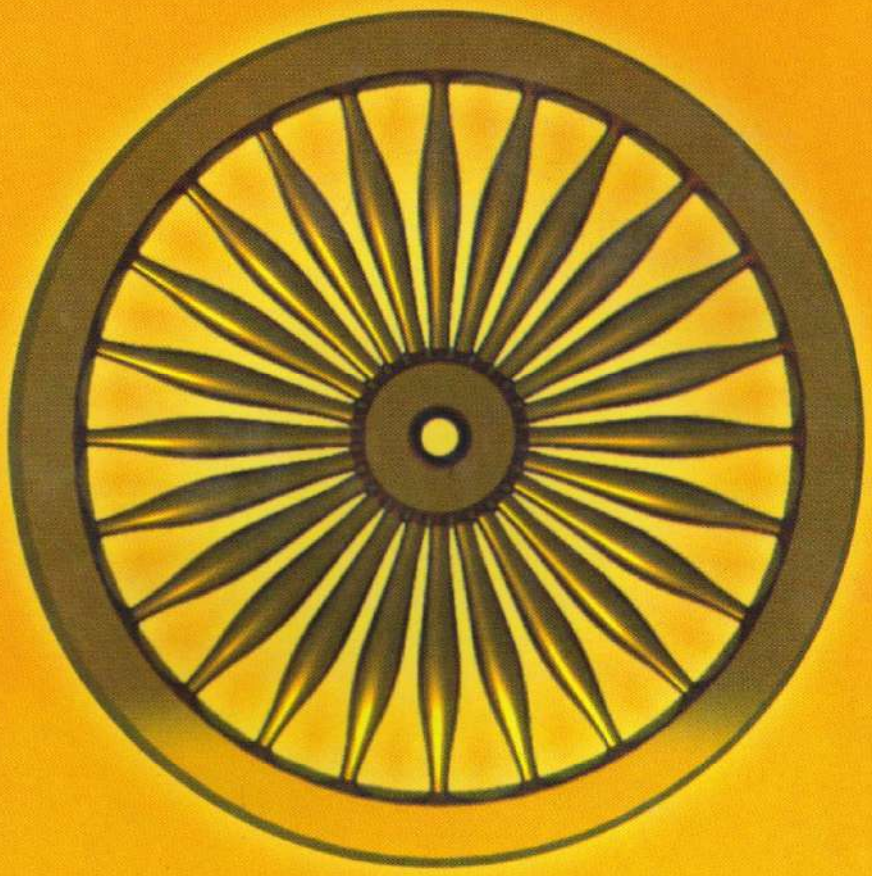
सुत्तपिटके खुद्दकनिकाये

विमानवत्थुपालि

एवं

पेतवत्थुपालि

(संस्कृतच्छाया-हिन्दी-अनुवादसहिता)



पालि-अध्ययन-केन्द्रम्

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् (मानित-विश्वविद्यालयः)
(केन्द्रीय-मानव-संसाधन-विकास-मन्त्रालयाधीनम्)
लखनऊ-परिसरः

पालि–ग्रन्थमाला–3

सुत्तपिटके खुद्दकनिकाये

विमानवत्थुपालि
एवं
पेतवत्थुपालि

(संस्कृतच्छाया–हिन्दी–अनुवादसहिता)

संकल्पना मार्गदर्शनं च

प्रो. राधावल्लभत्रिपाठी, कुलपतिः

संस्कृतच्छायाकारः

डॉ. मोहन मिश्र

पालि–अध्ययन–केन्द्रम्

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् (मानित–विश्वविद्यालयः)

(केन्द्रीय–मानव–संसाधन–विकास–मन्त्रालयाधीनम्)

लखनऊ–परिसरः, विशालखण्डः–4, गोमतीनगरम्, लखनऊ (उ.प्र.)

पालि–ग्रन्थमाला–3

सुत्तपिटके खुद्दकनिकाये **विमानवत्थुपालि एवं पेतवत्थुपालि**
(संस्कृतच्छाया–हिन्दी–अनुवादसहिता)

प्रकाशक : प्रो. सुरेन्द्र झा
©प्राचार्य, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मानित विश्वविद्यालय)
लखनऊ परिसर, विशाल खण्ड– 4,
गोमती नगर, लखनऊ–226010 (उ. प्र.)
दूरभाष : 05222393748; फैक्स : 05222302993

सम्पादक : प्रो. विजय कुमार जैन
डॉ. गुरुचरण सिंह नेगी

सहयोग : डॉ. शुक्ला मुखर्जी, परियोजना अधिकारी
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
(मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, भारत सरकार के अधीन)
56–57, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, जनकपुरी, नई दिल्ली– 110058
वेबसाईट:www.sanskrit.nic.in

मूल्य : **रु. 500/–**

प्रथम संस्करण– 2012

मुद्रक : शिवम् आर्ट्स, 211, निशातगंज, पांचवी गली, लखनऊ–226007
फोन 2782172, 2782348, मो. 94150 61690

Pāli-Granthamālā-3

Suttapitake Khuddakanikāye

VIMĀNAVATTHUPĀLI

&

PETAVATTHUPĀLI

(With Sanskritacchāyā

& Hindi Translation)

Vision & Guidance

Prof. Radhavallabh Tripathi
Vice-Chancellor

Sanskritacchayakara

Dr. Mohan Mishra



Pali Study Center

Rashtriya Sanskrit Sansthan, Deemed University
(Under M/O Human Resource Development, Govt. of India)
Lucknow Campus,Gomti Nagar, Lucknow- 226010 (U.P.)

Pāli-Granthamālā-3

Suttapitake Khuddakanikāye **VIMĀNAVATTHUPĀLI &**
PETAVATTHUPĀLI
(With Sanskritacchāyā & Hindi Trānslation)

Publisher : Prof. Surendra Jha
©Principal
Rashtriya Sanskrit Sansthan,
Deemed University
(Under M/O Human Resource Development, Govt. of India)
Lucknow Campus, Gomti Nagar, Lucknow- 226010 (U.P.)

Editor: Prof. Vijay Kumar Jain
Dr. Gurucharan Singh Negi

Assistance : Dr. Shukla Mukharjee
Project Officer
Rashtriya Sanskrit Sansthan, Deemed University
(Under M/O Human Resource Development, Govt. of India)
56-57, Institutional Area, Janakpuri, New Delhi-110058

Price: Rs. 500/

First Edition : 2012

Printer : Shivam Arts, 211, Nishat Ganj,
Vth Gali, Lucknow- 226007
Ph. : 2782172, 2782348;
Mob. : 9415061690

आमुख

मंगलमूर्तिः सततं वितरतु भद्रं परम्पराऽस्माकम्।
पालि–प्राकृत–संस्कृत–भाषासंगमसरस्वतीव।।
मैत्री–मुदिता–करुणोपेक्षाः श्लिष्टाः विभान्तु नित्यं ताः।
चतुष्टयीयं पाली घटयतु सुसंस्कृतं विश्वम्।।

त्रिपिटक में पालि–भाषा में भगवान् बुद्ध के 2550 वर्ष पहले दिए गए उपदेश सर्वाधिक प्रामाणिक रूप से संरक्षित हैं। पालि वही मागधी भाषा है, जिसे बुद्ध–वचनों की संवाहिका होने के कारण थाईलैंड, श्रीलंका, वर्मा, कम्बोडिया आदि दक्षिण एशियाई देशों में पवित्र भाषा का दर्जा दिया जाता है, पालि भाषा का संरक्षण–संवर्धन भी इन एशियाई देशों ने किया। कई शताब्दियों तक हम इस ज्ञान से अपरिचित रहे। योरोप के विद्वानों ने जब पालि टेक्स्ट सोसायटी के माध्यम से इसे उजागर किया तब भारत ने पुनः अपनी पुरानी धरोहर को संरक्षित करने का उपक्रम किया, इस क्रम में हमने पालि के ग्रन्थों के प्रकाशन का निश्चय किया है। भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय की योजना के तहत हमने पालि एवं प्राकृत का प्रोजेक्ट स्वीकार किया। उसी क्रम में लखनऊ में पालि अध्ययन केन्द्र की स्थापना हुई। जिसकी फलश्रुति ये ग्रन्थ हैं। प्राकृत की संस्कृतच्छाया की परम्परा तो सैकड़ों वर्षों से थी। पालि के मात्र धम्मपद एवं मिलिन्दप्रश्न के कुछ अंश की छाया मिलती है। संस्कृतच्छायायुक्त इस संस्करण से भारतीय प्रबुद्ध वर्ग के विचार का यह क्षेत्र बन सकेगा। जो अभी तक बहुत कम थी। हम तो इन प्राचीन भाषाओं की सेवा करना माता की सेवा के समान मानते हैं। पालि के थेरगाथा एवं थेरीगाथा से मैं स्वयं बहुत प्रभावित हूँ।

हम पाते हैं कि संस्कृत, पालि और प्राकृत भाषाओं में लोक जीवन का निरूपण करने वाली कविताएँ रची गईं। लक्ष्मीधर, शरण आदि कवियों की परंपरा लगभग डेढ़ हजार वर्षों तक सक्रिय रही है। इन कवियों ने खेत–खलिहान, पामर (खेत में काम करने वाले दिहाड़ी के मजदूर), गाँव–गिराँव के जीवन और मध्यवर्गीय भारतीय परिवार तथा निम्न वर्गीय समाज के जीवन के यथार्थ का दिग्दर्शन कराने वाली मार्मिक रचनाएँ संस्कृत में प्रस्तुत की हैं। गाँव–गिराँव और खेती–खलिहानी तथा किसानों के जीवन का यथार्थ प्रामाणिक चित्रण संस्कृत की लोकधर्मी परंपरा की कविता में मिलता है। पालि में इस प्रकार की रचनाएँ बहुत कम हैं। थेरीगाथा और थेरगाथा का उल्लेख अवश्य किया जा सकता है, जो खुद्दकनिकाय के अंतर्गत हैं। थेरीगाथा में थेरियाँ अपनी अनुभूतियाँ प्रस्तुत करती हैं। ये गाथाएँ स्त्रियों के आत्मालाप और स्वीकारोक्तियाँ हैं। परिवार और मध्यमवर्गीय समाज के संकीर्ण अभिशापग्रस्त जीवन के त्रास से मुक्त हो कर अनंत से जुड़ने का अनुभव थेरीगाथा की स्त्रियों ने अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। विधवा, संतानहीन होने के कारण मिलने वाली प्रताणनाएँ, स्त्री होने के कारण मिलने वाले तरह–तरह के लांछन, इन सब के दुःख की गठरी बटोर कर थेरियाँ बुद्ध के संघ में

सम्मिलित हुईं, और अपनी गाथाओं में उन्होंने पिछले जीवन की त्रासदी और वर्तमान में उससे मुक्ति के अनुभव को जो गहन अभिव्यक्ति दी है, वह विश्वसाहित्य में स्त्रीविमर्श की दृष्टि से दुर्लभ है। मुत्ता, इसिदासी, चन्दा, उदकहारी, विमला पुराणभणिका, मेत्तिका, पटाचारा, अड्ढकासिआ, कुंडलकेसी, किसा गोतमी आदि स्त्रियों की गाथाएँ यहाँ भारतीय नारी के जीवन की महागाथा प्रस्तुत करती हैं। परित्यक्ता होना, वेश्या बनने के लिये विवश किया जाना, प्रेमी की हत्या कर के भागना, और परिवार व समाज से तिरस्कार– इन सब के बीच का वजूद यहाँ कायम है और इसकी मुक्ति की खोज भी। मुत्ताथेरी कहती है–

सुमुत्ता साधुमुत्ताम्हि, तीहि खुज्जेहि मुत्तिया।
उदुक्खलेन मुसलेन, पतिना खुज्जकेन च।
मुत्ताम्हि जातिमरणा, भवनेत्ति समूहता'' ति।।11।। – थेरीगाथा

स्त्री–मुक्ति की ऐसी गाथा संस्कृत या प्राकृत की मुक्तक कविता में इस रूप में कहीं नहीं मिलती। थेरीगाथा इस दृष्टि से भारतीय साहित्य में अनन्य है। यहाँ दुर्बल और गतयौवना मेत्तिका लाठी के सहारे किसी तरह चलती थी, वह पर्वत की चट्टान पर बैठ कर मुक्ति का राग अलापती दिखती है, तो विमलापुराणभणिका वेश्या बन कर, सज–धज कर द्वार पर खड़ी कामुक प्रेमियों की प्रतीक्षा में कई–कई घड़ियाँ बिताती रही, वह पेड़ की छाँह में बैठ कर चिन्तन करती दिखती है, विधवा और निस्संतान चंदा, जो भीख माँग कर किसी तरह गुजर–बसर करती थी, उदकहारी जो पानी में स्नान करते ब्राह्मणों पर व्यंग्य करती है, पाटलिपुत्र की इसिदासी जो उज्जयिनी के अत्यंत सम्पन्न परिवार में जन्मी, विवाह के पश्चात् ससुराल में सब की सेवा करती रहती है, फिर भी अकारण लांछित की जाती है, पति के त्रास से अतिशय खिन्न हो कर वह पितृगृह में लौट आती है, पिता उसकी वेदना समझ कर दूसरा विवाह कर देते हैं, पर दूसरा विवाह होने पर भी वही नारकीय जीवन। पटचारा, जो पिता के द्वारा निश्चित संबंध में बँधना नहीं चाहती, वह अपने प्रेमी के साथ भाग जाती है, विवाह के पश्चात् प्रेमी भी उसे छोड़ देता है, उसके दोनों बेटों की जीवनलीला अत्यंत दारुण स्थितियों में निःशेष हो जाती है। अड्ढकासिआ एक श्रेष्ठी की बेटी है, पर बलात् अपहरण के पश्चात् वेश्या होने पर विवश की जाती है। कुडलकेसी का मन एक चोर पर आ जाता है, उसकी जिद पर पिता उसका विवाह चोर से ही कर देते हैं। विवाह के पश्चात् पहाड़ पर मंदिर में पूजा करने के लिये जब वर–वधू जाते हैं, तो वह चोर उससे सारे आभूषण उतार कर सौंपने के लिये कहता है। इस विश्वासघात से आहत कुंडलकेसी उसकी हत्या कर डालती है, फिर भटकाव का अंत संघ में पहुँच कर होता है। किसा गोतमी अत्यंत दरिद्र परिवार में जन्मी, ससुराल में उसकी गरीबी के कारण उसका उपहास किया जाता है। उसका बेटा मर जाता है, किसा गोतमी पागल हो कर भटकती फिरती है। इन सब स्त्रियों को मिले लांछन, प्रताड़नाएँ और वेदनाएँ थेरीगाथा में हैं और उनसे निष्कृति की कथा भी।

थेरगाथा के थेर भी कहीं–कहीं अपनी कथा कहते हैं। वे पूर्व जीवन के प्रपंचों और विसंगतियों की चर्चा करते हैं। सुनीत थेर कहता है कि मैं नीच कुल में उत्पन्न हुआ, दरिद्र था,

खाने को नहीं मिलता था, लोग मुझ से घृणा करते थे, मैं अपमानित और तिरस्कृत जीवन बिता रहा था, मेरा मन गिरा हुआ था। फिर मैंने भिक्षु संघ के साथ आते भगवान् बुद्ध के दर्शन किये, मेरे क्लेश दूर हुए।

नीचे कुलम्हि जातोहं, दलिद्दो अप्पभोजनो।
हीनकम्मं ममं आसि, अहोसिं पुप्फछड्डको।।
जिगुच्छितो मनुस्सानं, परिभूतो च वम्मितो।
नीचं मनं करित्वान, वन्दिस्सं बहुकं जनं।।
अथद्दसासिं संबुद्धं, भिक्खुसंघपुरक्खतं।
पविसन्तं महावीरं, मगधानं
पुरुत्तमं ।।620–622।।

थेरीगाथा तथा थेरगाथा दोनों एक अर्थ में भारतीय दलित समाज की कराह की मार्मिक अभिव्यक्तियाँ भी हैं, पर इसके साथ ये आध्यात्मिक साधना और मुमुक्षुत्व की महागाथाएँ भी हैं।

ईसा–पूर्व तथा ईसा–पश्चात् की हमारे साहित्यिक और सांस्कृतिक इतिहास की कतिपय शताब्दियों में वैदिक, बौद्ध तथा जैन परंपराओं के बीच वाद, विवाद और संवाद की, साहित्यिक आदान–प्रदान की जीवन्त प्रक्रिया घटित हो रही थी। इस संवाद की प्रक्रिया का साक्ष्य संस्कृत साहित्य शास्त्र के आचार्यों ने दिया है। आनंदवर्धन ने तो दो कवियों के बीच संवाद की अवधारणा का सटीक विवेचन किया है। पालि की गाथाएँ और प्राकृत के मुक्तक जन–समाज में लोकप्रिय थे। इस आधार पर राजशेखर ने रचना की गुणवत्ता का एक मानक यह भी स्वीकार किया कि वह जन–जन का कंठहार बने।

पालि, संस्कृतच्छाया हिन्दी अर्थ युक्त खुद्दकनिकाय के खुद्दकपाठ, उदान, इतिवुत्तक, विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेरगाथा, थेरीगाथा, सुत्तनिपात एवं संयुत्तनिकाय का सगाथवग्ग प्रथम चरण में प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है सभी के लिए उपयोगी होगा। शोध–अध्येताओं को साधुवाद देना चाहता हूँ तथा विशेषज्ञों– पद्मश्री प्रो. रामशंकर त्रिपाठी, प्रो. संघसेन सिंह, प्रो. एस. पी. नारंग, प्रो. उमाशंकर व्यास, प्रो. धर्मचंद जैन, प्रो. ब्रह्मदेवनारायण शर्मा (अब स्मृतिशेष), प्रो. ब्रजमोहन पाण्डेय नलिन, प्रो. रामसागर मिश्र, प्रो. वृषभ प्रसाद जैन ने कार्यशालाओं के माध्यम से इसे संशोधित किया है उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ वर्तमान प्राचार्य डॉ. सुरेन्द्र झा तथा बौद्धदर्शन विभाग के प्राध्यापकों का श्रम भी उल्लेखनीय है। परियोजना अधिकारी एवं मंत्रालय का सहयोग भी भुलाया नहीं जा सकता।

भवतु सब्ब मंगलं।

30, मार्च, 2012

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी
कुलपति

प्रकाशकीय

प्रसन्नता का विषय है कि पालि अध्ययन केन्द्र के अध्येताओं– डॉ. मोहन मिश्र, डॉ. नीलिमा चौहान, श्री जयवन्त खण्डारे, डॉ. राहुल अमृतराज, डॉ. वेदव्यास पाण्डेय, श्री प्रदीप कुमार द्विवेदी एवं स्वतंत्र रूप से कार्य कर रही डॉ0 श्रीमती राका जैन द्वारा की गई संस्कृतच्छाया–युक्त पालि त्रिपिटक के 9 ग्रन्थ प्रथम चरण में पाँच भागों में प्रकाशित हो रहे हैं। खुद्दकनिकाय के आठ ग्रन्थ– खुद्दकपाठ, उदान, इतिवुत्तक, थेरगाथा, थेरीगाथा, विमानवत्थु, पेतवत्थु तथा सुत्तनिपात एवं संयुत्तनिकाय का सगाथवग्ग बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इन ग्रन्थों में भारतीय लोक–जीवन की अच्छी झाँकी मिलती है। संस्कृत, पालि, व्याकरण एवं भाषावैज्ञानिक दृष्टि से भी इनका विशेष महत्त्व है। इस कार्य को उत्तम बनाने के लिए कई बार कार्यशालाएँ की गईं जिनमें देश के मूर्धन्य एवं वयोवृद्ध विद्वान् सम्मिलित हुए। उक्त कार्यशाला के अवसर पर पद्मश्री प्रो. रामशंकर त्रिपाठी जी ने कहा था कि ''भारतीय दर्शन परम्परा के विकास में बौद्धों का पूर्वपक्ष के रूप में बहुत बड़ा योगदान रहा है। बीच में बौद्धों का पक्ष कमजोर होने से दर्शन की परम्परा का लेखन रुक गया, क्योंकि पूर्वपक्ष में बौद्धों का अन्य वाङ्मय तो भारतीय दार्शनिकों के समक्ष था, पालि साहित्य नहीं था।''

'पालि' भाषा में निबद्ध त्रिपिटक भगवान् बुद्ध की वाणी है। इसका पूरे विश्व में महत्त्वपूर्ण स्थान है। संस्कृतच्छाया–युक्त ये ग्रन्थ भारतीय मनीषियों के लिए विशेष उपयोगी होंगे। इस कार्य की सफलता में हमारे सम्माननीय कुलपति जी की कृपा एवं दूरदर्शिता रही है। मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए कार्यशाला में पधारने वाले विद्वज्जनों, सम्पादकों, केन्द्र के अध्येताओं एवं सहयोगी प्राध्यापकों को साधुवाद देता हूँ तथा कामना करता हूँ कि पालि अध्ययन केन्द्र इसी तरह सफलतापूर्वक कार्य करता रहे तथा यह ग्रन्थमाला अनवरत चलती रहे। इस प्रकाशन से हमारे परिसर का भी गौरव बढ़ा है।

लखनऊ
30 मार्च, 2012

प्रो. सुरेन्द्र झा
प्राचार्य

सम्पादकीय

पालि त्रिपिटक भगवान् बुद्ध की वाणी को संरक्षित करने वाला सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ है। पालि त्रिपिटक की प्रामाणिकता उनकी सङ्गीतियों के माध्यम से होती है। भगवान् बुद्ध के समय ही भिक्षु बुद्धवचनों को कंठस्थ कर लिया करते थे। सुत्तधर, विनयधर, जैसे शब्द स्पष्ट करते हैं कि बुद्धवचन मौखिक परम्परा पर आधारित थे। भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के तीन माह पश्चात अर्हत् भिक्षुओं ने प्रथम संगीति का आयोजन किया एवं धम्म और विनय का संगायन किया गया। तदन्तर 100 वर्ष बाद द्वितीय संगीति में जब संघभेद हो गया तो स्थविर भिक्षुओं ने **मागधी** में तथा महासांघिकों ने संस्कृत में बुद्धवचनों का सङ्गायन किया। दूसरी संगीति के 135 वर्ष बाद अशोक के समय तीसरी संगीति हुई उसमें त्रिपिटक का संगायन हुआ। सम्राट अशोक ने बुद्धवचनों के प्रचार व प्रसार के लिए सम्पूर्ण एशिया के भिक्षुओं को तथा अपने पुत्र एवं पुत्री को श्रीलंका भेजा। श्रीलंका में भी बुद्धवचन कई वर्ष तक मौखिक परम्परा में सुरक्षित रहे। पुनः वहाँ चौथी एवं पाँचवी संगीति हुई तथा बुद्धवचनों को पत्थरों में उत्कीर्ण कराया। छट्ठसंगायन जो 1956 ई. में बर्मा में हुआ उसी के आधार पर नवनालन्दा महाविहार से पालि त्रिपिटक देवनागरी में प्रकाशित हुआ, जो आज अनुपलब्ध है। इगतपुरी विपश्यना शोध संस्थान ने सम्पूर्ण त्रिपिटक को अट्ठकथा टीका सहित प्रकाशित किया था जो आज मात्र इण्टरनेट पर ही उपलब्ध है।

हमारे माननीय कुलपति जी की भावना थी कि त्रिपिटक का संस्थान का संस्करण विशेष एवं अन्तर्राष्ट्रीय मानक का होना चाहिए साथ ही संस्कृत संस्थान द्वारा प्रकाशित होने के कारण संस्कृत छाया रहे तो और भी अच्छा होगा, क्योंकि मूलानुगामी संस्कृतच्छाया से अर्थबोध करने में सहायता प्राप्त होती है। आज त्रिपिटक का अनुवाद अंग्रेजी, स्यामी, सिंहली, बर्मी में हुआ है किन्तु हिन्दी में आधा अधूरा। संस्कृतच्छाया से पालि–प्राकृत–संस्कृत का अन्तःसम्बन्ध प्रकट हो जाता है, क्योंकि अनुवाद दूसरी भाषाओं से किया जाता है उनकी छाया नहीं हो सकती। छाया उन्हीं भाषाओं की होती है जिनका भाषावैज्ञानिक एवं व्याकरण की दृष्टि से अन्तःसम्बन्ध हो। पालि साहित्य का विशाल भण्डार है। इसमें से 'धम्मपद' एवं 'मिलिन्दप्रश्न' के कुछ अंश की संस्कृतच्छाया पहले से उपलब्ध हैं। महापंडित राहुल सांकृत्यायन जी एवं भिक्षु धर्मरक्षित के धम्मपद अनुवाद संस्कृतच्छाया के साथ प्रकाशित हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय से प्रो. संघसेन सिंह का भी 'धम्मपद' की संस्कृतच्छाया प्रकाशित है।

हमारे सम्माननीय कुलपति जी ने मानव संसाधन विकास मंत्रालय की योजना को स्वीकार करते हुए उदीयमान नवयुवकों को यह दायित्व दिया जिसे इन्होंने उत्साहपूर्वक निभाया है। यह सब हमारे दूरदर्शी कुलपति जी की दृढ़ इच्छा, भागीरथ प्रयास एवं उनके कुशल नेतृत्व का परिणाम है कि हम इस दिशा में आगे बढ़ सके। इस योजना में देश के वयोवृद्ध विद्वानों ने मनोयोग से सहायता पहुँचाई। कार्यशालाओं के माध्यम से इस छाया को कई–कई बार परिष्कृत किया गया।

उद्देश्य था कि अर्थ न बदलें तथा छाया मूलानुगामी हो, अनुवाद मात्र नहीं और व्याकरण के नियमों का भी पालन हो। पालि परम्परा एवं अट्ठकथा के अर्थ को भी ध्यान दिया गया। इसी तरह शीर्षक एवं 'नाम' में भी मूल को सुरक्षित रखते हुए छाया की गई है। संस्कृतच्छाया में बौद्धसंस्कृत में प्राप्त पालि शब्दावली का भी सहयोग लिया गया है।

पालि से संस्कृतच्छाया करने में जहाँ व्याकरण एवं भाषाविज्ञान से सहयोग लेने में सुगमता हुई वहीं कुछ व्यवहारिक कठिनाइयां भी आयीं। अतः उच्चस्तरीय वार्ता के आधार पर समाधान खोजे गए। यथा–

पालि परम्परा में 'पञ्चम वर्ण' के स्थान पर अनुस्वार का विधान है। संस्कृत में 'पंचम वर्ण' मात्र नहीं है, श्लोकों में कई अन्य व्यवस्थाएं भी हैं, जिन्हें यथासंभव पालन किया गया है।

– संस्कृत में यति का प्रयोग करते है, पालि गाथाओं में भी है, अतः यति के लिए कॉमा को विराम मानकर आगे के स्वर व्यंजन का ध्यान न देकर पंचम वर्ण कर दिया गया है।

– कुछ पालि शब्द वैदिक संस्कृत से साम्यता रखते हैं। प्रो. जानकी प्रसाद द्विवेदी जी ऐसे शब्दों को परम्परा के आधार पर उसी रूप में रखने के पक्षधर थे लेकिन जहाँ तक लौकिक संस्कृत बन पाई है, वहाँ बनाने का प्रयास किया है।

– बहुत से पालि के शब्द कातन्त्र व्याकरण से सिद्ध होते हैं, अतः उसका भी सहारा लिया गया है। प्रो. रामसागर जी मिश्र ने इसमें अथक सहायता पहुँचाई है।

– प्रचलित शब्दों को छोड़कर पालि नाम एवं शीर्षक को यथावत् स्वीकार करके उनकी संस्कृतच्छाया करने का अनावश्यक प्रयास नहीं किया गया है।

– कुछ अन्य शब्दों तथा 'देशी' शब्दों में भी येन केन प्रकारेण अर्थ बोध कराने की दृष्टि से कहीं मूल शब्द, कहीं संस्कृत भाव प्रकट करने का प्रयास किया गया है।

आशा है ''**पालि ग्रन्थमाला**'' उपयोगी सिद्ध होगी तथा मंत्रालय, संस्थान तथा सभी विद्वत्जनों का सहयोग इसी तरह मिलता रहेगा।

पालि अध्ययन केन्द्र की स्थापना से लेकर आज तक सम्पूर्ण परिसर की ओर से अपार स्नेह मिलता रहा है। तत्कालीन कार्यवाहक प्राचार्य प्रो. सर्वनारायण झा के कार्यकाल में महामहिम राज्यपाल उ0 प्र0 श्री बी.एल. जोशी, कुलपति प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी तथा मानव संसाधन विकास मन्त्रालय में संयुक्त सचिव (भाषा) डॉ. अनीता भटनागर जैन ने इसकी नींव मजबूत रखी थी, जिसके कारण यह फलित हो रही है। इसमें प्राचार्य प्रो. सुरेन्द्र झा का भी पूरा सहयोग रहता है। संस्थान मुख्यालय में परियोजना अधिकारी डॉ0 शुक्ला मुखर्जी इसमें पूरे मनोयोग एवं सूक्ष्म चिंतन पूर्वक सहायता पहुँचाती हैं। हम उपर्युक्त महानुभावों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए परिसर के प्राध्यापकगण– प्रो. सुरेन्द्र पाठक, प्रो. लोकमान्य मिश्र, प्रो0 रामलखन पाण्डेय, डॉ. लक्ष्मीनिवास पाण्डेय, डॉ. गजेन्द्र शर्मा, डॉ. धनीन्द्र कुमार झा, डॉ. भारतभूषण त्रिपाठी, डॉ. ब्रजभूषण ओझा, डॉ. पवन कुमार, डॉ. श्यामदेव मिश्र, डॉ. गज़ाला अंसारी, डॉ. अमित कुमार शुक्ल, डॉ. कविता विसारिया एवं विभागीय सहयोगी डॉ. . अवधेश कुमार चौबे के प्रति भी हार्दिक आभार प्रकट करते हैं। सबसे बड़े सौभाग्य की बात तो हमारे अध्येताओं की है जिनका कार्य इतने जल्दी प्रकाशित हो रहा है, इन्होंने बहुत श्रम किया है। उस श्रम का यह प्रकाशन सुखद फल है।

लखनऊ
31 मार्च, 2012

विजयकुमार जैन
गुरुचरण सिंह नेगी

विमानवत्थु एवं पेतवत्थु

प्रस्तुत विमानवत्थुपालि एवं पेतवत्थुपालि नामक ग्रन्थ को संगीतिकारों ने सुत्तपिटक के पाँचवें निकाय खुद्दकनिकाय के 15 ग्रन्थों में से क्रमशः छठवें एवं सातवें स्थान पर रखा है। 'विमान' शब्द से तात्पर्य यहाँ देवताओं के आवासों से है। तथा 'वत्थु' से तात्पर्य कथा व कहानी है। अतः विमानवत्थु का तात्पर्य देववासों में रहने वाले देवों की कथा से है।

वैसे तो विमान शब्द का प्रयोग भारतीय परम्परा में प्राचीन काल से ही देखने को मिलता है। वेदों में विमान शब्द का प्रयोग अधिष्ठाता, व्यवस्थापक, नापने वाला या पार जाने वाला अर्थों में हुआ है। 'रजसो विमानं' (ऋ. वे. 3.26.7) से लोकों का अधिष्ठाया या नापने वाला व 'रजसो विमान रथम्' (ऋ. वे. 2.40.3) का अर्थ लोकों के पार ले जाने वाला है।

भारतीय स्थापत्य की दो शैलियाँ– 'नागर'– उत्तर–भारतीय तथा द्राविड़– दक्षिण–भारतीय। उत्तर के मन्दिरों की संज्ञा प्रासाद है तथा दक्षिण के मन्दिरों की 'विमान'। पेतवत्थु से तात्पर्य–प्रेतों की कथा कहानियों से है।

विषयवस्तु– विषयवस्तु की दृष्टि से देखा जाए तो इन ग्रन्थद्वय में कर्म तथा कर्मफल के सिद्धान्त का ही विभिन्न कथानकों के माध्यम से निरूपण किया गया है। विमानवत्थु में वर्णित कहानियों में मौद्गल्यायन द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर विभिन्न देवताओं ने जो अपने पूर्वजन्मकृत पुण्य फलस्वरूप देवावासों को यथायोग्य प्राप्त किया था, का वर्णन हुआ है। इसी प्रकार प्रेतवस्तु में विभिन्न प्रेतों ने अपने पूर्वजन्मकृत पापकर्मों के फलस्वरूप प्राप्त अनेकानेक नारकीय स्थानों का वर्णन किया है।

ग्रन्थद्वय की रचना विशेषकर सामान्यजन को दृष्टि में रखकर की गई है। इसके लिए रचनाकार ने लगता है कि रोचकता लाने के लिए कुछ अलौकिकवाद का भी सहारा लिया। सद्गृहस्थों के लिए भी इन ग्रन्थों में पर्याप्त नैतिक आदर्श उपलब्ध हैं जो वर्तमान में अत्यन्त प्रासंगिक हैं।

विमानवत्थुपालि में 85 देवावासों (विमानों) को वर्णित किया गया है। इसे सात वर्गों में बाँटा गया है– 1. पीठवग्गो, 2. चित्तलतावग्गो, 2. पारिच्छत्तकवग्गो, 4. मंजिट्ठकवग्गो, 5. महारथवग्गो, 6. पायासिवग्गो एवं 7. सुनिक्खित्तवग्गो।

पीठवग्गो	–	17 देवावासों का वर्णन
चित्तलतावग्गो	–	11 देवावासों का वर्णन

पारिच्छत्तकवग्गो	–	10 देवावासों का वर्णन
मंजिट्ठकवग्गो	–	12 देवावासों का वर्णन
महारथवग्गो	–	14 देवावासों का वर्णन
पायासिवग्गो	–	10 देवावासों का वर्णन
सुनिक्खित्तवग्गो	–	11 देवावासों का वर्णन

प्रथम चार वर्गों में स्त्री देवताओं के सत्कर्मों का निरूपण किया गया है। तथा शेष तीन वर्गों में पुरुष देवों के कुशल कर्मों का वर्णन किया गया है। प्रथम स्त्रीविमान के अन्तर्गत–50 देवावासों का तथा द्वितीय पुरुषविमान के अर्न्तगत 35 देवावासों का वर्णन किया गया है। स्त्रीविमान तथा पुरुष विमान में क्रमशः 856 तथा 433 गाथाओं का वर्णन हुआ है।

पेतवत्थु (प्रेतवस्तु) :– यह खुद्दकनिकाय का छठवाँ ग्रन्थ है। इसमें अशुभकर्मों के फलस्वरूप जीवों के द्वारा प्राप्त प्रेतयोनियों का वर्णन किया गया है। जिसमें जीव विभिन्न प्रकार के नारकीय कष्टों को भोगता है।

इस ग्रन्थ को चार वर्गों में विभाजित किया गया है– 1. उरगवर्ग, 2. उब्बरिवर्ग, 3. चूलवर्ग तथा 4. महावर्ग। 1. उरगवर्ग में 12 प्रेतों, 2. उब्बरिवर्ग में 13 प्रेतों , 3. चूलवर्ग में 15 प्रेतों तथा 4. महावर्ग में 16 प्रेतों का कुल मिलाकर 12+13+10+16=51 प्रेतों का वर्णन हुआ है। वर्त्तमान में इन दो ग्रन्थों की प्रासंगिकता पर विचार किया जाय तो हम पाते हैं कि आज समाज इतना स्वार्थी होता जा रहा है कि अतिथियों की उपेक्षा हो रही है। पाश्चात्य संस्कृति का भी इस पर प्रभाव है। विमानवत्थु में अतिथि–सत्कार का महत्त्व बतलाते हुए इसके प्रभाव से मनुष्यलोक में ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। इस ग्रन्थ में दानमाहात्म्य का भी वर्णन अत्यन्त प्रभावी ढंग से किया गया है जहाँ किसी भिक्षु को दीपक, जल आदि के दान से ही व्यक्ति को सुगति प्राप्त करते दर्शाया गया है। इस ग्रन्थ में पातिव्रत्य धर्म, प्रीति–वचन तथा निर्दोष कर्म की महिमा का भी वर्णन देखने को मिलता है साथ–साथ इसमें अनेकानेक विमानों के वर्णन से तत्कालीन सांस्कृतिक वैभव का भी दर्शन प्राप्त होता है।

आभार

भावाभिव्यक्ति से पूर्व यह प्रकट कर देना उचित होगा कि ये दो ग्रन्थ विमानवत्थुपालि एवं पेतवत्थुपालि, संस्कृतच्छाया के साथ हिन्दी अनुवाद में मुझे किन–किन प्रेरणास्रोतों का सहयोग मिला। आधुनिक भारत की महान् विभूतिश्रेष्ठ पं. महामना मदनमोहन मालवीय द्वारा स्थापित सरस्वती विद्या मंदिर बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी) से पूज्य गुरुवर प्रो. श्री हरिशंकर शुक्ल के सफल निर्देशन में शोध उपाधि प्राप्त करने के उपरान्त मेरी रुचि बौद्ध विद्या के प्रति बढ़ी जिसका परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान द्वारा प्रदत्त इस अवसर को मैंने सहर्ष स्वीकार किया, जिसमें हमारे पूज्य गुरु एवं विभागाध्यक्ष प्रो. विजयकुमार जैन, डॉ. अवधेश कुमार चौबे, डॉ. गुरुचरण सिंह नेगी एवं डॉ. पवन कुमार का अमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ। साथ–साथ हमारे सहयोगी वरिष्ठ/कनिष्ठ अध्येताओं डॉ. पत्रिका जैन, डॉ. नीलिमा चौहान, डॉ. वेदव्यास पाण्डेय, डॉ. जयवन्त खंडारे, डॉ. राहुल अमृतराज, श्री प्रदीप कुमार द्विवेदी तथा श्री प्रिन्स कुमार जैन एवं टाइपिस्ट श्री विकास जैन का महत्त्वपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ।

मेरे प्रेरणास्रोत पूज्य माता–पिता प्रो. श्री नारायण मिश्र एवं श्रीमती मीना मिश्रा का प्रत्यक्ष स्नेह एवं आशीर्वाद प्राप्त हुआ। अपने शुभचिन्तकों का भी सहयोग मुझे भरपूर मिला। इस दिशा में श्री प्रदीप शर्मा लुईटेल, श्री घनश्याम पाल, श्री अतुल श्रीवास्तव श्री विपिन कुमार द्विवेदी, श्री अर्जुन गर्तौला, श्री प्रभात कुमार सिंह, श्री काशीनाथ द्विवेदी तथा अपने गुरुभाई डॉ. सन्तोष प्रियदर्शी के प्रति मैं आभार प्रकट करता हूँ।

ग्रन्थद्वय की छाया हेतु मैंने छट्ठ संगायन पर आधृत इनके नवनालन्दा संस्करण को तथा अट्ठकथाकार आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथा को आधार बनाया है। साथ ही **पालि–इंग्लिश डिक्शनरी**, मोनियर विलयम्स, **संस्कृत–हिन्दी कोश**, वामन शिवराम आप्टे आदि शब्दकोशों एवं अन्यान्य धातुकोशों का भी सहयोग लिया। यहाँ पर मैं पं. स्वामी द्वारिकादासशास्त्री जी का विशेष आभार प्रकट करता हूँ, जिनके द्वारा सम्पादित एवं अनुवादित विमानवत्थुपालि एवं पेतवत्थुपालि, हिन्दी–अनुवाद–सहित, ग्रन्थ से मुझे अधिकाधिक सहायता मिली।

अन्त में मैं राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान परिवार व कुलपति प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी जी का आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने मुझे यह सुअवसर प्रदान किया। अन्त में पाठकों से ग्रन्थ में रह गए किसी भी दोष व त्रुटि के लिए क्षमा प्रार्थना के साथ–साथ उचित परामर्श की कामना करता हूँ।

– डॉ. मोहन मिश्र

विमानवत्थुपालि–पेतवत्थुपालि

विषयानुक्रमणिका

विसयक्कमो

विमानवत्थुपालि

1. इत्थिविमानं

1. पठमो पीठवग्गो

1. पठमपीठविमानवत्थु 1
2. दुतियपीठविमानवत्थु 2
3. ततियपीठविमानवत्थु 4
4. चतुत्थपीठविमानवत्थु 6
5. पंचमकुंजरविमानवत्थु 7
6. पठमनावाविमानवत्थु 10
7. दुतियनावाविमानवत्थु 12
8. ततियनावाविमानवत्थु 14
9. दीपविमानवत्थु 17
10. तिलदक्खिणविमानवत्थु 19
11. पठमपतिब्बताविमानवत्थु 20
12. दुतियपतिब्बताविमानवत्थु 22
13. पठमसुणिसाविमानवत्थु 24
14. दुतियसुणिसाविमानवत्थु 25
15. उत्तराविमानवत्थु 27
16. सिरिमाविमानववत्थु 29
17. केसकारीविमानवत्थु 32

2.दुतियो चित्तलतावग्गो

1. दासिविमानवत्थु 35
2. लखुमाविमानवत्थु 38
3. आचामदायिकाविमानवत्थु 40
4. चण्डालिविमानवत्थु 43
5. भाद्दित्थिविमानवत्थु 45
6. सोणदिन्नाविमानवत्थु 47
7. उपोसथाविमानवत्थु 49
8. निद्दाविमानवत्थु 53
9. सुनिद्दाविमानवत्थु 55
10. पठमभिक्खादायिकाविमानवत्थु 58
11. दुतियभिक्खादायिकाविमानवत्थु 59

3.ततियो पारिच्छत्तकवग्गो

1. उळारविमानवत्थु 62
2. उच्छुदायिकाविमानवत्थु 64
3. पल्लङ्कविमानवत्थु 66
4. लताविमानवत्थु 68

5. गुत्तिलविमानवत्थु

1. वत्थुत्तमदायिकाविमानवत्थु 70
2. पुप्फुत्तमदायिकाविमानवत्थु 72
3. गन्धुत्तमदायिकाविमानवत्थु 74
4. फलुत्तमदायिकाविमानवत्थु 76
5. रसुत्तमदायिकाविमानवत्थु 77
6. गन्धपंचङ्गुलिकदायिकाविमानवत्थु 79
7. एकूपोसथविमानवत्थु 81
8. उदकदायिकाविमानवत्थु 82
9. उपट्ठानविमानवत्थु 84
10. अपरकम्मकारिनीविमानवत्थु 85
11. खीरोदनदायिकाविमानवत्थु 87
12. फाणितदायिकाविमानवत्थु 88
13. उच्छुखण्डिकदायिकाविमानवत्थु 91
14. तिम्बरुसकदायिकाविमानवत्थु 92
15. कक्कारिकदायिकाविमानवत्थु 94
16. एलालुकदायिकाविमानवत्थु 95
17. वल्लिफलदायिकाविमानवत्थु 97
18. फारुसकदायिकाविमानवत्थु 97
19. हत्थप्पतापकदायिकाविमानवत्थु 97
20. साकमुट्ठिदायिकाविमानवत्थु 97
21. पुप्फकमुट्ठिदायिकाविमानवत्थु 97

22. मूलकदायिकाविमानवत्थु 97
23. निम्बमुट्ठिदायिकाविमानवत्थु 98
24. अम्बकञ्जिकदायिकाविमानवत्थु 98
25. दोणिनिम्मज्जनिदायिकाविमानवत्थु 98
26. कायबन्धनदायिकाविमानवत्थु 98
27. अंसबद्धकदायिकाविमानवत्थु 98
28. आयोगपट्टदायिकाविमानवत्थु 99
29. विधूपनदायिकाविमानवत्थु 99
30. तालवण्टदायिकाविमानवत्थु 99
31. मोरहत्थदायिकाविमानवत्थु 99
32. छत्तदायिकाविमानवत्थु 99
33. उपाहनदायिकाविमानवत्थु 100
34. पूवदायिकाविमानवत्थु 100
35. मोदकदायिकाविमानवत्थु 100
36. सक्खलिकदायिकाविमानवत्थु 100
6. दद्दल्लविमानवत्थु 102
7. पेसवतीविमानवत्थु 107
8. मल्लिकाविमानवत्थु 110
9. विसालक्खिविमानवत्थु 111
10. पारिच्छत्तकविमानवत्थु 113
तस्सुद्दानं

4. चतुत्थो मञ्जिट्ठकवग्गो

1. मञ्जिट्ठकविमानवत्थु 116
2. पभस्सरविमानवत्थु 117
3. नागविमानवत्थु 119
4. अलोमविमानवत्थे 120
5. कञ्जिकदायिकाविमानवत्थु 122
6. विहारविमानवत्थु 124
7. चतुरित्थिविमानवत्थु 129
8. अम्बविमानवत्थु 134
9. पीतविमानवत्थु 137
10. उच्छुविमानवत्थु 139
11. वन्दनविमानवत्थु 141
12. रज्जुमालाविमानवत्थु 143
तस्सुद्दानं

2. पुरिसविमानं

5. महारथवग्गो पठमो

1. मण्डूकदेवपुत्तविमानवत्थु 150
2. रेवतीविमानवत्थु 150
3. छत्तमाणवकविमानवत्थु 155
4. कक्कटकरसदायकविमानवत्थु 160
5. द्वारपालविमानवत्थु 161
6. पठमकरणीयविमानवत्थु 162
7. दुतियकरणीयविमानवत्थु 163
8. पठमसूचिविमानवत्थु 164
9. दुतियसूचिविमानवत्थु 165
10. पठमनागविमानवत्थु 166
11. दुतियनागविमानवत्थु 167
12. ततियनागविमानवत्थु 168
13. चूलरथविमानवत्थु 169
14. महारथविमानवत्थु 175
तस्सुद्दानं

6. पायासिवग्गो दुतियो

1. पठमअगारियविमानवत्थु 182
2. दुतियअगारियविमानवत्थु 183
3. फलदायकविमानवत्थु 184
4. पठमउपस्सयदायकविमानवत्थु 185
5. दुतियउपस्सयदायकविमानवत्थु 186
6. भिक्खादायकविमानवत्थु 187
7. यवपालकविमानवत्थु 187
8. पाठमकुण्डलीविमानवत्थु 188
9. दुतियकुण्डलीयविमानवत्थु 189
10. पायासिविमानवत्थु 190
तस्सुदानं

7. सुनिक्खित्तवग्गो ततियो

1. चित्तलताविमानवत्थु 192
2. नन्दविमानवत्थु 192
3. मणिथूणविमानवत्थु 193
4. सुवण्णविमानवत्थु 194
5. अम्बविमानवत्थु 196

6. गोपालविमानवत्थु 198
7. कन्थकविमानवत्थु 200
8. अनेकवण्णविमानवत्थु 205
9. मट्ठकुण्डलीविमानवत्थु 207
10. सेरीसकविमानवत्थु 210
11. सुनिक्खित्तविमानवत्थु तस्सुदानं 221

पेतवत्थुपालि

1. उरगवग्गो पठमो

1. खेत्तूपमपेतवत्थु 223
2. सूकरमुखपेतवत्थु 224
3. पूतिमुखपेतवत्थु 224
4. पिट्ठधीतलिकपेतवत्थु 225
5. तिरोकुट्टपेतवत्थु 226
6. पंचपुत्तखादपेतिवत्थु 229
7. सत्तपुत्तखदपेतिवत्थु 231
8. गोणपेतवत्थु 233
9. महापेसकारपेतिवत्थु 234
10. खल्लाटियपेतवत्थु 235
11. नागपेतवत्थु 238
12. उरगपेतवत्थु 241

2. उब्बरिवग्गो दुतियो

1. संसारमोचकपेतिवत्थु 244
2. सारिपुत्तत्थेरमातुपेतिवत्थु 248
3. मत्तापेतिवत्थु 251
4. नन्दापेतिवत्थु 258
5. मट्ठकुण्डलीपेतवत्थु 262
6. कण्हपेतवत्थु 266
7. धनपालसेट्ठिपेतवत्थु 270
8. चूळसेट्ठिपेतवत्थु 274
9. अङ्कुरपेतवत्थु 277
10. उत्तरमातुपेतिवत्थु 291
11. सुत्तपेतवत्थु 293
12. कण्णमुण्डपेतिवत्थु 295
13. उब्बरिपेतवत्थु 299

3. चूळवग्गो ततियो

1. अभिज्जमानपेतवत्थु 304
2. साणवासीथेरपेतवत्थु 308
3. रथकारपेतिवत्थु 315
4. भुसपेतवत्थु 317
5. कुमारपेतवत्थु 318
6. सेरिणीपेतवत्थु 320
7. मिगलुद्दकपेतवत्थु 323
8. दुतियमिगलुद्दकपेतवत्थु 325
9. कूटविनिच्छयिकपेतवत्थु 327
10. धातुविवण्णपेतत्थु 329

4. महावग्गो चतुत्थो

1. अम्बसक्करपेतवत्थु 332
2. सेरीसकपेतवत्थु 349
3. नन्दकपेतवत्थु 359
4. रेवतीपेतवत्थु 369
5. उच्छुपेतवत्थु 373
6. कुमारपेतवत्थु 375
7. राजपुत्तपेतवत्थु 376
8. गूथखादकपेतवत्थु 379
9. गूथखादकपेतिवत्थु 380
10. गणपेतवत्थु 381
11. पाटलिपुत्तपेतवत्थु 383
12. अम्बवनपेतवत्थु 384
13. अक्खरुक्खपेतवत्थु 385
14. भोगसंहरपेतवत्थु 385
15. सेट्ठिपुत्तपेतवत्थु 385
16. सट्ठिकूटपेतवत्थु 386

॥नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स॥

खुद्दकनिकाये

विमानवत्थुपाळि

इत्थिविमानं

1. पीठवग्गो

1. पठमपीठविमानवत्थु

''पीठं ते सोवण्णमयं उळारं, मनोजवं गच्छति येनकामं।
अलङ्कते मल्यधरे सुवत्थे, ओभाससि विज्जुरिवब्भकूटं॥1॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥2॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥3॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥4॥

संस्कृतच्छाया- ''पीठं ते सुवर्णमयम् उदारम्, मनोजवं गच्छति येन कामम्।
अलङ्कृते माल्यधरे सुवस्त्रे, अवभाससे विद्युदिवाभ्रकूटम्॥1॥
''केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥2॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥3॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकार्षीत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥4॥

हिन्दी- आपका स्वर्णनिर्मित विमान अति सुन्दर है। यह मन की गति से सर्वत्र पहुँचने में समर्थ है। माला और वस्त्रों से अलंकृत हो इसमे बैठी आप उसी प्रकार शोभित हो रही हैं यथा किसी मेघ के शिखर पर चमकती हुई बिजली॥1॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग-उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥2॥

देवि मेरी आपसे यही जिज्ञासा है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्णाभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥3॥

उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही हैं॥4॥

''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूता, अब्भागतानासनकं अदासिं।
अभिवादयिं अञ्जलिकं अकासिं, यथानुभावञ्च अदासि दानं॥5॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥6॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥7॥

पठमपीठविमानं पठमं।

2. दुतियपीठविमानवत्थु

''पीठं ते वेळुरियमयं उळारं, मनोजवं गच्छति येनकामं।
अलङ्कते मल्यधरे सुवत्थे, ओभाससि विज्जुरिवब्भकूटं ॥8॥

संस्कृतच्छाया- ''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूता, अभ्यागतेभ्यः आसनकम् अदाम्।
अभ्यवादयमञ्जलिकमकार्षम्, यथानुभावञ्च अदां दानम्॥5॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥6 ॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥7॥
''पीठं ते वैदूर्यमयम् उदारम्, मनोजवं गच्छति येन कामम्।
अलङ्कृते माल्यधरे सुवस्त्रे, अवभाससे विद्युदिवाभ्रकूटम्॥8॥

हिन्दी- मनुष्यलोक मे मनुष्यरूप मे उत्पन्न हुई मै घर पर आए अतिथि को बैठने के लिए आदरपूर्वक आसन दिया करती थी, करबद्ध प्रणाम करती थी, सामर्थ्यानुसार दान भी करती थी॥5॥

उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी के कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥6॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥7॥

आपका स्वर्णनिर्मित विमान अति सुन्दर है। यह मन की गति से सर्वत्र पहुँचने में समर्थ है। माला और वस्त्रों से अलंकृत हो इसमे बैठी आप उसी प्रकार शोभित हो रही हैं यथा किसी मेघ के शिखर पर चमकती हुई बिजली॥8॥

''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥9॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥10॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥11॥
''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूता, अब्भागतानासनकं अदासिं।
अभिवादयिं अञ्जलिकं अकासिं, यथानुभावञ्च अदासि दानं॥12॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥13॥

संस्कृतच्छाया- ''केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥9॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥10॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकार्षीत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥11॥
''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूता, अभ्यागतेभ्यः आसनकम् अदाम्।
अभ्यवादयम् अञ्जलिकम् अकार्षम्, यथानुभावञ्च अदां दानम्॥12॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥13॥

हिन्दी- आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग-उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥9॥

देवि मेरी आपसे यही जिज्ञासा है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्ण आभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥10॥

उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही हैं॥11॥

मनुष्यलोक मे मनुष्यरूप मे उत्पन्न हुई मै घर पर आए अतिथि को बैठने के लिए आदरपूर्वक आसन दिया करती थी, करबद्ध प्रणाम करती थी, सामर्थ्यानुसार दान भी करती थी॥12॥

उस पुण्य-विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी के कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥13॥

''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥14॥

दुतियपीठविमानं दुतियं।

3 ततियपीठविमानवत्थु

''पीठं ते सोवण्णमयं उळारं, मनोजवं गच्छति येनकामं।
अलङ्कते मल्यधरे सुवत्थे, ओभाससि विज्जुरिवब्भकूटं॥15॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥16॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥17॥

संस्कृतच्छाया- ''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥14॥
''पीठं ते सुवर्णमयम् उदारम्, मनोजवं गच्छति येन कामम्।
अलङ्कृते माल्यधरे सुवस्त्रे, अवभाससे विद्युदिवाभ्रकूटम्॥15॥
''केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥16॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥17॥

हिन्दी- इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥14॥

आपका स्वर्णनिर्मित विमान अति सुन्दर है। यह मन की गति से सर्वत्र पहुँचने में समर्थ है। माला और वस्त्रों से अलंकृत हो इसमे बैठी आप उसी प्रकार शोभित हो रही हैं यथा किसी मेघ के शिखर पर चमकती हुई बिजली॥15॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग–उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥16॥

देवि मेरी आपसे यही जिज्ञासा है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्णाभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥17॥

सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥18॥
अप्पस्स कम्मस्स फलं ममेदं, येनम्हि एवं जलितानुभावा।
अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूता, पुरिमाय जातिया मनुस्सलोके॥19॥
''अद्दसं विरजं भिक्खुं, विप्पसन्नमनाविलं।
तस्स अदासहं पीठं, पसन्ना सेहि पाणिभि॥20॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥21॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥22॥

तियपीठविमानं ततियं।

संस्कृतच्छाया- सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकार्षीत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥18॥
''अल्पस्य कर्मण: फलं ममेदम्, येनास्मि एवं ज्वलितानुभावा।
अहं मनुष्येषु मनुष्यभूता, पूर्वस्यां जात्यां मनुष्यलोके॥19॥
अद्राक्षं विरजं भिक्षुम्, विप्रसन्नमनाविलम्।
तस्मै अदामहं पीठम्, प्रसन्ना स्वाभ्यां पाणिभ्याम्॥20॥
''तेन मे एतादृशो वर्ण:, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगा:, ये केचिन्मनस: प्रिया:॥21॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥22॥

हिन्दी- उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही हैं॥18॥

मेरे द्वारा किए गए साधारण कर्म का ही यह पुण्यफल है कि आज मै ऐसे ज्वलन्त प्रताप वाली दिख रही हूँ। पूर्व मे मैने मनुष्यलोक में मानवरूप में उत्पन्न हो यह कर्म किया था।19॥

उस समय मैने एक निष्पाप, निर्मल मन एवं निर्विकारचित्त भिक्षु को बैठने के लिए प्रसन्नता पूर्वक अपने हाथों से आसन बिछाया था॥20॥

उस पुण्य-विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ इसीलिए मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे ये मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥21॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥22॥

4. चतुत्थपीठविमानवत्थु

''पीठं ते वेळुरियमयं उळारं, मनोजवं गच्छति येनकामं।
अलङ्कते मल्यधरे सुवत्थे, ओभाससि विज्जुरिवब्भकूटं॥23॥
केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥24॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥25॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥26॥
अप्पस्स कम्मस्स फलं ममेदं, येनम्हि एवं जलितानुभावा।
अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूता, पुरिमाय जातिया मनुस्सलोके॥27॥

संस्कृतच्छाया- ''पीठं ते वैदूर्यमयम् उदारम्, मनोजवं गच्छति येन कामम्।
अलङ्कृते माल्यधरे सुवस्त्रे, अवभाससे विद्युदिवाभ्रकूटम्॥23॥
''केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥24॥
पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥25॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकार्षीत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥26॥
''अल्पस्य कर्मणः फलं ममेदम्, येनास्मि एवं ज्वलितानुभावा।
अहं मनुष्येषु मनुष्यभूता, पूर्वस्यां जात्यां मनुष्यलोके॥27॥

हिन्दी- आपका स्वर्णनिर्मित विमान अतिसुन्दर है। यह मन की गति से सर्वत्र पहुँचने में समर्थ है। माला और वस्त्रों से अलंकृत हो इसमे बैठी आप उसी प्रकार शोभित हो रही हैं यथा किसी मेघ के शिखर पर चमकती हुई बिजली॥23॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग-उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥24॥

देवि मेरी आपसे यही जिज्ञासा है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्णाभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥25॥

उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही हैं॥26॥

मेरे द्वारा किए गए साधारण कर्म का ही यह पुण्यफल है कि आज मै ऐसे ज्वलन्त प्रताप वाली दिख रही हूँ। पूर्व मे मैने मनुष्यलोक मे मानवरूप मे उत्पन्न हो यह कर्म किया था।27॥

''अद्दसं विरजं भिक्खुं, विप्पसन्नमनाविलं।
तस्स अदासहं पीठं, पसन्ना सेहि पाणिभि॥28॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥29॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥30॥

चतुत्थपीठविमानं चतुत्थं।

5. कुञ्जरविमानवत्थु

''कुञ्जरो ते वरारोहो, नानारतनकप्पनो।
रुचिरो थामवा जवसम्पन्नो, आकासम्हि समीहति॥31॥

संस्कृतच्छाया- ''अद्राक्षं विरजं भिक्षुम्, विप्रसन्नमनाविलम्।
तस्मै अदामहं पीठम्, प्रसन्ना स्वाभ्यां पाणिभ्याम्॥28॥
तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥29॥
आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥30॥
''कुञ्जरस्ते वरारोहः, नानारत्नकल्पनः।
रुचिरः स्थामवान् जवसम्पन्नः, आकाशे समीहते॥31॥

हिन्दी- उस समय मैने एक निष्पाप, निर्मल मन एवं निर्विकारचित्त भिक्षु को बैठने के लिए प्रसन्नता पूर्वक अपने हाथों से आसन बिछाया था॥28॥

उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी के कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे ये मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥29॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥30॥

आपका यह विविध रत्नतटित, आकाशस्थित हस्तिविमान अति सुन्दर एवं आरोहण में सुखदायी है, बलवान् एवं गतिमान् है तथा बहुत भव्य प्रतीत हो रहा है॥31॥

''पदुमि पद्म पत्तक्खि, पद्मुप्पलजुतिन्धरो।
पद्मचुण्णाभिकिण्णङ्गो, सोण्णपोक्खरमालधा॥32॥
पदुमानुसटं मग्गं, पद्मपत्तविभूसितं॥
ठितं वग्गुमनुग्घाती, मितं गच्छति वारणो॥33॥
''तस्स पक्कममानस्स, सोण्णकंसा रतिस्सरा।
तेसं सुय्यति निग्घोसो, तुरिये पञ्चङ्गिके यथा॥34॥
''तस्स नागस्स खन्धम्हि, सुचिवत्था अलङ्कता।
महन्तं अच्छरासङ्घं, वण्णेन अतिरोचसि॥35॥
''दानस्स ते इदं फलं, अथो सीलस्स वा पन।
अथो अञ्जलिकम्मस्स, तं मे अक्खाहि पुच्छिता'' ति॥36॥

संस्कृतच्छाया- पद्मे पद्मपत्राक्षे, पद्मोत्पलद्युतिधरे।
पद्मचूर्णाभिकीर्णाङ्गे, सुवर्णपुष्करमाल्यधरे॥32॥
''पद्मानुसृतं मार्गम्, पद्मपत्रविभूषितम्॥
स्थितं वल्गुमनुद्घाती, मितं गच्छति वारणः॥33॥
''तस्य प्रक्रम्यमाणस्य, सुवर्णकाङ्क्षाः रतिस्वराः।
तेषां श्रूयते निर्घोषः, तूर्ये पञ्चाङ्गिके यथा॥34॥
''तस्य नागस्य स्कन्धे, शुचिवस्त्राणि अलङ्कृतानि।
महान्तम् अप्सरस्सङ्घम्, वर्णेन अतिरोचसे॥35॥
''दानस्य ते इदं फलम्, अथ शीलस्य वा पुनः।
अथ अञ्जलिकर्मणः, तं मे आख्याहि पृष्टा''इति॥36॥

हिन्दी- हे पद्मे! कमलवत् विशालाक्षि! समस्त अंगो पर पद्मचूर्ण लगाए, पद्मपुष्पमाला धारण करने वाली!॥32॥

कमल पंखुणियाँ फैले तथा कमलपत्रों द्वारा सज्जित मार्ग पर निर्बाध चलता हुआ, आपका यह हस्ति विमान सुखदायक गति से चल रहा है॥33॥

उसके आगे बढ़ने पर, विमान के चक्रों में लगी सोने एवं पीतल की घण्टियों से निकलती मधुर ध्वनि ऐसी लग रही है मानो पञ्चांगिक तूर्य बज रहा हो॥34॥

इस हस्तिविमान पर आरूढ़ तथा स्वच्छ वस्त्रों से अलंकृत आप अपनी सुन्दरता से विशाल अप्सरासमूह को भी अभिभूत कर रही हैं॥35॥

इस सुन्दर विमान की प्राप्ति आपके द्वारा किये किसी दान का फल है, शीलव्रत पालन का या किसी के प्रति किये अञ्जिलकर्म का? कृपया हमे स्पष्ट करें॥36॥

सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥37॥
''दिस्वान गुणसम्पन्नं, झायिं झानरतं सतं।
अदासिं पुप्फाभिकिण्णं, आसनं दुस्ससन्थतं॥38॥
''उपड्ढं पद्ममालाहं, आसनस्स समन्ततो।
अब्भोकिरिस्सं पत्तेहि, पसन्ना सेहि पाणिभि॥39॥
''तस्स कम्मकुसलस्स, इदं मे ईदिसं फलं।
सक्कारो गरुकारो च, देवानं अपचिता अहं॥40॥
''यो वे सम्माविमुत्तानं, सन्तानं ब्रह्मचारिनं।
पसन्नो आसनं दज्जा, एवं नन्दे यथा अहं॥41॥

संस्कृतच्छाया- सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकार्षीत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥37॥
''दृष्ट्वा गुणसम्पन्नम्, ध्यायिनं ध्यानरतं सन्तम्।
अदां पुष्पाभिकीर्णम्, आसनं दूश्र्यसंस्तृतम्॥38॥
''उपार्द्धं पद्ममालामहम्, आसनस्य समन्ततः।
अभ्यवाकरिष्यं पत्रैः, प्रसन्ना स्वाभ्यां पाणिभ्याम्॥39॥
''तस्य कर्मकुशलस्य, इदं मे ईदृशं फलम्।
सत्कारो गुरुकारश्च, देवानाम् उपचिताऽहम्॥40॥
''या वै सम्यग्विमुक्तेभ्यः, सद्भ्यः ब्रह्मचारिभ्यः।
प्रसन्ना आसनं दद्यात्, एवं नन्देद् यथाऽहम्॥41॥

हिन्दी- उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही हैं॥37॥

मैने कभी किसी गुणसम्पन्न, ध्यानी, ध्यानरत सन्त को स्वच्छ वस्त्राच्छादित एवं उसपर विविध पुष्प फैलाकर एक आसन प्रदान किया था॥38॥

उस आसन के चारों ओर एक आधी कमल पुष्पमाला समर्पित की और मैने प्रसन्नतापूर्वक उस आसन को अपने हाथों से पद्मपत्रों से भी आवृत्त कर दिया॥39॥

उसी कुशल कर्म के पुण्य प्रभाव स्वरूप आज मै इस गजविमान मे बैठी हूँ। आज मुझे देवताओं से भी वैसा ही सत्कार एवं गौरव प्राप्त हो रहा है॥40॥

मेरे द्वारा जो उन सम्यग्विमुक्त, सन्त एवं ब्रह्मचारी को प्रसन्नतापूर्वक आसन दान किया गया था, उसी का यह सुफल है कि आज मै यह दिव्य सुख भोग रही हूँ॥41॥

''तस्मा हि अत्तकामेन, महत्तमभिकङ्खता।
आसनं दातब्बं होति, सरीरन्तिमधारिनं'' ति॥42॥
कुञ्जरविमानं पञ्चमं।

6. पठमनावाविमानवत्थु

''सुवण्णच्छदनं नावं, नारि आरुय्ह तिट्ठसि।
ओगाहसि पोक्खरणिं, पद्मं छिन्दसि पाणिना॥43॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥44॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥45॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥46॥

संस्कृतच्छाया- ''तस्मात् हि आत्मकामेन, महत्त्वमभिकाङ्क्षता।
आसनं दातब्यं भवति, शरीरान्तिमधारिणाम्''इति॥42॥
''सुवर्णाच्छादितां नावम्, नारि आरुह्य तिष्ठसि।
अवगाहसे पौष्करणीम्, पद्मं छिनत्सि पाणिना॥43॥
''केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥44॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥45॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकार्षीत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥46॥

हिन्दी- इसलिये जो कोई भी इस लोक मे अपना हित व महत्व चाहता है तो वह ऐसे श्रेष्ठ व अन्तिम शरीरधारी को आसन प्रदान करे॥42॥

आप स्त्री रूप मे इस सुवर्णाच्छादित नाव पर स्थित होकर पुष्करिणी को तैरती हुई अपने ही हाथों से कमलपुष्प तोड़ रही हैं॥43॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग-उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥44॥

देवि मेरी आपसे यही जिज्ञासा है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्णाभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥45॥

उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही हैं॥46॥

''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूता, पुरिमाय जातिया मनुस्सलोके।
दिस्वान भिक्खू तसिते किलन्ते, उट्ठाय पातुं उदकं अदासिं॥47॥
''यो वे किलन्तान पिपासितानं, उट्ठाय पातुं उदकं ददाति।
सीतोदका तस्स भवन्ति नज्जो, पहूतमल्या बहुपुण्डरीका॥48॥
''तं आपगा अनुपरियन्ति सब्बदा, सीतोदका वालुकसन्थता नदी।
अम्बा च साला तिलका च जम्बुयो, उद्दालका पाटलियो च फुल्ला॥49॥
''तं भूमिभागेहि उपेतरूपं, विमानसेट्ठं भुससोभमानं।
तस्सीध कम्मस्स अयं विपाको, एतादिसं पुञ्ञकता लभन्ति॥50॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥51॥

संस्कृतच्छाया- ''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूता, पूर्वस्यां जात्यां मनुष्यलोके।
दृष्ट्वा भिक्षून् तृषितान् क्लान्तान्, उत्थाय पातुमुदकम् अदाम्॥47॥
''यो वै क्लान्तेभ्यः पिपासितेभ्यः, उत्थाय पातुम् उदकं ददाति।
शीतोदकाः तस्य भवन्ति नद्यः, प्रभूतमाल्याः बहुपुण्डरीकाः॥48॥
''तमापगा अनुपरियन्ति सर्वदा, शीतोदका वालुकासंस्तृता नदी।
आम्राश्च शालास्तिलकाश्च जम्ब्वः, उद्दालकाः पाटलयश्च फुल्लाः॥49॥
''तद्भूमिभागैरुपेतरूपम्, विमानश्रेष्ठं भृशं शोभमानम्।
तस्येह कर्मणोऽयं विपाकः, एतादृशं पुण्यकृतः लभन्ते॥50॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥51॥

हिन्दी- जब मै पूर्व मे मनुष्य लोक मे मनुष्यरूप मे उत्पन्न हुई थी तो किसी प्यास से त्रस्त भिक्षु को देखकर उसे जल पिलाया करती थी॥47॥

जो कोई व्यक्ति किसी प्यास से त्रस्त व्यक्ति को उठकर जल पिलाता है वैसे जीव के लिए समस्त नदियाँ शीतल जल वाली हो जाती हैं। जिनमे माला के योग्य कमलपुष्प भी उत्पन्न हो जाते हैं॥48॥

वे शीतल जल तथा ठण्ढे बालू तट वाली नदियाँ उस व्यक्ति का निरन्तर अनुगमन करती हैं। जहाँ जहाँ वह जाता है वहाँ वहाँ उसे आम्र, शाल, तिलक, जामुन, पाटलि आदि वृक्ष फले फूले एवं छायादार ही मिलते हैं॥49॥

उसी पुण्यकर्म का यह प्रभाव है कि मेरा यह विमान जहाँ कहीं भी जाता है वह भूमि भाग उपर्युक्त गुणों से युक्त रहता है॥50॥

उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी के कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥51॥

''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥52॥

पठमनावाविमानं छट्ठं।

7. दुतियनावाविमानवत्थु

''सुवण्णच्छदनं नावं, नारि आरुय्ह तिट्ठसि।
ओगाहसि पोक्खरणिं, पद्मं छिन्दसि पाणिना॥53॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥54॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभुता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥55॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥56॥

संस्कृतच्छाया- ''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥52॥
सुवर्णाच्छादितां नावम्, नारि आरुह्य तिष्ठसि।
अवगाहसे पुष्करणीम्, पद्मं छिनत्सि पाणिना॥53॥
''केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥54॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥55॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकार्षीत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥56॥

हिन्दी- इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥52॥

आप स्त्री रूप में इस सुवर्णाच्छादित नाव पर स्थित होकर पुष्करिणी में तैरती हुई अपने ही हाथों से कमलपुष्प तोड़ रही हैं॥53॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग–उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥54॥

देवि मेरी आपसे यही जिज्ञासा है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्ण आभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥55॥

''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूता, पुरिमाय जातिया मनुस्सलोके।
दिस्वान भिक्खुं तसितं किलन्तं, उट्ठाय पातुं उदकं अदासिं॥57॥
''यो वे किलन्तस्स पिपासितस्स, उट्ठाय पातुं उदकं ददाति।
सीतोदका तस्स भवन्ति नज्जो, पहूतमल्या बहुपुण्डरीका॥58॥
''तं आपगा अनुपरियन्ति सब्बदा, सीतोदका वालुकसन्थता नदी।
अम्बा च साला तिलका च जम्बुयो, उद्दालका पाटलियो च फुल्ला॥59॥
''तं भूमिभागेहि उपेतरूपं, विमानसेट्ठं भुससोभमानं।
तस्सीध कम्मस्स अयं विपाको, एतादिसं पुञ्ञकता लभन्ति॥60॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥61॥

संस्कृतच्छाया- ''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूता, पूर्वस्यां जात्यां मनुष्यलोके।
दृष्ट्वा भिक्षून् तृषितान् क्लान्तान्, उत्थाय पातुम् उदकम् अदाम्॥57॥
''यो वै क्लान्तेभ्यः पिपासितेभ्यः, उत्थाय पातुम् उदकं ददाति।
शीतोदकाः तस्य भवन्ति नद्यः, प्रभूतमाल्याः बहुपुण्डरीकाः॥58॥
''तमापगा अनुपरियन्ति सर्वदा, शीतोदका वालुकासंस्तृता नदी।
आम्राश्च शालास्तिलका च जम्ब्वः, उद्दालकाः पाटलयश्च फुल्लाः॥59॥
''तद्भूमिभागैरुपेतरूपम्, विमानश्रेष्ठं भृशं शोभमानम्।
तस्येह कर्मणोऽयं विपाकः, एतादृशं पुण्यकृतः लभन्ते॥60॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥61॥

हिन्दी- उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही हैं॥56॥

जब मै पूर्व मे मनुष्य लोक मे मनुष्यरूप मे उत्पन्न हुई थी तो किसी प्यास से त्रस्त भिक्षु को देखकर उसे जल पिलाया करती थी॥57॥

जो कोई व्यक्ति किसी प्यास से त्रस्त व्यक्ति को उठकर जल पिलाता है वैसे जीव के लिए समस्त नदियाँ शीतल जल वाली हो जाती हैं। जिनमे माला के योग्य कमलपुष्प भी उत्पन्न हो जाते हैं॥58॥

वे शीतल जल तथा ठण्ढे बालू तट वाली नदियाँ उस व्यक्ति का निरन्तर अनुगमन करती हैं। जहाँ कहीं वह जाता है वहाँ उसे आम्र, शाल, तिलक, जामुन, पाटलि आदि वृक्ष फले-फूले एवं छायादार ही मिलते हैं॥59॥

उसी पुण्यकर्म का यह प्रभाव है कि मेरा यह विमान जहाँ कहीं भी जाता है वह भूमि भाग उपर्युक्त गुणों से युक्त रहता है॥60॥

''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥62॥

दुतियनावाविमानं सत्तमं।

8. ततियनावाविमानवत्थु

''सुवण्णच्छदनं नावं, नारि आरुय्ह तिट्ठसि।
ओगाहसि पोक्खरणिं, पद्मं छिन्दसि पाणिना॥63॥
''कूटागारा निवेसा ते, विभत्ता भागसो मिता।
दद्दल्लमाना आभन्ति, समन्ता चतुरो दिसा॥64॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥65॥

संस्कृतच्छाया- ''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥62॥
सुवर्णाच्छादितां नावम्, नारि आरुह्य तिष्ठसि।
अवगाहसे पुष्करणीम्, पद्मं छिनत्सि पाणिना॥63॥
''कूटागाराः निवेशास्ते, विभक्ताः भागशः मिताः।
जाज्ज्वल्यमाना आभान्ति, समन्ताच्चतस्रो दिशः॥64॥
''केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥65॥

हिन्दी- उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी के कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥61॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥62॥

आप स्त्री रूप मे इस सुवर्णाच्छादित नाव पर स्थित होकर पुष्करिणी को तैरती हुई अपने ही हाथों से कमलपुष्प तोड़ रही हैं॥63॥

आपकी नौका के अलग-अलग सुन्दर प्रकार से विभक्त शिखरयुक्त भवन चारो दिशाओं में आभासित हो रहे हैं॥64॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग–उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥65॥

''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥66॥
सा देवता अत्तमना, सम्बुद्धेनेव पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥67॥
''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूता, पुरिमाय जातिया मनुस्सलोके।
दिस्वान भिक्खू तसिते किलन्ते, उट्ठाय पातुं उदकं अदासिं॥68॥
''यो वे किलन्तान पिपासितानं, उट्ठाय पातुं उदकं ददाति।
सीतोदका तस्स भवन्ति नज्जो, पहूतमल्या बहुपुण्डरीका॥69॥
''तं आपगा अनुपरियन्ति सब्बदा, सीतोदका वालुकसन्थता नदी।
अम्बा च साला तिलका च जम्बुयो, उद्दालका पाटलियो च फुल्ला॥70॥

संस्कृतच्छाया- ''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥66॥
सा देवता आत्तमना, सम्बुद्धेनैव पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकार्षीत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥67॥
''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूता, पूर्वस्यां जात्यां मनुष्यलोके।
दृष्ट्वा भिक्षून् तृषितान् क्लान्तान्, उत्थाय पातुम् उदकम् अदाम्॥68॥
''यो वै क्लान्तेभ्यः पिपासितेभ्यः, उत्थाय पातुमुदकं ददाति।
शीतोदकाः तस्य भवन्ति नद्यः, प्रभूतमाल्याः बहुपुण्डरीकाः॥69॥
''तमापगा अनुपरियन्ति सर्वदा, शीतोदका वालुकासंस्तृता नदी।
आम्राश्च शालास्तिलका च जम्बवः, उद्दालकाः पाटलयश्च फुल्लाः॥70॥

हिन्दी- देवि मेरी आपसे यही जिज्ञासा है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्णाभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥66॥

उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही हैं॥67॥

जब मै पूर्व मे मनुष्य लोक मे मनुष्यरूप मे उत्पन्न हुई थी तो किसी प्यास से त्रस्त भिक्षु को देखकर उसे जल पिलाया करती थी॥68॥

जो कोई व्यक्ति किसी प्यास से त्रस्त व्यक्ति को उठकर जल पिलाता है वैसे जीव के लिए समस्त नदियाँ शीतल जल वाली हो जाती हैं। जिनमे माला के योग्य कमलपुष्प भी उत्पन्न हो जाते हैं॥69॥

वे शीतल जल तथा ठण्ढे बालू तट वाली नदियाँ उस व्यक्ति का निरन्तर अनुगमन करती हैं। जहाँ जहाँ वह जाता है वहाँ वहाँ उसे आम्र, शाल, तिलक, जामुन, पाटलि आदि वृक्ष फले फूले एवं छायादार ही मिलते हैं॥70॥

''तं भूमिभागेहि उपेतरूपं, विमानसेट्ठं भुससोभमानं।
तस्सीध कम्मस्स अयं विपाको, एतादिसं पुञ्ञकता लभन्ति॥71॥
''कूटागारा निवेसा मे, विभत्ता भागसो मिता।
दद्दल्लमाना आभन्ति, समन्ता चतुरो दिसा॥72॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥73॥
''अक्खामि ते बुद्ध महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासति।
एतस्स कम्मस्स फलं ममेदं, अत्थाय बुद्धो उदकं अपायी'' ति॥74॥

ततियनावाविमानं अट्ठमं।

संस्कृतच्छाया- ''तद् भूमिभागैरुपेतरूपम्, विमानश्रेष्ठं भृशशोभमानम्।
तस्येह कर्मणोऽयं विपाकः, एतादृशं पुण्यकृतः लभन्ते॥71॥
''कूटागाराः निवेशास्ते, विभक्ताः भागशः मिताः।
जाज्ज्वल्यमाना आभान्ति, समन्ताच्चतस्रः दिशः॥72॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥73॥
''आख्यामि ते बुद्ध महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्ष पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥
एतस्य कर्मणः फलं ममेदम्, अर्थाय बुद्धोदकम् अपायि'' इति॥74॥

हिन्दी- उसी पुण्यकर्म का यह प्रभाव है कि मेरा यह विमान जहाँ कहीं भी जाता है वह भूमि भाग उपर्युक्त गुणों से युक्त रहता है॥71॥

आपकी नौका के अलग-अलग सुन्दर प्रकार से विभक्त शिखरयुक्त भवन चारो दिशाओं में आभासित हो रहे हैं॥72॥

उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी के कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥73॥

उसी प्यासे भिक्षु को जल पिलाने का यह सुपरिणाम है कि आज मेरी यह वर्णाभा समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रही है॥74॥

9. दीपविमानवत्थु

अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥75॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥76॥
''केन त्वं विमलोभासा, अतिरोचसि देवता।
केन ते सब्बगत्तेहि, सब्बा ओभासते दिसा॥77॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥78॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥79॥

संस्कृतच्छाया- ''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधिरिव तारकाः॥75॥
''केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥76॥
''केन त्वं विमलावभासा, अतिरोचसे देवताः।
केन ते सर्वगात्रैः, सर्वा अवभासन्ते दिशः॥77॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥78॥
सा देवता आत्तमना, सम्बुद्धेनैव पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥79॥

हिन्दी- देवी! आप अपने कान्तिपूर्ण वर्ण से समस्त दिशाओं को इसप्रकार अवभासित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को॥75॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग-उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥76॥

कौन से कारण से आप ऐसी विमल कान्ति वाली दिखाई दे रही हैं आपके समस्त अंगों से निकली हुई आभा से समस्त दिशाएँ किस कारण से इतनी प्रकाशमान हो रही हैं॥77॥

देवि मेरी आपसे यही जिज्ञासा है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्णाभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥78॥

उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही हैं॥79॥

''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूता, पुरिमाय जातिया मनुस्सलोके।
तमन्धकारम्हि तिमीसिकायं, पदीपकालम्हि अदासि दीपं॥80॥
''यो अन्धकारम्हि तिमीसिकायं, पदीपकालम्हि ददाति दीपं।
उप्पज्जति जोतिरसं विमानं, पहूतमल्यं बहुपुण्डरीकं॥81॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥82॥
''तेनाहं विमलोभासा, अतिरोचामि देवता।
तेन मे सब्बगत्तेहि, सब्बा ओभासते दिसा॥83॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती''ति॥84॥॥

दीपविमानं नवमं।

संस्कृतच्छाया- अहं मनुष्येषु मनुष्यभूता, पूर्वस्यां जात्यां मनुष्यलोके।
तमन्धकारे तमिश्रकायां, प्रदीपकालेऽदां दीपम्॥80॥
''योऽन्धकारे तमिश्रकायां, प्रदीपकाले ददाति दीपम्।
उत्पद्यते ज्योतिरसं विमानम्, प्रभूतमाल्यं बहुपुण्डरीकम्॥81॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥82॥
''तेनाहं विमलावभासा, अतिरोचयामि देवताः।
तेन मे सर्वगात्रैः, सर्वा अवभासन्ते दिशः॥83 ॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षम् पुण्यम् ।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥84॥

हिन्दी- पूर्व में मैं जब मनुष्य लोक में मानव रूप में उत्पन्न हुई थी तब मैने घोर अन्धकार मे प्रकाश के लिए दीपक का दान किया था॥80॥

जो व्यक्ति घोर अन्धकार में दीपक का दान करता है, उसको ऐसा ही बहुविध कमलपुष्पों एवं अन्यान्य पुष्पमालाओं से सज्जित प्रकाशमान विमान प्राप्त होता है॥81॥

उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्यवर्ण प्राप्त हुआ एवं उसी के कारण से ही मैं आज यह दिव्यसुख भोग रही हूँ उसीके प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रियभोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥82॥

उसी पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप मैं देवों में विशिष्ट दिख रही हूँ तथा मेरे समस्त अंगों से निर्मल आभा प्रभासित हो रही है॥83॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥84॥

10. तिलदक्खिणविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥85॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥86॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥87॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥88॥
'अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूता, पुरिमाय जातिया मनुस्सलोके॥
अद्दसं विरजं बुद्धं, विप्पसन्नमनाविलं॥89॥

संस्कृतच्छाया- ''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वा, ओषधिरिव तारकाः॥85॥
''केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥86॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥87॥
सा देवता आत्तमना, सम्बुद्धेनैव पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥88॥
अहं मनुष्येषु मनुष्यभूता, पूर्वस्यां जात्यां मनुष्यलोके।
अद्राक्षं विरजं बुद्धम्, विप्रसन्नमनाविलम्॥89॥

हिन्दी- देवी! आप अपने कान्तिपूर्ण वर्ण से समस्त दिशाओं को इस प्रकार अवभासित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को॥85॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग-उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥86॥

देवि मेरी आपसे यही जिज्ञासा है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्ण आभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥87॥

उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही हैं॥88॥

मैं पूर्व जन्म में मनुष्यलोक में मानवरूप में उत्पन्न होकर एक निष्पाप, निर्दोष एवं प्रसन्नमन ज्ञानी को-॥89॥

आसज्ज दानं अदासिं, अकामा तिलदक्खिणं।
दक्खिणेय्यस्स बुद्धस्स, पसन्ना सेहि पाणिभि॥90॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥91॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥92॥

तिलदक्खिणविमानं दसमं।

11. पठमपतिब्बताविमानवत्थु

''कोञ्चा मयूरा दिविया च हंसा, वग्गुस्सरा कोकिला सम्पतन्ति।
पुप्फाभिकिण्णं रम्ममिदं विमानं, अनेकचित्तं नरनारिसेवितं॥93॥
''तत्थच्छसि देवि महानुभावे, इद्धी विकुब्बन्ति अनेकरूपा।
इमा च ते अच्छरायो समन्ततो, नच्चन्ति गायन्ति पमोदयन्ति च॥94॥

संस्कृतच्छाया- आसाद्य दानम् अदाम्, अकामा तिलदक्षिणाम्।
दाक्षिणेयस्य बुद्धस्य, प्रसन्ना स्वाभ्यां पाणिभ्याम्॥90॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥91॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम् ।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥92॥
''क्रौञ्चाः मयूराः दिव्याश्च हंसाः, वल्गुस्वराः कोकिलाः सम्पतन्ति।
पुष्पाभिकीर्णं रम्यमिदं विमानम्, अनेकचित्रं नरनारिसेवितम्॥93॥
''तत्र तिष्ठसि देवि महानुभावे, ऋद्धीः विकुर्वती अनेकरूपा।
इमाश्च ते अप्सरसः समन्ततः, नृत्यन्ति गायन्ति प्रमोदयन्ति च॥94॥

हिन्दी- तब मैनें उस ज्ञानी के पास जाकर दानयोग्य जानकर निष्काम भाव से अपने हाथों से तिल का दान किया॥90॥

उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी के कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥91॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥92॥

आपका यह विमान दिव्य क्रौंच, मयूर, हंस तथा मधुर स्वर में बोलने वाली कोयल से घिरा है। यत्र तत्र बिखरे पुष्प इसे रमणीय बना रहे हैं। विविध चित्रों से चित्रित इस विमान में अनेक नर नारी सेवक विद्यमान हैं॥93॥

हे देवि! उसमें बैठी आप विविध ऋद्धियों का प्रदर्शन कर रही हैं। आपके चारों ओर ये अप्सराएँ हर्षित हो नृत्य-गान प्रस्तुत कर रही हैं॥94॥

''देविद्धिपत्तासि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥95॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥96॥
''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूता, पतिब्बतानञ्ञमना अहोसिं।
माताव पुत्तं अनुरक्खमाना, कुद्धापिहं नप्फरुसं अवोचं॥97॥
''सच्चे ठिता मोसवज्जं पहाय, दाने रता सङ्गहितत्तभावा।
अन्नञ्च पानञ्च पसन्नचित्ता, सक्कच्च दानं विपुलं अदासिं॥98॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥99॥

संस्कृतच्छाया- ''देवि ऋद्धिप्राप्ता असि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥95॥
सा देवता आप्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥96॥
''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूता, पतिव्रतानामनन्यमना अभवम्।
माता इव पुत्रम् अनुरक्ष्यमाणा, क्रुद्धाप्यहं न परुषम् अवोचम्॥97॥
''सत्ये स्थिता मृषावद्यं प्रहाय, दाने रता सङ्गृहीतत्त्वभावा।
अन्नं च पानं च प्रसन्नचित्ता, सत्कृत्य दानं विपुलम् अदाम्॥98॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥99॥

हिन्दी- हे ऋद्धि प्राप्त देवि! आपने मनुष्यरूप में कौन सा ऐसा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप ज्वलन्त आभा वाली प्रतीत हो रही हैं तथा अपनी आभा से समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रही हैं॥95॥

उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही हैं॥96॥

मै मनुष्यलोक में मनुष्यरूप में प्रादुर्भूत हो पतिव्रता धर्म का पालन करती हुई किसी अन्य के प्रति आकर्षित नही हुई। जिस प्रकार माता अपने पुत्र की रक्षा करती है उसी प्रकार पति की रक्षा करती हुई क्रोध आने पर भी उसे कभी कोई कठोर वचन नहीं कहा॥97॥

सत्य में स्थित हो, असत्य भाषण को त्याग कर अपने पति के द्वारा कृत धनधान्य के संग्रह को पति की आज्ञानुसार अपना जानकर सर्वथा सुरक्षित रखती थी। उनके भोजन की व्यवस्था भी प्रसन्न मन से किया करती थी एवं सत्कारपूर्वक विपुल दानकर्म किया करती थी॥98॥

उस पुण्य-विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी के कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥99॥

''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥100॥

पठमपतिब्बताविमानं एकादसमं।

12. दुतियपतिब्बताविमानवत्थु

''वेळुरियथम्भं रुचिरं पभस्सरं, विमानमारुय्ह अनेकचित्तं।
तत्थच्छसि देवि महानुभावे, उच्चावचा इद्धि विकुब्बमाना।
इमा च ते अच्छरायो समन्ततो, नच्चन्ति गायन्ति पमोदयन्ति च॥101॥
''देविद्धिपत्तासि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥102॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥103॥

संस्कृतच्छाया- ''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्ष पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥100॥
'वैदूर्यस्तम्भं रुचिरं प्रभास्वरं, विमानमारुह्य अनेकचित्रम्।
तत्र तिष्ठसि देवि महानुभावे, उच्चावचाम् ऋद्धिं विकुर्वाणा।
इमाश्च ते अप्सरसः: समन्ततः, नृत्यन्ति गायन्ति प्रमोदयन्ति च॥101॥
''देवि ऋद्धिप्राप्ता असि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥102॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥103॥

हिन्दी- इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥100॥

वैदूर्य मणि निर्मित स्तम्भों एवं अनेक चित्रों से सज्जित इस सुन्दर शोभायमान विमान पर आरूढ़ हो आप अनेक ऋद्धियां प्रदर्शित कर रही हैं तथा आपके चारों ओर ये अप्सराएँ प्रसन्नतापूर्वक नृत्यगान प्रस्तुत कर रही हैं॥101॥

हे ऋद्धि प्राप्त देवि! आपने मनुष्यरूप में कौन सा ऐसा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप ज्वलन्त आभा वाली प्रतीत हो रही हैं तथा अपनी आभा से समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रही हैं॥102॥

उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही हैं॥103॥

''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूता, उपासिका चक्खुमतो अहोसिं।
पाणातिपाता विरता अहोसिं, लोके अदिन्नं परिवज्जयिस्सं॥104॥
''अमज्जपा नो च मुसा अभाणिं, सकेन सामिना अहोसिं तुट्ठा।
अन्नञ्च पानञ्च पसन्नचित्ता, सक्कच्च दानं विपुलं अदासिं॥105॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥106॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥107॥
''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥108॥

दुतियपतिब्बताविमानं द्वादसमं।

संस्कृतच्छाया- ''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूता, उपासिका चक्षुष्मतोऽभवम्।
प्राणातिपातात् विरता अभूवम्, लोके अदत्तं पर्यवर्जयम्॥104॥
''अमद्यपा नो च मृषा अभणम्, स्वकेन स्वामिना अभवं तुष्टा।
अन्नं च पानं च प्रसन्नचित्ता, सत्कार्य दानं विपुलम् अदाम्॥105॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति ।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥106॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥107॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीः इव तारकाः॥108॥

हिन्दी- एक बार मैं मानवलोक में मनुष्यरूप में उत्पन्न हुई थी तब चक्षुष्मान भगवान् बुद्ध की उपासिका थी। मैं प्राणि हिंसा तथा चौर कर्म से विरत रहती थी॥104॥

मद्यपान एवं असत्यभाषण से विरत रहती थी। अपने पति से ही सन्तुष्ट रहती थी तथा प्रसन्नचित्त हो यथासमय याचकों को विपुल दानादि किया करती थी॥105॥

उस पुण्य-विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी के कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥106॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥107॥

देवी! आप अपने कान्तिपूर्ण वर्ण से समस्त दिशाओं को इस प्रकार अवभासित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को॥108॥

13. पठमसुणिसाविमानवत्थु

''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥109॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥110॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥111॥
''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूता, सुणिसा अहोसिं ससुरस्स गेहे॥112॥
''अद्दसं विरजं भिक्खुं, विप्पसन्नमनाविलं।
तस्स अदासहं पूवं, पसन्ना सेहि पाणिभि।
भागड्ढभागं दत्वान, मोदामि नन्दने वने॥113॥

संस्कृतच्छाया- ''केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥109॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥110॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥111॥
''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूता, स्नुषा अभवं श्वसुरस्य गृहे॥112॥
''अद्राक्षं विरजं भिक्षुम्, विप्रसन्नमनाविलम्।
तस्मै अदामहं पूपम्, प्रसन्ना स्वाभ्यां पाणिभ्याम्।
भागार्द्धभागं दत्वा, मोदे नन्दने वने॥113॥

हिन्दी- आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग–उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥109॥

देवि मेरी आपसे यही जिज्ञासा है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्ण आभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥110॥

उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य–विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही हैं॥111॥

एक समय मनुष्यलोक में मनुष्यरूप में प्रादुर्भूत हो मैनें अपने श्वसुर के घर आकर एक भद्र पुत्रवधु का कर्त्तव्य पालन किया। वहाँ मैंने एक निर्मल, निर्दोष एवं निष्पाप भिक्षु के दर्शन किये॥112॥

तब मैने उन भिक्षु को अपने हाथों से प्रसन्न मन से अपने लिए बनाए मालपूए का आधा भाग दान में दे दिया जिसके परिणामस्वरूप आज मैं इस नन्दनवन में सुख का अनुभव कर रही हूँ॥113॥

''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥114॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥115॥

पठमसुणिसाविमानं तेरसमं।

4. दुतियसुणिसाविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥116॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥117॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥॥118॥

संस्कृतच्छाया- ''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥114॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम् ।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥115॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीः इव तारकाः॥116॥
''केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥117॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥118॥

हिन्दी- उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी के कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥114॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥115॥

देवी! आप अपने कान्तिपूर्ण वर्ण से समस्त दिशाओं को इस प्रकार अवभासित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को॥116॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग–उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥117॥

देवि मेरी आपसे यही जिज्ञासा है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्ण आभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥118॥

सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥119॥
''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूता, सुणिसा अहोसिं ससुरस्स गेहे॥120॥
''अद्दसं विरजं भिक्खुं, विप्पसन्नमनाविलं।
तस्स अदासहं भागं, पसन्ना सेहि पाणिभि।
कुम्मासपिण्डं दत्वान, मोदामि नन्दने वने॥121॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥122॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥123॥

दुतियसुणिसाविमानं चुद्दसमं।

संस्कृतच्छाया- सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥119॥
''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूता, स्नुषा अभवं श्वसुरस्य गृहे॥120॥
''अद्राक्षं विरजं भिक्षुम्, विप्रसन्नमनाविलम्।
तस्मै अदामहं भागं, प्रसन्ना स्वाभ्यां पाणिभ्याम्।
कुल्माषपिण्डं दत्वा, मोदे नन्दने वने॥121॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥122॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥123॥

हिन्दी- उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही हैं॥119॥

एक समय मनुष्यलोक में मनुष्यरूप में प्रादुर्भूत हो मैनें अपने श्वसुर के घर आकर एक भद्र पुत्रवधु का कर्त्तव्य पालन किया। वहाँ मैंने एक निर्मल, निर्दोष एवं निष्पाप भिक्षु के दर्शन किये॥120॥

तब मैने उन भिक्षु को अपने हाथों से प्रसन्न मन से कुल्माषपिण्ड(कुलथी के लड्डू) का एक भाग देकर परिणामस्वरूप आज मैं इस नन्दनवन में सुख भोग रही हूँ॥121॥

उस पुण्य-विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी के कारण ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥122॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥123॥

15. उत्तराविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥124॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥125॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥126॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥127॥
''इस्सा च मच्छेरमथो पळासो, नाहोसि मय्हं घरमावसन्तिया।
अक्कोधना भत्तुवसानुवत्तिनी, उपोसथे निच्चहमप्पमत्ता॥128॥

संस्कृतच्छाया- ''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीः इव तारकाः॥124॥
''केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥125॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥126॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥127॥
''ईर्ष्या च मात्सर्यं प्रदासः, नाभूत् मह्यं गृहमावसन्त्यै।
अक्रोधना भर्तृवशानुवर्तिनी, उपोसथे नित्यमहमप्रमत्ता॥128॥

हिन्दी- देवी! आप अपने कान्तिपूर्ण वर्ण से समस्त दिशाओं को इस प्रकार अवभासित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को॥124॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग-उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥125॥

देवि मेरी आपसे यही जिज्ञासा है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्णाभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥126॥

उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही हैं॥127॥

गृहस्थकाल में मुझे ईर्ष्या, मात्सर्य एवं प्रदास कभी नहीं हुआ। अक्रोधपूर्वक पति के अनुसार रहती हुई नित्य निरन्तर अप्रमादपूर्वक उपोसथ धर्म का पालन किया॥128॥

''चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।
पाटिहारियपक्खञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं॥129॥
''उपोसथं उपवसिस्सं, सदा सीलेसु संवुता।
सञ्ञमा संविभागा च, विमानं आवसामहं॥130॥
''पाणातिपाता विरता, मुसावादा च सञ्ञता।
थेय्या च अतिचारा च, मज्जपाना च आरका॥131॥
''पञ्चसिक्खापदे रता, अरियसच्चान कोविदा।
उपासिका चक्खुमतो, गोतमस्स यसस्सिनो॥132॥
''साहं सकेन सीलेन, यससा च यसस्सिनी।
अनुभोमि सकं पुञ्ञं, सुखिता चम्हिनामया॥133॥

संस्कृतच्छाया- ''चतुर्दशीं पञ्चदशीम्, या च पक्षस्य अष्टमी।
प्रातिहार्यपक्षं च, अष्टाङ्गसुसमागतम्॥129॥
''उपोसथम् उपावसम्, सदा शीलेषु संवृता।
संयमात् संविभागाच्च, विमानम् आवसमहम्॥130॥
''प्राणातिपातात् विरता, मृषावादाच्च संयता।
स्तेयाच्च अतिचाराच्च, मद्यपानाच्च अरक्ता:॥131॥
''पञ्चशिक्षापदे रता, आर्यसत्यानां कोविदा।
उपासिका चक्षुष्मत:, गौतमस्य यशस्विन:॥132॥
''साऽहं स्वकेन शीलेन, यशसा च यशस्विनी।
अनुभवामि स्वकं पुण्यम्, सुखिता चास्मि अनामया॥133॥

हिन्दी- चतुर्दशी, पञ्चदशी तथा किसी भी पक्ष की अष्टमी या प्रातिहार्यपक्ष में अष्टाँगों से युक्त॥129॥

मैं निरन्तर शीलसंवरण पूर्वक संयम व विभाजन के साथ उपोसथ व्रत का पालन करती रही। उसी के फलस्वरूप इस अनुपम विमान में वास कर रही हूँ॥130॥

प्राणातिपात (प्राणिहिंसा) से विरत रहती थी, असत्य भाषण में संयम रखती थी। चोरी, व्यभिचार तथा मद्यपान से दूर रहती थी॥131॥

पाँच शिक्षापदों में रत थी, आर्यसत्यों को जानती थी। और मैं उन यशस्वी, चक्षुष्मान् भगवान् गौतम की उपासिका थी॥132॥

इसप्रकार मै आज स्वयं के शील पालन एवं यश से यशस्विनी बनी हुई हूँ एवं उस सत्कर्म के फलस्वरूप अपने को सुखी एवं स्वस्थ मान रही हूँ॥133॥

''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥134॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमहं अकासिं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासतीति॥135॥

''मम च, भन्ते, वचनेन भगवतो पादे सिरसा वन्देय्यासि – 'उत्तरा नाम, भन्ते, उपासिका भगवतो पादे सिरसा वन्दती'ति। अनच्छरियं खो पनेतं, भन्ते, यं मं भगवा अञ्ञतरस्मिं सामञ्ञफले ब्याकरेय्य, तं भगवा सकदागामिफले ब्याकासी'' ति॥136॥

16. सिरिमाविमानवत्थु

''युत्ता च ते परमअलङ्कता हया, अधोमुखा अघसिगमा बली जवा।
अभिनिम्मिता पञ्चरथासता च ते, अन्वेन्ति तं सारथिचोदिता हया॥137॥

संस्कृतच्छाया- ''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥134॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यदहमकार्षम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥135॥

''मम च, भदन्त!, वचनेन भगवतः पादे शिरसा वन्दिष्यसे– 'उत्तरा नाम, भदन्त!, उपासिका भगवतः पादे शिरसा वन्दते'' इति। अनाश्चर्यम् खलु पुनः एतत्, भदन्त!, यत् मां भगवान् अन्यतरस्मिन् श्रामण्यफलं व्याकुर्यात्, तत् भगवान् सकृदागामिफलं व्याकार्षीत्''इति॥136॥

''युक्ताश्च ते परमालङ्कृता हयाः, अधोमुखा आकाशगामिनः बलिनः जवाः।
अभिनिर्मिताः पञ्चरथशताश्च ते, अनुयन्ति तत् सारथिचोदिताः हयाः॥137॥

हिन्दी- उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी के कारण ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥134॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥135॥

और भन्ते! मेरी ओर से भगवान् के श्रीचरणों में वन्दना कीजियेगा- 'भन्ते! उत्तरा नामक उपासिका आपके श्रीचरणों में वन्दना करती है।' भन्ते! आप कोई आश्चर्य न मानना यदि भगवान् मेरे लिए किसी अन्य श्रामण्यफल की व्याख्या कर दें जैसा उन भगवान् ने मेरे लिए कभी सकृदागामी फल की व्याख्या की थी॥136॥

हे देवि! परम अलंकृत, सारथियों से व्यवस्थित, नीचे की ओर मुख किए, आकाशचारी, बलवान् एवं वेगवान् अश्वों से युक्त पाँच सौ अभिनिर्मित रथ आगे आगे चल रहे हैं॥137॥

''सा तिट्ठसि रथवरे अलङ्कता, ओभासयं जलमिव जोति पावको।
पुच्छामि तं वरतनु अनोमदस्सने, कस्मा नु काया अनधिवरं उपागमि॥138॥
''कामग्गपत्तानं यमाहुनुत्तरं, निम्माय निम्माय रमन्ति देवता।
तस्मा काया अच्छरा कामवण्णिनी, इधागता अनधिवरं नमस्सितुं॥139॥
''किं त्वं पुरे सुचरितमाचरीध, केनच्छसि त्वं अमितयसा सुखेधिता।
इद्धी च ते अनधिवरा विहङ्गमा, वण्णो च ते दस दिसा विरोचति॥140॥
''देवेहि त्वं परिवुता सक्कता चसि, कुतो चुता सुगतिगतासि देवते।
कस्स वा त्वं वचनकरानुसासनिं, आचिक्ख मे त्वं यदि बुद्धसाविका'' ति॥141॥
''नगन्तरे नगरवरे सुमापिते, परिचारिका राजवरस्स सिरिमतो।
नच्चे गीते परमसुसिक्खिता अहुं, सिरिमाति मं राजगहे अवेदिंसु॥142॥

संस्कृतच्छाया- ''सा तिष्ठसि रथवरे अलङ्कृता, अवभासयन् जलमिव ज्योतिपावकः।
पृच्छामि त्वां वरतनु अनवमदर्शने, कस्मान्नु कायम् अनधिवरम् उपागमः॥138॥
''कामाग्रपात्राणां यमाहुः अनुत्तरम्, निर्माय निर्माय रमन्ते देवताः।
तस्मात् काया अप्सरा कामवर्ण्णिनी, इहागता अनधिवरं नमस्कर्तुम्॥139॥
''किं त्वं पुरा सुचरितमाचरः, केनेच्छसि त्वम् अमितयशा सुखेधिता।
ऋद्धयश्च ते अनधिवरा विहङ्गमाः, वर्णश्च ते दशसु दिक्षु विरोचते॥140॥
''देवैस्त्वं परिवृता सत्कृता चासि, कुतश्च्युता सुगतिगतासि देवते।
कस्य वा त्वं वचनकरानुशासनम्, आचक्ष्व मे त्वं यदि बुद्धश्राविका''इति॥141॥
''नगान्तरे नगरवरे सुमापिते, परिचारिका राजवरस्य श्रीमतः।
नृत्ये गीते परमसुशिक्षिता अभवम्, श्रीमती इति मां राजगृहे अवेदिषुः॥142॥

हिन्दी- आप किसी भव्य रथ में बैठी हुई ऐसे शोभित हो रही हैं जैसे जल में प्रज्वलित अग्नि। हे सौन्दर्यशालिनि देवि! मेरी आपसे यही जिज्ञासा है कि आप ऐसी उत्कृष्ट काया कैसे प्राप्त कर परमश्रेष्ठ भगवान् के समक्ष आई हैं॥138॥

श्रेष्ठकाम भोगी देवता जिस काय का निर्माण कर रमण करते हैं उसी कामरूपी अप्सरा के समान आप श्रेष्ठ भगवान् के दर्शनार्थ यहाँ आई हैं॥139॥

आपने पूर्व में ऐसा कौन सा पुण्य कर्म किया था जिससे आप सुखी एवं अमित यश वाली तथा अपने प्राप्त विशिष्ट ऋद्धि व वर्णाभा से दशो दिशाओं में शोभित हो रही है॥140॥

आप देवताओं द्वारा परिवृत तथा सम्मानित दिखाई दे रही हैं। आप कहाँ से च्युत होकर यहाँ आई हैं। आपने किस गुरु के सान्निध्य में अनुशासन सीखा है? यदि आप बुद्धश्राविका हैं तो मुझे बताएँ॥141॥

पर्वतों के बीच बसाए गये सुन्दर नगर राजगृह के महान् राजा की मैं नृत्य-गीत में पारंगत परिचारिका थी। राजगृह में मुझे सिरिमा नाम से पुकारा जाता था॥142॥

''बुद्धो च मे इसिनिसभो विनायको, अदेसयी समुदयदुक्खनिच्चतं।
असङ्खतं दुक्खनिरोधसस्सतं, मग्गञ्चिमं अकुटिलमञ्जसं सिवं॥143॥
''सुत्वानहं अमतपदं असङ्खतं, तथागतस्सनधिवरस्स सासनं।
सीलेस्वहं परमसुसंवुता अहुं, धम्मे ठिता नरवरबुद्धदेसिते॥144॥
''ञत्वानहं विरजपदं असङ्खतं, तथागतेननधिवरेन देसितं।
तत्थेवहं समथसमाधिमाफुसिं, सायेव मे परमनियामता अहु॥145॥
''लद्धानहं अमतवरं विसेसनं, एकंसिका अभिसमये विसेसिय।
असंसया बहुजनपूजिता अहं, खिड्डारतिं पच्चनुभोमनप्पकं॥146॥
''एवं अहं अमतदसम्हि देवता, तथागतस्सनधिवरस्स सावि‌का।
धम्मद्दसा पठमफले पतिट्ठिता, सोतापन्ना न च पन मत्थि दुग्गति॥147॥

संस्कृतच्छाया- ''बुद्धश्च मे ऋषिवृषभः विनायकः, अदेशयत् समुदयदुःखनित्यताम्।
असंस्कृतं दुःखनिरोधशाश्वतम्, मार्गं चेमम् अकुटिलमञ्जसं शिवम्॥143॥
''श्रुत्वाहम् अमृतपदम् असंस्कृतम्, तथागतस्यानधिवरस्य शासनम्।
शीलेषु अहं परमसुसंवृता अभवम्, धर्मे स्थिता नरवरबुद्धदेशिते॥144॥
''ज्ञात्वाहं विरजपदमसंस्कृतम्, तथागतेनानधिवरेण देशितम्।
तत्रैवाहं शमथसमाधिमास्पृशम्, सैव मे परमनियामता अभूत्॥145॥
''लब्धाहम् अमृतवरं विशेषणम्, एकांशिका अभिसमये विशेष्यतः।
असंशया बहुजनपूजिता अहम्, क्रीडारतिं प्रत्यनुभवामि अनल्पकाम्॥146॥
''एवम् अहम् अमृतदर्शिनी अस्मि देवता, तथागतस्यानधिवरस्य श्राविका।
धर्मदृशा प्रथमफले प्रतिष्ठिता, श्रोतापन्ना न च पुनः मेऽस्ति दुर्गतिः॥147॥

हिन्दी- ऋषिश्रेष्ठ, विनायक भगवान् बुद्ध नें मुझे दुःख, दुःखसमुदय तथा अनित्यता को तथा असंस्कृत, सरल एवं शाश्वत दुःखनिरोधगामिनि मार्ग तथा मंगलकारी निर्वाण के विषय में देशना दी।143॥

श्रेष्ठ भगवान् तथागत के द्वारा अमृतपद, असंस्कृत तथा अमृतमय निर्वाण के विषय में सुनकर मैं शील व सदाचार से सुसंवृत हो बुद्ध देशित धर्मसाधना में लग गई॥144॥

उन श्रेष्ठ भगवान् बुद्ध द्वारा उपदिष्ट असंस्कृत एवं अमृतमय निर्वाण के विषय में जानकर वहीं शमथ समाधि में लग गई और यह मेरी नियमित चर्या बन गई॥145॥

उस अमृतस्वरूप विशेषण को पाकर विशिष्ट ज्ञान की ओर प्रवृत्त हुई। जगत् में संशयरहित मेरा सम्मान होने लगा। जिसके कारण आज मैं क्रीडारति देवताओं के मध्य सुख भोग रही हूँ॥146॥

इस तरह मैं बुद्ध की उपासिका के रूप में इस देवलोक को आयी तथा धर्माचरण करते हुए प्रथम स्रोतापन्न फल में प्रतिष्ठित हुई। अब मेरी दुर्गति सम्भव नहीं॥147॥

''सा वन्दितुं अनधिवरं उपागमिं, पासादिके कुसलरते च भिक्खवो।
नमस्सितुं समणसमागमं सिवं, सगारवा सिरिमतो धम्मराजिनो॥148॥
''दिस्वा मुनिं मुदितमनम्हि पीणिता, तथागतं नरवरदम्मसारथिं।
तण्हच्छिदं कुसलरतं विनायकं, वन्दामहं परमहितानुकम्पकं'' ति॥149॥
सिरिमाविमानं सोळसमं।

17. केसकारीविमानवत्थु

''इदं विमानं रुचिरं पभस्सरं, वेळुरियथम्भं सततं सुनिम्मितं।
सुवण्णरुक्खेहि समन्तमोत्थतं, ठानं ममं कम्मविपाकसम्भवं॥150॥
''तत्रूपपन्ना पुरिमच्छरा इमा, सतं सहस्सानि सकेन कम्मुना।
तुवंसि अज्झुपगता यसस्सिनी, ओभासयं तिट्ठसि पुब्बदेवता॥151॥
''ससी अधिग्गय्ह यथा विरोचति, नक्खत्तराजारिव तारकागणं।
तथेव त्वं अच्छरासङ्गणं इमं, दद्दल्लमाना यससा विरोचसि॥152॥

संस्कृतच्छाया- ''सा वन्दितुम् अनधिवरम् उपागमम्, प्रासादिके कुशलरते च भिक्षवः।
नमस्कर्तुं श्रमणसमागमं शिवम्, सगौरवा श्रीमतः धर्मराजस्य॥148॥
''दृष्ट्वा मुनिं मुदितमनस्काऽस्मि प्रीणिता, तथागतं नरवरदम्यसारथिम्।
तृष्णाच्छिदं कुशलरतं विनायकं, वन्देऽहं परमहितानुकम्पकम्'' इति॥149॥
''इदं विमानं रुचिरं प्रभास्वरम्, वैदूर्यस्तम्भं सततं सुनिर्मितम्।
सुवर्णवृक्षैः समन्तादवस्तृतम्, स्थानं मम कर्मविपाकसम्भवम्॥150॥
''तत्रोपपन्नाः पूर्वा अप्सरस इमाः, शतं सहस्राणि स्वकेन कर्मणा।
त्वमसि अध्युपगता यशस्विनी, अवभासयन्ती तिष्ठसि पूर्वदेवताः॥151॥
''शशी अधिगृह्य यथा विरोचते, नक्षत्रराजेव तारकागणम्।
तथैव त्वम् अप्सरसाङ्गणम् इमम्, जाज्वल्यमाना यशसा विरोचसे॥152॥

हिन्दी- मैं सिरिमा श्रद्धाभाव हो उन पूज्य धर्मराज भगवान् बुद्ध को, कुशल कर्मरत भिक्षुओं को एवं भिक्षुसङ्घ को प्रणाम करने के लिये यहाँ आयी हूँ॥148॥

अब मैं प्रसन्नमन से धर्मसाधना में सभी पुरुषों को कुशल कराने में समर्थ, सांसारिक तृष्णा के छेदक, श्रेष्ठ मार्गदर्शक एवं परमहितैषी भगवान् बुद्ध के दर्शन कर उनको प्रणाम करूँगी॥149॥

यह सुन्दर एवं प्रभास्वर, वैदूर्यमणिनिर्मित प्रधान स्तम्भ पर स्थित एवं विभिन्न सुर्वण सतम्भों द्वारा सब ओर से सुनिर्मित आपका यह विमान आपके किसी पूर्वकृत पुण्य का ही प्रभाव है॥50॥

पूर्वकृत पुण्य कर्मों के प्रभावस्वरू वहाँ उत्पन्न हो सैकड़ों हजारों सुन्दर अप्सराओं से घिरी हुई अपने यश से, अपनी प्रभा से आप पूर्व देवताओं को भी अभिभूत कर रही हैं॥151॥

जिस प्रकार नक्षत्रराज चन्द्रमा अन्य तारागणों में विशेष प्रकार से शोभित होता है उसी प्रकार इन अप्सराओं से घिरी हुई आप इन की अपेक्षा अधिक शोभा बिखेर रही हैं॥152॥

''कुतो नु आगम्म अनोमदस्सने, उपपन्ना त्वं भवनं ममं इदं।
ब्रह्मंव देवा तिदसा सहिन्दका, सब्बे न तप्पामसे दस्सनेन तं'' ति॥153॥
''यमेतं सक्क अनुपुच्छसे ममं, 'कुतो चुता त्वं इध आगता'ति।
बाराणसी नाम पुरत्थि कासिनं, तत्थ अहोसिं पुरे केसकारिका॥154॥
''बुद्धे च धम्मे च पसन्नमानसा, सङ्घे च एकन्तगता असंसया।
अखण्डसिक्खापदा आगतप्फला, सम्बोधिधम्मे नियता अनामया'' ति॥155॥
''तन्त्याभिनन्दामसे स्वागतञ्च ते, धम्मेन च त्वं यससा विरोचसि।
बुद्धे च धम्मे च पसन्नमानसे, सङ्घे च एकन्तगते असंसये।
अखण्डसिक्खापदे आगतप्फले, सम्बोधिधम्मे नियते अनामये'' ति॥156॥

केसकारीविमानं सत्तरसमं।

पीठवग्गो पठमो निट्ठितो।

संस्कृतच्छाया- ''कुत्र नु आगत्य अनवमदर्शने, उपपन्ना त्वं भवनं ममेदम्।
ब्रह्माणमिव देवास्त्रिदशाः सहेन्द्रकाः, सर्वे न तृप्ताः दर्शनेन तत्'' इति॥153॥
''यदेतं शक्र अनुपृच्छसि माम्, 'कुतश्च्युता त्वमिह आगता' इति।
वाराणसी नाम पुरमस्ति काश्याम्, तत्र अभवं पुरा केशकारिका॥154॥
''बुद्धे च धर्मे च प्रसन्नमानसा, सङ्घे च एकान्तगता असंशया।
अखण्डशिक्षाप्रदा आगतफला, सम्बोधिधर्मे नियता अनामया'' इति॥155॥
''तां त्वामभिनन्दामहे स्वागतं च ते, धर्मेण च त्वं यशसा विरोचसे।
बुद्धे च धर्मे च प्रसन्नमानसे, सङ्घे च एकान्तगतेऽसंशये।
अखण्डशिक्षापदे आगतफले, सम्बोधिधर्मे नियते अनामये'' इति॥156॥

हिन्दी- हे शुभदर्शने! यहाँ आपसे हमारी यही जिज्ञासा है कि आपने किस योनि से च्युत होकर इस विमान को अपना बनाया है? ब्रह्मा, इन्द्र आदि सभी देवता आपका दर्शन करते हुए क्यों कभी तृप्त नहीं होते?॥153॥

हे शाक्य! आपके इस प्रश्न के विषय में कि मैंने किस योनी से च्युत होकर इस विमान को अपना बनाया है, मेरा उत्तर यह है— मैं पहले काशी जनपद के वाराणसी नगर में वेणी गूँथने वाली (केशकारिका) परिचारिका के रूप में उत्पन्न हुई थी॥154॥

वहाँ मैं बुद्ध, धर्म एवं सङ्घ के प्रति असन्दिग्ध एवं ऐकान्तिक श्रद्धा रखती हुई तथा सभी शिक्षापदों का अखण्ड पालन करती हुई, मार्गफल प्राप्त कर नियमित रूप से, शरीर तथा मन से स्वस्थ रहती हुई धर्माभ्यास में निरत रहती थी॥155॥

क्योंकि आप धर्मपालन के कारण लोक में यशस्वी हो गयी हैं, और आप बुद्ध, धर्म एवं सङ्घ में असन्दिग्ध श्रद्धा रख कर, अखण्ड शिक्षापदों के पालन द्वारा मार्गफल प्राप्त कर नित्यप्रति तन मन से स्वस्थ रहती हुई धर्माभ्यास कर चुकी हैं, अतः अब हम आपका स्वागत एवं अभिनन्दन करते हैं॥156॥

तस्सुद्दानं– पञ्च पीठा तयो नावा, दीपतिलदक्खिणा द्वे।
ति द्वे सुणिसा उत्तरा, सिरिमा केसकारिका।
वग्गो तेन पवुच्चतीति॥

संस्कृतच्छाया-

तस्योद्दानम् – पञ्च पीठाः तिस्रः नावः, दीपतिलदक्षिणे द्वे।
त्यौ द्वौ स्नुषा उत्तरा, श्रीमान् केशकारिका।
वर्गः तेन प्रोच्यते इति॥

हिन्दी- 1. प्रथम पीठविमानवस्तु, 2. द्वितीय पीठविमानवस्तु, 3. तृतीय पीठविमानवस्तु, 4. चतुर्थ पीठविमानवस्तु, 5. कुञ्जरपीठविमानवस्तु, 6. प्रथम नौविमानवस्तु, 7. द्वितीय नौविमानवस्तु, 8. तृतीय नौविमानवस्तु, 9. दीपविमानवस्तु, 10. तिलदक्षिणविमानवस्तु, 11. प्रथम पतिव्रताविमानवस्तु, 12. द्वितीय पतिव्रताविमानवस्तु, 13. प्रथम स्नुषाविमानवस्तु, 14. द्वितीय स्नुषाविमानवस्तु, 15. उत्तराविमानवस्तु, 16. सिरिमाविमानवस्तु, 17. केशकारी विमानवस्तु– इन 17. विमानवस्तु का यह वर्ग पूर्ण हुआ॥

****

2. चित्तलतावग्गो

1. दासिविमानवत्थु

''अपि सक्कोव देविन्दो, रम्मे चित्तलतावने।
समन्ता अनुपरियासि, नारीगणपुरक्खता।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥157॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥158॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥159॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥160॥
''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूता, दासी अहोसिं परपेसिया कुले।161॥

संस्कृतच्छाया-- ''अपि शक्र इव देवेन्द्रः, रम्ये चित्रलतावने।
समन्तात् अनुपरियासि, नारीगणपुरस्कृता।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, औषधीरिव तारकाः॥157॥
''केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥158॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥159॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकार्षीत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥160॥
''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूता, दासी अभवं परप्रेष्यकुले॥161॥

हिन्दी- आप भी इस रमणीय चित्रलतावन में अप्सराओं द्वारा पुरस्कृत (अगवानी) किये जाने के कारण उसी प्रकार शोभित हो रही हैं मानो अपसराएँ देवेन्द्र शक्र का सम्मान कर रही हों। आप अपनी इस आभा से समस्त दिशाओं को उसी प्रकार शोभित कर रही हैं जैसे तारागण अपनी आभा से औषधिगुल्म को शोभित किया करते हैं॥157॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग-उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥158॥

देवि मेरी आपसे यही जिज्ञासा है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्णाभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥159॥

उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही हैं॥160॥

मैं कभी मानवलोक में मनुष्यरूप में दूसरों के घरों में कार्य कर अपनी जीविका चलाने वाले कुल में उत्पन्न होकर किसी घर में दासी का कार्य करने लगी॥161॥

''उपासिका चक्खुमतो, गोतमस्स यसस्सिनो।
तस्सा मे निक्कमो आसि, सासने तस्स तादिनो॥162॥
''कामं भिज्जतुयं कायो, नेव अत्थेत्थ सण्ठनं।
सिक्खापदानं पञ्चन्नं, मग्गो सोवत्थिको सिवो॥163॥
''अकण्टको अगहनो, उजु सब्भि पवेदितो।
निक्कमस्स फलं पस्स, यथिदं पापुणित्थिका॥164॥
''आमन्तनिका रञ्ञोम्हि, सक्कस्स वसवतिनो।
सट्ठि तुरिय सहस्सानि, पटिबोधं करोन्ति मे॥165॥
''आलम्बो गग्गरो भीमो, साधुवादी च संसयो।
पोक्खरो च सुफस्सो च, विणामोक्खा च नारियो॥166॥

संस्कृतच्छाया--- ''उपासिका चक्षुष्मतः, गौतमस्य यशस्विनः।
तस्याः मे निष्कामा आसिषम्, शासने तस्य तायिनः॥162॥
''कामं भिनत्वयं कायः, नैव अस्त्यत्र संस्थानम्।
शिक्षापदानां पञ्चानाम्, मार्गः स्वस्तिकः शिवः॥163॥
'अकण्टकः अगहनः, ऋजुः सर्वैः प्रवेदितः।
निष्कामस्य फलं पश्य, यथेदं प्राप्नुवमं त्रिकम्॥164॥
''आमन्त्रणिका राज्ञोऽस्मि, शक्रस्य वशवर्तिनः।
षष्टितूर्यसहस्राणि, प्रतिबोधं कुर्वन्ति मे॥165॥
''आलम्बो गगरो भीमः, साधुवादी च संशयः।
पुष्करश्च सुस्पर्शश्च, वीणामुख्याश्च नार्यः॥166॥

हिन्दी- मैं यशस्वी एवं चक्षुष्मान्, ज्ञानी बुद्ध की उपासिका रहते हुए निष्कामभाव से उन तायी (भगवान् बुद्ध) द्वारा दिष्ट धर्म के पालन में रत रहती थी॥162॥

मैंने संकल्पपूर्वक निश्चय कर लिया था कि यदि इस धर्म के पालन में मेरा शरीर भी नष्ट हो जाय, परन्तु मुझको पुनः यहाँ जन्म नहीं लेना है। बुद्धोपदिष्ट स्वस्तिप्रद तथा सत्यस्वरूप (आर्याष्टाङ्गिक) मार्ग द्वारा पंच शिक्षापदों का॥163॥

यह मार्ग निष्कण्टक (बाधारहित) एवं अगहन (सरल) तथा सीधा व सुगम है। सज्जनों ने भी यही कहा है। मेरे द्वारा तब उस धर्म साधना का यह फल देख लीजिये कि आज मैं मनोरथपूर्ण नारी हूँ॥164॥

मैं वशवर्ती देवराज शक्र (इन्द्र) द्वारा समय-समय पर निमन्त्रित होती रहती हूँ। मेरे प्रातः जागरण के अवसर पर साठ हजार तूर्य वाद्य बजाये जाते हैं॥165॥

उन (अप्सराओं) में कोई अप्सरा आडम्बर (भेरी), कोई गागर (घट), कोई भीम, कोई साधुवाद्य, कोई संशय, कोई पुष्कर, कोई सुस्पर्श तथा कोई वीणा हाथ में लिये रहती है॥166॥

''नन्दा चेव सुनन्दा च, सोणदिन्ना सुचिम्हिता।
अलम्बुसा मिस्सकेसी च, पुण्डरीकाति दारुणी॥167॥
''एणीफस्सा सुफस्सा च, सुभद्दा मुदुवादिनी।
एता चञ्ञा च सेय्यासे, अच्छरानं पबोधिका॥168॥
''ता मं कालेनुपागन्त्वा, अभिभासन्ति देवता।
हन्द नच्चाम गायाम, हन्द तं रमयामसे॥169॥
''नयिदं अकतपुञ्ञानं, कतपुञ्ञानमेविदं।
असोकं नन्दनं रम्मं, तिदसानं महावनं॥170॥
''सुखं अकतपुञ्ञानं, इध नत्थि परत्थ च।
सुखञ्च कतपुञ्ञानं, इध चेव परत्थ च॥171॥

संस्कृतच्छाया- ''नन्दा चैव सुनन्दा च, श्रोणदत्ता शुचिस्मिता।
अलम्बुषा मिश्रकेशी च, पुण्डरीका इति दारुणी॥167॥
''एणीस्पर्शा सुस्पर्शा च, सुभद्रा मृदुवादिनी।
एताश्चान्याश्च श्रेयस्तराः, अप्सरसां प्रबोधिकाः॥168॥
''ताः मां कालेनोपागत्य, अभिभाषन्ते देवते।
हन्त नृत्यामो गायामः, हन्त त्वां रमयामः॥169॥
''नेदम् अकृतपुण्यानाम्, कृतपुण्यानामेवेदम्।
अशोकं नन्दनं रम्यम्, त्रिदशानां महावनम्॥170॥
''सुखम् अकृतपुण्यानाम्, इह नास्ति परत्र च।
सुखञ्च कृतपुण्यानाम्, इह चैव परत्र च॥171॥

हिन्दी- उनमें कुछ अप्सराओं के नाम— नन्दा, सुनन्दा, श्रोणदत्ता, शुचिस्मिता, अलम्बुषा, मिश्रकेशा, पुण्डरीका और दारुणी हैं॥167॥

एणीस्पर्शा, सुस्पर्शा, सुभद्रा, मृदुवादिनी आदि ये अप्सराएँ तथा ऐसी ही कुछ अन्य विशिष्ट अप्सराएँ आकर मुझ को जगाती हैं॥168॥

वे अप्सराएँ मेरे पास समय पर आकर कहती हैं—देवि! हम नाचेंगीं, गायेंगी और आपका मन बहलायेंगीं।169॥

पापियों को ऐसा सुख सौभाग्य न इस लोक में मिल पाता है न परलोक में ही। इस शोकरहित, रमणीय देवताओं के वन में रमण करनें का यह सुख सौभाग्य केवल पुण्यकर्ताओं को ही मिलता है॥170॥

क्योंकि पापियों को न कोई सुख इस लोक में मिल पाता है और न परलोक में ही। कोई भी सुख पुण्यकर्ताओं को ही उपलब्ध होता है, पापियों को नहीं॥171॥

''तेसं सहब्यकामानं, कत्तब्बं कुसलं बहुं।
कतपुञ्ञा हि मोदन्ति, सग्गे भोगसमङ्गिनो'' ति॥172॥
दासिविमानं पठमं।

2. लखुमाविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥173॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥174॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥175॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥176॥

संस्कृतच्छाया- ''तेषां सहाय्यकामानाम्, कर्त्तव्यं कुशलं बहु।
कृतपुण्याः हि मोदन्ते, स्वर्गे भोगसमङ्गिनः' इति॥172॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीः इव तारकाः॥173॥
''केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥174॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥175॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकार्षीत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥176॥

हिन्दी- उन पुण्यकर्ताओं के साथ रहकर स्वर्गसुख भोगने की कामनावालों को चाहिये कि वे बहुत से कुशल कर्मों को करें;क्योंकि ऐसे कुशल कर्म करनेवाले पुण्यकर्ता ही इस दिव्य स्वर्गसुख का उपभोग कर पाते हैं॥172॥

देवि! आप अपने विशिष्ट वर्णाभा से सभी दिशाओं को उसी प्रकार प्रकाशित कर रही हैं जैसे तारागण औषधियों को प्रकाशित करते हैं॥173॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग–उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥174॥

देवि मेरी आपसे यही जिज्ञासा है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्णाभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥175॥

उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य–विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही हैं॥176॥

''केवट्टद्वारा निक्खम्म, अहु मय्हं निवेसनं।
तत्थ सञ्चरमानानं, सावकानं महेसिनं॥177॥
''ओदनं कुम्मासं डाकं, लोणसोवीरकञ्चहं।
अदासिं उजुभूतेसु, विप्पसन्नेन चेतसा॥178॥
''चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।
पाटिहारियपक्खञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं॥179॥
''उपोसथं उपवसिस्सं, सदा सीलेसु संवुता।
सञ्ञमा संविभागा च, विमानं आवसामहं॥180॥
''पाणातिपाता विरता, मुसावादा च सञ्ञता।
थेय्या च अतिचारा च, मज्जपाना च आरका॥181॥

संस्कृतच्छाया- ''कैवर्तद्वारात् निष्क्रम्य, अभूत् मम निवेशनम्।
तत्र सञ्चरमाणानाम्, श्रावकानां महर्षिणाम्॥177॥
''ओदनं कुल्माषं शाकम्, लवणसौवीरकञ्चाऽहम्।
अदाम् ऋजुभूतेभ्यः, विप्रसन्नेन चेतसा॥178॥
''चतुर्दशीं पञ्चदशीम्, या च पक्षस्य अष्टमी।
प्रातिहार्यपक्षं च, अष्टाङ्गसुसमागतम्॥179॥
''उपवसथम् उपावसम्, सदा शीलेषु संवृता।
संयमात् संविभागाच्च, विमानम् आवसमहम्॥180॥
''प्राणातिपातात् विरता, मृषावादाच्च संयता।
स्तेय्याच्च अतिचाराच्च, मद्यपानाच्च अरक्ताः॥181॥

हिन्दी- केवट्टद्वार ग्राम के बाहर ही मेरा वासस्थान था। मैं वहाँ आनेजाने वाले, महर्षियों तथा सभी बुद्धश्रावकों को।177॥

प्रसन्नचित्त हो, खाने पीने के लिये भात, कुल्माष, खाने योग्य हरे पत्ते, तथा नमकीन काञ्जी दिया करती थी॥178॥

चतुर्दशी, पञ्चदशी तथा किसी भी पक्ष की अष्टमी या प्रातिहार्यपक्ष में अष्टाँगों से युक्त॥179॥

मैं निरन्तर शीलसंवरण पूर्वक संयम व विभाजन के साथ उपोसथ व्रत का पालन करती रही। उसी के फलस्वरूप इस अनुपम विमान में वास कर रही हूँ॥180॥

प्राणातिपात(प्राणिहिंसा) से विरत रहती थी, असत्य भाषण में संयम रखती थी। चोरी, व्यभिचार तथा मद्यपान से दूर रहती थी॥181॥

''पञ्चसिक्खापदे रता, अरियसच्चान कोविदा।
उपासिका चक्खुमतो, गोतमस्स यसस्सिनो॥182॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥183॥
''मम च, भन्ते, वचनेन भगवतो पादे सिरसा वन्देय्यासि – 'लखुमा नाम, भन्ते, उपासिका भगवतो पादे सिरसा वन्दती'ति। अनच्छरियं खो पनेतं, भन्ते, यं मं भगवा अञ्ञतरस्मिं सामञ्ञफले ब्याकरेय्य। तं भगवा सकदागामिफले ब्याकासी''ति।184॥

लखुमाविमानं दुतियं।

3. आचामदायिकाविमानवत्थु

''पिण्डाय ते चरन्तस्स, तुण्हीभूतस्स तिट्ठतो।
दलिद्दा कपणा नारी, परागारं अपस्सिता॥185॥

संस्कृतच्छाया- ''पञ्चशिक्षापदे रता, आर्यसत्यानां कोविदा।
उपासिका चक्षुष्मतः, गौतमस्य यशस्विनः॥182॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥183॥
''मम च, भदन्त!, वचनेन भगवतः पादौ शिरसा वन्दिष्यसे – 'लखुमा नाम, भदन्त!, उपासिका भगवतः पादौ शिरसा वन्दते 'इति। अनाश्चर्यं खलु पुनः एतत्, भदन्त!, यत् मां भगवान् अन्यतरस्मिन् श्रामण्यफले व्याकुर्यात्। तत् भगवान् सकृदागामिफले व्याकार्षीत्'' इति॥184॥
''पिण्डाय ते चरतः, तूष्णींभूतस्य तिष्ठतः।
दरिद्रा कृपणा नारी, परागारम् अपाश्रिता॥185॥

हिन्दी- पाँच शिक्षापदों में रत थी, आर्यसत्यों को जानती थी। और मैं उन यशस्वी, चक्षुष्मान् भगवान् गौतम की उपासिका थी॥182॥

उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी के कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥183॥

और भन्ते! मेरे कहने से भगवान् के श्रीचरणों में वन्दना कीजियेगा और कहियेगा– 'भन्ते! लखुमा उपासिका आपके श्रीचरणों में प्रणाम करती है। भन्ते! कोई आश्चर्य नहीं है कि भगवान् मेरे लिये अब किसी अन्य श्रामण्यफल का भी व्याकरण कर दें, पूर्व में उन्होनें मेरे लिये सकृदागामिफल का व्याकरण किया था॥184॥

भिक्षाटन करते समय, किसी घर के सम्मुख शान्तचित्त खड़े आपको दूसरों के घरों पर आश्रित जिस दरिद्र एवं कृपण स्त्री ने॥185॥

''या ते अदासि आचामं, पसन्ना सेहि पाणिभि।
सा हित्वा मानुसं देहं, कं नु सा दिसतं गता'' ति॥186॥
''पिण्डाय मे चरन्तस्स, तुण्हीभूतस्स तिट्ठतो।
दलिद्दा कपणा नारी, परागारं अपस्सिता॥187॥
''या मे अदासि आचामं, पसन्ना सेहि पाणिभि।
सा हित्वा मानुसं देहं, विप्पमुत्ता इतो चुता॥188॥
''निम्मानरतिनो नाम, सन्ति देवा महिद्धिका।
तत्थ सा सुखिता नारी, मोदताचामदायिका'' ति॥189॥
''अहो दानं वराकिया, कस्सपे सुप्पतिट्ठितं।
पराभतेन दानेन, इज्झित्थ वत दक्खिणा॥190॥

संस्कृतच्छाया- ''या तुभ्यम् अदात् आचमनम्, प्रसन्ना स्वाभ्यां पाणिभ्याम्।
सा हित्वा मानुषं देहम्, कां नु सा दिशं गता'' इति॥186॥
''पिण्डाय मे चरतः, तूष्णींभूतस्य तिष्ठतः।
दरिद्रा कृपणा नारी, परागारेऽपाश्रिता॥187॥
''या मे अदात् आचमनम्, प्रसन्ना स्वाभ्यां पाणिभ्याम्।
सा हित्वा मानुषं देहम्, विप्रमुक्ता इतश्च्युता॥188॥
''निर्माणरतिनामानः, सन्ति देवाः महर्द्धिकाः।
तत्र सा सुखिता नारी, मोदते आचमनदायिका'' इति॥189॥
''अहो दानं वराक्याः, कश्यपे सुप्रतिष्ठितम्।
पराभृतेन दानेन, आर्धत वत दक्षिणा॥190॥

हिन्दी- प्रसन्नतापूर्वक अपने हाथों जो भात का माँड़ दिया था, वह मनुष्य देहत्याग(मृत्योपरान्त) कर किस दिशा में गयी?॥186॥

भिक्षाटन करते समय, किसी घर के सम्मुख शान्तचित्त खड़े मुझको दूसरों के घरो पर आश्रित उस दरिद्र एवं कृपण स्त्री नें॥187॥

प्रसन्नतापूर्वक अपने हाथों जो भात का माँड़ दिया था, वह मनुष्य देहत्याग(मृत्योपरान्त) यहाँ से च्युत होकर पूर्णतः मुक्त हो गयी ॥188॥

आज वही माँड का दान करने वाली स्त्री ऋद्धिसम्पन्न निर्माणरति देवलोक में निर्माणरति देवों के मध्य दिव्य सुख भोग रही है॥189॥

उस पराश्रित, भगवान् काश्यप में सुप्रतिष्ठित व दया की पात्र (वराकी) दरिद्र स्त्री के द्वारा भगवान् काश्यप के प्रति किये दान की दक्षिणा के फलस्वरूप यह पुण्यफल मिला॥190॥

''या महेसित्तं कारेय्य, चक्कवत्तिस्स राजिनो।
नारी सब्बङ्गकल्याणी, भत्तु चानोमदस्सिका।
एतस्साचामदानस्स , कलं नाग्घति सोळसिं॥191॥
''सतं निक्खा सतं अस्सा, सतं अस्सतरीरथा।
सतं कञ्ञासहस्सानि, आमुत्तमणिकुण्डला।
एतस्साचामदानस्स, कलं नाग्घन्ति सोळसिं॥192॥
''सतं हेमवता नागा, ईसादन्ता उरूळ्हवा।
सुवण्णकच्छा मातङ्गा, हेमकप्पनवाससा।
एतस्साचामदानस्स, कलं नाग्घति सोळसिं॥193॥
''चतुन्नमपि दीपानं, इस्सरं योध कारये।
एतस्साचामदानस्स, कलं नाग्घति सोळसिं'' ति॥194॥

आचामदायिकाविमानं ततियं।

संस्कृतच्छाया- ''या महर्षित्वं कारयेत्, चक्रवर्तिनः राज्ञः।
नारी सर्वाङ्गकल्याणी, भर्तुश्च अनवमदर्शिका।
एतस्याचमनदानस्य , कलां नार्हति षोडशीम्॥191॥
''शतं निष्काः शतम् अश्वाः, शतम् अश्वतरीरथाः।
शतं कन्यासहस्राणि, आमुक्तामणिकुण्डलेभ्यः।
एतस्याचमनदानस्य, कलां नार्हति षोडशीम्॥192॥
''शतं हैमवता नागाः, ईशदन्ता ऊढवन्तः।
सुवर्णकक्षाः मातङ्गाः, हेमकल्पनिवाससः।
एतस्याचमनदानस्य, कलां नार्हति षोडशीम्॥193॥
''चतुर्णामपि दीपानाम्, ईश्वरं य इह कारयेत्।
एतस्याचमनदानस्य, कलां नार्हति षोडशीम्''इति॥194॥

हिन्दी- किसी चक्रवर्ती राजा की सर्वाङ्गसुन्दरी एवं अनवमदर्शी पटरानी भी इस माँड का दान करने वाली दरिद्र स्त्री की सोलहवीं कला की भी बराबरी नहीं कर सकती॥191॥

सौ सुवर्णमुद्रा (निष्क) सौ घोड़े व सौ घोड़ियों से जुते हुए रथ, या मणि-मुक्ता आदि से अलंकृत सौ कन्याएँ भी उस माँड़ का दान करने वाली दरिद्र स्त्री की सोलहवीं कला के भी बराबर समानता नहीं कर सकती॥192॥

हिमालय में उत्पन्न, बड़े-बड़े दाँतों वाले, पूर्ण उच्चायुक्त, सुर्वणजटित वस्त्रों से सुसज्जित सौ हाथी भी उस माँड का दान करने वाली दरिद्र व कृपण स्त्री की सोलहवीं कला की बराबरी भी नहीं कर सकते॥193॥

चारों द्वीपों पर शासन करने वाले चक्रवर्ती राजा(ईश्वर) भी इस माँड का दान करनेवाली दरिद्रा की सोलहवीं कला की भी बराबरी नहीं कर सकते॥194॥

4. चण्डालिविमानवत्थु

''चण्डालि वन्द पादानि, गोतमस्स यसस्सिनो।
तमेव अनुकम्पाय, अट्ठासि इसिसत्तमो॥195॥
''अभिप्पसादेहि मनं, अरहन्तम्हि तादिनि।
खिप्पं पञ्जलिका वन्द, परित्तं तव जीवितं'' ति॥196॥
चोदिता भावितत्तेन, सरीरन्तिमधारिना।
चण्डाली वन्दि पादानि, गोतमस्स यसस्सिनो॥197॥
तमेनं अवधी गावी, चण्डालिं पञ्जलिं ठितं।
नमस्समानं सम्बुद्धं, अन्धकारे पभङ्करन्ति॥198॥
''खीणासवं विगतरजं अनेजं, एकं अरञ्ञम्हि रहो निसिन्नं।
देविद्धिपत्ता उपसङ्कमित्वा, वन्दामि तं वीर महानुभावं'' ति॥199॥

संस्कृतच्छाया- ''चाण्डालि वन्दस्व पादौ, गौतमस्य यशस्विनः।
तवैव अनुकम्पायाः, अस्थात् ऋषिषूत्तमः॥195॥
''अभिप्रसादय मनः, अर्हति तायिनि।
क्षिप्रं प्राञ्जलिका वन्दस्व, प्ररिक्तं तव जीवितम्'' इति॥196॥
चोदिता भावितात्मना, शरीरान्तिमधारिणा।
चाण्डालि वन्दस्व पादौ, गौतमस्य यशस्विनः॥197॥
तामेनाम् अवधीत् गौः, चाण्डालीं प्रञ्जलिं स्थिताम्।
नमस्यन्तीं सम्बुद्धम्, अन्धकारे प्रभाकरमिति॥198॥
''क्षीणास्रवं विगतरजसम् अनेजम्, एकम् अरण्ये रहः निषण्णम्।
दिव्यर्द्धिप्राप्ता उपसङ्क्रम्य, वन्दे त्वां वीरं महानुभावम्'' इति॥199॥

हिन्दी- चाण्डालि! तुम इन यशस्वी गौतम के श्रीचरणों की वन्दना करो। तुम पर अनुकम्पा करने हेतु ही ऋषिश्रेष्ठ यहाँ खड़े हैं॥195॥

तुम ऐसे तायि(ज्ञानी) अर्हत् व सिद्धजनों के प्रति अपने मन में श्रद्धा उत्पन्न करो। तुम शीघ्र ही हाथ जोड़ते हुए इनकी वन्दना करो; क्योंकि तुम्हारा जीवन बहुत ही अल्प है॥196॥

इस प्रकार किसी महापुरुष के द्वारा प्रेरित उस मृत्युशय्या पर पड़ी चाण्डाली ने उन यशस्वी गौतम के श्रीचरणों की वन्दना की॥197॥

भगवान् बुद्ध को प्रणाम करने के बाद चाण्डाली ज्यों ही उठी, उठ कर भी वह अन्धकार में प्रकाश करने वाले उन भगवान् को हाथ जोड़े ही खड़ी थी कि इसी समय किसी गौ ने वहाँ आकर उस चाण्डाली का वध कर दिया॥198॥

हे वीर! मैं दिव्य ऋद्धि प्राप्त कर आप क्षीणाश्रव, निष्पाप, स्थिरचित्त एवं किसी एकान्त अरण्य में एकाकी साधनारत आप महानुभाव को प्रणाम करने हेतु आयी हूँ॥199॥

''सुवण्णवण्णा जलिता महायसा, विमानमोरुय्ह अनेकचित्ता।
परिवारिता अच्छरासङ्गणेन, का त्वं सुभे देवते वन्दसे ममं'' ति॥200॥
''अहं भद्दन्ते चण्डाली, तया वीरेन पेसिता।
वन्दिं अरहतो पादे, गोतमस्स यसस्सिनो॥201॥
''साहं वन्दित्वा पादानि, चुता चण्डालयोनिया।
विमानं सब्बतो भद्दं, उपपन्नम्हि नन्दने॥202॥
''अच्छरानं सतसहस्सं, पुरक्खत्वान तिट्ठति।
तासाहं पवरा सेट्ठा, वण्णेन यससायुना॥203॥
''पहूतकतकल्याणा, सम्पजाना पटिस्सता।
मुनिं कारुणिकं लोके, तं भन्ते वन्दितुमागता'' ति॥204॥

संस्कृतच्छाया- ''सुवर्णवर्णा ज्वलिता महायशस्का, विमानमारुह्य अनेकचित्ता।
परिवारिता अप्सरसां गणेन, का त्वं शुभे देवते वन्दसे माम्'' इति॥200॥
''अहं भदन्त चाण्डाली, त्वया वीरेण प्रेरिता।
वन्दे अर्हतः पादौ, गौतमस्य यशस्विनः॥201॥
''साहं वन्दित्वा पादान्, च्युता चाण्डालयोनेः।
विमानं सर्वतः भद्रम्, उपपन्नास्मि नन्दने॥202॥
''अप्सरसां शतसहस्रम्, पुरस्कृत्य तिष्ठति।
तासामहं प्रवरा श्रेष्ठा, वर्णेन यशसाऽयुषा॥203॥
''प्रभूतकृतकल्याणा, सम्प्रजानन्ती प्रतिस्मृता।
मुनिं कारुणिकं लोके, त्वां भदन्त वन्दितुमागता'' इति॥204॥

हिन्दी- हे देवि! सुवर्णवर्णवाली, महान् यश से प्रकाशित, विविध विचित्र अलङ्करण वाली, अप्सरा समूह से घिरी हुई प्रसन्नमना, विमान में विराजमान आप कौन हैं? और शुभदर्शने! मेरी वन्दना क्यों कर रही हैं?॥200॥

भन्ते! आप धर्मसाधनावीर के द्वारा प्रेरित मैं, चाण्डाली ने कभी पहले यशस्वी भगवान् गौतम के श्रीचरणों की वन्दना की थी॥201॥

वह मैं भगवान् के श्रीचरणों की वन्दना करके तत्क्षण ही चाण्डाल योनि से मुक्त हो गयी और मैंने नन्दन वन में इस सर्वसुखप्रद विमान में जन्म ग्रहण किया॥202॥

लाखों अप्सराओं का समूह मेरे सामने खड़ा है। उनमें मैं ही वर्ण, यश एवं आयु में श्रेष्ठ हूँ॥203॥

मैंने स्मृतिसम्प्रजन्य एवं विचारपूर्वक अब तक बहुत से शुभ कर्म किये हैं। भन्ते! इस लोक में उन कारुणिक एवं दयालु मुनि को प्रणाम करने आयी हूँ॥204॥

इदं वत्वान चण्डाली, कतञ्ञू कतवेदिनी।
वन्दित्वा अरहतो पादे, तत्थेवन्तरधायथाति॥205॥
चण्डालिविमानं चतुत्थं।

5. भद्दित्थिविमानवत्थु

''नीला पीता च काळा च, मञ्जिट्ठा अथ लोहिता।
उच्चावचानं वण्णानं, किञ्जक्खपरिवारिता॥206॥
''मन्दारवानं पुप्फानं, मालं धारेसि मुद्धनि।
नयिमे अञ्ञेसु कायेसु, रुक्खा सन्ति सुमेधसे॥207॥
''केन कायं उपपन्ना, तावतिंसं यसस्सिनी।
देवते पुच्छिताचिक्ख, किस्स कम्मस्सिदं फलं'' ति॥208॥
''भद्दित्थिकाति मं अञ्ञंसु, किमिलायं उपासिका।
सद्धा सीलेन सम्पन्ना, संविभागरता सदा॥209॥

संस्कृतच्छाया- इदम् उक्त्वा चाण्डाली, कृतज्ञा कृतवेदिनी।
वन्दित्वा अर्हतः पादौ, तत्रैवान्तर्दधौ इति॥205॥
''नीला पीता च काली च, मञ्जिष्ठा अथ लोहिता।
उच्चावचानां वर्णानाम्, किञ्जल्कपरिवारिता॥206॥
''मन्दाराणां पुष्पाणाम्, मालां धारयसि मूर्द्धनि।
न इमे अन्येषु कायेषु, वृक्षाः सन्ति सुमेधसे॥207॥
''केन कायशम् उपपन्ना, त्रायस्त्रिंशे यशस्विनि।
देवते पृष्टाऽऽचक्षस्व, कस्य कर्मण इदं फलम्'' इति॥208॥
''भद्रास्त्रिका इति माम् अज्ञासिषुः, किमिलायाम् उपासिकाः।
श्रद्धया शीलेन सम्पन्ना, संविभागरता सदा॥209॥

हिन्दी- ऐसा कह कर वह कृतज्ञ चाण्डाली अर्हत् (भगवान्) के श्रीचरणों की वन्दना कर वहीं अन्तर्ध्यान हो गयी॥205॥

आप नील, पीत, कृष्ण, मञ्जिष्ठा एवं रक्त आदि ऊँचे नीचे वर्णों के पराग से परिवृत हैं॥206॥

आपने मन्दारव(पारिजात) की पुष्पमाला अपनी वेणी में धारण कर रखा है। हे सुमेधे! ये सब वृक्ष (पुष्प) अन्य साधारण कायों मे उपलब्ध नहीं होते॥207॥

अतः हे यशस्विनि! हमारी आपसे यही जिज्ञासा है कि आप किस पुण्यकर्म के फलस्वरूप इस त्रायस्त्रिंश देवलोक में उत्पन्न हुई हैं ? देवते! हमें बताएँ कि यह किस कर्म का पुण्यफल है?॥208॥

मैं किमिला नगरी में रहने वाली भद्रा स्त्री नाम से प्रसिद्ध उपासिका थी। वहाँ मैं श्रद्धालु तथा सदाचार सम्पन्न रहती हुई सदा दानकर्म में रत रहती थी॥209॥

''अच्छादनञ्च भत्तञ्च, सेनासनं पदीपियं।
अदासिं उजुभूतेसु, विप्पसन्नेन चेतसा॥210॥
''चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।
पाटिहारियपक्खञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं॥211॥
''उपोसथं उपवसिस्सं, सदा सीलेसु संवुता।
सञ्ञमा संविभागा च, विमानं आवसामहं॥212॥
''पाणातिपाता विरता, मुसावादा च सञ्ञता।
थेय्या च अतिचारा च, मज्जपाना च आरका॥213॥
''पञ्चसिक्खापदे रता, अरियसच्चान कोविदा।
उपासिका चक्खुमतो, अप्पमादविहारिनी।
कतावासा कतकुसला ततो चुता,
सयं पभा अनुविचरामि नन्दनं॥214॥

संस्कृतच्छाया- ''आच्छादनं च भक्तञ्च, शयनासनं प्रदीपिकाम्।
अदाम् ऋजुभूतेभ्यः, विप्रसन्नेन चेतसा॥210॥
''चतुर्दशीं पञ्चदशीम्, या च पक्षस्य अष्टमी।
प्रातिहार्यपक्षं च, अष्टाङ्गसुसमागतम्॥211॥
''उपोसथम् उपावसम्, सदा शीलेषु संवृता।
संयमात् संविभागाच्च, विमानम् आवसमहम्॥212॥
''प्राणातिपातात् विरता, मृषावादाच्च संयता।
स्तेयाच्च अतिचाराच्च, मद्यपानाच्च अरक्ता॥213॥
''पञ्चशिक्षापदे रता, आर्यसत्येषु कोविदा।
उपासिका चक्षुष्मतः, अप्रमादविहारिणी।
कृतावकाशा कृतकुशला ततश्च्युता,
स्वयंप्रभा अनुविचरामि नन्दनम्॥214॥

हिन्दी- मैंने वहाँ प्रसन्नमन से श्रमणजनों को ओढ़ने बिछाने हेतु वस्त्र, भोजन, शयनासन, प्रकाश के लिये दीपक आदि दिया था॥210॥

चतुर्दशी, पञ्चदशी तथा किसी भी पक्ष की अष्टमी या प्रातिहार्यपक्ष में अष्टाँगों से युक्त-॥211॥

उपोसथव्रत रखती हुई सदा शीलसम्पन्न रहती थी। उस संयम तथा दानयुक्त जीवन के कारण ही आज मुझको इस विमान में यह आवास प्राप्त हुआ है॥212॥

उस समय मैं प्राणातिपात से विरत रहती थी। मृषा(असत्य) भाषण में संयम रखती थी। तथा स्तेय्य(चोरी), अतिचार(व्यभिचार) एवं मद्यपान से दूर रहती थी॥213॥

''भिक्खू चाहं परमहितानुकम्पके, अभोजयिं तपस्सियुगं महामुनिं।
कतावासा कतकुसला ततो चुता, सयं पभा अनुविचरामि नन्दनं॥215॥
''अट्ठङ्गिकं अपरिमितं सुखावहं, उपोसथं सततमुपावसिं अहं।
कतावासा कतकुसला ततो चुता, सयं पभा अनुविचरामि नन्दनं'' ति॥216॥
भद्दित्थिविमानं पञ्चमं।

6. सोणदिन्नाविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥217॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥218॥
केन त्वं विमलोभासा.....पे.....सब्बा ओभासते दिसा॥219॥

संस्कृतच्छाया- ''भिक्षून् चाहं परमहितानुकम्पकान्, अभोजयं तपस्वियुगं महामुनिम्।
कृतावकाशा कृतकुशला ततश्च्युता, स्वयंप्रभा अनुविचरामि नन्दनम्॥215॥
''अष्टाङ्गिकम् अपरिमितं सुखावहम्, उपवसथं सततमुपावसम् अहम्।
कृतावकाशा कृतकुशला ततश्च्युता, स्वयंप्रभा अनुविचरामि नन्दनम्॥216॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीरिव तारकाः॥217 ॥
'केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥218॥
केन त्वं विमलावभासा....प्रे.....सर्वा अवभाससे दिशः॥219॥

हिन्दी- पाँच शिक्षापदों का सतत अभ्यास करती रहती थी। आर्यसत्य-चतुष्टय में निपुण थी। इस प्रकार चक्षुष्मान् बुद्ध की अप्रमादविहारिणी उपासिका के रूप में प्रसिद्ध हुई। कुशल कर्म करती हुई वहाँ से अवकाश प्राप्त कर उस देह से च्युत होकर आज स्वयम्प्रकाश हो इस नन्दन वन में विचरण कर रही हूँ॥214॥

उस समय मैंने लोक के परमहितैषी भिक्षुओं को भोजन दान किया, साथ ही महान तपस्वियुगल (सारिपुत्र-मौद्गल्यायन) को भी भोजन कराया। इस प्रकार अनेक प्रकार के कुशल कर्म करती हुई अन्त में उस देह से च्युत होकर आज मैं इस नन्दन वन में स्वयम्प्रकाश होकर विचरण कर रही हूँ॥215॥

मैंने सुखदायी आर्याष्टाङ्गिक उपोसथव्रत का सतत पालन किया। इस प्रकार अनेक प्रकार के कुशल कर्म करती हुई अन्त में उस देह से च्युत होकर आज मैं इस नन्दनवन में स्वयम्प्रकाश होकर विचरण कर रही हूँ॥216॥

हे देवि! आप अपने देदीप्यमान वर्ण से समस्त दिशाओं को उसी प्रकार प्रकाशित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को प्रकाशित किया करते हैं॥217॥

यह ऐसा दिव्य वर्ण तथा ये इष्ट कामभोग आपको किस कर्म के पुण्य प्रभाव से प्राप्त हुए हैं?॥218॥

आपको अपनी यह सुन्दर आभा किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त हुई है? तथा आप अपने इस वर्ण से समस्त दिशाओं को अवभासित कर रही हैं॥219॥

''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥220॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥221॥
''सोणदिन्नाति मं अञ्ञंसु, नाळन्दायं उपासिका।
सद्धा सीलेन सम्पन्ना, संविभागरता सदा॥222॥
''अच्छादनञ्च भत्तञ्च, सेनासनं पदीपियं।
अदासिं उजुभूतेसु, विप्पसन्नेन चेतसा॥223॥
''चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।
पाटिहारियपक्खञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं॥224॥

संस्कृतच्छाया- ''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥220॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥221॥
''श्रोणदत्ता इति माम् अज्ञासिषुः, नालन्दायाम् उपासिका।
श्रद्धया शीलेन सम्पन्ना, संविभागरता सदा॥222॥
''आच्छादनं च भक्तञ्च, शयनासनं प्रदीपिकाम्।
अदाम् ऋजुभूतेभ्यः, विप्रसन्नेन चेतसा॥223॥
''चतुर्दशीं पञ्चदशीम्, या च पक्षस्य अष्टमी।
प्रातिहार्यपक्षं च, अष्टाङ्गसुसमागतम्॥224॥

हिन्दी- हे महादेवि! हमारा आपसे यही प्रश्न है कि आपने मानुष्यरूप में ऐसा कौन सा पुण्य कर्म किया था कि आज आप को ऐसा देदीप्यमान वर्ण प्राप्त हुआ जो समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रहा है?॥220॥

मोग्गलान द्वारा यह पूछे जाने पर तब उस देवता ने प्रसन्न मन से अपना वह कर्म बताया जिसके कारण यह फल प्राप्त किया था॥221॥

मेरा नाम उस समय सोणदिन्ना (श्रोणदत्ता) था, और मैं नालन्दावासिनी बुद्धोपासिका थी। मैं श्रद्धा, शील से सम्पन्न एवं सदा दानकर्म में रत रहती थी॥222॥

मैं श्रमणजनों को निरन्तर ओढ़ने बिछाने के वस्त्र, भोजन, शयनासन, प्रकाश के लिये दीपक आदि प्रसन्नमन से दिया करती थी॥223॥

चतुर्दशी, पञ्चदशी तथा पक्ष की अष्टमी या प्रातिहार्यपक्ष में अष्टाँगों से युक्त॥224॥

''उपोसथं उपवसिस्सं, सदा सीलेसु संवुता।
सञ्ञमा संविभागा च, विमानं आवसामहं॥225॥
''पाणातिपाता विरता, मुसावादा च सञ्ञता।
थेय्या च अतिचारा च, मज्जपाना च आरका॥226॥
''पञ्चसिक्खापदे रता, अरियसच्चान कोविदा।
उपासिका चक्खुमतो, गोतमस्स यसस्सिनो॥227॥
''तेन मेतादिसो वण्णो...पे....वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥228॥

सोणदिन्नाविमानं छट्ठं।

7. उपोसथाविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥229॥

संस्कृतच्छाया- ''उपोसथम् उपावसम्, सदा शीलेषु संवृता।
संयमात् संविभागाच्च, विमानम् आवसमहम्॥225॥
''प्राणातिपातात् विरता, मृषावादाच्च संयता।
स्तेयाच्च अतिचाराच्च, मद्यपानाच्च अरक्ता॥226॥
''पञ्चशिक्षापदे रता, आर्यसत्येषु कोविदा।
उपासिका चक्षुष्मतः, गौतमस्य यशस्विनः॥227॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः...प्रे...वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥228॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीरिव तारकाः॥229॥

हिन्दी- उपोसथव्रत रखती हुई शीलसम्पन्न रहती थी। संयम और दानयुक्त जीवन के कारण ही आज मैं इस विमान में वास कर रही हूँ॥225॥

मैं प्राणातिपात(प्राणि हिंसा) से विरत रहती थी। मृषा(असत्य) भाषण में संयम रखती थी। तथा चोरी, व्यभिचार एवं मद्यपान से दूर रहती थी॥226॥

पाँच शिक्षाव्रतों में रत तथा आर्यसत्यचतुष्टय को जान कर यशस्वी, चक्षुष्मान्(ज्ञानी) बुद्ध की उपासिका बनी थी॥227॥

उसी साधना का परिणाम है कि आज मैं अपने अनुपम सौन्दर्य से सभी दिशाओं को प्रभासित कर रही हूँ॥228॥

हे देवि! आप अपने देदीप्यमान वर्ण से सभी दिशाओं को उसी प्रकार अवभासित कर रही हैं जैसे औषधियों को तारागण अवभासित किया करते हैं॥229॥

''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥230॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥231॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥232॥
''उपोसथाति मं अञ्ञंसु, साकेतायं उपासिका।
सद्धा सीलेन सम्पन्ना, संविभागरता सदा॥233॥
''अच्छादनञ्च भत्तञ्च, सेनासनं पदीपियं।
अदासिं उजुभूतेसु, विप्पसन्नेन चेतसा॥234॥

संस्कृतच्छाया- 'केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥230॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥231॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥232॥
''उपोसथ इति माम् अज्ञासिषुः, साकेतपुर्याम् उपासिका।
श्रद्धया शीलेन सम्पन्ना, संविभागरता सदा॥233॥
''आच्छादनं च भक्तञ्च, शयनासनं प्रदीपिकाम्।
अदाम् ऋजुभूतेभ्यः, विप्रसन्नेन चेतसा॥234॥

हिन्दी- यह ऐसा दिव्य वर्ण तथा ये इष्ट कामभोग आपको किस कर्म के पुण्य प्रभाव से प्राप्त हुए हैं?॥230॥

हे महादेवि! हमारा आपसे यही प्रश्न है कि आपने मनुष्यरूप में ऐसा कौन सा पुण्य कर्म किया था कि आप को ऐसा देदीप्यमान वर्ण प्राप्त हुआ जो समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रहा है?॥231॥

मोग्गलान द्वारा यह पूछे जाने पर तब उस देवता ने प्रसन्न मन से अपना वह कर्म बताया जिसका यह फल है॥232॥

मुझको लोग उपोसथा नामा से जानते थे। मैं साकेत नगरी में रहने वाली उपासिका थी। मैं श्रद्धा एवं शील से सम्पन्न रहती हुई सदा दानकार्य में रत रहती थी॥233॥

मैं वहाँ श्रमणजनों को निरन्तर ओढ़ने बिछाने के वस्त्र, भोजन, शयनासन, प्रकाश के लिये दीपक आदि प्रसन्नचित्त होकर देती रहती थी॥234॥

''चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।
पाटिहारियपक्खञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं॥235॥
''उपोसथं उपवसिस्सं, सदा सीलेसु संवुता।
सञ्ञमा संविभागा च, विमानं आवसामहं॥236॥
''पाणातिपाता विरता, मुसावादा च सञ्ञता।
थेय्या च अतिचारा च, मज्जपाना च आरका॥237॥
''पञ्चसिक्खापदे रता, अरियसच्चान कोविदा।
उपासिका चक्खुमतो, गोतमस्स यसस्सिनो॥238॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥239॥

संस्कृतच्छाया- ''चतुर्दशीं पञ्चदशीम्, या च पक्षस्य अष्टमी।
प्रातिहार्यपक्षं च, अष्टाङ्गसुसमागतम्॥235॥
''उपोसथम् उपावसम्, सदा शीलेषु संवृता।
संयमात् संविभागाच्च, विमानम् आवसमहम्॥236॥
''प्राणातिपातात् विरता, मृषावादाच्च संयता।
स्तेयाच्च अतिचाराच्च, मद्यपानाच्च अरक्ता॥237॥
''पञ्चशिक्षापदे रता, आर्यसत्येषु कोविदा।
उपासिका चक्षुष्मतः, गौतमस्य यशस्विनः॥238॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥239॥

हिन्दी- चतुर्दशी, पञ्चदशी तथा किसी भी पक्ष की अष्टमी और प्रातिहार्यपक्ष में अष्टाँगों से युक्त॥235॥

उपोसथव्रत रखती हुई शीलसम्पन्न रहती थी। उस संयम तथा दानयुक्त जीवन के कारण ही आज मुझको इस विमान में यह आवास प्राप्त हुआ है॥236॥

मैं प्राणातिपात से विरत रहती थी। मृषा(असत्य) भाषण में संयम बरतती थी। तथा चोरी, व्यभिचार एवं मद्यपान से दूर रहती थी॥237॥

पाँच शिक्षाव्रतों के अभ्यास में रत तथा आर्यसत्यचतुष्टय को जानकर उन यशस्वी, ज्ञानी बुद्ध की उपासिका थी॥238॥

उसी पुण्य-विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज ऐसा दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी के कारण मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल भोग उत्पन्न हुए हैं॥239॥

''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥240॥
''अभिक्खणं नन्दनं सुत्वा, छन्दो मे उदपज्जथ।
तत्थ चित्तं पणिधाय, उपपन्नम्हि नन्दनं॥241॥
''नाकासिं सत्थु वचनं, बुद्धस्सादिच्चबन्धुनो।
हीने चित्तं पणिधाय, साम्हि पच्छानुतापिनी'' ति॥242॥
''कीव चिरं विमानम्हि, इध वच्छसुपोसथे।
देवते पुच्छिताचिक्ख, यदि जानासि आयुनो'' ति॥243॥
''सट्ठिवस्ससहस्सानि, तिस्सो च वस्सकोटियो।
इध ठत्वा महामुनि, इतो चुता गमिस्सामि।
मनुस्सानं सहब्यतं'' ति॥244॥

संस्कृतच्छाया- ''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥240॥
''अभीक्ष्णं नन्दनं श्रुत्वा, छन्दो मे उदपद्यत।
तत्र चित्तं प्रणिधाय, उपपन्नाऽस्मि नन्दनम्॥241॥
''न अकार्षं शास्तुः वचनम्, बुद्धस्यादित्यबन्धोः।
हीने चित्तं प्रणिधाय, साऽस्मि पश्चादनुतापिनी'' इति॥242॥
''कियच्चिरं विमाने, इह वत्स्यसि उपोसथे।
देवते पृष्टाऽऽचक्षस्व, यदि जानासि आयुषः'' इति॥43॥
''षष्टिवर्षसहस्राणि, तिस्रः च वर्षकोटयः।
इह स्थित्वा महामुने, इतश्च्युता गमिष्यामि।
मनुष्यैः सहवस्तुम्'' इति॥244॥

हिन्दी- हे महानुभाव भिक्षु! मै आपको सबकुछ बताती हूँ कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥240॥

उस समय लोगों से नन्दनवन के विषय में सुनकर मेरी उस में आसक्ति हो गयी तथा वहाँ से देहपात के बाद मैं इस नन्दन वन में उत्पन्न हुई हूँ॥241॥

मैंने शास्ता भगवान् बुद्ध के वचन का पालन नहीं किया तथा हीन कर्मों में ही अपना चित्त लगाये रखा जिसका आज मुझको पश्चाताप है॥242॥

देवी! उपोसथ व्रत के पुण्यस्वरूप आप इस विमान में कब तक वास करेंगीं? यदि आप अपनी यह आयु सीमा जानती हों तो कृपया मूझे बतावें?॥243॥

महामुने! मैं इस विमान में तीस करोड़ साठ हजार वर्षों तक रहकर यहाँ से च्युत हो पुनः मनुष्यलोक में उत्पन्न होऊँगी॥244॥

''मा त्वं उपोसथे भायि, सम्बुद्धेनासि ब्याकता।
सोतापन्ना विसेसयि, पहीना तव दुग्गती'' ति॥245॥
उपोसथाविमानं सत्तमं।

8. निद्दाविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥246॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥247॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥248॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥249॥

संस्कृतच्छाया- ''मा त्वम् उपोसथे भ्रमीः, सम्बुद्धेनासि व्याकृता।
स्रोतापन्ने विशेषतः, प्रहीणा तव दुर्गतिः''इति॥245॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीरिव तारकाः॥246॥
''केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥247॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥248॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकार्षीत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥249॥

हिन्दी- देवि! आप उपोसथव्रत में प्रमाद(आलस्य) न करना; क्योंकि सम्बुद्ध भगवान् ने आपकी स्रोतापन्न मार्ग में स्थिति व्याकृत कर दी है। अब आपकी दुर्गति प्रहीण(नष्ट) हो चुकी है॥245॥

देवि! आप अपने देदीप्यमान वर्ण से समस्त दिशाओं को उसी प्रकार अवभासित कर रही हैं जैसे तारासमूह औषधियों को अवभासित किया करते हैं॥246॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया कैसे प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह ऐश्वर्य एवं मनोवांछित भोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते॥247॥

देवि! मेरी आपसे यही जिज्ञासा है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्ण आभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥248॥

''निद्दाति ममं अञ्ञंसु, राजगहस्मिं उपासिका।
सद्धा सीलेन सम्पन्ना, संविभागरता सदा॥250॥
''अच्छादनञ्च भत्तञ्च, सेनासनं पदीपियं।
अदासिं उजुभूतेसु, विप्पसन्नेन चेतसा॥251॥
''चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।
पाटिहारियपक्खञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं॥252॥
''उपोसथं उपवसिस्सं, सदा सीलेसु संवुता।
सञ्ञमा संविभागा च, विमानं आवसामहं॥253॥
''पाणातिपाता विरता, मुसावादा च सञ्ञता।
थेय्या च अतिचारा च, मज्जपाना च आरका॥254॥

संस्कृतच्छाया- ''निद्रा इति माम् अज्ञासिषुः, राजगृहे उपासिका।
श्रद्धया शीलेन सम्पन्ना, संविभागरता सदा॥250॥
''आच्छादनं च भक्तञ्च, शयनासनं प्रदीपिकाम्।
अदाम् ऋजुभूतेभ्यः, विप्रसन्नेन चेतसा॥251॥
''चतुर्दशीं पञ्चदशीम्, या च पक्षस्य अष्टमी।
प्रातिहार्यपक्षं च, अष्टाङ्गसुसमागतम्॥252॥
''उपोसथम् उपावसम् सदा शीलेषु संवृता।
संयमात् संविभागाच्च, विमानम् आवसाम्यहम्॥253॥
''प्राणातिपातात् विरता, मृषावादाच्च संयता।
स्तेयाच्च अतिचाराच्च, मद्यपानाच्च अरक्ता॥254॥

हिन्दी- उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य–विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही है॥249॥

मुझको वहाँ निद्रा नाम से जानते थे। मैं राजगृह की रहने वाली बुद्धोपासिका थी। मैं वहा श्रद्धा एवं शील से सम्पन्न रहती हुई सदा दानकर्म में रत रहती थी॥250॥

मैंने वहाँ प्रसन्नमन से श्रमणजनों को ओढ़ने बिछाने हेतु वस्त्र, भोजन, शयनासन तथा प्रकाश के लिये दीपक आदि दिया था॥251॥

चतुर्दशी, पञ्चदशी तथा पक्ष की अष्टमी या प्रातिहार्यपक्ष में अष्टाँगों से युक्त॥252॥

उपोसथव्रत रखती हुई सदा शीलसम्पन्न रहती थी। उस संयम तथा दानयुक्त जीवन के कारण ही मैं इस विमान में वास कर रही हूँ॥253॥

उस समय मैं प्राणातिपात से विरत रहती थी। असत्य भाषण में संयम रखती थी। तथा चोरी, व्यभिचार एवं मद्यपान से दूर रहती थी॥254॥

''पञ्चसिक्खापदे रता, अरियसच्चान कोविदा।
उपासिका चक्खुमतो, गोतमस्स यसस्सिनो॥255॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥256॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥257॥

निद्दाविमानं अट्ठमं।

9. सुनिद्दाविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥258॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥259॥

संस्कृतच्छाया- ''पञ्चशिक्षापदे रता, आर्यसत्येषु कोविदा।
उपासिका चक्षुष्मतः, गौतमस्य यशस्विनः॥255॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥256॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥257॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीरिव तारकाः॥258॥
''केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥259॥

हिन्दी- पाँच शिक्षाव्रतों में रत तथा आर्यसत्यचतुष्टय को जानती हुई उन यशस्वी, चक्षुष्मान् बुद्ध की उपासिका थी॥255॥

उसी पुण्य-विशेष के प्रभाव से मुझको दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसीके फलस्वरूप मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे ये मनोवाञ्छित भोग प्राप्त होते रहते हैं॥256॥

महानुभाव भिक्षु! मैं आपको सबकुछ बताती हूँ कि मनुष्यलोक मे मनुष्यरूप मिलने पर मैने जो पुण्य कर्म किये उसीके परिणामस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला देदीप्यमान वर्ण प्राप्त हुआ है॥257॥

हे देवि! आप अपने देदीप्यमान वर्ण से सभी दिशाओं को उसी प्रकार अवभासित करते हुए विराजमान हैं जैसे औषधियों को अवभासित करते हुए तारागण॥258॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया एवं ऋद्धि किस प्रकार तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? आपको इस विमान मे यह मनोवांछित भोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥259॥

''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥260॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥261॥
''सुनिद्दाति मं अञ्ञंसु, राजगहस्मिं उपासिका।
सद्धा सीलेन सम्पन्ना, संविभागरता सदा॥262॥
''अच्छादनञ्च भत्तञ्च, सेनासनं पदीपियं।
अदासिं उजुभूतेसु, विप्पसन्नेन चेतसा॥263॥
''चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।
पाटिहारियपक्खञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं॥264॥

संस्कृतच्छाया- ''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥260॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥261॥
''सुनिद्रा इति माम् अज्ञासिषुः, राजगृहे उपासिका।
श्रद्धया शीलेन सम्पन्ना, संविभागरता सदा॥262॥
''आच्छादनं च भक्तञ्च, शयनासनं प्रदीपिकाम्।
अदाम् ऋजुभूतेभ्यः, विप्रसन्नेन चेतसा॥263॥
''चतुर्दशीं पञ्चदशीम्, या च पक्षस्य अष्टमी।
प्रातिहार्यपक्षं च, अष्टाङ्गसुसमागतम्॥264॥

हिन्दी- देवि मेरी आपसे यही जिज्ञासा है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्णाभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥260॥

उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से कर्म–विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही हैं॥261॥

मुझे लोग उस समय सुनिद्रा नाम से जानते थे। मैं राजगृह में बुद्धोपासिका थी। मैं श्रद्धा तथा शीलसम्पन्न रहती हुई सदा दानकर्म में रत रहती थी॥262॥

मैं वहाँ श्रमणजनों को ओढ़ने बिछाने के वस्त्र, भोजन, शयनासन तथा प्रकाश के लिये दीपक आदि प्रसन्नतापूर्वक देती रहती थी॥263॥

चतुर्दशी, पञ्चदशी तथा पक्ष की अष्टमी या प्रातिहार्यपक्ष में अष्टाँगों से सुसमागत-॥264॥

''उपोसथं उपवसिस्सं, सदा सीलेसु संवुता।
सञ्ञमा संविभागा च, विमानं आवसामहं॥265॥
''पाणातिपाता विरता, मुसावादा च सञ्ञता।
थेय्या च अतिचारा च, मज्जपाना च आरका॥266॥
''पञ्चसिक्खापदे रता, अरियसच्चान कोविदा।
उपासिका चक्खुमतो, गोतमस्स यसस्सिनो॥267॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥268॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥269॥

सुनिद्दाविमानं नवमं।

संस्कृतच्छाया- ''उपोसथम् उपावसम् सदा शीलेषु संवृता।
संयमात् संविभागाच्च, विमानम् आवसाम्यहम्॥265॥
''प्राणातिपातात् विरता, मृषावादाच्च संयता।
स्तेयाच्च अतिचाराच्च, मद्यपानाच्च अरक्ता॥266॥
''पञ्चशिक्षापदे रता, आर्यसत्येषु कोविदा।
उपासिका चक्षुष्मतः, गौतमस्य यशस्विनः॥267॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥268॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥269॥

हिन्दी- उपोसथव्रत रखती हुई सदा शीलसम्पन्न रहती थी। उसी संयम तथा दानयुक्त जीवन के कारण आज मैं इस विमान में वास कर रही हूँ॥265॥

मैं प्राणातिपात से विरत रहती थी। असत्य भाषण में संयम बरतती थी। तथा चोरी, व्यभिचार एवं मद्यपान से दूर रहती थी॥266॥

पाँच शिक्षापदों में रत रहती हुई तथा आर्यसत्यचतुष्टय में पारंगत मैं यशस्वी, ज्ञानी बुद्ध की उपासिका थी॥267॥

उसी के परिणामस्वरूप मुझको यह दिव्य वर्ण, एश्वर्य तथा ये मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥268॥

हे महानुभाव भिक्षु! मैं आपको वह सबकुछ बताती हूँ कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देहमिलने पर मैने कौन सा कर्म किया था जिसके परिणामस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण प्राप्त हुआ है॥269॥

10. पठमभिक्खादायिकाविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥270॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥271॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥272॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥273॥
''अप्पस्स कम्मस्स फलं ममेदं, येनम्हि एवं जलितानुभावा।
अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूता, पुरिमाय जातिया मनुस्सलोके॥274॥

संस्कृतच्छाया- ''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीरिव तारकाः॥270॥
''केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥271॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥272॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकार्षीत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥273॥
''अल्पस्य कर्मणः फलं ममेदम्, येनास्मि एवं ज्वलितानुभावा।
अहं मनुष्येषु मनुष्यभूता, पूर्वस्यां जात्यां मनुष्यलोके॥274॥

हिन्दी- हे देवि! आप अपने देदीप्यमान वर्ण से समस्त दिशाओं को उसी प्रकार अवभासित कर रही हैं जैसे औषधियों को तारागण अवभासित किया करते हैं॥270॥

आपने अपना यह सुन्दर वर्ण किस कर्म विशेष से प्राप्त किया है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोनुकूल एवं प्रिय भोग कैसे प्राप्त होते रहते हैं?॥271॥

देवि! मेरा आपसे यही प्रश्न है कि आपने मनुष्यरूप मे ऐसा कौन सा कर्म किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्णाभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥272॥

उस देवी ने, जिस कर्म-विशेष का यह फल है, महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नमन से यह बताना आरम्भ किया ॥273॥

मेरे द्वारा किए गए अल्प पुण्य का ही यह फल है कि आज मै ऐसी ज्वलन्त प्रताप वाली दिख रही हूँ। पूर्व मे मैनें मनुष्यलोक मे मनुष्यरूप मे उत्पन्न हो यह कर्म किया था॥274॥

''अद्दसं विरजं बुद्धं, विप्पसन्नमनाविलं।
तस्स अदासहं भिक्खं, पसन्ना सेहि पाणिभि॥275॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥276॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥277॥

पठमभिक्खादायिकाविमानं दसमं।

11. दुतियभिक्खादायिकाविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥278॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥279॥

संस्कृतच्छाया- ''अद्राक्षं विरजं बुद्धम्, विप्रसन्नमनाविलम्।
तस्मै अदामहं भिक्षाम्, प्रसन्ना स्वाभ्यां पाणिभ्याम्॥275॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥276॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥277॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वा, ओषधीरिव तारकाः॥278॥
''केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥279॥

हिन्दी- मैनें एक पापरहित, निर्मल एवं निर्विकारचित्त बुद्ध को प्रसन्नता पूर्वक अपने हाथौं से भिक्षा प्रदान किया था॥275॥

उसी के परिणामस्वरूप मुझको आज यह दिव्य वर्ण एवं दिव्य ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग प्राप्त होते रहते हैं॥276॥

हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ प्रकट कर दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह प्राप्त होने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण प्राप्त हुआ है॥277॥

देवी! आप अपने कान्तिपूर्ण वर्ण से समस्त दिशाओं को इस प्रकार अवभासित कर रही हैं जैसे तारागण औषधियों को॥278॥

''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥280॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥281॥
''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूता, पुरिमाय जातिया मनुस्सलोके॥282॥
''अद्दसं विरजं भिक्खुं, विप्पसन्नमनाविलं।
तस्स अदासहं पीठं, पसन्ना सेहि पाणिभि॥283॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥284॥

संस्कृतच्छाया- ''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षी: पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥280॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकार्षीत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥281॥
अहं मनुष्येषु मनुष्यभूता, पूर्वस्यां जात्यां मनुष्यलोके॥282॥
''अद्राक्षं विरजसं भिक्षुम्, विप्रसन्नमनाविलम्।
तस्मै अदामहं पीठम्, प्रसन्ना स्वाभ्यां पाणिभ्याम्॥283॥
''तेन मे एतादृशो वर्ण:, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगा:, ये केचिन्मनस: प्रिया:॥284॥

हिन्दी- आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे ये मनोवांछित एवं प्रिय भोग-उपभोग कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥279॥

देवि! मै आपसे यही पूछता हूँ कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्णाभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥280॥

उस देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नतापूर्वक बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे कृत कौन से कर्म-विशेष के कारण यह फल भोग रही है॥281॥

पूर्व में मैने मनुष्यलोक मे मानवरूप मे उत्पन्न होकर-॥282॥

उस समय मैने एक निष्पाप, निर्मल मन एवं निर्विकारचित्त भिक्षु को प्रसन्नता पूर्वक अपने हाथौं से एक आसन प्रदान किया था॥283॥

उसी पुण्य-विशेष का यह फल है कि मुझको आज यह दिव्य वर्ण व ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है एवं उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥284॥

''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥285॥

दुतियभिक्खादायिकाविमानं एकादसमं।

चित्तलतावग्गो दुतियो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं –

दासी चेव लखुमा च, अथ आचामदायिका।
चण्डाली भद्दित्थी चेव, सोणदिन्ना उपोसथा।
निद्दा चेव सुनिद्दा च, द्वे च भिक्खाय दायिका।
वग्गो तेन पवुच्चतीति॥

भाणवारं पठमं निट्ठितं।

संस्कृतच्छाया- ''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥285॥

तस्योद्दानम् –

दासी चैव लखुमा च, अथ आचामदायिका।
चण्डाली भद्रास्त्री चैव, श्रोणदत्ता उपवसथा।
निद्रा चैव सुनिद्रा च, द्वे च भिक्षाय दायिका।
वर्गः तेन प्रोच्यते इति॥

हिन्दी- हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला देदीप्यमान वर्ण व दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥285॥

1. दासिविमान, 2. लखुमाविमान, 3. आचामदायिकाविमान, 4. चाण्डालि-विमान, 5. भद्रस्त्रीविमान, 6. श्रोणदत्ताविमान, 7. उपोसथाविमान, 8. निद्राविमान, 9. सुनिद्राविमान, 10. प्रथम भिक्षादायिकाविमान एवं 11. द्वितीय भिक्षादायिकाविमान।॥

****

3. पारिच्छत्तकवग्गो

1. उळारविमानवत्थु

''उळारो ते यसो वण्णो, सब्बा ओभासते दिसा।
नारियो नच्चन्ति गायन्ति, देवपुत्ता अलङ्कता॥286॥
''मोदेन्ति परिवारेन्ति, तव पूजाय देवते।
सोवण्णानि विमानानि, तविमानि सुदस्सने॥287॥
''तुवंसि इस्सरा तेसं, सब्बकामसमिद्धिनी।
अभिजाता महन्तासि, देवकाये पमोदसि।
देवते पुच्छिताचिक्ख, किस्स कम्मस्सिदं फलं'' ति॥288॥
''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूता, पुरिमाय जातिया मनुस्सलोके।
दुस्सीलकुले सुणिसा अहोसिं, अस्सद्धेसु कदरियेसु अहं॥289॥
''सद्धा सीलेन सम्पन्ना, संविभागरता सदा।
पिण्डाय चरमानस्स, अपूवं ते अदासहं॥290॥

संस्कृतच्छाया- ''उदारः तव यशः वर्णः, सर्वाः अवभासयन्ति दिशः।
नार्यः नृत्यन्ति गायन्ति, देवपुत्राः अलङ्कृताः॥286॥
''मोदन्ते परिवारयन्ति, तव पूजायै देवते।
सौवर्णानि विमानानि, तानि इमानि सुदर्शने॥287॥
''त्वमसि ईश्वरी तेषाम्, सर्वकामसमृद्धा।
अभिजाता महती असि, देवकाये प्रमोदसे।
देवते पृष्टाऽऽचक्षस्व, कस्य कर्मण इदं फलम्'' इति॥288॥
''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूता, पूर्वस्यां जाता मनुष्यलोके।
दुश्शीलकुले स्नुषा अभूवम्, अश्रद्धेषु कदर्येषु अहम्॥289॥
''श्रद्धया शीलेन सम्पन्ना, संविभागरता सदा।
पिण्डाय चरतः, अपूपं ते अदामहम्॥290॥

हिन्दी- देवि! आपके यश एवं वर्ण इतने उदार व दीप्तमान हैं जिससे समस्त दिशाएँ अवभासितत हो रही हैं। आपके समक्ष स्त्रियाँ नृत्यगान कर रही हैं तथा अलंकृत देवपुत्र-॥286॥

आपकी पूजा हेतु अपने सुवर्णमय विमानों से आकर, हे सुदर्शने! आपको प्रसन्नता पूर्वक चारों दिशाओं से घेरे हुए हैं॥287॥

आप उनकी ईश्वरी(स्वामिनि) हैं, उनके समस्त कामनाओं को सिद्ध करने वाली हैं। आप सुन्दर एवं कुलीन हैं। आप यह देवशरीर पा कर सुख भोग रही हैं। देवते! मेरी आपसे यही विनती है कि आपको अधिगत ये सब किस कर्म का फल है? स्पष्ट करें-॥288॥

पूर्व में मनुष्यलोक में मनुष्यरूप में उत्पन्न हुई मैं किसी दुश्शीलकुल, अश्रद्धालु तथा कंजूस के घर में पुत्रवधू थी॥289॥

श्रद्धाशील सम्पन्न मैं सदा दानकार्य मे रत रहती थी। आपके भिक्षाटन काल में मैंने आपको भिक्षास्वरूप पूआ दिया था॥290॥

''तदाहं सस्सुयाचिक्खिं, समणो आगतो इध।
तस्स अदासहं पूवं, पसन्ना सेहि पाणिभि॥291॥
''इतिस्सा सस्सु परिभासि, अविनीतासि त्वं वधु।
न मं सम्पुच्छितुं इच्छि, समणस्स ददामहं॥292॥
''ततो मे सस्सु कुपिता, पहासि मुसलेन मं।
कूटङ्गच्छि अवधि मं, नासक्खिं जीवितुं चिरं॥293॥
''सा अहं कायस्स भेदा, विप्पमुत्ता ततो चुता।
देवानं तावतिंसानं, उपपन्ना सहब्यतं॥294॥
''तेन मेतादिसो वण्णो...पे.... वण्णो च मे सब्बदिसा पभासतीति॥295॥

उळारविमानं पठमं।

संस्कृतच्छाया- ''तदाहं श्वश्रे आचक्षे, श्रमणः आगत इह।
तस्मै अदामहं पूपम्, प्रसन्ना स्वाभ्यां पाणिभ्याम्॥291॥
''इति सा श्वश्रुः पर्यभाषत्, अविनीतासि त्वं वधूः।
न मां सम्प्रष्टुमैच्छः, श्रमणायादामहम्॥292॥
''ततो मे श्वश्रूः कुपिता, प्रताडयत् मुसलेन माम्।
कूटाङ्गे अवधीत् माम्, न शक्नुवं जीवितुं चिरम्॥293॥
''सा अहं कायस्य भेदात्, विप्रमुक्ता ततः च्युता।
देवानां त्रायस्त्रिंशानाम्, उपपन्ना सह वस्तुम्॥294॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः ...पे..... वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते इति॥295॥

हिन्दी- तथा बाद में मैंने उस पूप(मालपूआ) दान की बात अपनी सास को भी बतायी कि यहाँ आए एक श्रमण को मैंने प्रसन्नतापूर्वक अपने हाथों से पूआ दिया था॥291॥

यह बात सुनते ही मेरी सास अतिशय क्रुद्ध हो गयी और बोली— 'अरी वधू! तूँ तो बहुत ही अविनीत(धृष्ट) है! तुमने श्रमण को यह अपूपदान करने से पूर्व मुझसे पूछने कि आवश्यकता भी नहीं समझी कि मैं यह अपूप श्रमण को दूँ या नहीं॥292॥

इस प्रकार मेरी सास ने मुझ पर कुपित होकर, मुझको मूसल फेंक कर मारा। उसने मुझको इतना प्रताड़ित किया कि उस मूसल के आघात के कारण मैं बहुत समय तक जीवित न रह सकी॥293॥

वह मैं, मृत्यू के उपरान्त(देहपात के बाद), वहाँ से मुक्त व च्युत होकर त्रायस्त्रिंश वासी देवताओं में आकर उत्पन्न हुई॥294॥

उसी साधना का यह परिणाम है कि आज मैं अपने अनुपम वर्ण से समस्त दिशाओं को अवभासित कर रही हूँ॥295॥

2. उच्छुदायिकाविमानवत्थु

''ओभासयित्वा पथविं सदेवकं, अतिरोचसि चन्दिमसूरिया विय।
सिरिया च वण्णेन यसेन तेजसा, ब्रह्मा व देवे तिदसे सहिन्दके॥296॥
''पुच्छामि तं उप्पलमालधारिनी, आवेळिनी कञ्चनसन्निभत्तचे।
अलङ्कते उत्तमवत्थधारिनी, का त्वं सुभे देवते वन्दसे ममं॥297॥
''किं त्वं पुरे कम्ममकासि अत्तना, मनुस्सभूता पुरिमाय जातिया।
दानं सुचिण्णं अथ सीलसंयमं, केनूपपन्ना सुगतिं यसस्सिनी।
देवते पुच्छिताचिक्ख, किस्स कम्मस्सिदं फलं'' ति॥298॥
''इदानि भन्ते इममेव गामं, पिण्डाय अम्हाकं घरं उपागमि।
ततो ते उच्छुस्स अदासि खण्डिकं, पसन्नचित्ता अतुलाय पीतिया॥299॥

संस्कृतच्छाया- ''अवभास्य पृथिवीं सदेवकाम्, अतिरोचसे चन्द्रमस्सूर्यौ इव।
श्रिया च वर्णेन यशसा तेजसा, ब्रह्मा इव देवेन त्रिदशेन सहेन्द्रेण॥296॥
''पृच्छामि त्वाम् उत्पलमालाधारिणि, आवेणिनि काञ्चनसंन्निभत्वक्।
अलङ्कृते उत्तमवत्स्त्रधारिणि, का त्वं शुभे देवते वन्दसे माम्॥297॥
''किं त्वं पूर्वे कर्म अकार्षीः आत्मना, मनुष्यभूता पूर्वस्यां जात्याम्।
दानं सुचीर्णम् अथ शीलसंयमम्, केनोपपन्ना सुगतिं यशस्विनि।
देवते पृष्टाऽऽचक्षस्व, कस्य कर्मण इदं फलम्'' इति॥298॥
''इदानीं भदन्त इममेव ग्रामम्, पिण्डाय अस्माकं गृहम् उपागमत्।
ततस्ते इक्षोः अदाम् खण्डिकम्, प्रसन्नचित्ता अतुलया प्रीत्या॥299॥

हिन्दी- आप अपनी शोभा, वर्ण, यश एवं प्रताप से इन्द्रसहित सभी देवताओं और समस्त पृथ्वी एवं स्वर्गलोक को उसी प्रकार अभिभूत कर रही हैं, जिस प्रकार चन्द्र, सूर्य और ब्रह्मा॥296॥

देवी! मैं आपसे यही पूछती हूँ कि आप पद्मपुष्पों की माला एवं फूलों का गजरा धारण की हुई, सुवर्णसमान त्वचा वाली, विविध आभूषणों से युक्त, उत्तम वस्त्र धारण की हुई कौन मङ्गलमयी देवता हैं, जो मेरी वन्दना कर रही हैं?॥297॥

आपने पूर्व काल में मनुष्यरूप में उत्पन्न हो कौन सा कर्म, दान एवं शील व संयम का पालन किया था, जिसके परिणामस्वरूप आज आप इस सुगति(स्वर्ग) लोक में ऐसी यशस्वी हो गयी हैं? देवी! आपके किस कर्म का यह फल है? कृपया कहें॥298॥

भन्ते! आप इसी ग्राम में भिक्षाटन करने हेतु मेरे घर आये थे। तब मैंने आपको प्रसन्नमन व अतुल प्रेमपूर्वक एक इक्षुखण्ड दान किया था॥299॥

''सस्सु च पच्छा अनुयुञ्जते ममं, कहं नु उच्छुं वधुके अवाकिरि।
न छड्डितं नो पन खादितं मया, सन्तस्स भिक्खुस्स सयं अदासहं॥300॥
''तुय्हंन्विदं इस्सरियं अथो मम, इतिस्सा सस्सु परिभासते ममं।
पीठं गहेत्वा पहारं अदासि मे, ततो चुता कालकताम्हि देवता॥301॥
''तदेव कम्मं कुसलं कतं मया, सुखञ्च कम्मं अनुभोमि अत्तना।
देवेहि सद्धिं परिचारयामहं, मोदामहं कामगुणेहि पञ्चहि॥302॥
''तदेव कम्मं कुसलं कतं मया, सुखञ्च कम्मं अनुभोमि अत्तना।
देविन्दगुत्ता तिदसेहि रक्खिता, समप्पिता कामगुणेहि पञ्चहि॥303॥
''एतादिसं पुञ्ञफलं अनप्पकं, महाविपाका मम उच्छुदक्खिणा।
देवेहि सद्धिं परिचारयामहं, मोदामहं कामगुणेहि पञ्चहि॥304॥

संस्कृतच्छाया- श्वश्रूश्च पश्चादन्वयुञ्जत माम्, क्व नु इक्षुं वधो अवाकिरः।
न त्यक्तं न पुनः खादितं मया, स ते भिक्षवे स्वयम् अदामहम्॥300॥
त्वयि न इदम् ऐश्वर्यम् अथ मम, इति सा श्वश्रूः परिभाषते माम्।
पीठं गृहीत्वा प्रहारम् अदात् मे, ततश्च्युता कालकृतास्मि देवता॥301॥
तदेव कर्म कुशलं कृतं मया, सुखञ्च कर्म अनुभवामि आत्मना।
देवैः सार्धं परिचराम्यहम्, मोदामहे कामगुणैः पञ्चभिः॥302॥
तदेव कर्म कुशलं कृतं मया, सुखञ्च कर्म अनुभवामि आत्मना।
देवेन्द्रगुप्ता त्रिदशैः रक्षिता, समर्पिता कामगुणैः पञ्चभिः॥303॥
एतादृशं पुण्यफलम् अनल्पकम्, महाविपाका मम इक्षुदक्षिणा।
देवैः सार्धं परिचराम्यहम्, मोदामहे कामगुणैः पञ्चभिः॥304॥

हिन्दी- बाद में मेरी सास ने उस इक्षुखण्ड के विषय में मुझसे पूछा कि बहू! यहाँ एक इक्षुखण्ड रखा था, उसको कहाँ फेंक दिया? तब मैंने कहा कि मैंने उसको कहीं फेंका या खाया नहीं है, अपितु उसे एक शान्त भिक्षु को स्वयम् दान कर दिया॥300॥

तब मेरी सास ने मुझे अपशब्द कहे कि यह दान का अधिकार तुम्हारा कहाँ, यह तो मेरा अधिकार था और ऐसा कहते हुए पास ही पड़ा हुआ पीठ(पीढा) उठा कर मुझ पर मारा। देव! उसी प्रहारवश मेरा देहपात (मरण) हो गया और वहाँ से च्युत होकर मैं देवयोनि में आयी॥301॥

वही कुशल कर्म मैंने किया था, जिसके पुण्य प्रभाव से आज मैं इस दिव्य सुख का अनुभव कर रही हूँ। आज मेरी स्थिति यह है कि देवताओं के साथ मेरी सेवा सुश्रूषा हो रही हैं तथा मुझको सभी पञ्चविध कामगुण उपलब्ध हो रहे हैं जिनसे मैं पूर्ण सुख भोग रही हूँ॥302॥

वही कुशल कर्म मैंने किया, जिसके परिणामस्वरूप आज मैं यह सुख भोग रही हूँ। देवराज शक्र(इन्द्र) अन्य देवताओं के साथ मेरी रक्षा कर रहे हैं तथा मुझको सभी पञ्चविध कामगुण उपलब्ध हो रहे हैं॥303॥

''एतादिसं पुञ्ञफलं अनप्पकं, महाजुतिका मम उच्छुदक्खिणा।
देविन्दगुत्ता तिदसेहि रक्खिता, सहस्सनेत्तोरिव नन्दने वने॥305॥
''तुवञ्च भन्ते अनुकम्पकं विदुं, उपेच्च वन्दिं कुसलञ्च पुच्छिसं।
ततो ते उच्छुस्स अदासि खण्डिकं, पसन्नचिता अतुलाय पीतिया'' ति॥306॥
उच्छुदायिकाविमानं दुतियं।

3. पल्लङ्कविमानवत्थु

''पल्लङ्कसेट्ठे मणिसोण्णचित्ते, पुप्फाभिकिण्णे सयने उळारे।
तत्थच्छसि देवि महानुभावे, उच्चावचा इद्धि विकुब्बमाना॥307॥
''इमाश्च ते अच्छरायो समन्ततो, नच्चन्ति गायन्ति पमोदयन्ति।
देविद्धिपत्तासि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥308॥

संस्कृतच्छाया- एतादृशं पुण्यफलम् अनल्पकम्, महाद्युतिका मम इक्षुदक्षिणा।
देवेन्द्रगुप्ता त्रिदशैः रक्षिता, सहस्रनेत्र इव नन्दने वने॥305॥
त्वां च भदन्त अनुकम्पकं वेद्मि, उपेत्य च वन्दे कुशलं च अपृच्छम्।
ततः तव इक्षोः अदाम् खण्डिकम्, प्रसन्नचित्ता अतुलया प्रीत्या'' इति॥306॥
पर्यङ्कश्रेष्ठे मणिसुवर्णचित्रे, पुष्पाभिकीर्णे शयने उदारे।
तत्र इच्छसि देवि महानुभावे, उच्चावचाम् ऋद्धिं विकुर्वाणा॥307॥
इमाश्च त्वाम् अप्सरसः समन्ततः, नृत्यन्ति गायन्ति प्रमोदयन्ति।
देवर्द्धिं प्राप्ता असि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥308॥

हिन्दी- ऐसा यह पुण्यफल अल्प नहीं है; मेरे द्वारा दी गई वह इक्षुखण्ड दक्षिणा मेरे लिये अतिशय फलदायी हो गई है। आज सभी देवताओं के साथ मैं भी सेवा सत्कार पा रही हूँ तथा मुझको सभी पञ्चविध कामगुण उपलब्ध हो रहे हैं॥304॥

ऐसा यह पुण्यफल अल्प नहीं है; वह इक्षुदक्षिणा मेरे लिये महाफलदायी हो गयी। आज सभी देवता इस नन्दनवन में मेरी वैसे ही रक्षा कर रहे हैं जैसे वे सब मिलकर सहस्रनेत्र(इन्द्र) की रक्षा किया करते हैं॥305॥

और भन्ते! आपको अपना अनुकम्पक जानकर मैं आपको प्रणाम करने तथा आपका कुशल-मङ्गल पूछने आई हूँ। प्रसन्नता एवं अतुल प्रेमपूर्वक वह इक्षुखण्ड देने के परिणामस्वरूप ही मेरी यह सद्गति हुई है॥306॥

देवि! मणिरत्नों और सुवर्ण से चित्रित एवं पुष्पाच्छादित श्रेष्ठ व सुदर पर्यङ्क(पलंग) पर छोटी बड़ी ऋद्धियों को दर्शाती हुई आप यहाँ विराजमान हैं॥307॥

ये अप्सराएँ, आपके चारों ओर नृत्य-गान कर रही हैं तथा प्रमुदित(हर्षित) हो रही हैं, महानुभावे! आपने देवताओं की ऋद्धि प्राप्त कर रखी है। मनुष्यलोक में रहते हुए आपने ऐसा कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके प्रभाव से आज आप का यह देदीप्यमान वर्ण सी दिशाओं प्रभासित कर रहा है?॥308॥

''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूता, अड्ढे कुले सुणिसा अहोसिं।
अक्कोधना भत्तुवसानुवत्तिनी, उपोसथे अप्पमत्ता अहोसिं॥309॥
''मनुस्सभूता दहरा अपापिका, पसन्नचित्ता पतिमाभिराधयिं।
दिवा च रत्तो च मनापचारिनी, अहं पुरे सीलवती अहोसिं॥310॥
''पाणातिपाता विरता अचोरिका, संसुद्धकाया सुचिब्रह्मचारिनी।
अमज्जपा नो च मुसा अभाणिं, सिक्खापदेसु परिपूरकारिनी॥311॥
''चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।
पाटिहारियपक्खञ्च, पसन्नमानसा अहं॥312॥
''अट्ठङ्गुपेतं अनुधम्मचारिनी, उपोसथं पीतिमना उपावसिं।
इमञ्च अरियं अट्ठङ्गवरेहुपेतं, समादियित्वा कुसलं सुखुद्रयं।
पतिम्हि कल्याणी वसानुवत्तिनी, अहोसिं पुब्बे सुगतस्स साविका॥313॥

संस्कृतच्छाया- अहं मनुष्येषु मनुष्यभूता, आढ्ये कुले स्नुषा अभूवम्।
अक्रोधना भर्तृवशानुवर्तिनी, उपोसथे अप्रमत्ता अभूवम्॥309॥
मनुष्यभूता दहरा अपापिका, प्रसन्नचित्ता पतिम् आराधयम्।
दिवा च रात्रौ च अनपचारिणी, अहं पुरा शीलवती अभूवम्॥310॥
प्राणातिपातात् विरता अचोरिका, संशुद्धकाया शुचिब्रह्मचारिणी।
अमद्यपा नो च मृषा अभणम्, शिक्षापदेषु परिपूरकारिणी॥311॥
चतुर्दशीं पञ्चदशीम्, या च पक्षस्य अष्टमी।
प्रातिहार्यपक्षं च, प्रसन्नमानसा अहम्॥312॥
''अष्टाङ्गोपेतम् अनुधर्मचारिणी, उपोसथं प्रीतमनस्का उपावसम्।
इमञ्च आर्यम् अष्टाङ्गवरोपेतम्, समादाय कुशलं सुखोदयम्।
पत्युः हि कल्याणी वशानुवर्तिनी, अभूवं पूर्वे सुगतस्य श्राविका॥313॥

हिन्दी- मैं मनुष्यलोक में मानवरूप में आकर एक धनिक कुल की पुत्रवधू बनी। तब मैं क्रोधरहित एवं स्वामी की आज्ञाकारिणी तथा उत्साहपूर्वक उपोसथव्रत का सतत पालन करती थी॥309॥

मैं मानवरूप में आकर युवावस्था से ही निष्पाप रहती हुई प्रसन्नचित्त हो पति की सेवा करती थी। उस समय मैं दिन रात उनके अनुकूल कर्मों में ही लगी रहती थी। तथा सदाचार व्रती थी॥310॥

मैं सदा प्राणातिपात तथा चोरी से विरत रहती थी। मैं शरीर से शूद्ध रहती हुई श्रेष्ठ आचार-व्यवहार करती थी। मैं मद्यपान तथा असत्यभाषण नहीं करती थी। शिक्षापदों में पालन में रत रहती थी॥311॥

मैं चतुर्दशी, पञ्चदशी, पक्ष की अष्टमी या प्रातिहार्यपक्ष का प्रसन्नमन से- ॥312॥

मैं धर्मानुचारिणि हो अष्टाङ्गयुक्त उपोसथव्रत का प्रसन्नमन से पालन करती थी। तथा साथ ही सुखदायी, व कुशल व श्रेष्ठ आर्याष्टाङ्गिक मार्ग का अभ्यास करती थी। मैं पूर्व में अपने पति(भर्ता) की आज्ञाकारिणी रह कर उस बुद्ध श्राविका थी॥313॥

''एतादिसं कुसलं जीवलोके, कम्मं करित्वान विसेसभागिनी।
कायस्स भेदा अभिसम्परायं, देविद्धिपत्ता सुगतिम्हि आगता॥314॥
''विमानपासादवरे मनोरमे, परिवारिता अच्छरासङ्गणेन।
सयंपभा देवगणा रमेन्ति मं, दीघायुकिं देवविमानमागतं'' ति।315॥
पल्लङ्कविमानं ततियं।

4. लताविमानवत्थु

लता च सज्जा पवरा च देवता, अच्चिमती राजवरस्स सिरीमतो।
सुता च रञ्ञो वेस्सवणस्स धीता, राजीमती धम्मगुणेहि सोभथ॥316॥
पञ्चेत्थ नारियो आगमंसु न्हायितुं, सीतोदकं उप्पलिनिं सिवं नदिं।
ता तत्थ न्हायित्वा रमेत्वा देवता, नच्चित्वा गायित्वा सुता लतं ब्रवि॥317॥
''पुच्छामि तं उप्पलमालधारिनि, आवेळिनि कञ्चनसन्निभत्तचे।
तिमिरतम्बक्खि नभेव सोभने, दीघायुकी केन कतो यसो तव॥318॥

संस्कृतच्छाया- ''एतादृशं कुशलं जीवलोके, कर्म कृत्वा विशेषभागिनी।
कायस्य भेदात् अभिसम्परायम्, देवर्द्धिं प्राप्ता सुगतौ आगता॥314॥
''विमानप्रासादवरे मनोरमे, परिवारिता अप्सरसां गणेन।
स्वयम्प्रभा देवगणाः रमयन्ति माम्, दीर्घायुषीं देवविमानमागताम्'' इति॥315॥
लता च सज्जा प्रवरा च देवता, अर्चिष्मती राजवरस्य श्रीमतः।
सुता च राज्ञः वैश्रवणस्य दुहिता, राजिष्मती धर्मगुणैः शोभिता॥316॥
पञ्च अत्र नार्य आगमन् स्नातुं, शीतोदकम् उत्पलिनीं शिवां नदीम्।
तास्तत्र स्नात्वा रमित्वा देवताः, नर्तित्वा गात्वा सुता लताम् अब्रवीत्॥317॥
पृच्छामि त्वाम् उत्पलमालाधारिणि, आवेणिनि काञ्चनसन्निभत्वक्।
तिमिरताम्राक्षि नभ इव शोभने, दीर्घायुषि केन कृतं यशस्तव॥318॥

हिन्दी- इसी कुशल कर्म के कारण जीव लोक में आज मैं यह विशेष फल प्राप्त कर पायी हूँ। वहाँ से देहपात के बाद परलोक में देवताओं की ऋद्धि व सुगति प्राप्त करने आयी हूँ॥314॥

ऐसे मनोरम, श्रेष्ठ प्रासाद(विमान) में अप्सरासमूह से घिरी हुई मुझ स्वयम्प्रभा को देवगण भी प्रमुदित करते रहते हैं। इस विमान में आये हुए मुझे बहुत समय समय हुए॥315॥

इस प्रभावती देविप्रवर का यह लताविमान इस प्रकार सज्जित(अलंकृत) है जैसे किसी महान राजा का राजा प्रासाद हो। यह देवी राजा वैश्रवण की पुत्री है जो धर्माचरण से सुशोभित हैं॥316॥

यहाँ पाँच स्त्रियाँ इस सुन्दर, ठण्डे जल वाली पुष्करिणी नदी में स्नान करने हेतु आयीं तथा वे वहाँ स्नान करने के उपरान्त इस राजपुत्री लता देवी को अपने नृत्य एवं गायन से प्रसन्न कर उनसे यह पूछा॥317॥

हे उत्पलमाला धारिणि, हे पुष्पगुच्छधारिणी! हे सुवर्णसमान त्वचावाली, नीलकमलपत्राक्षि! हे नीलगगनवत् सुन्दरि! मेरा आपसे यही प्रश्न है कि आपने किस पुण्यकर्मवश ऐसा दीर्घायु तथा शुभ्र यश प्राप्त किया?॥318॥

''केनासि भद्दे पतिनो पियतरा, विसिट्ठकल्याणितरस्सु रूपतो।
पदक्खिणा नच्चगीतवादिते, आचिक्ख नो त्वं नरनारिपुच्छिता'' ति॥319॥
''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूता, उळारभोगे कुले सुणिसा अहोसिं।
अक्कोधना भत्तुवसानुवत्तिनी, उपोसथे अप्पमत्ता अहोसिं॥320॥
''मनुस्सभूता दहरा अपापिका, पसन्नचित्ता पतिमाभिराधयिं।
सदेवरं सस्ससुरं सदासकं, अभिराधयिं तम्हि कतो यसो मम॥321॥
''साहं तेन कुसलेन कम्मुना, चतुब्भि ठानेहि विसेसमज्झगा।
आयुञ्च वण्णञ्च सुखं बलञ्च, खिड्डारतिं पच्चनुभोमनप्पकं॥322॥
''सुतं नु तं भासति यं अयं लता, यं नो अपुच्छिम्ह अकित्तयी नो।
पतिनो किरम्हाकं विसिट्ठ नारीनं, गती च तासं पवरा च देवता॥323॥

संस्कृतच्छाया- केनासि भद्रे पत्युः प्रियतरा, विशिष्टकल्याणतरा रूपतः।
प्रदक्षिणा नृत्यगीतवादिते, आचक्षस्व नो त्वं नरनारीपृष्टा'' इति॥319॥
अहं मनुष्येषु मनुष्यभूता, उदारभोगे कुले स्नुषा अभूवम्।
अक्रोधना भर्तृवशानुवर्तिनी, उपोसथे अप्रमत्ता अभूवम्॥320॥
मनुष्यभूता दहरा अपापिका, प्रसन्नचित्ता पतिम् आराधयम्।
सदेवरं सश्वसुरं सदासकम्, आराधयं तस्मिन् कृतं यशो मम॥321॥
सा अहं तेन कुशलेन कर्मणा, चतुर्भिः स्थानैः विशेषमध्यगा।
आयुश्च वर्णञ्च सुखं बलं च, क्रीडारतिं प्रत्यन्वभूवमनल्पकम्॥322॥
श्रुतं नः तत् भाषते यत् इयं लता, यत् नो अपृच्छम् अकीर्तयत् नो।
पत्युः किल अस्माकं विशिष्टं नारीणाम्, गतिश्च तासां प्रवरा च देवता॥323॥

हिन्दी- मेरा आप से यही प्रश्न है कि आपने ऐसा कौन सा कर्म किया कि पति की इतनी प्रिय बनी? आपने अपना यह विशिष्ट कल्याणमयी रूप कैसे प्राप्त किया? तथा आप नृत्य, गीत एवं वाद्य में इतनी कुशल कैसे हो गयीं?॥319॥

मैं कभी मनुष्यलोक में मनुष्यरूप में प्रादुर्भूत हो कर उदार(प्रभूत) ऐश्वर्य से सम्पन्न किसी कुल में पुत्रवधू के रूप में आयी। वहाँ मैं क्रोध से दूर रहती हुई अपने पति की आज्ञाकारिणी बनकर अप्रमत्त हो निरन्तर उपोसथ व्रत का पालन करती रही॥320॥

मैं मानव योनि में उत्पन्न हो, निष्पाप रहती हुई श्रद्धालु चित्त से पति-सेवा में लग गई। साथ ही, देवर, सास एवं ससुर की भी सेवामे करती रही। उन्ही सत्कर्मों के कारण ही आज मेरा यश इतना फैला हुआ है॥321॥

उसी कुशल कर्म के कारण, आयु वर्ण, बल एवं यश— इन चार स्थानों में मेरी विशेष उन्नति हुई। तथा मुझे क्रीडारति देवों का अतिशय सुख प्राप्त हुआ॥322॥

इस लता ने जो कुछ कहा, वह हमने सुना। हमने जो भी पूछा वह सब इन्होनें कह दिया। हम विशिष्ट नारियों के पतियों की गति भी उन श्रेष्ठ देवताओं के रूप में हो गयी है॥323॥

''पतीसु धम्मं पचराम सब्बा, पतिब्बता यत्थ भवन्ति इत्थियो।
पतीसु धम्मं पचरित्व सब्बा, लच्छामसे भासति यं अयं लता॥324॥
''सीहो यथा पब्बतसानुगोचरो, महिन्धरं पब्बतमावसित्वा।
पसय्ह हन्त्वा इतरे चतुप्पदे, खुद्दे मिगे खादति मंसभोजनो॥325॥
''तथेव सद्धा इध अरियसाविका, भत्तारं निस्साय पतिं अनुब्बता।
कोधं वधित्वा अभिभुय्य मच्छरं, सग्गम्हि सा मोदति धम्मचारिनी'' ति॥326॥
लताविमानं चतुत्थं।

5. गुत्तिलविमानं

1. वत्थुत्तमदायिकाविमानवत्थु

''सत्ततन्तिं सुमधुरं, रामणेय्यं अवाचयिं।
सो मं रङ्गम्हि अव्हेति, 'सरणं मे होहि कोसिया'ति॥327॥
''अहं ते सरणं होमि, अहमाचरियपूजको।
न तं जयिस्सति सिस्सो, सिस्समाचरिय जेस्ससी'' ति॥328॥

संस्कृतच्छाया- पतिषु धर्मं प्रचराम सर्वाः, पतिव्रताः यत्र भवन्ति स्त्रियः।
पतिषु धर्मान् प्रचर्य सर्वाः, लप्स्यामहे भाषते यद् इयं लता॥324॥
सिंहो यथा पर्वतसानुगोचरः, महीधरं पर्वतमावस्य।
प्रसह्य हत्वा इतरान् चतुष्पदान्, क्षुद्रान् मृगान् खादति मांसभोजनः॥325॥
तथैव श्रद्धा इह आर्यश्राविका, भर्त्तारं निषद्य पतिम् अनुव्रता।
क्रोधं निहत्य अभिभूय मत्सरम्, स्वर्गे सा मोदते धर्मचारिणी'' इति॥326॥
सप्ततन्तिं सुमधुरं, रमणीयम् अवाचयम्।
स मां रङ्गे आह्वयते, 'शरणं मे भव कौशिक'' इति॥327॥
अहं ते शरणं भवामि, अहम् आचार्यपूजकः।
न त्वां जेष्यति शिष्यः, शिष्यमाचार्यः जेष्यसि'' इति॥328॥

हिन्दी- यदि सभी स्त्रियाँ पतिव्रता हो पतिव्रत धर्म का पालन करें। तभी हम भी वह सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं जो इन लता देवी ने प्राप्त कर रखा है॥324॥

जैसे कोई पर्वत शिखर पर विचरण करने वाला सिंह किसी पर्वत पर रहता हुआ वहाँ रहने वाले अन्य छोटे हरिण आदि पशुओं को खा कर अपना जीवनयापन करता है॥325॥

वैसे ही यहाँ श्रद्धालु आर्यश्राविका ने अपने क्रोध का निरन्तर दमन कर तथा मात्सर्य को सर्वथा अभिभूत कर, स्व पति का अनुगमन करते हुए पतिव्रत-धर्म का पूर्णतः पालन किया है। इस पुण्य कर्म की पूर्ति के कारण ही यह आज धर्मचारिणी के रूप में, इस स्वर्ग लोक में दिव्य सुख भोग रही है॥326॥

हे इन्द्र! मैंने अपने जिस शिष्य को कभी सुमधुर एवं मनमोहक स्वर में सात तारों वाली वीणा बजाना सिखाया था, वही आज मुझको रंगमंच पर एक प्रतियोगी के रूप मे वीणावादन हेतु आह्वान कर (ललकार) रहा है । आप इस प्रसंग में मेरे शरण में आवें॥327॥

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥329॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥330॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥331॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥332॥
''वत्थुत्तमदायिका नारी, पवरा होति नरेसु नारीसु।
एवं पियरूपदायिका मनापं, दिब्बं सा लभते उपेच्च ठानं॥333॥

संस्कृतच्छाया- अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीः इव तारकाः॥329॥
केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥330॥
पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥331॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥332॥
वस्तूत्तमदायिका नारी, प्रवरा भवति नरेषु नारीषु।
एवं प्रियरूपदायिका मनोरूपम्, दिव्यं सा लभते उपेत्य स्थानम्॥333॥

हिन्दी- मैं आपकी शरण में होता हूँ; क्योंकि मैं आचार्यों का पूजक हूँ। आपका शिष्य आपको नहीं जीत सकता, शिष्य पर आपकी ही विजय होगी॥328॥

हे देवि! आप अपने देदीप्यमान वर्ण से समस्त दिशाओं को उसी प्रकार प्रकाशित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को प्रकाशित किया करते हैं॥329॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग–उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥330॥

हे महादेवि! हमारा आपसे यही प्रश्न है कि आपने मानुष्यरूप में ऐसा कौन सा पुण्य कर्म किया था कि आज आप को ऐसा देदीप्यमान वर्ण प्राप्त हुआ जो समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रहा है?॥331॥

तब मोग्गलान द्वारा यह पूछे जाने पर उस देवता ने प्रसन्नमन से अपना वह कर्म बताया जिसके कारण उसनें यह फल प्राप्त किया था॥332॥

''तस्सा मे पस्स विमानं, अच्छरा कामवण्णिनीहमस्मि।
अच्छरासहस्सस्साहं, पवरा पस्स पुञ्ञानं विपाकं॥334॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥335॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥336॥
(अनन्तरं चतुरविमानं यथा वत्थुदायिकाविमानं तथा वित्थारेतब्बं)

2. पुप्फुत्तमदायिकाविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥337॥

संस्कृतच्छाया- तस्याः मे पश्य विमानम्, अप्सरा कामवर्णिनी अहमस्मि।
अप्सरस्सहस्रस्य साऽहम्, प्रवरा पश्य पुण्यानां विपाकम्॥334॥
तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥335॥
आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षम् पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥336॥
(अनन्तरं चतुरविमानं यथा वस्तुदायिकाविमानं तथा विस्तारयितव्यम्)
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीरिव तारकाः॥337॥

हिन्दी- उत्तम वस्तु का दान करने वाली नारी ही अन्य साधारण नर-नारियों में श्रेष्ठ होती है। ऐसी ही नारी उचित पात्र को प्रिय एवं मनोनुकूल वस्तु का दान कर स्वर्गलोक में मनोवांछित एवं दिव्य स्थान प्राप्त करती है॥333॥

आप मुझ सामर्थ्यशालिनी का यह विमान देखें। मैं यथेच्छ रूपधारिणी अप्सरा हूँ। मैं हजारों अप्सराओं में श्रेष्ठ हूँ। उन पुण्यों के विपाक(फल)को देखें॥334॥

उस पुण्य-विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥335॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥336॥

[आगे के चार विमानवस्तुओं का वर्णन भी इस उत्तमवस्तुदायिकाविमान के समान ही है। अतः इनको भी इसी प्रकार समझ लें।]

''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥338॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥339॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥340॥
''पुप्फुत्तमदायिका नारी, पवरा होति नरेसु नारीसु।
एवं पियरूपदायिका मनापं, दिब्बं सा लभते उपेच्च ठानं॥341॥
''तस्सा मे पस्स विमानं, अच्छरा कामवण्णिनीहमस्मि।
अच्छरासहस्सस्साहं, पवरा पस्स पुञ्ञानं विपाकं॥342॥

संस्कृतच्छाया- 'केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥338॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥339॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥340॥
पुष्पोत्तमदायिका नारी, प्रवरा भवति नरेषु नारीषु।
एवं प्रियरूपदायिका मनाप्यम्, दिव्यं सा लभते उपेत्य स्थानम्॥341॥
तस्याः मे पश्य विमानम्, अप्सरा कामवर्णिनी अहमस्मि।
अप्सरस्सहस्रस्य साऽहम्, प्रवरा पश्य पुण्यानां विपाकम्॥342॥

हिन्दी- हे देवि! आप अपने देदीप्यमान वर्ण से समस्त दिशाओं को उसी प्रकार प्रकाशित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को प्रकाशित किया करते हैं॥337॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग-उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥338॥

हे महादेवि! हमारा आपसे यही प्रश्न है कि आपने मानुष्यरूप में ऐसा कौन सा पुण्य कर्म किया था कि आज आप को ऐसा देदीप्यमान वर्ण प्राप्त हुआ जो समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रहा है?॥339॥

मौद्गल्यायन द्वारा यह पूछे जाने पर तब उस देवता ने प्रसन्न मन से अपना वह कर्म बताया जिसके कारण उसनें यह फल प्राप्त किया था॥340॥

उत्तम पुष्पों का दान करने वाली नारी ही अन्य साधारण नर-नारियों में श्रेष्ठ हुआ करती है। ऐसी नारी उचित दानपात्र को वैसा दान कर स्वर्ग में दिव्य स्थान प्राप्त करने में समर्थ होती है॥341॥

आप मुझ सामर्थ्यशालिनी का यह विमान देखें। मैं यथेच्छ रूपधारिणी अप्सरा हूँ। मैं हजारों अप्सराओं में श्रेष्ठ हूँ। उन पुण्यों के विपाक(फल)को देखें॥342॥

''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥343॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥344॥

3. गन्धुत्तमदायिकाविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥345॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥346॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥347॥

संस्कृतच्छाया- ''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥343॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥344॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीरिव तारकाः॥345॥
'केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥346॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥347॥

हिन्दी- उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी के कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥343॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥344॥

हे देवि! आप अपने देदीप्यमान वर्ण से समस्त दिशाओं को उसी प्रकार प्रकाशित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को प्रकाशित किया करते हैं॥345॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग–उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥346॥

हे महादेवि! हमारा आपसे यही प्रश्न है कि आपने मनुष्यरूप में ऐसा कौन सा पुण्य कर्म किया था कि आज आप को ऐसा देदीप्यमान वर्ण प्राप्त हुआ जो समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रहा है?॥347॥

सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥348॥
''गन्धुत्तमदायिका नारी, पवरा होति नरेसु नारीसु।
एवं पियरूपदायिका मनापं, दिब्बं सा लभते उपेच्च ठानं॥349॥
''तस्सा मे पस्स विमानं, अच्छरा कामवण्णिनीहमस्मि।
अच्छरासहस्सस्साहं, पवरा पस्स पुञ्ञानं विपाकं॥350॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥351॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥352॥

संस्कृतच्छाया- सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥348॥
गन्धोत्तमदायिका नारी, प्रवरा भवति नरेषु नारीषु।
एवं प्रियरूपदायिका मनाप्यम्(मनोरूपम्), दिव्यं सा लभते उपेत्य स्थानम्॥349॥
तस्याः मे पश्य विमानम्, अप्सरा कामवर्णिनी अहमस्मि।
अप्सरस्सहस्रस्य साऽहम्, प्रवरा पश्य पुण्यानां विपाकम्॥350॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥351॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥352॥

हिन्दी- मोग्गलान द्वारा यह पूछे जाने पर तब उस देवता ने प्रसन्न मन से अपना वह कर्म बताया जिसके कारण उसनें यह फल प्राप्त किया था॥348॥

उत्तम गन्ध का दान करने वाली नारी ही अन्य साधारण नर-नारियों में श्रेष्ठ हुआ करती है। ऐसी नारी उचित दानपात्र को वैसा दान कर स्वर्ग में दिव्य स्थान प्राप्त करने में समर्थ होती है॥349॥

आप मुझ सामर्थ्यशालिनी का यह विमान देखें। मैं यथेच्छ रूपधारिणी अप्सरा हूँ। मैं हजारों अप्सराओं में श्रेष्ठ हूँ। उन पुण्यों के विपाक(फल)को देखें॥350॥

उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उस कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥351॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥352॥

4. फलुत्तमदायिकाविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥353॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥354॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥355॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥356॥
''फलुत्तमदायिका नारी, पवरा होति नरेसु नारीसु।
एवं पियरूपदायिका मनापं, दिब्बं सा लभते उपेच्च ठानं॥357॥

संस्कृतच्छाया- ''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीरिव तारकाः॥353॥
'केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥354॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥355॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥356॥
फलोत्तमदायिका नारी, प्रवरा भवति नरेषु नारीषु।
एवं प्रियरूपदायिका मनाप्यम्, दिव्यं सा लभते उपेत्य स्थानम्॥357॥

हिन्दी- हे देवि! आप अपने देदीप्यमान वर्ण से समस्त दिशाओं को उसी प्रकार प्रकाशित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को प्रकाशित किया करते हैं॥353॥

यह ऐसा दिव्य वर्ण तथा ये इष्ट कामभोग आपको किस कर्म के पुण्य प्रभाव से प्राप्त हुए हैं?॥354॥

हे महादेवि! हमारा आपसे यही प्रश्न है कि आपने मनुष्यरूप में ऐसा कौन सा पुण्य कर्म किया था कि आज आप को ऐसा देदीप्यमान वर्ण प्राप्त हुआ जो समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रहा है?॥355॥

मोग्गलान द्वारा यह पूछे जाने पर तब उस देवता ने प्रसन्न मन से अपना वह कर्म बताया जिसके कारण यह फल प्राप्त किया था॥356॥

उत्तम फल का दान करने वाली नारी ही नर-नारियों में श्रेष्ठ कहलाती है। ऐसी वह नारी उचित पात्र को प्रिय एवं सुन्दर फल का दान कर स्वर्गलोक में स्थान प्राप्त करने में समर्थ होती है॥357॥

''तस्सा मे पस्स विमानं, अच्छरा कामवण्णिनीहमस्मि।
अच्छरासहस्सस्साहं, पवरा पस्स पुञ्ञानं विपाकं॥358॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥359॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥360॥

5. रसुत्तमदायिकाविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥361॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥362॥

संस्कृतच्छाया- तस्याः मे पश्य विमानम्, अप्सरा कामवर्णिनी अहमस्मि।
अप्सरस्सहस्रस्य साऽहम्, प्रवरा पश्य पुण्यानां विपाकम्॥358॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥359॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥360॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीरिव तारकाः॥361॥
'केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥362॥

हिन्दी- आप मुझ सामर्थ्यशालिनी का यह विमान देखें। मैं यथेच्छ रूपधारिणी अप्सरा हूँ। मैं हजारों अप्सराओं में श्रेष्ठ हूँ। उन पुण्यों के विपाक(फल)को देखें॥358॥

उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥359॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥360॥

हे देवि! आप अपने देदीप्यमान वर्ण से समस्त दिशाओं को उसी प्रकार प्रकाशित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को प्रकाशित किया करते हैं॥361॥

यह ऐसा दिव्य वर्ण तथा ये इष्ट कामभोग आपको किस कर्म के पुण्य प्रभाव से प्राप्त हुए हैं?॥362॥

''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥363॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥364॥
''रसुत्तमदायिका नारी, पवरा होति नरेसु नारीसु।
एवं पियरूपदायिका मनापं, दिब्बं सा लभते उपेच्च ठानं॥365॥
''तस्सा मे पस्स विमानं, अच्छरा कामवण्णिनीहमस्मि।
अच्छरासहस्सस्साहं, पवरा पस्स पुञ्ञानं विपाकं॥366॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥367॥

संस्कृतच्छाया- ''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥363॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥364॥
रसोत्तमदायिका नारी, प्रवरा भवति नरेषु नारीषु।
एवं प्रियरूपदायिका मनाप्यम्, दिव्यं सा लभते उपेत्य स्थानम्॥365॥
तस्याः मे पश्य विमानम्, अप्सरा कामवर्णिनी अहमस्मि।
अप्सरस्सहस्रस्य साऽहम्, प्रवरा पश्य पुण्यानां विपाकम्॥366॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥367॥

हिन्दी- हे महादेवि! हमारा आपसे यही प्रश्न है कि आपने मनुष्यरूप में ऐसा कौन सा पुण्य कर्म किया था कि आज आप को ऐसा देदीप्यमान वर्ण प्राप्त हुआ जो समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रहा है?॥363॥

मोग्गलान द्वारा यह पूछे जाने पर तब उस देवता ने प्रसन्न मन से अपना वह कर्म बताया जिसके कारण यह फल प्राप्त किया था॥364॥

उत्तम रस का दान करने वाली नारी ही अन्य नर-नारियों से श्रेष्ठ होती है। ऐसी ही नारी उचित पात्र को प्रिय एवं सुन्दर रस का दान करके स्वर्ग लोक में दिव्य स्थान प्राप्त करती है॥365॥

आप मुझ सामर्थ्यशालिनी का यह विमान देखें। मैं यथेच्छ रूपधारिणी अप्सरा हूँ। मैं हजारों अप्सराओं में श्रेष्ठ हूँ। उन पुण्यों के विपाक(फल)को देखें॥366॥

उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥367॥

''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥368॥

6. गन्धपञ्चङ्गुलिकदायिकाविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥369॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥370॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥371॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥372॥

संस्कृतच्छाया- ''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥368॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीरिव तारकाः॥369॥
'केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥370॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥371॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥372॥

हिन्दी- इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥368॥

हे देवि! आप अपने देदीप्यमान वर्ण से समस्त दिशाओं को उसी प्रकार प्रकाशित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को प्रकाशित किया करते हैं॥369॥

यह ऐसा दिव्य वर्ण तथा ये इष्ट कामभोग आपको किस कर्म के पुण्य प्रभाव से प्राप्त हुए हैं?॥370॥

हे महादेवि! हमारा आपसे यही प्रश्न है कि आपने मनुष्यरूप में ऐसा कौन सा पुण्य कर्म किया था कि आज आप को ऐसा देदीप्यमान वर्ण प्राप्त हुआ जो समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रहा है?॥371॥

मोग्गलान द्वारा यह पूछे जाने पर तब उस देवता ने प्रसन्न मन से अपना वह कर्म बताया जिसके कारण यह फल प्राप्त किया था॥372॥

''गन्धपञ्चङ्गुलिकं अहमदासिं, कस्सपस्स भगवतो थूपम्हि।
एवं पियरूपदायिका मनापं, दिब्बं सा लभते उपेच्च ठानं॥373॥
''तस्सा मे पस्स विमानं, अच्छरा कामवण्णिनीहमस्मि।
अच्छरासहस्सस्साहं, पवरा पस्स पुञ्ञानं विपाकं॥374॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥375॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥376॥
''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥377॥

संस्कृतच्छाया- गन्धपञ्चाङ्गुलिकम् अहमदाम्, कश्यपस्य भगवतः स्तूपे।
एवं प्रियरूपदायिका मनाप्यम्, दिव्यं सा लभते उपेत्य स्थानम्॥373॥
तस्याः मे पश्य विमानम्, अप्सरा कामवर्णिनी अहमस्मि।
अप्सरस्सहस्रस्य साऽहम्, प्रवरा पश्य पुण्यानां विपाकम्॥374॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥375॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥376॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीरिव तारकाः॥377॥

हिन्दी- मैंने भगवान् काश्यप के स्तूप पर अपनी पाँचों अङ्गुलियों का चिह्न गन्धद्रव्य से अङ्कित किया था। ऐसी नारी ही सुपात्र को सुन्दर एवं मनोनुकूल द्रव्य का दान कर स्वर्ग में दिव्य स्थान प्राप्त करती है॥373॥

आप मुझ सामर्थ्यशालिनी का यह विमान देखें। मैं यथेच्छ रूपधारिणी अप्सरा हूँ। मैं हजारों अप्सराओं में श्रेष्ठ हूँ। उन पुण्यों के विपाक(फल)को देखें॥374॥

उस पुण्य-विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥375॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥376॥

हे देवि! आप अपने देदीप्यमान वर्ण से समस्त दिशाओं को उसी प्रकार प्रकाशित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को प्रकाशित किया करते हैं॥377॥

7. एकूपोसथविमानवत्थु

''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥378॥
केन त्वं विमलोभासा.....पे॰.....सब्बा ओभासते दिसा॥379॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥380॥
''भिक्खू च अहं भिक्खुनियो च, अद्दसासिं पन्थपटिपन्ने।
तेसाहं धम्मं सुत्वान, एकूपोसथं उपवसिस्सं॥381॥
''तस्सा मे पस्स विमानं, अच्छरा कामवण्णिनीहमस्मि।
अच्छरासहस्सस्साहं, पवरा पस्स पुञ्ञानं विपाकं॥382॥

संस्कृतच्छाया- 'केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥378॥
केन त्वं विमलावभासा....पे॰....सर्वा अवभाससे दिशः
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥380॥
भिक्षूञ्चाहं भिक्षुणीश्च, अद्राक्षं पथप्रतिपन्नान्।
तेषामहं धर्मं श्रुत्वा, एकमुपोसथम् उपावसम्॥381॥
तस्याः मे पश्य विमानम्, अप्सरा कामवर्णिनी अहमस्मि।
अप्सरस्सहस्रस्य साऽहम्, प्रवरा पश्य पुण्यानां विपाकम्॥382॥

हिन्दी- यह ऐसा दिव्य वर्ण तथा ये इष्ट कामभोग आपको किस कर्म के पुण्य प्रभाव से प्राप्त हुए हैं?॥378॥

आपको अपनी यह सुन्दर आभा किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त हुई है? तथा आप अपने इस वर्ण से समस्त दिशाओं को अवभासित कर रही हैं॥379॥

मोग्गलान द्वारा यह पूछे जाने पर तब उस देवता ने प्रसन्न मन से अपना वह कर्म बताया जिसके कारण यह फल प्राप्त किया था॥380॥

मैंने कभी कुछ भिक्षु, भिक्षुणियों को मार्ग में भिक्षाटन करते हुए देखा था। उनके धर्म को सुनकर मैंन एक उपोसथ व्रत का पालन किया॥381॥

आप मुझ सामर्थ्यशालिनी का यह विमान देखें। मैं यथेच्छ रूपधारिणी अप्सरा हूँ। मैं हजारों अप्सराओं में श्रेष्ठ हूँ। उन पुण्यों के विपाक(फल)को देखें॥382॥

''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥383॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥384॥

8. उदकदायिकाविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥385॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥386॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥387॥

संस्कृतच्छाया- ''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥383॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥384॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीरिव तारकाः॥385॥
'केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥386॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥387॥

हिन्दी- उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥383॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥384॥

हे देवि! आप अपने देदीप्यमान वर्ण से समस्त दिशाओं को उसी प्रकार प्रकाशित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को प्रकाशित किया करते हैं॥385॥

यह ऐसा दिव्य वर्ण तथा ये इष्ट कामभोग आपको किस कर्म के पुण्य प्रभाव से प्राप्त हुए हैं?॥386॥

हे महादेवि! हमारा आपसे यही प्रश्न है कि आपने मनुष्यरूप में ऐसा कौन सा पुण्य कर्म किया था कि आज आप को ऐसा देदीप्यमान वर्ण प्राप्त हुआ जो समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रहा है?॥387॥

सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥388॥
''उदके ठिता उदकमदासिं, भिक्खुनो चित्तेन विप्पसन्नेन।
एवं पियरूपदायिका मनापं, दिब्बं सा लभते उपेच्च ठानं॥389॥
''तस्सा मे पस्स विमानं, अच्छरा कामवण्णिनीहमस्मि।
अच्छरासहस्सस्साहं, पवरा पस्स पुञ्ञानं विपाकं॥390॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥391॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥392॥

संस्कृतच्छाया- सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥388॥
उदके स्थिता उदकम् अदाम्, भिक्षुभ्यः चित्तेन विप्रसन्नेन।
एवं प्रियरूपदायिका मनाप्यम्, दिव्यं सा लभते उपेत्य स्थानम्॥389॥
तस्याः मे पश्य विमानम्, अप्सरा कामवर्णिनी अहमस्मि।
अप्सरस्सहस्रस्य साऽहम्, प्रवरा पश्य पुण्यानां विपाकम्॥390॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥391॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥392॥

हिन्दी- मोग्गलान द्वारा यह पूछे जाने पर तब उस देवता ने प्रसन्न मन से अपना वह कर्म बताया जिसके कारण यह फल प्राप्त किया था॥388॥

किसी जलस्थान(प्याऊ या कूआँ आदि पर) बैठी हुई मैंने प्रसन्नमन से एक भिक्षु को जल पिलाया था। सुपात्रों को ऐसा प्रिय दान देने वाली नारी ही अपने लिये भी मनोनुकूल दिव्य स्थान प्राप्त कर लेती है॥389॥

आप मुझ सामर्थ्यशालिनी का यह विमान देखें। मैं यथेच्छ रूपधारिणी अप्सरा हूँ। मैं हजारों अप्सराओं में श्रेष्ठ हूँ। उन पुण्यों के विपाक(फल)को देखें॥390॥

उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥391॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥392॥

9. उपट्ठानविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥393॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥394॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥395॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥396॥
''सस्सुञ्चाहं ससुरञ्च, चण्डिके कोधने च फरुसे च।
अनुसूयिका उपट्ठासिं, अप्पमत्ता सकेन सीलेन॥397॥
''तस्सा मे पस्स विमानं, अच्छरा कामवण्णिनीहमस्मि।
अच्छरासहस्सस्साहं, पवरा पस्स पुञ्ञानं विपाकं॥398॥

संस्कृतच्छाया- ''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीरिव तारकाः॥393॥
'केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥394॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥395॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥396॥
श्वश्रूं चाहं श्वसुरं च, चण्डौ क्रोधनौ च परुषौ च।
अनसूयका उपास्थाम्, अप्रमत्ता स्वकेन शीलेन॥397॥
तस्याः मे पश्य विमानम्, अप्सरा कामवर्णिनी अहमस्मि।
अप्सरस्सहस्रस्य साऽहम्, प्रवरा पश्य पुण्यानां विपाकम्॥398॥

हिन्दी- हे देवि! आप अपने देदीप्यमान वर्ण से समस्त दिशाओं को उसी प्रकार प्रकाशित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को प्रकाशित किया करते हैं॥393॥

यह ऐसा दिव्य वर्ण तथा ये इष्ट कामभोग आपको किस कर्म के पुण्य प्रभाव से प्राप्त हुए हैं?॥394॥

हे महादेवि! हमारा आपसे यही प्रश्न है कि आपने मनुष्यरूप में ऐसा कौन सा पुण्य कर्म किया था कि आज आप को ऐसा देदीप्यमान वर्ण प्राप्त हुआ जो समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रहा है?॥395॥

मोग्गलान द्वारा यह पूछे जाने पर तब उस देवता ने प्रसन्न मन से अपना वह कर्म बताया जिसके कारण यह फल प्राप्त किया था॥396॥

मेरे सास श्वसुर प्रचण्ड क्रोधी एवं रूखे स्वभाव के थे। मैं आलस्य रहित हो शील सदाचारपूर्वक उनकी सेवा ही करती रहती थी॥397॥

''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥399॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥400॥

10. अपरकम्मकारिनीविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥401॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥402॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥403॥

संस्कृतच्छाया- ''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥399॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥400॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीरिव तारकाः॥401॥
'केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥402॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥403॥

हिन्दी- आप मुझ सामर्थ्यशालिनी का यह विमान देखें। मैं यथेच्छ रूपधारिणी अप्सरा हूँ। मैं हजारों अप्सराओं में श्रेष्ठ हूँ। उन पुण्यों के विपाक(फल)को देखें॥398॥

उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥399॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥400॥

हे देवि! आप अपने देदीप्यमान वर्ण से समस्त दिशाओं को उसी प्रकार प्रकाशित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को प्रकाशित किया करते हैं॥401॥

यह ऐसा दिव्य वर्ण तथा ये इष्ट कामभोग आपको किस कर्म के पुण्य प्रभाव से प्राप्त हुए हैं?॥402॥

हे महादेवि! हमारा आपसे यही प्रश्न है कि आपने मनुष्यरूप में ऐसा कौन सा पुण्य कर्म किया था कि आज आप को ऐसा देदीप्यमान वर्ण प्राप्त हुआ जो समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रहा है?॥403॥

सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥404॥
''परकम्मकरी आसिं, अत्थेनातन्दिता दासी।
अक्कोधनानतिमानिनी, संविभागिनी सकस्स भागस्स॥405॥
''तस्सा मे पस्स विमानं, अच्छरा कामवण्णिनीहमस्मि।
अच्छरासहस्सस्साहं, पवरा पस्स पुञ्ञानं विपाकं॥406॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥407॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥408॥

संस्कृतच्छाया- सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥404॥
परकर्मकरी आसम्, अर्थेन अतन्द्रिता दासी।
अक्रोधनानतिमानिनी, सम्विभागिनी स्वकस्य भागस्य॥405॥
तस्याः मे पश्य विमानम्, अप्सरा कामवर्णिनी अहमस्मि।
अप्सरस्सहस्रस्य साऽहम्, प्रवरा पश्य पुण्यानां विपाकम्॥406॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥407॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥408॥

हिन्दी- मोग्गलान द्वारा यह पूछे जाने पर तब उस देवता ने प्रसन्न मन से अपना वह कर्म बताया जिसके कारण यह फल प्राप्त किया था॥404॥

मैं दासी के रूप में अपने जीवनयापन हेतु सावधानी से दूसरे घरों में कार्य करती थी। उस समय न मैं किसी पर कोई क्रोध करती थी, न किसी प्रकार का अभिमान ही। स्वयं के प्राप्त भाग से ही मैं कुछ न कुछ दानादि कर्म भी किया करती थी॥405॥

आप मुझ सामर्थ्यशालिनी का यह विमान देखें। मैं यथेच्छ रूपधारिणी अप्सरा हूँ। मैं हजारों अप्सराओं में श्रेष्ठ हूँ। उन पुण्यों के विपाक(फल) को देखें॥406॥

उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी के कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥407॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥408॥

11. खीरोदनदायिकाविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥409॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥410॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥411॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥412॥
''खीरोदनं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स।
एवं करित्वा कम्मं, सुगतिं उपपज्ज मोदामि॥413॥

संस्कृतच्छाया- ''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीरिव तारकाः॥409॥
'केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥410॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥411॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥412॥
क्षीरौदनम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते।
एवं कृत्वा कर्म, सुगतिम् उपपद्य मोदे॥413॥

हिन्दी- हे देवि! आप अपने देदीप्यमान वर्ण से समस्त दिशाओं को उसी प्रकार प्रकाशित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को प्रकाशित किया करते हैं॥409॥

यह ऐसा दिव्य वर्ण तथा ये इष्ट कामभोग आपको किस कर्म के पुण्य प्रभाव से प्राप्त हुए हैं?॥410॥

हे महादेवि! हमारा आपसे यही प्रश्न है कि आपने मनुष्यरूप में ऐसा कौन सा पुण्य कर्म किया था कि आज आप को ऐसा देदीप्यमान वर्ण प्राप्त हुआ जो समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रहा है?॥411॥

मोग्गलान द्वारा यह पूछे जाने पर तब उस देवता ने प्रसन्न मन से अपना वह कर्म बताया जिसके कारण यह फल प्राप्त किया था॥412॥

मैंने कभी भिक्षाचारिका करते हुए किसी भिक्षु को भिक्षा के रूप में क्षीर एवं भात का दान किया। ऐसा कर्म करके आज मैं सुगति प्राप्त कर यह दिव्य सुख भोग रही हूँ॥413॥

''तस्सा मे पस्स विमानं, अच्छरा कामवण्णिनीहमस्मि।
अच्छरासहस्सस्साहं, पवरा पस्स पुञ्ञानं विपाकं॥414॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥415॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥416॥

12. फाणितदायिकाविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥417॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥418॥

संस्कृतच्छाया- तस्याः मे पश्य विमानम्, अप्सरा कामवर्णिनी अहमस्मि।
अप्सरस्सहस्रस्य साऽहम्, प्रवरा पश्य पुण्यानां विपाकम्॥414॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥415॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥416॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीरिव तारकाः॥417॥
'केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥418॥

हिन्दी- आप मुझ सामर्थ्यशालिनी का यह विमान देखें। मैं यथेच्छ रूपधारिणी अप्सरा हूँ। मैं हजारों अप्सराओं में श्रेष्ठ हूँ। उन पुण्यों के विपाक(फल)को देखें॥414॥

उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी कारण से मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥415॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥416॥

[आगे समस्त 25 विमानों का व्याख्यान-विस्तार भी क्षीरोदनदायिकाविमान के समान ही कर लेना चाहिये।]

हे देवि! आप अपने देदीप्यमान वर्ण से समस्त दिशाओं को उसी प्रकार प्रकाशित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को प्रकाशित किया करते हैं॥417॥

यह ऐसा दिव्य वर्ण तथा ये इष्ट कामभोग आपको किस कर्म के पुण्य प्रभाव से प्राप्त हुए हैं?॥418॥

''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥419॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥420॥
''फाणितं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स।
एवं करित्वा कम्मं, सुगतिं उपपज्ज मोदामि॥421॥
''तस्सा मे पस्स विमानं, अच्छरा कामवण्णिनीहमस्मि।
अच्छरासहस्सस्साहं, पवरा पस्स पुञ्ञानं विपाकं॥422॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥423॥

संस्कृतच्छाया- ''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥419॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥420॥
फाणितम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते।
एवं कृत्वा कर्म, सुगतिम् उपपद्य मोदे॥421॥
तस्याः मे पश्य विमानम्, अप्सरा कामवर्णिनी अहमस्मि।
अप्सरस्सहस्रस्य साऽहम्, प्रवरा पश्य पुण्यानां विपाकम्॥422॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥423॥

हिन्दी- हे महादेवि! हमारा आपसे यही प्रश्न है कि आपने मनुष्यरूप में ऐसा कौन सा पुण्य कर्म किया था कि आज आप को ऐसा देदीप्यमान वर्ण प्राप्त हुआ जो समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रहा है?॥419॥

मोग्गलान द्वारा यह पूछे जाने पर तब उस देवता ने प्रसन्न मन से अपना वह कर्म बताया जिसके कारण यह फल प्राप्त किया था॥420॥

किसी समय मैंने भिक्षाटन करते हुए किसी भिक्षु को फाणित(कच्ची खाँड-सीरा) दान किया। उस पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप आज मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ॥421॥

आप मुझ सामर्थ्यशालिनी का यह विमान देखें। मैं यथेच्छ रूपधारिणी अप्सरा हूँ। मैं हजारों अप्सराओं में श्रेष्ठ हूँ। उन पुण्यों के विपाक(फल)को देखें ॥422॥

उस पुण्य-विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी कारणवश मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥423॥

''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥424॥
''फाणितं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स।
एवं करित्वा कम्मं, सुगतिं उपपज्ज मोदामि॥425॥
''तस्सा मे पस्स विमानं, अच्छरा कामवण्णिनीहमस्मि।
अच्छरासहस्सस्साहं, पवरा पस्स पुञ्ञानं विपाकं॥426॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥427॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥428॥

संस्कृतच्छाया- ''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥424॥
क्षीरौदनम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते।
एवं कृत्वा कर्म, सुगतिम् उपपद्य मोदे॥425॥
तस्याः मे पश्य विमानम्, अप्सरा कामवर्णिनी अहमस्मि।
अप्सरस्सहस्रस्य साऽहम्, प्रवरा पश्य पुण्यानां विपाकम्॥426॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥427॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥428॥

हिन्दी- इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥424॥

मैंने कभी भिक्षाचारिका करते हुए किसी भिक्षु को भिक्षा के रूप में फाणित का दान किया। ऐसा कर्म करके आज मैं सुगति प्राप्त यह दिव्य सुख भोग रही हूँ॥425॥

आप मुझ सामर्थ्यशालिनी का यह विमान देखें। मैं यथेच्छ रूपधारिणी अप्सरा हूँ। मैं हजारों अप्सराओं में श्रेष्ठ हूँ। उन पुण्यों के विपाक(फल)को देखें। ॥426॥

उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी कारण से ही आज मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥427॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥428॥

13. उच्छुखण्डिकदायिकावत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥429॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥430॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥431॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥432॥
उच्छुखण्डिकं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स।
एवं करित्वा कम्मं, सुगतिं उपपज्ज मोदामि॥433॥

संस्कृतच्छाया- ''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीरिव तारकाः॥429॥
'केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥430॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥431॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥432॥
इक्षुखण्डम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते।
एवं कृत्वा कर्म, सुगतिम् उपपद्य मोदे॥433॥

हिन्दी- हे देवि! आप अपने देदीप्यमान वर्ण से समस्त दिशाओं को उसी प्रकार प्रकाशित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को प्रकाशित किया करते हैं॥429॥

यह ऐसा दिव्य वर्ण तथा ये इष्ट कामभोग आपको किस कर्म के पुण्य प्रभाव से प्राप्त हुए हैं?॥430॥

हे महादेवि! हमारा आपसे यही प्रश्न है कि आपने मनुष्यरूप में ऐसा कौन सा पुण्य कर्म किया था कि आज आप को ऐसा देदीप्यमान वर्ण प्राप्त हुआ जो समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रहा है?॥431॥

मोग्गलान द्वारा यह पूछे जाने पर तब उस देवता ने प्रसन्न मन से अपना वह कर्म बताया जिसके कारण यह फल प्राप्त किया था॥432॥

मैंने भिक्षाटन करते हुए एक भिक्षु को भिक्षा के रूप में इक्षुखण्ड का दान किया। उसी पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप आज मैं यह सुगतिप्राप्त, आनन्द भोग रही हूँ॥433॥

''तस्सा मे पस्स विमानं, अच्छरा कामवण्णिनीहमस्मि।
अच्छरासहस्सस्साहं, पवरा पस्स पुञ्ञानं विपाकं॥434॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥435॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥436॥

14. तिम्बरुसकदायिकाविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥437॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥438॥

संस्कृतच्छाया- तस्याः मे पश्य विमानम्, अप्सरा कामवर्णिनी अहमस्मि।
अप्सरस्सहस्रस्य साऽहम्, प्रवरा पश्य पुण्यानां विपाकम्॥434॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥435॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥436॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीरिव तारकाः॥437॥
'केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥438॥

हिन्दी- आप मुझ सामर्थ्यशालिनी का यह विमान देखें। मैं यथेच्छ रूपधारिणी अप्सरा हूँ। मैं हजारों अप्सराओं में श्रेष्ठ हूँ। उन पुण्यों के विपाक(फल)को देखें॥434॥

उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥435॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥436॥

हे देवि! आप अपने देदीप्यमान वर्ण से समस्त दिशाओं को उसी प्रकार प्रकाशित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को प्रकाशित किया करते हैं॥437॥

यह ऐसा दिव्य वर्ण तथा ये इष्ट कामभोग आपको किस कर्म के पुण्य प्रभाव से प्राप्त हुए हैं?॥438॥

''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥439॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥440॥
तिम्बरुसकं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स।
एवं करित्वा कम्मं, सुगतिं उपपज्ज मोदामि॥441॥
''तस्सा मे पस्स विमानं, अच्छरा कामवण्णिनीहमस्मि।
अच्छरासहस्सस्साहं, पवरा पस्स पुञ्ञानं विपाकं॥442॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥443॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥444॥

संस्कृतच्छाया- ''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥439॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥440॥
तिम्बरूषकम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते।
एवं कृत्वा कर्म, सुगतिम् उपपद्य मोदे॥441॥
तस्याः मे पश्य विमानम्, अप्सरा कामवर्णिनी अहमस्मि।
अप्सरस्सहस्रस्य साऽहम्, प्रवरा पश्य पुण्यानां विपाकम्॥442॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥443॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥444॥

हिन्दी- हे महादेवि! हमारा आपसे यही प्रश्न है कि आपने मनुष्यरूप में ऐसा कौन सा पुण्य कर्म किया था कि आज आप को ऐसा देदीप्यमान वर्ण प्राप्त हुआ जो समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रहा है?॥439॥

मोग्गलान द्वारा यह पूछे जाने पर तब उस देवता ने प्रसन्न मन से अपना वह कर्म बताया जिसके कारण यह फल प्राप्त किया था॥440॥

मैंने कभी भिक्षाटन करते हुए किसी भिक्षु को भिक्षा में तिन्दुकफल का दान दिया। उस पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप आज मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ॥441॥

आप मुझ सामर्थ्यशालिनी का यह विमान देखें। मैं यथेच्छ रूपधारिणी अप्सरा हूँ। मैं हजारों अप्सराओं में श्रेष्ठ हूँ। उन पुण्यों के विपाक(फल)को देखें॥442॥

उस पुण्य-विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी के कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥443॥

15. कक्कारिकदायिकाविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥445॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥446॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥447॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥448॥
कक्कारिकं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स।
एवं करित्वा कम्मं, सुगतिं उपपज्ज मोदामि॥449॥

संस्कृतच्छाया- ''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीरिव तारकाः॥445॥
'केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥446॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥447॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥448॥
कर्कारीफलम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते।
एवं कृत्वा कर्म, सुगतिम् उपपद्य मोदे॥449॥

हिन्दी- हे देवि! आप अपने देदीप्यमान वर्ण से समस्त दिशाओं को उसी प्रकार प्रकाशित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को प्रकाशित किया करते हैं।॥445॥

यह ऐसा दिव्य वर्ण तथा ये इष्ट कामभोग आपको किस कर्म के पुण्य प्रभाव से प्राप्त हुए हैं?॥446॥

हे महादेवि! हमारा आपसे यही प्रश्न है कि आपने मनुष्यरूप में ऐसा कौन सा पुण्य कर्म किया था कि आज आप को ऐसा देदीप्यमान वर्ण प्राप्त हुआ जो समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रहा है?॥447॥

मोग्गलान द्वारा यह पूछे जाने पर तब उस देवता ने प्रसन्न मन से अपना वह कर्म बताया जिसके कारण यह फल प्राप्त किया था॥448॥

मैंने कभी भिक्षाटन करते हुए किसी भिक्षु को भिक्षा में कर्कारीफल का दान दिया। उसी पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप आज मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ॥449॥

''तस्सा मे पस्स विमानं, अच्छरा कामवण्णिनीहमस्मि।
अच्छरासहस्सस्साहं, पवरा पस्स पुञ्ञानं विपाकं॥450॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥451॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥452॥

16. एळालुकदायिकाविमानवस्तु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥453॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥454॥

संस्कृतच्छाया- तस्याः मे पश्य विमानम्, अप्सरा कामवर्णिनी अहमस्मि।
अप्सरस्सहस्रस्य साऽहम्, प्रवरा पश्य पुण्यानां विपाकम्॥450॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥451॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥452॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीरिव तारकाः॥453॥
'केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥454॥

हिन्दी- आप मुझ सामर्थ्यशालिनी का यह विमान देखें। मैं यथेच्छ रूपधारिणी अप्सरा हूँ। मैं हजारों अप्सराओं में श्रेष्ठ हूँ। उन पुण्यों के विपाक(फल)को देखें॥450॥

उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥451॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥452॥

हे देवि! आप अपने देदीप्यमान वर्ण से समस्त दिशाओं को उसी प्रकार प्रकाशित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को प्रकाशित किया करते हैं॥453॥

यह ऐसा दिव्य वर्ण तथा ये इष्ट कामभोग आपको किस कर्म के पुण्य प्रभाव से प्राप्त हुए हैं?॥454॥

''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥455॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥456॥
एळालुकं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स।
एवं करित्वा कम्मं, सुगतिं उपपज्ज मोदामि॥457॥
''तस्सा मे पस्स विमानं, अच्छरा कामवण्णिनीहमस्मि।
अच्छरासहस्सस्साहं, पवरा पस्स पुञ्ञानं विपाकं॥458॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥459॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥460॥

संस्कृतच्छाया- ''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥455॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥456॥
एर्वारूकम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते।
एवं कृत्वा कर्म, सुगतिम् उपपद्य मोदे॥457॥
तस्याः मे पश्य विमानम्, अप्सरा कामवर्णिनी अहमस्मि।
अप्सरस्सहस्रस्य साऽहम्, प्रवरा पश्य पुण्यानां विपाकम्॥458॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥459॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥460॥

हिन्दी- हे महादेवि! हमारा आपसे यही प्रश्न है कि आपने मनुष्यरूप में ऐसा कौन सा पुण्य कर्म किया था कि आज आप को ऐसा देदीप्यमान वर्ण प्राप्त हुआ जो समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रहा है?॥455॥

मोग्गलान द्वारा यह पूछे जाने पर तब उस देवता ने प्रसन्न मन से अपना वह कर्म बताया जिसके कारण यह फल प्राप्त किया था।॥456॥

मैंने कभी भिक्षाटन करते हुए किसी भिक्षु को भिक्षा में एर्वारुकफल(ककड़ी) का दान दिया। उसी पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप आज मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ।॥457॥

आप मुझ सामर्थ्यशालिनी का यह विमान देखें। मैं यथेच्छ रूपधारिणी अप्सरा हूँ। मैं हजारों अप्सराओं में श्रेष्ठ हूँ। उन पुण्यों के विपाक(फल)को देखें।॥458॥

उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी के कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥459॥

17. वल्लिफलदायिकाविमानवत्थु

वल्लिफलं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स...पे॰...॥461-468॥

18. फारुसकदायिकाविमानवत्थु

फारुसकं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स...पे॰...॥469-476॥

19. हत्थप्पतापकदायिकाविमानवत्थु

हत्थप्पतापकं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स...पे॰...॥477-484॥

20. साकमुट्ठिदायिकाविमानवत्थु

साकमुट्ठिं अहमदासिं, भिक्खुनो पन्थपटिपन्नस्स...पे॰...॥485-492॥

21. पुप्फकमुट्ठिदायिकाविमानवत्थु

पुप्फकमुट्ठिं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स...पे॰...॥493-500॥

22. मूलकदायिकाविमानवत्थु

मूलकं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स...पे॰...॥501-508॥

संस्कृतच्छाया- बल्लीफलम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते...पे॰...॥461-468॥
फालसाफलम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते ...पे॰...॥469-476॥
हस्तप्रतापकम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते ...पे॰...॥477-484॥
शाकमुष्टिम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते ...पे॰...॥485-492॥
पुष्पकमुष्टिम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते ...पे॰...॥493-500॥
मूलकम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते ...पे॰...॥501-508॥

हिन्दी- इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥460॥

मैंने कभी भिक्षाटन करते हुए किसी भिक्षु को भिक्षा में वल्लिफल का दान दिया। उसी पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप आज मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ।॥461-468॥

(इस विमान के शेष गाथाओं की हिन्दी पूर्व विमान के समान करनी चाहिए।)

मैंने कभी भिक्षाटन करते हुए किसी भिक्षु को भिक्षा में फासुकफल(फालसा) का दान दिया। उसी पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप आज मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ।॥469-476॥

(इस विमान के शेष गाथाओं की हिन्दी पूर्व विमान के समान करनी चाहिए।)

मैंने कभी भिक्षाटन करते हुए किसी भिक्षु को भिक्षा में हस्तप्रतापक(हाथ को गर्म रखने का साधन) प्रदान किया। उसी पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप आज मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ।॥477-484॥

(इस विमान के शेष गाथाओं की हिन्दी पूर्व विमान के समान करनी चाहिए।)

मैंने कभी भिक्षाटन करते हुए किसी भिक्षु को भिक्षा में मुष्टीभर शाक का दान दिया। उसी पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप आज मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ।॥485-492॥

(इस विमान के शेष गाथाओं की हिन्दी पूर्व विमान के समान करनी चाहिए।)

23. निम्बमुट्ठिदायिकाविमानवत्थु

निम्बमुट्ठिं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स...पे॰...॥509-516॥

24. अम्बकञ्जिकदायिकाविमानवत्थु

अम्बकञ्जिकं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स...पे॰...॥517-524॥

25. दोणिनिम्मज्जनिदायिकाविमानवत्थु

दोणिनिम्मज्जनिं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स...पे॰...॥525-532॥

26. कायबन्धनदायिकाविमानवत्थु

कायबन्धनं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स...पे॰...॥533-540॥

27. अंसबद्धकदायिकाविमानवत्थु

अंसबद्धकं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स...पे॰...॥541-548॥

संस्कृतच्छाया- निम्बमुष्टिम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते ...पे॰...॥509-516॥
आम्रकाञ्जिकम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते...पे॰...॥517-524॥
द्रोणिनिमज्जाम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते...पे॰...॥525-532॥
कायबन्धनम्(वस्त्रम्) अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते ...पे॰...॥533-540॥
अंसवस्त्रम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते ...पे॰...॥541-548॥

हिन्दी- मैंने कभी भिक्षाटन करते हुए किसी भिक्षु को भिक्षा में मुष्टीभर पुष्प का दान दिया। उसी पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप आज मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ॥493-500॥

(इस विमान के शेष गाथाओं की हिन्दी पूर्व विमान के समान करनी चाहिए।)

मैंने कभी भिक्षाटन करते हुए किसी भिक्षु को भिक्षा में मूलक(कन्दमूल) का दान दिया। उसी पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप आज मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ॥501-508॥

(इस विमान के शेष गाथाओं की हिन्दी पूर्व विमान के समान करनी चाहिए।)

मैंने कभी भिक्षाटन करते हुए किसी भिक्षु को भिक्षा में मुष्टीभर नीम का फल प्रदान किया। उसी पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप आज मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ ॥509-516॥

(इस विमान के शेष गाथाओं की हिन्दी पूर्व विमान के समान करनी चाहिए।)

मैंने कभी भिक्षाटन करते हुए किसी भिक्षु को भिक्षा में आम्रकञ्जिका(खट्टे आम की काञ्जी) का दान दिया। उसी पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप आज मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। ॥517-524॥

(इस विमान के शेष गाथाओं की हिन्दी पूर्व विमान के समान करनी चाहिए।)

मैंने कभी भिक्षाटन करते हुए किसी भिक्षु को भिक्षा में तिल की खली का दान दिया। उसी पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप आज मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। ॥525-532॥

(इस विमान के शेष गाथाओं की हिन्दी पूर्व विमान के समान करनी चाहिए।)

मैंने कभी भिक्षाटन करते हुए किसी भिक्षु को भिक्षा में कायबन्धक रस्सी का दान दिया। उसी पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप आज मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ ॥533-540॥

(इस विमान के शेष गाथाओं की हिन्दी पूर्व विमान के समान करनी चाहिए।)

28. आयोगपट्टदायिकाविमानवत्थु

आयोगपट्टं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स...पे॰...॥549-556॥

29. विधूपनदायिकाविमानवत्थु

विधूपनं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स...पे॰...॥557-564॥

30. तालवण्टदायिकाविमानवत्थु

तालवण्टं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स...पे॰...॥565-572॥

31. मोरहत्थदायिकाविमानवत्थु

मोरहत्थं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स...पे॰...॥573-580॥

32. छत्तदायिकाविमानवत्थु

छत्तं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स...पे॰...॥581-588॥

संस्कृतच्छाया- आयोगपटम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते ...पे॰...॥549-556॥
विधूपनम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते ...पे॰...॥557-564॥
तालवृन्तम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते ...पे॰...॥565-572॥
मयूरहस्तम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते ...पे॰...॥573-580॥
छत्रम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते ...पे॰...॥581-588॥

हिन्दी- मैंने कभी भिक्षाटन करते हुए किसी भिक्षु को भिक्षा में असम्बद्धक(दुपट्टा) का दान दिया। उसी पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप आज मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ।541-548॥

(इस विमान के शेष गाथाओं की हिन्दी पूर्व विमान के समान करनी चाहिए।)

मैंने कभी भिक्षाटन करते हुए किसी भिक्षु को भिक्षा में आयोगपट्ट(शरीर पर लपेटने वाले वस्त्र) का दान दिया। उसी पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप आज मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ॥549-556॥

(इस विमान के शेष गाथाओं की हिन्दी पूर्व विमान के समान करनी चाहिए।)

मैंने कभी भिक्षाटन करते हुए किसी भिक्षु को भिक्षा में फासुकफल(फालसा) का दान दिया। उसी पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप आज मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ।॥557-564॥

(इस विमान के शेष गाथाओं की हिन्दी पूर्व विमान के समान करनी चाहिए।)

मैंने कभी भिक्षाटन करते हुए किसी भिक्षु को भिक्षा में तालवृन्त(पंखा) का दान दिया। उसी पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप आज मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ॥565-572॥

(इस विमान के शेष गाथाओं की हिन्दी पूर्व विमान के समान करनी चाहिए।)

मैंने कभी भिक्षाटन करते हुए किसी भिक्षु को भिक्षा में मयूरपंख का दान दिया। उसी पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप आज मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ।॥573-580॥

(इस विमान के शेष गाथाओं की हिन्दी पूर्व विमान के समान करनी चाहिए।)

मैंने कभी भिक्षाटन करते हुए किसी भिक्षु को भिक्षा में छत्र(छाता) का दान दिया। उसी पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप आज मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ॥581-588॥

(इस विमान के शेष गाथाओं की हिन्दी पूर्व विमान के समान करनी चाहिए।)

33. उपाहनदायिकाविमानवत्थु

उपाहनं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स...पे॰...॥589-596॥

34. पूवदायिकाविमानवत्थु

पूवं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स...पे॰...॥597-604॥

35. मोदकदायिकाविमानवत्थु

मोदकं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स...पे॰...॥605-612॥

36. सक्खलिकदायिकाविमानवत्थु

''सक्खलिकं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स...पे॰...॥613॥
''तस्सा मे पस्स विमानं, अच्छरा कामवण्णिनीहमस्मि।
अच्छरासहस्सस्साहं, पवरा पस्स पुञ्ञानं विपाकं॥614॥

संस्कृतच्छाया- उपानहम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते ...पे॰...॥589-596॥
अपूपम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते ...पे॰...॥597-604॥
मोदकम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते ...पे॰...॥605-612॥
शष्कुलीम् अहमदाम्, भिक्षवे पिण्डाय चरते ...पे॰...॥613॥
तस्याः मे पश्य विमानम्, अप्सरा कामवर्णिनी अहमस्मि।
अप्सरस्सहस्रस्य साऽहम्, प्रवरा पश्य पुण्यानां विपाकम्॥614॥

हिन्दी- मैंने कभी भिक्षाटन करते हुए किसी भिक्षु को भिक्षा में उपानत्=उपाहन(जूता) का दान दिया। उसी पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप आज मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ॥589-596॥

(इस विमान के शेष गाथाओं की हिन्दी पूर्व विमान के समान करनी चाहिए।)

मैंने कभी भिक्षाटन करते हुए किसी भिक्षु को भिक्षा में मालपूआ का दान दिया। उसी पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप आज मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ॥597-604॥

(इस विमान के शेष गाथाओं की हिन्दी पूर्व विमान के समान करनी चाहिए।)

मैंने कभी भिक्षाटन करते हुए किसी भिक्षु को भिक्षा में मोदक(लड्डू) का दान दिया। उसी पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप आज मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ॥605-612॥

(इस विमान के शेष गाथाओं की हिन्दी पूर्व विमान के समान करनी चाहिए।)

मैंने कभी भिक्षाटन करते हुए किसी भिक्षु को भिक्षा में शष्कुली(कचौड़ी) का दान दिया। उसी पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप आज मैं यह दिव्य सुख भोग रही हूँ॥613॥

आप मुझ सामर्थ्यशालिनी का यह विमान देखें। मैं यथेच्छ रूपधारिणी अप्सरा हूँ। मैं हजारों अप्सराओं में श्रेष्ठ हूँ। उन पुण्यों के विपाक(फल)को देखें॥614॥

''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥615॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥616॥
''स्वागतं वत मे अज्ज, सुप्पभातं सुहुट्ठितं।
यं अद्दसामि देवतायो, अच्छरा कामवण्णिनियो॥617॥
''इमासाहं धम्मं सुत्वा, काहामि कुसलं बहुं।
दानेन समचरियाय, सञ्ञमेन दमेन च।
स्वाहं तत्थ गमिस्सामि, यत्थ गन्त्वा न सोचरे'' ति॥618॥

गुत्तिलविमानं पञ्चमं।

संस्कृतच्छाया- ''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥615॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥616॥
स्वागतं वत मे अद्य, सुप्रभातं सूत्थितम्।
यत् अद्राक्षं देवताः, अप्सराः कामवर्णिनीः॥617॥
आभ्यः अहं धर्मं श्रुत्वा, करिष्यामि कुशलं बहु॥
दानेन समचर्यया, संयमेन दमेन च।
सोऽहं तत्र गमिष्यामि, यत्र गत्वा न शोचति'' इति॥618॥

हिन्दी- उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥615॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥616॥

आज का दिन मेरे लिये बहुत खुशियाँ लेकर आया है। आज का सूर्योदय मेरे लिये बहुत ही शुभ सिद्ध हुआ कि आज मैंने इन देवत्व प्राप्त कामरूपधारिणी अप्सराओं के दर्शन किये॥617॥

इनसे धर्मग्रहण कर दान, सम(मैत्री) भावना, संयम एवं दम के द्वारा विविध कुशल कर्म करुँगा। जिसके परिणास्वरूप मैं उस गति को प्राप्त करूँगा, जहाँ पहुँच कर मन में किसी प्रकार का शोक नहीं रहता॥618॥

6. दद्दल्लविमानवत्थु

''दद्दल्लमाना वण्णेन, यससा च यसस्सिनी।
सब्बे देवे तावतिंसे, वण्णेन अतिरोचसि॥619॥
''दस्सनं नाभिजानामि, इदं पठमदस्सनं।
कस्मा काया नु आगम्म, नामेन भाससे ममं'' ति॥620॥
''अहं भद्दे सुभद्दासिं, पुब्बे मानुसके भवे।
सहभरिया च ते आसिं, भगिनी च कनिट्ठिका॥621॥
''सा अहं कायस्स भेदा, विप्पमुत्ता ततो चुता।
निम्मानरतीनं देवानं, उपपन्ना सहब्यतं'' ति॥622॥
''पहूतकतकल्याणा, ते देवे यन्ति पाणिनो।
येसं त्वं कित्तयिस्ससि, सुभद्दे जातिमत्तनो॥623॥

संस्कृतच्छाया- जाज्वल्यमाना वर्णेन, यशसा च यशस्विनी।
सर्वस्मिन् देवे त्रायस्त्रिंशे, वर्णेन अतिरोचसे॥619॥
दर्शनं नाभिजानामि, इदं प्रथमदर्शनम्।
कस्मात् कायात् नु आगत्य, नाम्ना भाससे मम'' इति॥620॥
अहं भद्रे सुभद्रा आसम्, पूर्वे मानुष्यके भवे।
सहभार्या च ते आसम्, भगिनी च कनिष्ठिका॥621॥
साऽहं कायस्य भेदात्, विप्रमुक्ता ततश्च्युता।
निर्माणरतीनाम् देवानाम्, उपपन्ना सह अवसम्'' इति॥622॥
प्रभूतकृतकल्याणाः, तान् देवान् यान्ति प्राणिनः।
येषां त्वं कीर्तयिष्यसि, सुभद्रे जातिम् आत्मनः॥623॥

हिन्दी- हे यशस्विनि! आप अपने यश एवं रूप से अतिशय शोभित हो रही हैं। आपने, अपनी इस वर्णाभा से, त्रासस्त्रिंशवासी सभी देवों को अभिभूत कर दिया है॥619॥

मैं आपके दर्शन को ठीक प्रकार से समझ नहीं पायी; मेरे लिये यह प्रथम दर्शन है। आप किस काया से च्युत होकर यहाँ आयी हैं तथा किस नाम से विख्यात हैं?॥620॥

भद्रे! मैं किसी पूर्व मनुष्य जन्म में तुम्हारी सहपत्नी और छोटी बहन सुभद्रा थी॥621॥

वह मैं काया(शरीर) के नष्ट हो जाने पर इस लोक से मुक्त हो निर्माणरति देवों में उत्पन्न हो उन्ही देवों के समान हो गई॥622॥

हे सुभद्रे! तुम जिन देवों में अपना जन्म बता रही हो उनके पास तो प्रभूतकल्याणकारी, व्रती प्राणी ही पहुँचने में सफल हो पाते हैं। तुमनें किस पुण्य कर्म के परिणामस्वरूप इस देवयोनि में जन्म पाया?॥623॥

''अथ त्वं केन वण्णेन, केन वा अनुसासिता।
कीदिसेनेव दानेन, सुब्बतेन यसस्सिनी॥624॥
''यसं एतादिसं पत्ता, विसेसं विपुलमज्झगा।
देवते पुच्छिताचिक्ख, किस्स कम्मस्सिदं फलं'' ति॥625॥
''अट्ठेव पिण्डपातानि, यं दानं अददं पुरे।
दक्खिणेय्यस्स सङ्घस्स, पसन्ना सेहि पाणिभि॥626॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥627॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥628॥

संस्कृतच्छाया- अथ त्वं केन वर्णेन, केन वा अनुशासिता।
कीदृशेनेव दानेन, सुव्रतेन यशस्विनी॥624॥
यश एतादृशं प्राप्तम्, विशेषं विपुलमध्यगा।
देवते पृष्टमाचक्षस्व, कस्य कर्मण इदं फलम्'' इति॥625॥
अष्टानामेव पिण्डपात्राणाम्, यद् दानम् अदां पुरा।
दाक्षिणेयाय सङ्घाय, प्रसन्ना सा हि पाणिभ्याम्॥626॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥627॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥628॥

हिन्दी- तथा आपने कैसे, किसके द्वारा अनुशासित हो, कौन से दान से तथा किस व्रतपालन से इतना यश प्राप्त किया है?॥624॥

हे देवते! आप ने कैसे और किस प्रकार इतना विशिष्ट एवं विपुल यश प्राप्त किया?— मैं यही जानना चाहता हूँ। कृपया बतावें-॥625॥

मैं अपने पूर्व जन्म में दक्षिणा योग्य सङ्घ को प्रतिदिन आठ भिक्षाएँ ही प्रसन्न मन से अपने हाथों से जो दान दिया था-॥626॥

उसी पुण्य-विशेष के परिणामस्वरूप मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी कारण ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी पुण्य के प्रभावस्वरूप मुझे ये मनोवाँछित प्रिय भोग-उपभोग प्राप्त होते रहते हैं॥627॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥628॥

''अहं तया बहुतरे भिक्खू, सञ्ञते ब्रह्मचारयो।
तप्पेसिं अन्नपानेन, पसन्ना सेहि पाणिभि॥629॥
''तया बहुतरं दत्वा, हीनकायूपगा अहं।
कथं त्वं अप्पतरं दत्वा, विसेसं विपुलमज्झगा।
देवते पुच्छिताचिक्ख, किस्स कम्मस्सिदं फलं'' ति॥630॥
''मनोभावनीयो भिक्खु, सन्दिट्ठो मे पुरे अहु।
ताहं भत्तेन निमन्तेसिं, रेवतं अत्तनट्ठमं॥631॥
''सो मे अत्थपुरेक्खारो, अनुकम्पाय रेवतो।
सङ्घे देहीति मंवोच, तस्साहं वचनं करिं॥632॥
''सा दक्खिणा सङ्घगता, अप्पमेय्ये पतिट्ठिता।
पुग्गलेसु तया दिन्नं, न तं तव महप्फलं'' ति॥633॥

संस्कृतच्छाया- अहं त्वत्तः बहुतरान् भिक्षून्, संयतान् ब्रह्मचारिणः।
अतर्पयम् अन्नपानेन, प्रसन्ना सा इह पाणिभ्याम्॥629॥
त्वत्तः बहुतरान् दत्वा, हीनकायोपगा अहम्।
कथं त्वम् अल्पतरं दत्वा, विशेषं विपुलमध्यगा।
देवते पृष्टाऽऽचक्षस्व, कस्य कर्मण इदं फलम्'' इति॥630॥
मनोभावनीयः भिक्षुः, सन्दृष्टः मया पुरा अभूत्।
तमहं भक्त्या न्यमन्त्रयम्, रेवतम् आत्मना अष्टमम्॥631॥
सः मे अर्थं पुरस्कृत्य, अनुकम्पया रैवतः।
सङ्घाय देहि इति मामवोचत्, तस्याहं वचनम् अकरवम्॥632॥
सा दक्षिणा सङ्घगता, अप्रमेये प्रतिष्ठिता।
पुद्गलेषु त्वया दत्तम्, न तत् तव महाफलम्'' इति॥633॥

हिन्दी- देवि! मैंने आपसे अधिक संयत भिक्षुओं एवं ब्रह्मचारियों को उस समय में प्रसन्नचित्त हो अपने हाथों से अन्न-पान का दान किया था॥629॥

मैं आपसे अधिक दान करने के बाद भी हीन काया में उत्पन्न हुई हूँ। आप मेरी अपेक्षा अल्प दान करके भी कैसे इस उच्च योनि में उत्पन्न हो पायी? हे देवते! मेरा आपसे यही प्रश्न है कि आपके किस कर्म का यह फल है? स्पष्ट करें-॥630॥

मैंने पूर्व में कभी मनभावन भिक्षु रेवत को देखा। उनको तथा उन सहित आठ अन्य भिक्षुओं को मैनें भोजन के लिये अपने घर पर निमन्त्रित किया॥631॥

परन्तु, उनने मुझ पर अनुकम्पा करते हुए, मेरा हित देख कर मुझको यह आदेश दिया कि तुम यह निमन्त्रण सङ्घ को दो। तब मैंने उनके इस आदेश का पालन किया॥632॥

इस प्रकार सङ्घ के प्रति दी गयी मेरी वह दक्षिणा अप्रमेय हो गयी। इसके विपरीत, तुम्हारे द्वारा जो दान किया गया वह तुम्हारे लिए विशेष फलदायी नहीं हुअ॥633॥

''इदानेवाहं जानामि, सङ्घे दिन्नं महप्फलं।
साहं गन्त्वा मनुस्सत्तं, वदञ्ञू वीतमच्छरा।
सङ्घे दानानि दस्सामि, अप्पमत्ता पुनप्पुनं'' ति॥634॥
''का एसा देवता भद्दे, तया मन्तयते सह।
सब्बे देवे तावतिंसे, वण्णेन अतिरोचती'' ति॥635॥
''मनुस्सभूता देविन्द, पुब्बे मानुसके भवे।
सहभरिया च मे आसि, भगिनी च कनिट्ठिका।
सङ्घे दानानि दत्वान, कतपुञ्ञा विरोचती'' ति॥636॥
''धम्मेन पुब्बे भगिनी, तया भद्दे विरोचति।
यं सङ्घम्हि अप्पमेय्ये, पतिट्ठापेसि दक्खिणं॥637॥
''पुच्छितो हि मया बुद्धो, गिज्झकूटम्हि पब्बते।
विपाकं संविभागस्स, यत्थ दिन्नं महप्फलं॥638॥

संस्कृतच्छाया- एतावद् एव अहं जानामि, सङ्घे दत्तं महाफलम्।
साहं गत्वा मनुष्यत्वम्, वदान्या वीतमत्सरा।
सङ्घाय दानानि दास्यामि, अप्रमत्ता पुनः पुनः'' इति॥634॥
का एषा देवता भद्रे, त्वया मन्त्रयते सह।
सर्वान् देवान् त्रायस्त्रिंशान्, वर्णेन अतिरोचते'' इति॥635॥
मनुष्यभूता देवेन्द्र, पूर्वे मानुष्यके भवे।
सहभार्या च मे आसीत्, भगिनी च कनिष्ठिका।
सङ्घाय दानानि दत्वा, कृतपुण्या विरोचते'' इति॥636॥
धर्मेण पूर्वं भगिनी, त्वया भद्रे विरोचते।
यत् सङ्घे अप्रमेये, प्रतिष्ठापयसि दक्षिणाम्॥637॥
पृष्टः हि मया बुद्धः, गृध्रकूटे पर्वते।
विपाकं संविभागस्य, यत्र दत्तं महाफलम्॥638॥

हिन्दी- अब मैंने जान लिया है कि सङ्घ के प्रति दिया गया दान ही महाफलदायी होता है। मैं जब पुनः मानव लोक में जाऊँगी तो उदारभाव से सङ्घ को ही बारम्बार दान किया करूँगी॥634॥

भद्रे! यह देवता कौन हैं, जिनके साथ अपका संवाद हो रहा था। ये तो अपनी वर्णाभा से त्रायस्त्रिंश वासी समस्त देवताओं को अभिभूत कर रही हैं? ॥635॥

हे देवेन्द्र! पूर्व में मेरे मनुष्य जन्म में यह मेरी सहपत्नी और छोटी बहन थी। सङ्घ के प्रति दानादि पुण्य-कर्म करके आज यह ऐसी शोभायमान हैं॥636॥

भद्रे! धर्मपालन से ही तुम्हारी बहन इतनी शोभायमान है। इन्होनें अप्रमेय सङ्घ के प्रति जो दानकर्म किया यह उसी का सुफल है॥637॥

एक बार मैंने गृध्रकूट पर्वत पर विराजमान भगवान् बुद्ध से यह प्रश्न किया था कि कहाँ और किस प्रकार किया गया दान अतिशय फलदायी होता है?॥638॥

''यजमानानं मनुस्सानं, पुञ्ञपेक्खान पाणिनं।
करोतं ओपधिकं पुञ्ञं, यत्थ दिन्नं महप्फलं॥639॥
''तं मे बुद्धो वियाकासि, जानं कम्मफलं सकं।
विपाकं संविभागस्स, यत्थ दिन्नं महप्फलं॥640॥
''चत्तारो च पटिपन्ना, चत्तारो च फले ठिता।
एस सङ्घो उजुभूतो, पञ्ञासीलसमाहितो॥641॥
''यजमानानं मनुस्सानं, पुञ्ञपेक्खान पाणिनं।
करोतं ओपधिकं पुञ्ञं, यत्थ दिन्नं महप्फलं॥642॥
''एसो हि सङ्घो विपुलो महग्गतो, एसप्पमेय्यो उदधीव सागरो।
एते हि सेट्ठा नरवीरसावका, पभङ्करा धम्ममुदीरयन्ति॥643॥

संस्कृतच्छाया- यजमानानां मनुष्याणाम्, पुण्यप्रेक्षिणां प्राणिनाम्।
कृतम् औपाधिकं पुण्यम्, यत्र दत्तं महाफलम्॥॥639॥
तन्मे बुद्धो व्यकार्षीत्, ज्ञानं कर्मफलं स्वकम्।
विपाकं संविभागस्य, यत्र दत्तं महाफलम्॥640॥
चत्वारश्च प्रतिपन्नाः, चत्वारश्च फले स्थिताः।
एष सङ्घः ऋजुभूतः, प्रज्ञाशीलसमाहितः॥641॥
यजमानानां मनुष्याणाम्, पुण्यप्रेक्षिणां प्राणिनाम्।
कृतम् औपाधिकं पुण्यम्, यत्र दत्तं महाफलम्॥642॥
एषः हि सङ्घः विपुलः महद्व्रतः, एष अप्रमेय उदधिषु सागरः।
एते हि श्रेष्ठाः नरवीरश्रावकाः, प्रभाकराः धर्ममुदीरयन्ति॥643॥

हिन्दी- पर लोक प्राप्ति हेतु यजमान पुरुषों व पुण्यापेक्षी प्राणियों को कौन सा दान करना चाहिये, जिसके करने से अतिशय पुण्य प्राप्त होता है? ॥639॥

भगवान् बुद्ध ने स्वज्ञान के आधार पर, मुझको उस दान-पात्र के विषय में विस्तार से बताया जिसको किया हुआ दान अतिशय फलदायी होता है॥640॥

चार मार्ग प्रतिपन्न एवं चार फलों में प्रतिष्ठित– इस प्रकार सरल जीवनचर्या वाले एवं प्रज्ञा तथा सदाचार से युक्त ये आठ पुद्गल 'सङ्घ' कहलाते हैं।॥641॥

पर लोक हेतु पुण्यापेक्षी यजमान मनुष्यों को कौन सा दान देना चाहिये, जिसके करने से अधिक से अधिक पुण्य प्राप्त हो? ॥642॥

यह अति उच्चस्थान प्राप्त सङ्घ वैसे ही अप्रमेय(अतुलनीय) है जैसे विशाल जलराशिवाला समुद्र। इस सङ्घ के श्रेष्ठ नरवीरश्रावक संसार को आलोकित करते हुए धर्मदेशना करते हैं॥643॥

''तेसं सुदिन्नं सुहुतं सुयिट्ठं, ये सङ्घमुद्दिस्स ददन्ति दानं।
सा दक्खिणा सङ्घगता पतिट्ठिता, महप्फला लोकविदून वण्णिता॥644॥
''एतादिसं यञ्ञमनुस्सरन्ता, ये वेदजाता विचरन्ति लोके।
विनेय्य मच्छेरमलं समूलं, अनिन्दिता सग्गमुपेन्ति ठानं'' ति॥645॥

दद्दल्लविमानं छट्ठं।

7. पेसवतीविमानवत्थु

''फलिकरजतहेमजालछन्नं, विविधचित्रतलमद्दसं सुरम्मं।
ब्यम्हं सुनिम्मितं तोरणूपपन्नं, रुचकुपकिण्णमिदं सुभं विमानं॥646॥
''भाति च दस दिसा नभेव सुरियो, सरदे तमोनुदो सहस्सरंसी।
तथा तपतिमिदं तव विमानं, जलमिव धूमसिखो निसे नभग्गे॥647॥
''मुसतीव नयनं सतेरताव, आकासे ठपितमिदं मनुञ्ञं।
वीणामुरजसम्मताळघुट्ठं, इद्धं इन्दपुरं यथा तवेदं॥648॥

संस्कृतच्छाया- तेषां सुदत्तं सुहुतं स्विष्टम्, ये सङ्घमुद्दिश्य ददते दानम्।
सा दक्षिणा सङ्घगता प्रतिष्ठिता, महाफला लोकविदाम् वर्णिता॥644॥
एतादृशं यज्ञमनुसरन्तः, ये वेदजाता विचरन्ति लोके।
विनीय मात्सर्यमलं समूलम्, अनिन्दिताः स्वर्गमुपयान्ति स्थानम्'' इति॥645॥
स्फटिकरजतहेमजालच्छन्नं, विविधचित्रतलमदर्शं सुरम्यम्।
विमानं सुनिर्मितं तोरणोपपन्नम्, रुचकोपकीर्णमिदं शुभं विमानम्॥646॥
भाति च दशसु दिक्षु नभसि इव सूर्यः, शरदि तमोनुत् सहस्ररश्मिः।
तथा तपति इदं तव विमानम्, ज्वलन्निव धूमशिखः निशायां नभसोऽग्रे॥647॥
मुष्णातीव नयनं शतह्रद इव, आकाशे स्थापितमिदं मनोज्ञम्।
वीणामुरजसम्यक्तालघुष्टम्, इद्धमिन्द्रपुरं यथा तवेदम्॥648॥

हिन्दी- दानादि
उन लोगों का दिया हुआ यह दान ही श्रेष्ठ हवन तथा यज्ञ कहलाता है जो सङ्घ को उद्देश्य करके कर्म करते हैं। सङ्घ को दी गई वह दक्षिणा ही लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करती है। विद्वानों ने भी इसी दक्षिणा को अतिशय फलदायनी कहा है।॥644॥

ऐसे यज्ञ का अनुसरण करते हुए जो ज्ञानी संसार में जीवन निर्वाह करते हैं, वे ही अपने मात्सर्यमल का समूल त्याग कर मृत्योपरान्त स्वर्गस्थान प्राप्त करते हैं॥645॥

स्फटिक, रजत, सुवर्णजालादि से आवृत, विविध दर्शनीय चित्रों से चित्रित तथा उचित विधि से निर्मित व अनेक तोरणों (बहिर्द्वारों) तथा सुन्दर उपकरणों(साधनों) से सम्पन्न आपका यह विमान- ॥646॥

दशों दिशाओं में उसी प्रकार भासित हो रहा है, जैसे शरद ऋतु में तम(अन्धकार) नाशक, सहस्रकिरणों वाला सूर्य आकाश में शोभित हुआ करता है। या जैसे रात्रि में प्रज्वलित अग्नि आकाश के अग्रभाग में शोभित होती है वैसे ही आकाश में आपका यह विमान शोभित हो रहा है॥647॥

आकाशस्थित, मनमोहक आपका यह प्रदीप्त विमान हमारे नेत्रों में बिजली सी चमक पैदा कर रहा है। साथ ही वीणा, मृदङ्ग(पखाबज) आदि सम्यक्ताल वाद्ययन्त्रों की सरस ध्वनि भी समृद्ध इन्द्रपुरी के समान आपके इस विमान में, निरन्तर गुँजायमान है॥648॥

''पदुमकुमुदुप्पलकुवलयं, योधिक बन्धुकनोजका च सन्ति।
सालकुसुमितपुप्फिता असोका, विविधदुमग्गसुगन्धसेवितमिदं॥649॥
''सळललबुजभुजक संयुत्ता, कुसकसुफुल्लितलतावलम्बिनीहि।
मणिजालसदिसा यसस्सिनी, रम्मा पोक्खरणी उपट्ठिता ते॥650॥
''उदकरुहा च येत्थि पुप्फजाता, थलजा ये च सन्ति रुक्खजाता।
मानुसकामानुस्सका च दिब्बा, सब्बे तुय्हं निवेसनम्हि जाता॥651॥
''किस्स संयमदमस्सयं विपाको, केनासि कम्मफलेनिधूपपन्ना।
यथा च ते अधिगतमिदं विमानं, तदनुपदं अवचासिळारपम्हे'' ति॥652॥
''यथा च मे अधिगतमिदं विमानं, कोञ्चमयूरचकोर सङ्घचरितं।
दिब्य पिलवहंसराजचिण्णं, दिजकारण्डवकोकिलाभिनदितं॥653॥
''नानासन्तानकपुप्फरुक्खविविधा, पाटलिजम्बुअसोकरुक्खवन्तं।
यथा च मे अधिगतमिदं विमानं, तं ते पवेदयामि सुणोहि भन्ते॥654॥

संस्कृतच्छाया- पद्मकुमुदोत्पलकुवलयम्, यूथिकाबन्धूकनोजकाश्च सन्ति।
सालकुसुमितपुष्पिताः अशोकाः, विविधद्रुमग्नसुगन्धसेवितमिदम्॥649॥
सलिलाम्बुजभुजकसंयुक्ता, कुशकसुफुल्लितलतावलम्बिनी हि।
मणिजालसदृशी यशस्विनी, रम्या पुष्करिणी उपस्थिता ते॥650॥
उदकरुहाणि च यानि सन्ति पुष्पजातानि, स्थलजानि यानि च सन्ति वृक्षजातानि।
मानुष्यकाणि अमानुष्यकाणि च दिव्यानि, सर्वाणि तुभ्यं निवेशने जातानि॥651॥
कस्य संयमदमस्य अयं विपाकः, केनासि कर्मफलेनेहोपपन्ना।
यथा च त्वया अधिगतमिदं विमानम्, तदनुपदम् वद आरालपक्ष्मे'' इति ॥652॥
यथा च मे अधिगतमिदं विमानम्, क्रौञ्चमयूरचकोरसङ्घचरितम्।
दिव्यकोकिलहंसराजचीर्णम्, द्विजकारण्डवकोकिलाभिनादितम्॥653॥
नानासन्तानकपुष्पवृक्षविविधम्, पाटलजम्बू-अशोकवृक्षवृन्तम्।
यथा च मे अधिगतमिदं विमानम्, तत् ते प्रवेदयामि श्रृणु भदन्त॥654॥

हिन्दी- आपके विमान में पद्म, कुमुद, उत्पल, कुवलय, यूथिका(जूही), बन्धुक(दुपहरिया) एवं नोजक आदि पुष्पवृक्ष लगे हुए हैं। साथ ही, पुष्पित एवं कुसुमित साल तथा अशोक वृक्ष आदि विविध सुगन्धित वृक्ष भी आपके विमान में विद्यमान हैं॥649॥

आपके इस विमान में सरल लबुज(कटहल), भुजक(देवलोक का वृक्षविशेष) आदि वृक्षों से युक्त, कुश एवं विविध पुष्पित लताओं से युक्त, है यशस्विनि! मणिरत्नों से जालावृत एक रम्य पुष्करिणी भी विद्यमान है॥650॥

जल, स्थल, भूलोक या देवलोक में उत्पन्न होने वाले समस्त वृक्ष भी आपके इस विमान में उत्पन्न हुए दिखायी पड़ रहे हैं॥651॥

उदार नेत्रपक्ष्मे! आपके किस संयम एवं दम का या किस कर्म का यह पुण्य-फल है? कि आप इस लोक में उत्पन्न हुईं? और यह विमान आपको प्राप्त हुआ? —कृपया हमें आप क्रमशः स्पष्ट करें-॥652॥

यह विमान मुझको कैसे प्राप्त हुआ, जिसमें मधुर ध्वनि वाले दिव्य क्रौञ्च, मयूर, चकोर, कोयल तथा राजहंस आदि पक्षिसङ्घ बहुलता में रहते हैं॥653॥

''मगधवरपुरत्थिमेन, नाळकगामो नाम अत्थि भन्ते।
तत्थ अहोसिं पुरे सुणिसा, पेसवतीति तत्थ जानिंसु ममं॥655॥
''साहमपचितत्थधम्मकुसलं, देवमनुस्सपूजितं महन्तं।
उपतिस्सं निब्बुतमप्पमेय्यं, मुदितमना कुसुमेहि अब्भुकिरिं॥656॥
''परमगतिगतञ्च पूजयित्वा, अन्तिमदेहधरं इसिं उळारं।
पहाय मानुसकं समुस्सयं, तिदसगता इध मावसामि ठानं'' ति॥657॥
''पीतवत्थे पीतधजे, पीतालङ्कारभूसिते।
पीतन्तराहि वग्गूहि, अपिळन्धाव सोभसि॥658॥
''का कम्बुकायूरधरे, कञ्चनावेळभूसिते।
हेमजालकसञ्छन्ने, नानारतनमालिनी॥659॥

पेसवतीविमानं सत्तमं।

संस्कृतच्छाया- मगधपुरवरस्थितः, नालकग्रामनामा अस्ति भदन्त।
तत्र अभूवं पुरा स्नुषा, पेसवती इति तत्र जानीहि माम्॥655॥
साहमपचितम् अत्र धर्मकुशलम्, देवमनुष्यपूजितं महान्तम्।
उपतिष्यं निर्वृतमप्रमेयम्, मुदितमनाः कुसुमैः अभ्यवाकिरम्॥656॥
''परमगतिगतं च पूजयित्वा, अन्तिमदेहधरम् ऋषिम् उदारम्।
प्रहाय मानुषकं समुच्छ्रयम्, त्रिदशगता इह आवसामि स्थानम्'' इति॥657॥
''पीतवस्त्रे पीतध्वजे, पीतालङ्कारभूषिते।
पीतान्तरैः वर्गैः, अपिनद्धा इव शोभसे॥658॥
''का कम्बुकेयूरधरे, काञ्चनावलिभूषिते।
हेमजालकसंछन्ने, नानारत्नमालिनि॥659॥

हिन्दी- नाना जातियों के पुष्पवृक्ष तथा पाढल,जामुन अशोक आदि विविध काष्ठबहुल वृक्ष भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं;और भन्ते! यह विमान मुझे किसप्रकार अधिगत हुआ, इस विषय में मैं आपको बताती हुँ,आप सुनें॥654॥

भन्ते! पूर्व में मैं मगध जनपद के नालकग्राम नामक श्रेष्ठ नगर में किसी घर में पुत्रवधू के रूप में प्रादुर्भूत हुई,वहाँ मैं पेसवती नाम से जानी जाती थी॥655॥

देवमनुष्यों द्वारा पूजित, अप्रमेय निर्वाण को साक्षात् किये हुए, महान् धर्मकुशल, स्थविर उपतिष्य (सारिपुत्र) के दर्शन किये तथा पवित्र मन से उनके चरणों पर पुष्प अर्पित कर उनकी पूजा की।॥656॥

उन परमगति प्राप्त, उदार ऋषि व अन्तिम देहधारी की ससम्मान पूजा कर तथा उनके आदेश से धर्मसाधना करते हुए मैंने समस्त मानुषी व लौकिक कामभोगों का त्याग कर दिया। जिस के परिणामस्वरूप आज मैं इस देवलोक में वास कर रही हूँ॥657॥

देवि! आप पीतवस्त्र धारण की हुई हैं, आप की ध्वजा भी पीत ही है, आप पीत अलङ्कारों से विभूषित हैं, तथा आप पीतवर्ण के अतिरिक्त अन्य सुन्दर साधनों से सजी हुई न होने पर भी इन्हीं के समान शोभित हो रही हैं॥658॥

सुवर्णनिर्मित केयूर(बाजूबन्द) धारण किये, सुनहरे फूलों का गजरा पहने हुई, सुवर्णजालवृत एवं विविध रत्नमालाओं से अलंकृत आप कौन हैं? ॥659॥

8. मल्लिकाविमानवत्थु

''सोवण्णमया लोहितङ्गमया च, मुत्तामया वेळुरियमया च।
मसारगल्ला सहलोहितङ्गा, पारेवतक्खीहि मणीहि चित्तता॥660॥
''कोचि कोचि एत्थ मयूरसुस्सरो, हंसस्स रञ्ञो करवीकसुस्सरो।
तेसं सरो सुय्यति वग्गुरूपो, पञ्चङ्गिकं तूरियमिवप्पवादितं॥661॥
''रथो च ते सुभो वग्गु, नानारतनचित्तितो।
नानावण्णाहि धातूहि, सुविभत्तोव सोभति॥662॥
''तस्मिं रथे कञ्चनबिम्बवण्णे, या त्वं ठिता भाससि मं पदेसं।
देवते पुच्छिताचिक्ख, किस्स कम्मस्सिदं फलं'' ति॥663॥
''सोवण्णजालं मणिसोण्णचित्तितं, मुत्ताचितं हेमजालेन छन्नं।
परिनिब्बुते गोतमे अप्पमेय्ये, पसन्नचित्ता अहमाभिरोपयिं॥664॥
''ताहं कम्मं करित्वान, कुसलं बुद्धवण्णितं।
अपेतसोका सुखिता, सम्पमोदामनामया'' ति॥665॥

मल्लिकाविमानं अट्ठमं।

संस्कृतच्छाया- ''सौवर्णमया लोहिताङ्गमया च, मुक्तामया वैदूर्यमया च।
मसार(=हीरक)गला सहलोहिताङ्गा, पारावताक्षि सदृशैः मणिभिः चित्रिता॥660॥
''क्वचित् क्वचित् एतन्मयूरसुस्वरः, हंसस्य राज्ञः करवीरकसुस्वरः।
तेषां स्वरः श्रूयते वल्गुरूपः, पञ्चाङ्गिकं तूर्यमिव प्रवादितम्॥661॥
''रथश्च ते शुभः वल्गुः, नानारत्नचित्रितः।
नानावर्णैः धातुभिः, सुविभक्त इव शोभते॥662॥
''तस्मिन् रथे काञ्चनविम्बवर्णे, या त्वं स्थिता भाससे मम प्रदेशम्।
देवते पृष्टाऽऽचक्षस्व, कस्य कर्मण इदं फलम्'' इति॥663॥
''सौवर्णजालं मणिस्वर्णचित्रितम्, मुक्ताचितं हेमजालेनच्छन्नम्।
परिनिर्वृते गौतमे अप्रमेये, प्रसन्नचित्ता अहमभ्यरोपयम्॥664॥
''तदहं कर्म कृत्वा, कुशलं बुद्धवर्णितम्।
अपेतशोका सुखिता, सम्प्रमोदे अनामया'' इति॥665॥

हिन्दी- आपके इस विमान में कहीं सुनहरे, कहीं लाल, कहीं मोतियों तथा कहीं वैदूर्य(मणिरत्न) से बने, कहीं मसारगल्ल (हीरा) से तो कहीं कपोत के नेत्रों के समान लाल वर्ण की मणियों से नानाविध चित्र चित्रित हैं॥660॥

यहाँ कहीं कोई मयूर के समान स्वर वाला, कहीं राजहंस के समान मधुरस्वर वाला, कहीं कोई कोयल के समान कर्णप्रिय स्वर वाले पञ्चाङ्गिक वाद्य का मनोरम स्वर अनायास ही सुनायी पड़ रहा है॥661॥

आपका यह शुभ रथ भी सुन्दर है, यह विविध रत्नों से चित्रित है तथा नाना वर्ण की धातुओं से निर्मित होने के कारण सुविभक्त(पृथक्-पृथक्) रूप प्रतीत होता है॥662॥

देवि! कृपया वतावें कि इस सुवर्णनिर्मित रथ में जहाँ आप विराजमान हैं, यह आपके किस पुण्यकर्म का फल है?॥663॥

9. विसालक्खिविमानवत्थु

''का नाम त्वं विसालक्खि, रम्मे चित्तलतावने।
समन्ता अनुपरियासि, नारीगणपुरक्खता॥666॥
''यदा देवा तावतिंसा, पविसन्ति इमं वनं।
सयोग्गा सरथा सब्बे, चित्रा होन्ति इधागता॥667॥
''तुय्हञ्च इध पत्ताय, उय्याने विचरन्तिया।
काये न दिस्सती चित्तं, केन रूपं तवेदिसं।
देवते पुच्छिताचिक्ख, किस्स कम्मस्सिदं फलं'' ति॥॥668॥
''येन कम्मेन देविन्द, रूपं मय्हं गती च मे।
इद्धि च आनुभावो च, तं सुणोहि पुरिन्दद॥669॥

संस्कृतच्छाया- ''का नाम त्वं विशालाक्षि, रम्ये चित्रलतावने।
समन्तात् अनुपरियासि, नारीगणपुरस्कृता॥666॥
''यदा देवाः त्रायस्त्रिंशाः, प्रविशन्ति इदं वनम्।
सयुग्याः सरथाः सर्वे, चित्राः भवन्ति इहागताः॥667॥
''तुभ्यं च इह प्राप्तये, उद्याने विचरन्ती या।
काये न दृश्यते चित्तम्, केन रूपं तव ईदृशम्।
देवते पृष्टाऽऽचक्षस्व कस्य कर्मण इदं फलम्'' इति॥668॥
''येन कर्मणा देवेन्द्र, रूपं मह्यं गतिश्च मे।
ऋद्धिश्च आनुभावश्च, तं श्रृणु पुरन्दर॥669॥

हिन्दी- उन अप्रमेय(अतुल) भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध के महापरिनिर्वाणोपरान्त, मैंने प्रसन्नमन से सुवर्णजालावृत, स्थान स्थान पर मणिमुक्ता या रत्नों एवं सौवर्ण रंग से चित्रित एक दर्शनीय स्तूप, का निर्माण कराया॥664॥

मैं उसी बुद्धवर्णित शुभ व कुशल कर्म करके शोकरहित, स्वस्थ एवं सुखित भाव से इस विमान में आनन्दानुभव कर रही हूँ॥665॥

हे विशालाक्षि! आप का क्या नाम है? इस रमणीय चित्रलतावन में अप्सरासङ्घ से घिरी हुई आप किस कारण से विचरण कर रही हैं?॥666॥

जब त्रायस्त्रिंशवासी देवता अपने अपने रथों में बैठकर इस वन(उद्यान) में प्रविष्ट होते हैं तो वे यहाँ आकर चित्रवत हो जाते हैं॥667॥

इस उद्यान में विचरण करती हुई आपके शरीर की शोभा के तुल्य अन्य किसी की शोभा नहीं दिखती। आपने अपने शरीर का ऐसा सुन्दर वर्ण किस कर्म विशेष से प्राप्त किया? हे देवि! आप स्पष्ट करें-॥668॥

हे देवेन्द्र! मेरे जिस कर्मविशेष के प्रभाव से मुझको यह रूप, गति तथा यह समृद्धि एवं यह विशिष्ट प्रताप प्राप्त हुआ है, वह सब, आपको बता रही हूँ। कृपया सुनें-॥669॥

''अहं राजगहे रम्मे, सुनन्दा नामुपासिका।
सद्धा सीलेन सम्पन्ना, संविभागरता सदा॥670॥
''अच्छादनञ्च भत्तञ्च, सेनासनं पदीपियं।
अदासिं उजुभूतेसु, विप्पसन्नेन चेतसा॥671॥
''चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।
पाटिहारियपक्खञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं॥672॥
''उपोसथं उपवसिस्सं, सदा सीलेसु संवुता।
सञ्ञमा संविभागा च, विमानं आवसामहं॥673॥
''पाणातिपाता विरता, मुसावादा च सञ्ञता।
थेय्या च अतिचारा च, मज्जपाना च आरका॥674॥
''पञ्चसिक्खापदे रता, अरियसच्चान कोविदा।
उपासिका चक्खुमतो, गोतमस्स यसस्सिनो॥675॥

संस्कृतच्छाया- ''अहं राजगृहे रम्ये, सुनन्दा नाम्नी उपासिका।
श्रद्धया शीलेन सम्पन्ना, संविभागरता सदा॥670॥
''आच्छादनं च भक्तञ्च, शयनासनं प्रदीपिकाम्।
अदाम् ऋजुभूतेभ्यः, विप्रसन्नेन चेतसा॥671॥
''चतुर्दशीं पञ्चदशीम्, या च पक्षस्य अष्टमी।
प्रातिहार्यपक्षं च, अष्टाङ्गसुसमागतम्॥672॥
''उपोसथम् उपावशिष्यम्, सदा शीलेषु संवृता।
संयमात् संविभागाच्च, विमानम् आवसमहम्॥673॥
''प्राणातिपातात् विरता, मृषावादाच्च संयता।
स्तेयाच्च अतिचाराच्च, मद्यपानाच्च अरक्ता॥674॥
''पञ्चशिक्षापदे रता, आर्यसत्येषु कोविदा।
उपासिका चक्षुष्मतः, गौतमस्य यशस्विनः॥675॥

हिन्दी- मैं कभी पूर्वजन्म में रमणीय राजगृह नगर की रहने वाली सुनन्दा नामक उपासिका थी। वहाँ मैं सदा श्रद्धाशील सम्पन्न रहती हुई धर्म का पालन करती थी॥670॥

मैं वहाँ श्रमणजनों को निरन्तर ओढ़ने बिछाने के वस्त्र, भोजन, शयनासन, प्रकाश के लिये दीपक आदि प्रसन्नचित्त होकर देती रहती थी॥671॥

चतुर्दशी, पञ्चदशी तथा पक्ष की अष्टमी या प्रातिहार्यपक्ष में अष्टाँगों से युक्त॥672॥

उपोसथव्रत रखती हुई सदा शीलसम्पन्न रहती थी। उस संयम तथा दानयुक्त जीवन के कारण ही आज मुझको इस विमान में यह आवास प्राप्त हुआ है॥673॥

उस समय मैं प्राणातिपात से विरत रहती थी। मृषा(असत्य) भाषण में संयम रखती थी। तथा स्तेय(चोरी), अतिचार(व्यभिचार) एवं मद्यपान से दूर रहती थी॥674॥

''तस्सा मे ञातिकुला दासी, सदा मालाभिहारति।
ताहं भगवतो थूपे, सब्बमेवाभिरोपयिं॥676॥
''उपोसथे चहं गन्त्वा, मालागन्धविलेपनं।
थूपस्मिं अभिरोपेसिं, पसन्ना सेहि पाणिभि॥677॥
''तेन कम्मेन देविन्द, रूपं मय्हं गती च मे।
इद्धी च आनुभावो च, यं मालं अभिरोपयिं॥678॥
''यञ्च सीलवती आसिं, न तं ताव विपच्चति।
आसा च पन मे देविन्द, सकदागामिनी सियं'' ति॥679॥
विसालक्खिविमानं नवमं।

10. पारिच्छत्तकविमानवत्थु

''पारिच्छत्तके कोविळारे, रमणीये मनोरमे।
दिब्बमालं गन्थमाना, गायन्ती सम्पमोदसि॥680॥

संस्कृतच्छाया- ''तस्मात् मे ज्ञातिकुले दासी, सदा मालामभिहरति स्म।
तामहं भगवतः स्तूपे, सर्वामेवाभ्यरोपयम्॥676॥
''उपोसथे चाहं गत्वा, मालागन्धविलेपनम्।
स्तूपे अभ्यरोपयम्, प्रसन्ना सा हि पाणिभ्याम्॥677॥
''तेन कर्मणा देवेन्द्र, रूपं मह्यं गतिश्च मे।
ऋद्धिश्च आनुभावः च, यत् मालाम् अभ्यरोपयम्॥678॥
''यच्च शीलवती आसम्, न तत् तावद् विपच्यते।
आशा च पुनः मे देवेन्द्र, सकृदागामिनी स्याम्'' इति॥679॥
''पारिक्षत्रके कोविदारे, रमणीये मनोरमे।
दिव्यमालां ग्रथमाना, गायन्ती सम्प्रमोदसे॥680॥

हिन्दी- पाँच शिक्षापदों का सतत अभ्यास करती रहती थी। आर्यसत्य-चतुष्टय में निपुण थी। इस प्रकार, चक्षुष्मान् बुद्ध की अप्रमादविहारिणी उपासिका के रूप में प्रसिद्ध हुई। वहाँ कुशल कर्म करती हुई वहाँ से अवकाश प्राप्त कर उस देह से च्युत होकर आज स्वयम्प्रकाश हो इस नन्दन वन में विचरण कर रही हूँ॥675॥

वहाँ मुझको मेरे ज्ञातिकुल(सम्बन्धिजनों) से कोई दासी मालाएँ लाती थीं। उन मालाओं को मैं भगवान् के स्तूप पर चढा देती थी॥676॥

उपोसथ के दिन भी भगवान् के स्तूप पर मैं प्रसन्नचित्त होकर माला एवं धूप आदि गन्ध द्रव्य अपने हाथों से अर्पित करती थी॥677॥

हे देवेन्द्र! स्तूप पर उस माला एवं धूप आदि के अर्पण के प्रभाव से आज मुझको यह सुन्दर वर्ण, दिव्य गति, समृद्धि एवं विपुल तेज प्राप्त हुआ॥678॥

उस जन्म में शील पालन का फल अभी मुझको नहीं मिला है। आशा है कि, उस शीलपालन के प्रभाव से मैं सकृदागामी हो जाऊँ॥679॥

हे मनोरमे! आप इस रमणीय एवं मनोरम पारिजातक वृक्ष के नीचे बैठ कर दिव्य पुष्प मालाओं को गूँथती हुई प्रमुदित मन से गायन कर रही हैं॥680॥

''तस्सा ते नच्चमानाय, अङ्गमङ्गेहि सब्बसो।
दिब्बा सद्दा निच्छरन्ति, सवनीया मनोरमा॥681॥
''तस्सा ते नच्चमानाय, अङ्गमङ्गेहि सब्बसो।
दिब्बा गन्धा पवायन्ति, सुचिगन्धा मनोरमा॥682॥
''विवत्तमाना कायेन, या वेणीसु पिळन्धना॥
तेसं सुय्यति निग्घोसो, तूरिये पञ्चङ्गिके यथा॥683॥
''वटंसका वातधुता, वातेन सम्पकम्पिता।
तेसं सुय्यति निग्घोसो, तूरिये पञ्चङ्गिके यथा॥684॥
''यापि ते सिरस्मिं माला, सुचिगन्धा मनोरमा।
वाति गन्धो दिसा सब्बा, रुक्खो मञ्जूसको यथा॥685॥

संस्कृतच्छाया- ''तस्यां ते नृत्यन्त्याः, अङ्गाङ्गेभ्यः सर्वशः।
दिव्याः शब्दाः निस्सरन्ति, श्रवणीयाः मनोरमाः॥681॥
''तस्यां ते नृत्यन्त्याः, अङ्गाङ्गेभ्यः सर्वशः।
दिव्याः गन्धाः प्रवान्ति, शुचिगन्धाः मनोरमाः॥682॥
''विवर्त्तमाना कायेन, या वेणीषु पिनद्धना॥
तेषां श्रूयते निर्घोषः, तूर्ये पञ्चाङ्गिके यथा॥683॥
''अवतंसकाः वातधुताः, वातेन सम्प्रकम्पिताः।
तेषां श्रूयते निर्घोषः, तूर्ये पञ्चाङ्गिके यथा॥684॥
''यापि ते शिरसि माला, शुचिगन्धा मनोरमा।
वाति गन्धः दिशः सर्वाः, वृक्षः मञ्जूषकात् यथा॥685॥

हिन्दी- इसलिए आपके नृत्य करते समय आपके सर्वस्व अंग से दिव्य ध्वनियाँ निकल रही हैं, जो कि कर्णप्रिय एवं मनोरम है॥681॥

तथा आपके नृत्य करते समय आपके प्रत्येक अंग से दिव्य सुगन्धित वायु निकलती है॥682॥

जब आप अपनी इस काया को इधर उधर घुमाती हैं उस समय आप की वेणी में गुथे हुए अलंकरणों से ऐसी ध्वनियाँ सुनायी देती है जैसे कहीं पञ्चाङ्गिक तूर्य(वाद्ययन्त्र) बज रहे हों॥683॥

आप की वेणी में गुथी हुई पुष्पमाला से तथा वायु द्वारा कँपाये(हिलाने) जाने पर कानों में टंके हुए (पुष्पगुच्छ) से निकली हुई ध्वनि ऐसी प्रतीत होती है मानो कहीं पञ्चाङ्गिक वाद्य बज रहे हों॥684॥

आप के शिर में पहनी हुई माला से भी वैसी ही स्वच्छ एवं मनोरम गन्ध सभी दिशाओं में ऐसे फैलती है जैसे मञ्जूसक(देववृक्ष-पारिजातक) के पुष्पों की गन्ध ॥685॥

''घायसे तं सुचिगन्धं, रूपं पस्ससि अमानुसं।
देवते पुच्छिताचिक्ख, किस्स कम्मस्सिदं फलं'' ति॥686॥
''पभस्सरं अच्चिमन्तं, वण्णगन्धेन संयुतं।
असोकपुप्फमालाहं, बुद्धस्स उपनामयिं॥687॥
''ताहं कम्मं करित्वान, कुसलं बुद्धवण्णितं।
अपेतसोका सुखिता, सम्पमोदामनामया'' ति॥688॥

पारिच्छत्तकविमानं दसमं।
पारिच्छत्तकवग्गो ततियो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं – उळारो उच्छु पल्लङ्को, लता च गुत्तिलेन च।
दद्दल्लपेसमल्लिका, विसालक्खि पारिच्छत्तको।
वग्गो तेन पवुच्चतीति॥

संस्कृतच्छाया- ''जिघ्रसि तं शुचिगन्धम्, रूपं पश्यसि अमानुषम्।
देवते पृष्टाऽऽचक्षस्व, कस्य कर्मण इदं फलम्'' इति॥686॥
''प्रभास्वराम् अर्चिष्मतीम्, वर्णगन्धेन संयुताम्।
अशोकपुष्पमालामहम्, बुद्धस्य उपनयामि॥687॥
''ताहं कर्म कृत्वा, कुशलं बुद्धवर्णितम्।
अपेतशोका सुखिता, सम्प्रमोदे अनामया'' इति॥688॥

तस्योद्दानम् – उदार इक्षुपर्यङ्कः, लता च गुत्तिलेन च।
जाज्वल्यपेसमल्लिका, विशालाक्षि पारिच्छत्रकः।
वर्गस्तेन प्रोच्यते इति॥

हिन्दी- हे देवि! आप इस निर्मल एवं दिव्य गन्ध तथा मानवदुर्लभ रूप का उपभोग कर रही हो! हमारा आपसे यही प्रशन है कि आपको ये अलौकिक भोग किस विशिष्ट पुण्यकर्म के प्रभाव से उपलब्ध हुए हैं?॥686॥

मैंने उस जन्म में, एक चमकीली आभावाली और विशिष्ट वर्ण एवं गन्ध से युक्त अशोक-पुष्पमाला, भगवान् बुद्ध को समर्पित की थी॥687॥

उस बुद्धवर्णित कुशलकर्म के प्रभाव से मैं शोकरहित सुखी एवं स्वस्थ जीवन बिताती हुई यहाँ आमोद-प्रमोद कर रही हूँ॥688॥

29. उदारविमान, 30. इक्षुदायिकाविमान, 31. पर्यङ्कविमान, 32. लताविमान, 33. गुत्तिलविमान, 34. दद्दल्लविमान 35 पेसवतीविमान, 36 मल्लिकाविमान, 37. विशालाक्षिविमान, एवं 38. पारिच्छत्तकविमान।

****

4. मञ्जिट्ठकवग्गो

मञ्जिष्ठकवर्गः

1. मञ्जिट्ठकविमानवत्थु

मञ्जिष्ठकविमानवस्तु

''मञ्जिट्ठके विमानस्मिं, सोण्णवालुकसन्थते।
पञ्चङ्गिके तुरियेन, रमसि सुप्पवादिते॥689॥
''तम्हा विमाना ओरुय्ह, निम्मिता रतनामया।
ओगाहसि सालवनं, पुप्फितं सब्बकालिकं॥690॥
''यस्स यस्सेव सालस्स, मूले तिट्ठसि देवते।
सो सो मुञ्चति पुप्फानि, ओनमित्वा दुमुत्तमो॥691॥
''वातेरितं सालवनं, आधुतं दिजसेवितं।
वाति गन्धो दिसा सब्बा, रुक्खो मञ्जूसको यथा॥692॥
''घायसे तं सुचिगन्धं, रूपं पस्ससि अमानुसं।
देवते पुच्छिताचिक्ख, किस्स कम्मस्सिदं फलं'' ति॥693॥

संस्कृतच्छाया- ''मञ्जिष्ठके विमाने, सुवर्णवालुकासंहिते।
पञ्चाङ्गिके तूर्येण, रमसे सुप्रवादिते॥689॥
''तस्मिन् विमाने आरुह्य, निर्मिता रत्नमये।
अवगाहसे शालवनम्, पुष्पितं सार्वकालिकम्॥690॥
''यस्य यस्यैव शालस्य, मूले तिष्ठसि देवते।
सः सः मुञ्चति पुष्पाणि, आनम्य द्रुमोत्तमः॥691॥
''वातेरितं शालवनम्, आधुतं द्विजसेवितम्।
वाति गन्धः दिशः सर्वाः, वृक्षः मञ्जूषकात् यथा॥692॥
''जिघ्रसि तं शुचिगन्धम्, रूपं पश्यसि अमानुषम्।
देवते पृष्टाऽऽचक्षस्व, कस्य कर्मण इदं फलम्'' इति॥693॥

हिन्दी- देवि! सुवर्णचूर्णलिप्त विमान में बैठकर आप मधुर एवं सुरीले पञ्चाङ्गिक तूर्यवाद्य का आनन्द ले रही हैं॥689॥

आप उस रत्ननिर्मित विमान से उतर कर यदा-कदा सर्वदा फले फूले सालवन में भी जाती हैं॥690॥

हे देवि! आप जिस जिस सालवृक्ष के नीचे बैठती हैं, तब वे वे उत्तम सालवृक्ष झुक कर अपने पुष्प आपको अर्पित करते रहते हैं॥691॥

वह सालवन पक्षियों के कलवर से युक्त रहता है तथा वायु से वहाँ के वृक्षों के पत्ते हिलते रहते हैं। उस समय उस सालवन की सुगन्धित वायु चारों दिशाओं में फैली रहती है जिससे वहाँ के देववृक्ष पारिछत्तक की सुगन्धित वायु चारों और फैली रहती है॥692॥

आप उस सुगन्धित वायु का सेवन करती हुई अमानुष(देव) रूपी दिख रही हैं। यहाँ हमारा आपसे यही प्रश्न है कि आपको ये रूप किस कर्म के प्रभावस्वरूप प्राप्त हुए हैं?॥693॥

''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूता, दासी अयिरकुले अहुं।
बुद्धं निसिन्नं दिस्वान, सालपुप्फेहि ओकिरिं॥694॥
''वटंसकञ्च सुकतं, सालपुप्फमयं अहं।
बुद्धस्स उपनामेसिं, पसन्ना सेहि पाणिभि॥695॥
''ताहं कम्मं करित्वान, कुसलं बुद्धवण्णितं।
अपेतसोका सुखिता, सम्पमोदामनामया'' ति॥696॥

मञ्जिट्ठकविमानं पठमं।

2. पभस्सरविमानवत्थु

''पभस्सरवरवण्णनिभे, सुरत्तवत्थवसने।
महिद्धिके चन्दनरुचिरगत्ते, का त्वं सुभे देवते वन्दसे ममं॥697॥
''पल्लङ्को च ते महग्घो, नानारतनचित्तितो रुचिरो।
यत्थ त्वं निसिन्ना विरोचसि, देवराजारिव नन्दने वने॥698॥

संस्कृतच्छाया-
''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूता, दासी आर्यकुलेऽभवम्।
बुद्धं निषण्णं दृष्ट्वा, शालपुष्पैः अवाकिरम्॥694॥
''अवतंसकं च सुकृतम्, शालपुष्पमयम् अहम्।
बुद्धस्य उपानयम्, प्रसन्ना सा हि पाणिभ्याम्॥695॥
''तदहं कर्म कृत्वा, कुशलं बुद्धवर्णितम्।
अपेतशोका सुखिता, सम्प्रमोदे अनामया'' इति॥696॥
''प्रभास्वरवरवर्णनिभे , सुरक्तवस्त्रवसने।
महर्द्धिके चन्दनरुचिरगात्रे, का त्वं शुभे देवते वन्दसे माम्॥697॥
''पर्यङ्कश्च ते महार्घः, नानारत्नचित्रितो रुचिरः।
यत्र त्वं निषण्णा विरोचसे, देवराज इव नन्दने वने॥698॥

हिन्दी- मैं अपने पूर्वजन्म में मनुष्यलोक में मनुष्यरूप में आकर किसी आर्यकुल में दासी के रूप में कार्य करती थी। कहीं मैंने भगवान् बुद्ध को विराजमान देखकर श्रद्धा के साथ सालपुष्प अर्पित किये॥694॥

साथ ही मैंने प्रसन्नमन से भगवान् बुद्ध को सालपुष्पों का एक गुच्छा अपने हाथों से समर्पित किया॥695॥

उसी पुण्यकर्म के परिणामस्वरूप बुद्धवर्णित कुशल धर्मसाधना करती हुई शोकरहित होकर सुखी एवं स्वस्थ रहती हुई इस दिव्य आनन्द को भोग रही हूँ॥696॥

सुन्दर रंगीले व चमकीले वस्त्रों से सुसज्जित, ऋद्धिसम्पन्न, एवं चन्दनलिप्त गात्र वाली हे देवि! आप कौन हैं जो मेरी वन्दना कर रही हैं?॥697॥

आपका यह मूल्यवान पलंग विविध रत्नों से चित्रित है, और सुन्दर है। इस पर विराजमान आप उसी प्रकार शोभित हो रही हैं जैसे नन्दन वन में बैठे हुए देवराज इन्द्र॥698॥

''किं त्वं पुरे सुचरितमाचरी भद्दे, किस्स कम्मस्स विपाकं।
अनुभोसि देवलोकस्मिं, देवते पुच्छिताचिक्ख।
किस्स कम्मस्सिदं फलं'' ति॥699॥
''पिण्डाय ते चरन्तस्स, मालं फाणितञ्च अददं भन्ते।
तस्स कम्मस्सिदं विपाकं, अनुभोमि देवलोकस्मिं॥700॥
''होति च मेऽनुतापो, अपरद्धं दुक्खितञ्च मे भन्ते।
साहं धम्मं नास्सोसिं, सुदेसितं धम्मराजेन॥701॥
''तं तं वदामि भद्दन्ते, 'यस्स मे अनुकम्पियो कोचि।
धम्मेसु तं समादपेथ', सुदेसितं धम्मराजेन॥702॥
''येसं अत्थि सद्धा बुद्धे, धम्मे च सङ्घरतने।
ते मं अतिविरोचन्ति, आयुना यससा सिरिया॥703॥

संस्कृतच्छाया- ''किं त्वं पुरा सुचरितमाचरः भद्रे, कस्य कर्मणो विपाकम्।
अनुभवसि देवलोके, देवते पृष्टाऽऽचक्षस्व।
कस्य कर्मण इदं फलम्'' इति॥699॥
''पिण्डाय ते चरते, मालां फाण्टं च अदां भदन्त।
तस्य कर्मण इदं विपाकम्, अनुभवामि देवलोके॥700॥
''भवति च मे अनुतापः, अपराद्धं दुःखितं च मे भदन्त।
साऽहं धर्मं न अश्रौषम्, सुदेशितं धर्मराजेन॥701॥
''तत् त्वां वदामि भद्रं ते, 'यस्य मे अनुकम्प्यः कश्चित्।
धर्मेषु तं समादापय', सुदेशितं धर्मराजेन॥702॥
''येषाम् अस्ति श्रद्धा बुद्धे, धर्मे च सङ्घरत्ने।
ते मह्यम् अतिविरोचन्ते, आयुषा यशसा श्रिया॥703॥

हिन्दी- देवि भद्रे! तुमने पूर्व में ऐसा कौन सा सत्कर्म किया था कि आज इस देवलोक में यह दिव्य सुख भोग रही हो। देवि! कृपया मुझको कहें कि आपको प्राप्त यह सुखभोग किस कर्म का फल है?॥699॥

भन्ते! आपके भिक्षाचर्या करते समय मैंने कभी आप को माला एवं फाणित(कच्ची खाण्ड=सीरा) का दान दिया था। उसी कर्म का यह विपाक(फल) है कि मैं यहाँ इस देवलोक में दिव्य आनन्द भोग रही हूँ॥700॥

भन्ते! मुझको अनुताप और दुःख होता है कि मैंने अपराध ही किया कि उन धर्मराज की सुदेशना का श्रवण नहीं किया॥701॥

भन्ते! जो-जो मेरी अनुकम्पा के पात्र हैं, उनको यही कहती हूँ कि वे धर्मराज द्वारा उपदिष्ट धर्म का पालन अवश्य करें॥702॥

जिनकी बुद्ध, धर्म एवं श्रेष्ठ सङ्घ(त्रिरत्न) में श्रद्धा है वे मुझसे आयु, यश एवं सम्पत्ति— तीनों में श्रेष्ठ हैं॥703॥

''पतापेन वण्णेन उत्तरितरा,
अञ्ञे महिद्धिकतरा मया देवा'' ति॥704॥

पभस्सरविमानं दुतियं।

3. नागविमानवत्थु

''अलङ्कता मणिकञ्चनाचितं, सोवण्णजालचितं महन्तं।
अभिरुय्ह गजवरं सुकप्पितं, इधागमा वेहायसं अन्तलिक्खे॥705॥
''नागस्स दन्तेसु दुवेसु निम्मिता, अच्छोदका पदुमिनियो सुफुल्ला।
पदुमेसु च तुरियगणा पभिज्जरे, इमा च नच्चन्ति मनोहरायो॥706॥
''देविद्धिपत्तासि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥707॥
''बाराणसियं उपसङ्कमित्वा, बुद्धस्सहं वत्थयुगं अदासिं।
पादानि वन्दित्वा छमा निसीदिं, वित्ता चहं अञ्जलिकं अकासिं॥708॥

संस्कृतच्छाया- ''प्रतापेन वर्णेन उत्कृष्टतराः,
अन्ये महाहितकराः मया देवाः'' इति॥704॥
''अलङ्कृता मणिकाञ्चनाचितम्, सौवर्णजालचितं महान्तम्।
अभिरुह्य गजवरं सुकल्पितम्, इहागमः विहायसम् अन्तरिक्षे॥705॥
''नागस्य दन्तयोः द्वयोः निर्मिताः, अच्छोदकाः पद्मिन्यः सुफुल्लाः।
पद्मेषु च तूर्यगणाः प्रविभिदि, इमाश्च नृत्यन्ति मनोहराः॥706॥
''देवर्द्धिं प्राप्तासि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥707॥
''वाराणसीम् उपसङ्क्रम्य, बुद्धायाहं वस्त्रयुगम् अदाम्।
पादौ वन्दित्वा क्षमां न्यषीदम्, वित्तानि च अहम् अञ्जलिकम् अकार्षम्॥708॥

हिन्दी- ऐसे प्राणि अपने प्रताप एवं वर्ण से भी मुझसे अधिक श्रेष्ठ एवं ऋद्धिसम्पन्न हैं॥704॥

सुवर्ण एवं मणिरत्नों से अलङ्कृत एवं सुवर्णजालावृत, गजाकार और भलीभाँति निर्मित इस आकाशचारी महान विमान में विराजमान आप शोभित हो रही हैं ॥705॥

इस गजविमान के दोनों दाँतों पर स्वच्छ जलवाली सुपुष्पित पद्मिनियाँ निर्मित हैं। तथा पद्मपुष्पों में विविध तूर्य(वाद्ययन्त्र) तथा मनोहर नृत्य करती अप्सराएँ स्पष्ट रूपेण अङ्कित हैं॥706॥

हे महानुभावे! आपने मनुष्यरूप में कौन सा ऐसा पुण्य किया था कि आपको ये ऋद्धियाँ अधिगत हुईं? तथा आपको यह समस्त दिशाओं को प्रभासित करने वाला देदीप्यमान् वर्ण किस कारण से प्राप्त हुआ है॥707॥

वाराणसी आगमन पर, मैनें भगवान् बुद्ध को वस्त्रयुगल(दो वस्त्रों) का दान किया था। तथा उनके श्रीचरणों की वन्दना कर मैं वहाँ भूमि पर ही बैठ गयी। वहाँ मैंने अति विनम्रतापूर्वक उनको प्रणाम किया॥708॥

''बुद्धो च मे कञ्चनसन्निभत्तचो, अदेसयि समुदयदुक्खनिच्चतं।
असङ्खतं दुक्खनिरोधसस्सतं, मग्गं अदेसयि यतो विमानिसं॥709॥
''अप्पायुकी कालकता ततो चुता, उपपन्ना तिदसगणं यसस्सिनी।
सक्कस्सहं अञ्ञतरा पजापति, यसुत्तरा नाम दिसासु विस्सुता'' ति॥710॥

नागविमानं ततियं।

4. अलोमविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥711॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥712॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥713॥

संस्कृतच्छाया- ''बुद्धश्च मे काञ्चनसन्निभत्वचम्, अदेशयत् समुदयदुःखनित्यताम्।
असंस्कृतं दुःखनिरोधं शाश्वतम्, मार्गम् अदिशत् यतः विमाने॥709॥
''अल्पायुष्का कालकवलिता ततश्च्युता, उपपन्ना त्रिदशगणे यशस्विनी।
शक्रस्याहम् अन्यतरा प्रजावती, यस्या उत्तरा नाम दिक्षु विश्रुता'' इति॥710॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीरिव तारकाः॥711॥
'केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥712॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥713॥

हिन्दी- तब बुद्ध नें मुझ सुवर्णसदृश त्वचा वाली को समुदय, दुःख एवं अनित्यता के विषय में देशना किया। तथा उस विमान पर असंस्कृत दुःखनिरोध एवं शाश्वतमार्ग के विषय में भी देशना किया॥709॥

वहाँ मैं अल्पायु में ही काल को प्राप्त हो गयी और देवलोक में उत्पन्न हुई। वहाँ मैं इन्द्र की समस्त दिशाओं में उत्तरा नाम से विश्रुत(प्रसिद्ध) पत्नी बनी॥710॥

देवी! आप अपने कान्तिपूर्ण वर्ण से समस्त दिशाओं को इस प्रकार अवभासित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को॥711॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग–उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥712

देवि मेरी आपसे यही जिज्ञासा है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्णाभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥713॥

सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥714॥
''अहञ्च बाराणसियं, बुद्धस्सादिच्चबन्धुनो।
अदासिं सुक्खकुम्मासं, पसन्ना सेहि पाणिभि॥715॥
''सुक्खाय अलोणिकाय च, पस्स फलं कुम्मासपिण्डिया।
अलोमं सुखितं दिस्वा, को पुञ्ञं न करिस्सति॥716॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥717॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥718॥

अलोमविमानं चतुत्थं।

संस्कृतच्छाया- सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥714॥
''अहं च वाराणस्याम्, बुद्धायादित्यबन्धवे।
अदाम् शुष्ककुल्माषम्, प्रसन्ना सा इह पाणिभ्याम्॥715॥
''शुष्काया अलवणायाश्च, पश्य फलं कुल्माषपिण्डिकाः।
अलवणां सुखितां दृष्ट्वा, कः पुण्यं न करिष्यति॥716॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥717॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥718॥

हिन्दी- उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य–विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही हैं॥714॥

मैंने कभी वाराणसी में आदित्यबन्धु भगवान् गौतम को प्रसन्नमन से अपने ही हाथों से शुष्क(सूखे) कुल्माष(आधे पके गेहूँ) का दान किया था॥715॥

आप उस लवणरहित शुष्क कुल्माषपिण्डी के दान का फल देखें कि आज मुझको ऐसा निर्लोम (निर्दोष) एवं सुखी देखकर कौन पुण्यकर्म नहीं करेगा!716॥

उस पुण्य–विशेष के प्रभावस्वरूप मुझे आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ, एवं उसी कारणवश मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग-उपभोग प्राप्त हो रहे हैं॥717॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥718॥

5. कञ्जिकदायिकाविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥719॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥720॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥721॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥722॥
''अहं अन्धकविन्दम्हि, बुद्धस्सादिच्चबन्धुनो।
अदासिं कोलसम्पाकं, कञ्जिकं तेलधूपितं॥723॥

संस्कृतच्छाया- ''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीरिव तारकाः॥719॥
'केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥720॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥721॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥722॥
''अहं अन्धकविन्दे, बुद्धस्यादित्यबन्धवे।
अदां कोलसम्पक्वम्, काञ्जिकं तैलपाचितम्॥723॥

हिन्दी- देवी! आप अपने कान्तिपूर्ण वर्ण से समस्त दिशाओं को इस प्रकार अवभासित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को॥719॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग-उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥720॥

देवि मेरा आपसे यही प्रश्न है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्णाभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥721॥

उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही हैं॥722॥

मैंने कभी अन्धकविन्द ग्राम में आदित्यबन्धु बुद्ध को तेल में पकी हुई काँजी का दान किया था॥723॥

''पिप्फल्या लसुणेन च, मिस्सं लामञ्जकेन च।
अदासिं उजुभूतस्मिं, विप्पसन्नेन चेतसा॥724॥
''या महेसित्तं कारेय्य, चक्कवत्तिस्स राजिनो।
नारी सब्बङ्गकल्याणी, भत्तु चानोमदस्सिका।
एकस्स कञ्जिकदानस्स, कलं नाग्घति सोळसिं॥725॥
''सतं निक्खा सतं अस्सा, सतं अस्सतरीरथा।
सतं कञ्ञासहस्सानि, आमुत्तमणिकुण्डला।
एकस्स कञ्जिकदानस्स, कलं नाग्घन्ति सोळसिं॥726॥
''सतं हेमवता नागा, ईसादन्ता उरूळ्हवा।
सुवण्णकच्छा मातङ्गा, हेमकप्पनवाससा।
एकस्स कञ्जिकदानस्स, कलं नाग्घन्ति सोळसिं॥727॥

संस्कृतच्छाया- ''पिप्पल्या लशुनेन च, मिस्रं लामञ्जकेन च।
अदाम् ऋजुभूतेभ्यः, विप्रसन्नेन चेतसा॥724॥
''या महर्षिकत्त्वं कारयेत्, चक्रवर्त्तिनो राज्ञः।
नारी सर्वाङ्गकल्याणी, भर्तुश्च अनवमदर्शिका।
एकस्य कञ्जिकादानस्य , कलां नार्हति षोडशीम्॥725॥
''शतं निष्काः शतम् अश्वाः, शतम् अश्वतररथाः।
शतं कन्यासहस्राणि, आमुक्तामणिकुण्डलानि।
एकस्य कञ्जिकादानस्य, कलां नार्हति षोडशीम्॥726॥
''शतं हैमवता नागाः, ईशदन्ताः उद्ढवन्तः।
सुवर्णकक्षाः मातङ्गाः, हेमकल्पनिवाससाः।
एकस्य कञ्जिकादानस्य, कलां नार्हति षोडशीम्॥727॥

हिन्दी- इसमें पीपल, लहसुन और खस की मिश्रित बघार(छोंक) लगाई गयी थी। इसको मैंने प्रसन्नमना हो उन सरल भगवान् बुद्ध को दान दिया था॥724॥

किसी चक्रवर्ती राजा की सर्वाङ्गसुन्दर एवं अनुपमदर्शी पटरानी भी एक कञ्जिका दान करने वाली दरिद्र स्त्री की सोलहवीं कला की भी बराबरी नहीं कर सकती॥725॥

सौ निष्क(सुवर्णमुद्रा) सौ घोड़ों से जुते हुए रथ, या मणि-मुक्ता आदि से अलंकृत लाखों कन्याएँ भी उस एक कञ्जिका दान करने वाली दरिद्र स्त्री के सोलहवीं कला की बराबरी नहीं कर सकतीं॥726॥

हिमालय में उत्पन्न, बड़े-बड़े ऊँचे दाँतों वाले, पूर्ण उच्चायुक्त, सुवर्णमण्डित वस्त्रों से सुसज्जित सौ हाथी भी उस एक कञ्जिका दान करने वाली दरिद्र स्त्री के सोलहवीं कला की बराबरी नहीं कर सकते॥727॥

''चतुन्नमपि दीपानं, इस्सरं योध कारये।
एकस्स कञ्जिकदानस्स, कलं नाग्घति सोळसिं'' ति॥728॥
कञ्जिकदायिकाविमानं पञ्चमं।

6. विहारविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥729॥
''तस्सा ते नच्चमानाय, अङ्गमङ्गेहि सब्बसो।
दिब्बा सद्दा निच्छरन्ति, सवनीया मनोरमा॥730॥
''तस्सा ते नच्चमानाय, अङ्गमङ्गेहि सब्बसो।
दिब्बा गन्धा पवायन्ति, सुचिगन्धा मनोरमा॥731॥
''विवत्तमाना कायेन, या वेणीसु पिळन्धना॥
तेसं सुय्यति निग्घोसो, तूरिये पञ्चङ्गिके यथा॥732॥

संस्कृतच्छाया- ''चतुर्णामपि दीपानाम्, ईश्वरं य इह कारयेत्।
एकस्य कञ्जिकादानस्य, कलां नार्हति षोडशीम्''इति॥728॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वा, ओषधीरिव तारकाः॥729॥
''तस्यां ते नृत्यन्त्याः, अङ्गाङ्गेभ्यः सर्वशः।
दिव्याः शब्दाः निस्सरन्ति, श्रवणीयाः मनोरमाः॥730॥
''तस्यां ते नृत्यन्त्याः, अङ्गाङ्गेभ्यः सर्वशः।
दिव्याः गन्धाः प्रवान्ति, शुचिगन्धाः मनोरमाः॥731।
''विवर्तमाना कायेन, या वेणीषु पिनद्धना॥
तेषां श्रूयते निर्घोषः, तूर्ये पञ्चाङ्गिके यथा॥732॥

हिन्दी- चारों द्वीपों पर शासन करने वाले चक्रवर्ती राजा भी इस एक कञ्जिका दान करने वाली दरिद्र स्त्री के सोलहवीं कला की भी बराबरी नहीं कर सकते॥728॥

देवी! आप अपने कान्तिपूर्ण वर्ण से समस्त दिशाओं को इस प्रकार अवभासित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को॥729॥

इसलिए जब आप नृत्य करती हैं तब आपके सर्वस्व अंग से, सभी ओर से, दिव्य शब्द प्रस्फुटित होते रहते हैं, जो कि सुनने में कर्णप्रिय एवं मनोरम हैं॥730॥

इसलिए जब आप नृत्य करती हैं तब आपके सर्वस्व अंग से, सभी ओर से, दिव्य गन्ध प्रवाहित होते रहते हैं, जो कि प्रिय एवं मनोरम हैं॥731॥

आप की इस काया के इधर उधर घूमने से आप की वेणी में बन्धे हुए अलंकरणों से ऐसी ध्वनि(घोष) सुनायी देती है मानो कहीं पञ्चाङ्गिक वाद्ययन्त्र बज रहे हों॥732॥

''वटंसका वातधुता, वातेन सम्पकम्पिता।
तेसं सुय्यति निग्घोसो, तूरिये पञ्चङ्गिके यथा॥733॥
''यापि ते सिरस्मिं माला, सुचिगन्धा मनोरमा।
वाति गन्धो दिसा सब्बा, रुक्खो मञ्जूसको यथा॥734॥
''घायसे तं सुचिगन्धं, रूपं पस्ससि अमानुसं।
देवते पुच्छिताचिक्ख, किस्स कम्मस्सिदं फलं'' ति॥735॥
''सावत्थियं मय्हं सखी भदन्ते, सङ्घस्स कारेसि महाविहारं।
तत्थप्पसन्ना अहमानुमोदिं, दिस्वा अगारञ्च पियञ्च मेतं॥736॥
''तायेव मे सुद्धनुमोदनाय, लद्धं विमानब्भुतदस्सनेय्यं।
समन्ततो सोळसयोजनानि, वेहायसं गच्छति इद्धिया मम॥737॥

संस्कृतच्छाया- ''अवतंसकाः वातधुताः, वातेन सम्प्रकम्पिताः।
तेषां श्रूयते निर्घोषः, तूर्ये पञ्चाङ्गिके यथा॥733॥
''यापि ते शिरसि माला, शुचिगन्धा मनोरमा।
वाति गन्धः दिशः सर्वाः, वृक्षः मञ्जूषकात् यथा॥734॥
''जिघ्रसि तं शुचिगन्धम्, रूपं पश्यसि अमानुषम्।
देवते पृष्टाऽऽचक्षस्व, कस्य कर्मण इदं फलम्'' इति॥735॥
''श्रावस्त्यां मह्यं सखी भदन्त, सङ्घस्य कृते महाविहारम्।
तत्र प्रसन्ना अहमन्वमोदे, दृष्टवा अगारं च प्रियं च एतम्॥736॥
''तस्माद् एव मे शुद्धानुमोदनात्, लब्धं विमानमद्भुतदर्शनम्।
समन्ततः षोडशयोजनानि, वैहायसं गच्छति ऋद्ध्या मम॥737॥

हिन्दी- आप की वेणी में गुथी हुई पुष्पमाला से, वायु द्वारा कँपाये जाने पर कानों में टंके हुए(पुष्पगुच्छ) से निकलते घोष ऐसे प्रतीत हो रहे हैं मानो कहीं पञ्चाङ्गिक वाद्य बज रहे हों॥733॥

आप के शिर में पहनी हुई माला से भी वैसी ही स्वच्छ एवं मनोरम गन्ध सभी दिशाओं में ऐसे फैल रही है जैसे मञ्जूसक(देववृक्ष-पारिजातक) के पुष्पों की गन्ध॥734॥

हे देवि! आप इस निर्मल एवं दिव्य गन्ध तथा मानवदुर्लभ रूप का उपभोग कर रही हो! हमारा आपसे यही प्रशन है कि आपको ये अलौकिक भोग किस विशिष्ट पुण्यकर्म के प्रभाव से उपलब्ध हुए हैं?॥735॥

भन्ते! मेरी सखी ने श्रावस्ती में सङ्घ के लिए एक महाविहार का निर्माण कराया था। इस प्रिय आगार(महाविहार) को देखकर, वहाँ प्रसन्नतापूर्वक मैंने उस कार्य का अनुमोदन किया॥736॥

इसी शुद्धानुमोदन के परिणामस्बरूप मुझको यह विमान प्राप्त हुआ। यह विमान चारो दिशाओं से सोलह योजन तक विस्तृत है। तथा मेरी ऋद्धि व प्रताप से अन्तरिक्ष में गमन करता है॥737॥

''कूटागारा निवेसा मे, विभत्ता भागसो मिता।
दद्दल्लमाना आभन्ति, समन्ता सतयोजनं॥738॥
''पोक्खरञ्ञो च मे एत्थ, पुथुलोमनिसेविता।
अच्छोदका विप्पसन्ना, सोण्णवालुकसन्थता॥739॥
''नानापदुमसञ्छन्ना, पुण्डरीकसमोतता।
सुरभी सम्पवायन्ति, मनुञ्ञा मालुतेरिता॥740॥
''जम्बुयो पनसा ताला, नाळिकेरवनानि च।
अन्तोनिवेसने जाता, नानारुक्खा अरोपिमा॥741॥
''नानातूरियसङ्घुट्ठं , अच्छरागणघोसितं।
योपि मं सुपिने पस्से, सोपि वित्तो सिया नरो॥742॥
''एतादिसं अब्भुतदस्सनेय्यं, विमानं सब्बसोपभं।
मम कम्मेहि निब्बत्तं, अलं पुञ्ञानि कातवे'' ति॥743॥

संस्कृतच्छाया- ''कूटागारं निवेशो मे, विभक्तं भागशः मितम्।
जाज्वल्यमानम् आभाति, समन्तात् शतयोजनम्॥738।
''पुष्करिणी च मे अत्र, पृथुलोमनिषेविता।
अच्छोदका विप्रसन्ना, स्वर्णबालुकासनाथिता॥739॥
''नानापद्मसंछन्ना, पुण्डरीकसमोदिता।
सुरभिं सम्प्रवाति, मनोज्ञा मारुतेरिता॥740॥
''जम्ब्वः पनसाः ताला:, नारिकेलवनानि च।
अन्तर्निवेशने जाताः, नानावृक्षान् आरोपयम्॥741॥
''नानातूर्यसङ्घुष्टम् , अप्सरोगणघोषितम्।
योऽपि मां स्वप्ने पश्येत्, सोऽपि वित्तः स्यान्नरः॥742॥
''एतादृशम् अद्भुतदर्शनीयम्, विमानं सर्वसुप्रभम्।
मम कर्मभिः निर्वृत्तम्, अलं पुण्यानि कर्तुम्'' इति॥743।

हिन्दी- मेरे इस आवास(विमान) के शिखर क्रमशः समान भागों में विभक्त हैं। इनकी ज्वलन्त आभा(प्रकाश) चारो दिशाओं में सौ योजन दूर तक दिखायी देती है॥738॥

मेरे विमान में नाना मत्स्य जातियों से भरी, स्वच्छ व मीठे जल वाली, सुनहरी बालुका वाली-॥739॥

नानविध पद्म पुष्पों से आवृत तथा पुण्डरीकों से भरी हुई, सुगन्धित एवं मनोज्ञ(लुभावनी) वायु से लहराती हुई पुष्पकरिणियाँ हैं॥740॥

इस विमान में स्थान-स्थान पर जम्बु(जामुन), कटहल, ताल, नारियल आदि वृक्षों के वन लगे हुए हैं॥741॥

यह विमान अप्सरागणों द्वारा बजाये गये विविध तूर्यवाद्य की ध्वनि से प्रायः गुँजायमान रहता है। जो इसका स्वप्न में भी दर्शन कर लेता है वह अपने मन में इसी के समान विमान पाने की लालसा रखता है॥742॥

ऐसा यह अद्भुत(आश्चर्यमय) दर्शनीय एवं चौतरफा जगमगाता हुआ विमान मेरे पुण्यकर्म का ही प्रताप है। इसके माध्यम से मैं अन्य पुण्य करने में भी सक्षम हूँ॥743॥

''तायेव ते सुद्धनुमोदनाय, लद्धं विमानब्भुतदस्सनेय्यं।
या चेव सा दानमदासि नारी, तस्सा गतिं ब्रूहि कुहिं उप्पन्ना सा'' ति॥744॥
''या सा अहु मय्हं सखी भदन्ते, सङ्घस्स कारेसि महाविहारं।
विञ्ञातधम्मा सा अदासि दानं, उप्पन्ना निम्मानरतीसु देवेसु॥745॥
''पजापती तस्स सुनिम्मितस्स, अचिन्तिया कम्मविपाका तस्स।
यमेतं पुच्छसि कुहिं उप्पन्ना साति, तं ते वियाकासिं अनञ्ञथा अहं॥746॥
''तेनहञ्ञेपि समादपेथ, सङ्घस्स दानानि ददाथ वित्ता।
धम्मञ्च सुणाथ पसन्नमानसा, सुदुल्लभो लद्धो मनुस्सलाभो॥747॥
''यं मग्गं मग्गाधिपती अदेसयि, ब्रह्मस्सरो कञ्चनसन्निभत्तचो।
सङ्घस्स दानानि ददाथ वित्ता, महप्फला यत्थ भवन्ति दक्खिणा॥748॥

संस्कृतच्छाया- ''तस्या एव ते शुद्धानुमोदनाय, लब्धं विमानमद्भुतदर्शनीयम्।
या चैव सा दानम् अदात् नारी, तस्याः गतिं ब्रूहि क्व उत्पन्ना सा'' इति॥744॥
''या सा आसीत् मम सखी भदन्त, सङ्घस्य अकार्षीत् महाविहारम्।
विज्ञातधर्मिणी सा अदात् दानम्, उत्पन्ना निर्माणरतिषु देवेषु॥745॥
''प्रजावती तस्य सुनिर्मितस्य, अचिन्तयत् कर्मविपाकात् तस्य।
यद् एतद् पृच्छसि कुत्र उत्पन्ना सा इति, तत् ते व्याकाशे अनन्यथा अहम्॥746॥
''तेनाहञ्चापि समादधे, सङ्घस्य दानानि दत्तवित्तानाम्।
धर्म्मं च श्रृणुत प्रसन्नमानसाः, सुदुर्लभो लब्धो मनुष्यलाभः॥747।
''यं मार्गं मार्गाधिपतिः अदेशयत् ब्रह्मसरः काञ्चनसन्निभत्वक्।
सङ्घस्य दानानि ददत वित्तानाम्, महाफलाः यत्र भवन्ति दक्षिणाः॥748॥

हिन्दी- उसी शुद्धानुमोदन का ही यह परिणाम है कि आपको यह अद्भुत एवं दर्शनीय विमान प्राप्त हुआ है। परन्तु अब आप अपनी उस दानी सहेली के विषय बतावें कि उसकी क्या गति हुई? तथा अब वह कहाँ उत्पन्न हुई है?॥744॥

भन्ते! वह जो मेरी धर्मज्ञ सखी थी जिसनें धर्मश्रवण कर साधना करते हुए सङ्घ के प्रति दान हेतु महाविहार बनवाया था। देह से च्युति के उपरान्त निर्माणरति देवों के लोक में उत्पन्न हुई है॥745॥

उस दान कर्म के अचिन्त्य पुण्य प्रभावस्वरूप उस देवलोक के इन्द्र की पत्नी बनी हुई है। आपने उसके विषय में जो यह पूछा कि वह कहाँ उत्पन्न हुई उसका मैंने आपको उत्तर दे दिया। यह अनन्यथा (असत्य नहीं) है॥746॥

अतः मेरा यह दृढ़ विचार बन गया है कि इस लोक की कामना करने वाले अन्यों को भी सङ्घ के प्रति प्रभूत दान देना चाहिये तथा प्रसन्नमन से धर्मश्रवण करना चाहिये; क्योंकि मनुष्यजन्म अत्यन्त दुर्लभ है॥747॥

उन मार्गाधिपति, ब्रह्मवादी तथा स्वर्णसदृश त्वचा वाले भगवान् बुद्ध ने यही मार्ग बताया है कि सङ्घ को अधिक से अधिक दान देना चाहिये। इस दान(दक्षिणा) का महाफल होता है॥748॥

''ये पुग्गला अट्ठ सतं पसत्था, चत्तारि एतानि युगानि होन्ति।
ते दक्खिणेय्या सुगतस्स सावका, एतेसु दिन्नानि महप्फलानि॥749॥
''चत्तारो च पटिपन्ना, चत्तारो च फले ठिता।
एस सङ्घो उजुभूतो, पञ्ञासीलसमाहितो॥750॥
''यजमानानं मनुस्सानं, पुञ्ञपेक्खान पाणिनं।
करोतं ओपधिकं पुञ्ञं, सङ्घे दिन्नं महप्फलं॥751॥
''एसो हि सङ्घो विपुलो महग्गतो, एसप्पमेय्यो उदधीव सागरो।
एते हि सेट्ठा नरवीरसावका, पभङ्करा धम्ममुदीरयन्ति॥752॥
''तेसं सुदिन्नं सुहुतं सुयिट्ठं, ये सङ्घमुद्दिस्स ददन्ति दानं।
सा दक्खिणा सङ्घगता पतिट्ठिता, महप्फला लोकविदून वण्णिता॥753॥

संस्कृतच्छाया- ''ये पुद्गला अष्टशतं प्रसक्ताः, चत्वारि एतानि युग्मानि भवन्ति।
ते दक्षिणायोग्याः सुगतस्य श्रावकाः, एतेषु दत्तानि महाफलानि॥749॥
''चत्वारश्च प्रतिपन्नाः, चत्वारश्च फले स्थिताः।
एष सङ्घः ऋजुभूतः, प्रज्ञाशीलसमाहितः॥750॥
''यजमानानां मनुष्याणाम्, पुण्यप्रेक्षिणां प्राणिनाम्।
कृतं सोपधिकं पुण्यम्, सङ्घे दत्तं महाफलम्॥751॥
एषः हि सङ्घः विपुलः महद्व्रतः, एष अप्रमेयः उदधिषु सागरः।
एते हि श्रेष्ठाः नरवीरश्रावकाः, प्रभाकराः धर्ममुदीरयन्ति॥752॥
तेषां सुदत्तं सुहुतं स्विष्टम्, ये सङ्घमुद्दिश्य ददते दानम्।
सा दक्षिणा सङ्घगता प्रतिष्ठिता, महाफला लोकविदाम् वर्णिता॥753॥

हिन्दी- सज्जनों द्वारा प्रशंसित(सङ्घ) जो आठ पुद्गल होते हैं उनके चार(युगल) जोड़े होते हैं। वे बुद्धश्रावक(शिष्य) ही दक्षिणा के योग्य हैं। इनके प्रति किया गया दान ही महाफलदायी होता है॥749॥

चार प्रतिपन्न(मार्गारूढ़) एवं चार फल में प्रतिष्ठित— ये आठ सरल प्रज्ञा, शीलसम्पन्न पुद्गल ही 'सङ्घ' नाम से प्रसिद्ध हैं॥750॥

दान, यज्ञ तथा पुण्यापेक्षी और सद्गतियुक्त पुनर्जन्म की इच्छा वाले पुरुषों को चाहिये कि सङ्घ के प्रति निरन्तर दानादि करते रहें; क्योंकि यही दान महाफलप्रद होता है॥751॥

यह अतिशय उच्चस्थिति प्राप्त सङ्घ विशाल जलराशिवाले समुद्र के समान ही अप्रमेय(अतुलनीय) कहलाता है। इस सङ्घ के श्रेष्ठ, पुरुषोत्तम श्रावक ही संसार को आलोकित करते हुए धर्मदेशना करते हैं॥752॥

उन्हीं का दिया हुआ दान ही श्रेष्ठ हवन तथा यज्ञ कहलाता है जो सङ्घ को उद्देश्य करके दान देते हैं। वह सङ्घ के प्रति दी हुई दान-दक्षिणा ही लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करती है। विद्वानों द्वारा इसी दक्षिणा को महाफलदायनी बताया गया है॥753॥

''एतादिसं यञ्ञमनुस्सरन्ता, ये वेदजाता विचरन्ति लोके।
विनेय्य मच्छेरमलं समूलं, अनिन्दिता सग्गमुपेन्ति ठानं'' ति॥754॥

विहारविमानं छट्ठं।
भाणवारं दुतियं निट्ठितं।

7. चतुरित्थिविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥755॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥756॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥757॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥758॥

संस्कृतच्छाया- एतादृशं यज्ञमनुसरन्तः, ये वेदजाता विचरन्ति लोके।
विनीय मात्सर्यमलं समूलम्, अनिन्दिताः स्वर्गमुपयान्ति स्थानम्'' इति॥754॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वा, ओषधीरिव तारकाः॥755॥
''केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥756॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥757॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥758॥

हिन्दी- ऐसे यज्ञ का अनुसरण करते हुए जो ज्ञानी संसार में जीवन निर्वाह करते हैं, वे ही अपने मात्सर्यमल का समूल त्याग कर मृत्योपरान्त स्वर्गस्थान प्राप्त करते हैं॥754॥

देवी! आप अपने कान्तिपूर्ण वर्ण से समस्त दिशाओं को इस प्रकार अवभासित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को॥755॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग-उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥756॥

देवि मेरी आपसे यही जिज्ञासा है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्णाभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥757॥

उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही हैं॥758॥

''इन्दीवरानं हत्थकं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स।
एसिकानं उण्णतस्मिं, नगरवरे पण्णकते रम्मे॥759॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥760॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥761॥
''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥762॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥763॥

संस्कृतच्छाया- ''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥759॥
''इन्दीवराणां स्तवकम् अहमदाम्, भिक्षुभ्यः पिण्डाय चरद्भ्यः।
एषिकास्तम्भे उन्नते, नगरवरे पण्यकृते रम्ये॥760॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥761॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वा, ओषधीरिव तारकाः॥762॥
''केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥763॥

हिन्दी- मैंने कभी भिक्षाटन करते समय, नीलकमल के पुष्पों का एक गुच्छ, नगर के विशाल एषिकास्तम्भ (इन्द्रकील) के सम्मुख एक भिक्षु को दान किया था।759।

उस पुण्य-विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥760॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥761॥

देवी! आप अपने कान्तिपूर्ण वर्ण से समस्त दिशाओं को इस प्रकार अवभासित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को॥762॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग-उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥763॥

''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥764॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥765॥
''नीलुप्पलहत्थकं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स।
एसिकानं उण्णतस्मिं, नगरवरे पण्णकते रम्मे॥766॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥767॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥768॥

संस्कृतच्छाया- ''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥764॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥765॥
''नीलोत्पलस्तबकम् अहमदाम्, भिक्षुभ्यः पिण्डाय चरद्भ्यः।
एषिकास्तम्भे उन्नते, नगरवरे पण्यकृते रम्ये॥766॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥767॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥768॥

हिन्दी- देवि मेरा आपसे यही प्रश्न है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्ण आभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥764॥

उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही हैं॥765॥

मैंने कभी भिक्षाटन करते समय, नीलकमल के पुष्पों का एक गुच्छ, नगर के विशाल एषिकास्तम्भ (इन्द्रकील) के सम्मुख एक भिक्षु को दान किया था॥766॥

उस पुण्य-विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥767॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥768॥

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥769॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥770॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥771॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥772॥
''ओदातमूलकं हरितपत्तं, उदकस्मिं सरे जातं अहमदासिं।
भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स, एसिकानं उण्णतस्मिं।
नगरवरे पण्णकते रम्मे॥773॥

संस्कृतच्छाया- ''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वा, ओषधीरिव तारकाः॥769॥
''केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥770॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥771॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥772॥
''अवदातमूलकं हरितपत्रम्, उदके सरसि जातम् अहमदाम्।
भिक्षुभ्यः पिण्डाय चरद्भ्यः, एषिकास्तम्भे उन्नते।
नगरवरे पण्यकृते रम्ये॥773॥

हिन्दी- देवी! आप अपने कान्तिपूर्ण वर्ण से समस्त दिशाओं को इस प्रकार अवभासित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को॥769॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग-उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥770॥

देवि मेरा आपसे यही प्रश्न है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्ण आभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥771॥

उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही हैं॥772॥

मैंने कभी, भिक्षाटन करते समय, किसी श्रेष्ठ नगर के विशाल एषिकास्तम्भ के सम्मुख एक भिक्षु को जल में उत्पन्न श्वेत मूल वाले हरित पत्र का दान किया॥773॥

''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥774॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥775॥
''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥776॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥777॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥778॥

संस्कृतच्छाया- ''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥774॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥775॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वा, ओषधीरिव तारकाः॥776॥
''केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥777॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥778॥

हिन्दी- उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥774॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥775॥

देवी! आप अपने कान्तिपूर्ण वर्ण से समस्त दिशाओं को इस प्रकार अवभासित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को॥776॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग–उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥777॥

देवि मेरा आपसे यही प्रश्न है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्ण आभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥778॥

सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥779॥
''अहं सुमना सुमनस्स सुमनमकुळानि, दन्तवण्णानि अहमदासिं।
भिक्खुनो पिण्डाय चरन्तस्स, एसिकानं उण्णतस्मिं।
नगरवरे पण्णकते रम्मे॥780॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥781॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥782॥

चतुरित्थिविमानं सत्तमं।

8. अम्बविमानवत्थु

''दिब्बं ते अम्बवनं रम्मं, पासादेत्थ महल्लको।
नानातुरियसङ्घुट्ठो, अच्छरागणघोसितो॥783॥

संस्कृतच्छाया- सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥779॥
''अहं सुमनाः सुमनसः सुमनोमुकुलानि, दन्तवर्णानि अहमदाम्।
भिक्षुभ्यः पिण्डाय चरद्भ्यः, एषिकास्तम्भे उन्नते।
नगरवरे पण्यकृते रम्ये॥780॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥781॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥782॥
''दिव्यं ते आम्रवनं रम्यम्, प्रासादः अत्र महार्धकः।
नानातूर्यसङ्घुष्टः, अप्सरागणघोषितः॥783॥

हिन्दी- उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही हैं॥779॥

सौमनस्यभाव से मैंने कभी भिक्षाटन करते हुए एक शुद्धचित्त भिक्षु को विशाल इन्द्रकील के सम्मुख चमेली के अधखिले श्वेत पुष्पों का दान किया।780।

उस पुण्य-विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥781॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥782॥

''पदीपो चेत्थ जलति, निच्चं सोवण्णयो महा।
दुस्सफलेहि रुक्खेहि, समन्ता परिवारितो॥784॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥785॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥786॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥787॥
''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूता, पुरिमाय जातिया मनुस्सलोके।
विहारं सङ्घस्स कारेसिं, अम्बेहि परिवारितं॥788॥

संस्कृतच्छाया- ''प्रदीपश्च अत्र ज्वलति, नित्यं सौवर्णः महान्।
दूष्यफलैः वृक्षैः, समन्तात् परिवारितः॥784॥
''केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥785॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥786॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥787॥
''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूता, पूर्वस्मिन् जन्मनि मनुष्यलोके।
विहारं सङ्घस्य अकार्षम्, आम्रैः परिवारितम्॥788॥

हिन्दी- आप का यह आम्रवन दिव्य एवं रमणीय है। इसके बीच में एक विशाल प्रासाद निर्मित है। जिसमें एकत्र हुए अप्सरासङ्घ द्वारा नाना वाद्य बजाये जा रहे हैं॥783॥

इसमें एक सुवर्णमयदीपक नित्य प्रज्वलित रहता है इसमें यत्र-तत्र सर्वत्र वस्त्राच्छादित वृक्ष शोभित हैं॥784॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग–उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥785॥

देवि मेरा आपसे यही प्रश्न है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्ण आभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥786॥

उस प्रसन्नमना देवी ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य–विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रही हैं॥787॥

मैंने पूर्व में कभी मनुष्यलोक मे उत्पन्न हो सङ्घ के लिए एक विहार का निर्माण कराया था॥788॥

''परियोसिते विहारे, कारेन्ते निट्ठिते महे।
अम्बेहि छादयित्वान, कत्वा दुस्समये फले॥789॥
''पदीपं तत्थ जालेत्वा, भोजयित्वा गणुत्तमं।
निय्यादेसिं तं सङ्घस्स, पसन्ना सेहि पाणिभि॥790॥
''तेन मे अम्बवनं रम्मं, पासादेत्थ महल्लको।
नानातुरियसङ्घुट्ठो, अच्छरागणघोसितो॥791॥
''पदीपो चेत्थ जलति, निच्चं सोवण्णयो महा।
दुस्सफलेहि रुक्खेहि, समन्ता परिवारितो॥792॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥793॥

संस्कृतच्छाया- ''पर्यवसिते विहारे, कारिते निष्ठिते महे।
आम्रै: छादयित्वा, कृत्वा दूस्समये फलानि॥789॥
''प्रदीपं तत्र जालयित्वा, भोजयित्वा गुणोत्तमम्।
निरदिशं तं सङ्घस्य, प्रसन्ना सा हि पाणिभ्याम्॥790॥
''तेन मे आम्रवणं रम्यम्, प्रासाद: अत्र महार्धक:।
नानातुर्यसङ्घुष्ट:, अप्सरागणघोषित:॥791॥
''प्रदीपश्च अत्र ज्वलति, नित्यं सौवर्ण: महान्।
दूष्यफलै: वृक्षै:, समन्तात् परिवारित:॥792।
''तेन मे एतादृशो वर्ण:, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगा:, ये केचिन्मनस: प्रिया:॥793।

हिन्दी- विहार का निर्माण कार्य तथा उसका उद्घाटन-उत्सव सम्पन्न होने के बाद उसमें स्थित समस्त आम्रवृक्षों के फलों को दुशालों से ढक कर- ॥789॥

वहाँ प्रदीप जला कर श्रेष्ठ भिक्षुसङ्घ को मैंनें प्रसन्नतापूर्वक अपने ही हाथों से भोजन करा कर वह विहार सङ्घ को दान कर दिया॥790॥

इसलिए मेरा यह आम्रवन दिव्य एवं रमणीय है। जिसके बीच में एक विशाल प्रासाद निर्मित है। जहाँ एकत्र हुए अपसरासङ्घ द्वारा नानाविध वाद्य बजाये जा रहे हैं॥791॥

और इस प्रासाद में नित्य-प्रति एक सुवर्णमय प्रदीप जलता रहता है तथा इसमें चहुदिश आम्रवृक्षों के सभी फल दुशालों से आवृत रहते हैं॥792॥

उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥793॥

''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥794॥

अम्बविमानं अट्ठमं।

9. पीतविमानवत्थु

''पीतवत्थे पीतधजे, पीतालङ्कारभूसिते।
पीतचन्दनलित्तङ्गे, पीतउप्पलमालिनी॥795॥
''पीतपासादसयने, पीतासने पीतभाजने।
पीतछत्ते पीतरथे, पीतस्से पीतबीजने॥796॥
''किं कम्ममकरी भद्दे, पुब्बे मानुसके भवे।
देवते पुच्छिताचिक्ख, किस्स कम्मस्सिदं फलं'' ति॥797॥
''कोसातकी नाम लतत्थि भन्ते, तित्तिका अनभिच्छिता।
तस्सा चत्तारि पुप्फानि, थूपं अभिहरिं अहं॥798॥

संस्कृतच्छाया-
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥794।
''पीतवस्त्रे पीतध्वजे, पीतालङ्कारभूषिते।
पीतचन्दनलिप्ताङ्गे, पीतोत्पलमालिने ॥795॥
''पीतप्रासादशयने, पीतासने पीतभाजने।
पीतच्छत्रे पीतरथे, पीताश्वे पीतबीजने॥796॥
''किं कर्म अकरो: भद्रे, पूर्वे मानुष्यके भवे।
देवते पृष्टाऽऽचक्षस्व, कस्य कर्मण इदं फलम्'' इति॥797॥
''कोशातकी नाम्नी लतास्ति भदन्त, तिक्ता अनभीप्सिता।
तस्याश्चत्वारि पुष्पाणि, स्तूपम् अभ्यहरम् अहम्॥798॥

हिन्दी- इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥794॥

हे देवि! आप पीत(पीले) वस्त्रधारी हैं तथा आपकी ध्वजा भी पीतवर्णी है। आप पीले अलंकारों से ही विभूषित हैं। आपका सम्पूर्ण अङ्ग पीत चन्दनलेप से लिप्त है, तथा आपने पीले कमल की मालाधारण कर रखी है॥795॥

आपका सम्पूर्ण प्रासाद, शयनासन, भाजन(पात्र), छत्र, रथ, रथ के अश्व और आप का व्यञ्जन आदि सर्वस्व पीतवर्णी हैं॥796॥

भद्रे! मेरा आपसे यही प्रश्न है कि आपनें पूर्व मनुष्यजन्म में कौन सा ऐसा कर्म किया था? तथा आपके किस कर्म का यह पुण्यफल आपको प्राप्त हुआ? कृपया स्पष्ट करें-॥797॥

भन्ते! कोशातकी नामक एक लता होती है जिस में तिक्तरस(कटुरस)वाला एक फल(तितलौकी) फलता है जिसे कोई भी खाना नहीं चाहता। उसी के चार पुष्प लाकर मैंने स्तूप पर अर्पित किये॥798॥

''सत्थु सरीरमुद्दिस्स, विप्पसन्नेन चेतसा।
नास्स मग्गं अवेक्खिस्सं, न तग्गमनसा सती॥799॥
''ततो मं अवधी गावी, थूपं अपत्तमानसं।
तञ्चाहं अभिसञ्चेय्यं, भिय्यो नून इतो सिया॥800॥
''तेन कम्मेन देविन्द, मघवा देवकुञ्जरो।
पहाय मानुसं देहं, तव सहब्य मागता'' ति॥801॥
इदं सुत्वा तिदसाधिपति, मघवा देवकुञ्जरो।
तावतिंसे पसादेन्तो, मातलिं एतदब्रवि॥802॥
''पस्स मातलि अच्छेरं, चित्तं कम्मफलं इदं।
अप्पकम्पि कतं देय्यं, पुञ्ञं होति महप्फलं॥803॥
''नत्थि चित्ते पसन्नम्हि, अप्पका नाम दक्खिणा।
तथागते वा सम्बुद्धे, अथ वा तस्स सावके॥804॥

संस्कृतच्छाया- ''शास्तुः शरीरमुद्दिश्य, विप्रसन्नेन चेतसा।
न अस्य मार्गम् अवैक्षिषि, न तद्गतमनसा सती॥799॥
''ततः माम् अवधीत् गौः, स्तूपम् अपेतमानसम्।
तं च अहम् अभिसञ्चयिष्यामि भूयः नूनम् इतः स्यात्॥800॥
''तेन कर्मणा देवेन्द्र, मघवान् देवकुञ्जर।
प्रहाय मानुषं देहम्, तव साचिव्यमागता'' इति॥801॥
इदं श्रुत्वा त्रिदशाधिपतिः, मघवन् देवकुञ्जरः।
त्रायस्त्रिंशे प्रासादे अन्तः, मातलिम् एतदब्रवीत् ॥802॥
''पश्य मातलि आश्चर्यम्, चित्रं कर्मफलम् इदम्।
अल्पकमपि कृतं दानम्, पुण्यं भवति महाफलम्॥803॥
''नास्ति चित्ते प्रसन्ने, अल्पका नाम दक्षिणा।
तथागते वा सम्बुद्धे, अथ वा तस्य श्रावके॥804॥

हिन्दी- वहाँ मैंने प्रसन्नचित्त से शास्ता के शरीर का उद्देश्य किया, किन्तु मैं उनके आगमन की प्रतीक्षा न कर सकी, न ही अधिक देर तक उनमें अपना मन ही लगा सकी॥799॥

इसी अन्तराल में एक गौ(बैल) ने आकर मेरा वध कर दिया, जिसके कारण मैं अपना मन स्तूप में स्थिर नहीं रख सकी। यहाँ से च्युति के बाद पुनः उसमें अपना मन लगाऊँगी॥800॥

हे देवेन्द्र! हे मघवन्! उसी कर्म के परिणामवश मनुष्य देह का त्याग कर आपके इस लोक में वास हेतु आयी हूँ॥801॥

देवेन्द्र ने देवी के ये वचन सुनकर त्रायस्त्रिंश लोक में प्रसन्नतापूर्वक बैठे मातलि(सारथि) को ऐसा कहा—॥802॥

मातलि! यह आश्चर्यजनक विचित्र कर्मफल देखो, जहाँ सामान्य देयकर्म का भी इतना महान फल होता है॥803॥

दाता के मन में यदि दान देते समय पूर्ण श्रद्धा न भी हो तो भी अल्प मात्रा में दिया दान भी अत्यन्त महत्त्व रखता है। तब वह दान चाहे साक्षात् तथागत को दिया जाय या उनके किसी शिष्य को॥804॥

''एहि मातलि अम्हेपि, भिय्यो भिय्यो महेमसे।
तथागतस्स धातुयो, सुखो पुञ्ञान मुच्चयो॥805॥
''तिट्ठन्ते निब्बुते चापि, समे चित्ते समं फलं।
चेतोपणिधिहेतु हि, सत्ता गच्छन्ति सुग्गतिं॥806॥
''बहूनं वत अत्थाय, उप्पज्जन्ति तथागता।
यत्थ कारं करित्वान, सग्गं गच्छन्ति दायका'' ति॥807॥

पीतविमानं नवमं।

10. उच्छुविमानवत्थु

''ओभासयित्वा पथविं सदेवकं, अतिरोचसि चन्दिमसूरिया विय।
सिरिया च वण्णेन यसेन तेजसा, ब्रह्माव देवे तिदसे सहिन्दके॥808॥
''पुच्छामि तं उप्पलमालधारिनी, आवेळिनी कञ्चनसन्निभत्तचे।
अलङ्कते उत्तमवत्थधारिनी, का त्वं सुभे देवते वन्दसे ममं॥809॥

संस्कृतच्छाया- ''एहि मातलि वयमपि, भूयो भूयो महामहे।
तथागतस्य धातवः, सुखं पुण्यसमुच्चयः॥805॥
''तिष्ठते निर्वृते च अपि, समे चित्ते समम् फलम्।
चेतः प्रणिधिहेतुना हि, सन्तः गच्छन्ति सुगतिम्॥806।
''बहूनां वत अर्थाय, उत्पद्यन्ते तथागताः।
यत्र कार्यं कृत्वा, स्वर्गं गच्छन्ति दायकाः'' इति॥807॥
''अवभास्य पृथिवीं सदेवकाम्, अतिरोचसे चन्द्रमस्सूर्यौ इव।
श्रिया च वर्णेन यशसा तेजसा, ब्रह्मा इव देवेन त्रिदशेन सहेन्द्रेण॥808॥
''पृच्छामि त्वाम् उत्पलमालाधारिणि, आवेणिनि काञ्चनसंन्निभत्वक्।
अलङ्कृते उत्तमवत्स्त्रधारिणी, का त्वं शुभे देवते वन्दसे माम्॥809॥

हिन्दी- अतः मातलि! हम लोग भी तथागत की इस धातु(स्तूप) पूजा में बार-बार अपना मन लगावें; क्योंकि पुण्यों का संग्रह सुखकर होता है॥805॥

मार्गारूढ़ और निर्वाणप्राप्त को यदि समान भावना से दान करें तो फल भी समान ही होगा। इस चित्त की दृढ़ता से ही सज्जन सुगति प्राप्त करते हैं॥806॥

बहुजनों के उपकार के लिये ही तथागत अवतार लेते हैं। यहाँ प्राणी अपने-अपने कार्यों का धर्मपूर्वक सम्पादन कर एक दिन स्वर्ग में पहुँच जाते हैं॥807॥

आप अपनी शोभा, वर्ण, यश एवं प्रताप से इन्द्रसहित सभी देवताओं और समस्त पृथ्वी एवं स्वर्गलोक को उसी प्रकार अभिभूत कर रही हैं, जिस प्रकार चन्द्र, सूर्य और ब्रह्मा॥808॥

देवी! मैं आपसे यही पूछती हूँ कि आप पद्मपुष्पों की माला एवं फूलों का गजरा धारण की हुई, सुवर्णसमान त्वचा वाली, विविध आभूषणों से युक्त, उत्तम वस्त्र धारण की हुई कौन मङ्गलमयी देवता हैं, जो मेरी वन्दना कर रही हैं?॥809॥

''किं त्वं पुरे कम्ममकासि अत्तना, मनुस्सभूता पुरिमाय जातिया।
दानं सुचिण्णं अथ सीलसंयमं, केनूपपन्ना सुगतिं यसस्सिनी।
देवते पुच्छिताचिक्ख, किस्स कम्मस्सिदं फलं'' ति॥810॥
''इदानि भन्ते इममेव गामं, पिण्डाय अम्हाकं घरं उपागमि।
ततो ते उच्छुस्स अदासि खण्डिकं, पसन्नचित्ता अतुलाय पीतिया॥811॥
''सस्सु च पच्छा अनुयुञ्जते ममं, कहं नु उच्छुं वधुके अवाकिरि।
न छड्डितं नो पन खादितं मया, सन्तस्स भिक्खुस्स सयं अदासहं॥812॥
''तुय्हं न्विदं इस्सरियं अथो मम, इतिस्सा सस्सु परिभासते ममं।
लेड्डुं गहेत्वा पहारं अदासि मे, ततो चुता कालकताम्हि देवता॥813॥
''तदेव कम्मं कुसलं कतं मया, सुखञ्च कम्मं अनुभोमि अत्तना।
देवेहि सद्धिं परिचारयामहं, मोदामहं कामगुणेहि पञ्चहि॥814॥

संस्कृतच्छाया-
''किं त्वं पूर्वे कर्म अकार्षीः अत्मना, मनुष्यभूता पूर्विकायां जात्याम्।
दानं शुचीर्णम् अथ शीलसंयमम्, केनोपपन्ना सुगतिं यशस्विनी।
देवते पृष्टाऽऽचक्षस्व, कस्य कर्मणः इदं फलम्'' इति॥810॥
''इदानीं भदन्त इममेव ग्रामम्, पिण्डाय अस्माकं गृहम् उपागमत्।
ततस्ते इक्षोः अदाम् खण्डिकम्, प्रसन्नचित्ता अतुलया प्रीत्या॥811॥
श्वश्रुश्च पश्चात् अन्वयुक्तं माम्, क्व नु इक्षुं वधो अवाकिरः।
न त्यक्तं न पुनः खादितं मया, सते भिक्षवे स्वयम् अदामहम्॥812॥
त्वयि न इदम् ऐश्वर्यम् अथ मम, इति सा श्वश्रूः परिभाषते माम्।
पीठं गृहीत्वा प्रहारम् अदात् मे, ततश्च्युता कालकृतास्मि देवता॥813॥
तदेव कर्म कुशलं कृतं मया, सुखञ्च कर्म अनुभवामि आत्मना।
देवैः सार्धं परिचराम्यहम्, मोदामहे कामगुणैः पञ्चभिः॥814॥

हिन्दी- आपने पूर्व काल में मनुष्यरूप में उत्पन्न हो कौन सा कर्म, दान एवं शील व संयम का पालन किया था, जिसके परिणामस्वरूप आज आप इस सुगति(स्वर्ग) लोक में ऐसी यशस्वी हो गयी हैं? देवी! आपके किस कर्म का यह फल है? कृपया कहें॥810॥

भन्ते! आप इसी ग्राम में भिक्षाटन करने हेतु मेरे घर आये थे। तब मैंने आपको प्रसन्नमन व अतुल प्रेमपूर्वक एक इक्षुखण्ड दान किया था॥811॥

बाद में मेरी सास ने उस इक्षुखण्ड के विषय में मुझसे पूछा कि बहू! यहाँ एक इक्षुखण्ड रखा था, उसको कहाँ फेंक दिया? तब मैंने कहा कि मैंने उसको कहीं फेंका या खाया नहीं है, अपितु उसे एक शान्त भिक्षु को मैंने स्वयम् दान कर दिया॥812॥

तब मेरी सास ने मुझे अपशब्द कहे कि यह दान का अधिकार तुम्हारा कहाँ, यह तो मेरा अधिकार था और ऐसा कहते हुए पास ही पड़ा हुआ मिट्टी का ढेला उठा कर मुझ पर मारा। देव! उसी प्रहारवश मेरा देहपात (मरण) हो गया और वहाँ से च्युत होकर मैं देवयोनि में आयी॥813॥

वही कुशल कर्म मैंने किया था, जिसके पुण्य प्रभाव से आज मैं इस दिव्य सुख का अनुभव कर रही हूँ। आज मेरी स्थिति यह है कि देवताओं के साथ मेरी सेवा सुश्रूषा हो रही हैं तथा मुझको सभी पञ्चविध कामगुण उपलब्ध हो रहे हैं जिनसे मैं पूर्ण सुख भोग रही हूँ॥814॥

''तदेव कम्मं कुसलं कतं मया, सुखञ्च कम्मं अनुभोमि अत्तना।
देविन्दगुत्ता तिदसेहि रक्खिता, समप्पिता कामगुणेहि पञ्चहि॥815॥
''एतादिसं पुञ्ञफलं अनप्पकं, महाविपाका मम उच्छुदक्खिणा।
देवेहि सद्धिं परिचारयामहं, मोदामहं कामगुणेहि पञ्चहि॥816॥
''एतादिसं पुञ्ञफलं अनप्पकं, महाजुतिका मम उच्छुदक्खिणा।
देविन्दगुत्ता तिदसेहि रक्खिता, सहस्सनेत्तोरिव नन्दने वने॥817॥
''तुवञ्च भन्ते अनुकम्पकं विदुं, उपेच्च वन्दिं कुसलञ्च पुच्छिसं।
ततो ते उच्छुस्स अदासि खण्डिकं, पसन्नचिता अतुलाय पीतिया'' ति॥818॥
उच्छुविमानं दसमं।

11. वन्दनविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥819॥

संस्कृतच्छाया- तदेव कर्म कुशलं कृतं मया, सुखञ्च कर्म अनुभवामि आत्मना।
देवेन्द्रगुप्ता त्रिदशैः रक्षिता, समर्पिता कामगुणैः पञ्चभिः॥815॥
एतादृशं पुण्यफलम् अनल्पकम्, महाविपाका मम इक्षुदक्षिणा।
देवैः सार्धं परिचराम्यहम्, मोदामहे कामगुणैः पञ्चभिः॥816॥
एतादृशं पुण्यफलम् अनल्पकम्, महाद्युतिका मम इक्षुदक्षिणा।
देवेन्द्रगुप्ता त्रिदशैः रक्षिता, सहस्रनेत्र इव नन्दने वने॥817॥
त्वां च भदन्त अनुकम्पकं वेद्मि, उपेत्य च वन्दे कुशलं च अपृच्छम्।
ततः तव इक्षोः अदाम् खण्डिकम्, प्रसन्नचित्ता अतुलया प्रीत्या'' इति॥818॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वा, ओषधीरिव तारकाः॥819॥

हिन्दी- वही कुशल कर्म मैंने किया, जिसके परिणामस्वरूप आज मैं यह सुख भोग रही हूँ। देवराज शक्र(इन्द्र) अन्य देवताओं के साथ मेरी रक्षा कर रहे हैं तथा मुझको सभी पञ्चविध कामगुण उपलब्ध हो रहे हैं॥815॥

ऐसा यह पुण्यफल अल्प नहीं है; मेरे द्वारा दी गई वह इक्षुखण्ड दक्षिणा मेरे लिये अतिशय फलदायी हो गई है। आज सभी देवताओं के साथ मैं भी सेवा सत्कार पा रही हूँ तथा मुझको सभी पञ्चविध कामगुण उपलब्ध हो रहे हैं॥816॥

ऐसा यह पुण्यफल अल्प नहीं है; वह इक्षुदक्षिणा मेरे लिये महाफलदायी हो गया है। आज सभी देवता इस नन्दनवन में मेरी उसीप्रकार रक्षाकर रहे हैं जैसे वे सब मिलकर सहस्रनेत्र (इन्द्र) की रक्षा किया करते हैं॥817॥

और भन्ते! आपको अपना अनुकम्पक जानकर मैं आपको प्रणाम करने तथा आपका कुशल-मङ्गल पूछने आई हूँ। प्रसन्नता एवं अतुल प्रेमपूर्वक वह इक्षुखण्ड देने के परिणामस्वरूप ही मेरी यह सद्गति हुई है॥818॥

देवी! आप अपने कान्तिपूर्ण वर्ण से समस्त दिशाओं को इस प्रकार अवभासित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को॥819॥

''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥820॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥821॥
सा देवता अत्तमना, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥822॥
''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूता, दिस्वान समणे सीलवन्ते।
पादानि वन्दित्वा मनं पसादयिं, वित्ता चहं अञ्जलिकं अकासिं॥823॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥824॥

संस्कृतच्छाया- ''केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥820॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥821॥
सा देवता आत्तमना, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥822॥
''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूता, दृष्ट्वा श्रमणं शीलवन्तम्।
पादान् वन्दित्वा मनः प्रासादयम्, विदित्वा चाहम् अञ्जलिकम् अकार्षम्॥823॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥824॥

हिन्दी- आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग-उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥820॥

हे तेजस्विनि देवि! हमारी आपसे यही जिज्ञासा है कि आपने मानव शरीर में ऐसा कौन विशिष्ट पुण्य कर्म किया था कि आज आप को ऐसा दिव्य वर्ण एवं ऐसे दिव्य कामभोग प्राप्त हुए हैं?॥821॥

मोग्गलान द्वारा यह पूछे जाने पर तब उस देवी ने प्रसन्न मन से अपना वह कर्म एवं कर्मफल बताया॥822॥

मैंने कभी मनुष्यलोक में मनुष्यरूप में उत्पन्न हो कर, शीलवान् श्रमणों को देखकर उनके चरणों की वन्दना करते हुए उनको प्रसन्नतापूर्वक व श्रद्धालुचित्त होकर हाथ जोड़े॥823॥

उस पुण्य-विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे ये मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥824॥

''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥825॥
वन्दनविमानं एकादसमं।

12. रज्जुमालाविमानवत्थु

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
हत्थपादे च विग्गय्ह, नच्चसि सुप्पवादिते॥826॥
''तस्सा ते नच्चमानाय, अङ्गमङ्गेहि सब्बसो।
दिब्बा सद्दा निच्छरन्ति, सवनीया मनोरमा॥827॥
''तस्सा ते नच्चमानाय, अङ्गमङ्गेहि सब्बसो।
दिब्बा गन्धा पवायन्ति, सुचिगन्धा मनोरमा॥828॥
''विवत्तमाना कायेन, या वेणीसु पिळन्धना॥
तेसं सुय्यति निग्घोसो, तूरिये पञ्चङ्गिके यथा॥829॥

संस्कृतच्छाया- ''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥825॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
हस्तपादौ च विगृह्य, नृत्यसि सुप्रवादिते॥826॥
''तस्यां ते नृत्यन्त्याः, अङ्गाङ्गेभ्यः सर्वशः।
दिव्याः शब्दाः निस्सरन्ति, श्रवणीयाः मनोरमाः॥827॥
''तस्यां ते नृत्यन्त्याः, अङ्गाङ्गेभ्यः सर्वशः।
दिव्याः गन्धाः प्रवान्ति, शुचिगन्धाः मनोरमाः॥828॥
''विवर्त्तमाना कायेन, या वेणीषु पिनद्धना॥
तेषां श्रूयते निर्घोषः, तूर्ये पञ्चाङ्गिके यथा॥829॥

हिन्दी- इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभासित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥825॥

देवि! दिव्य प्रकाशमय रूप धारण किये हुए प्रतिष्ठित तथा सुन्दर प्रकार से बजते हुए वाद्ययन्त्रों की ध्वनि पर शरीर के अंगों को इधर-उधर झटक कर नृत्य करती हुई आप कौन हैं? ॥826॥

जब आप नृत्य करती हैं, उस समय आपके सर्वस्व अंग से दिव्य ध्वनियाँ निकली हैं, जो कि कर्णप्रिय एवं मनोरम होती हैं॥827॥

तथा आपके नृत्य करते समय आपके प्रत्येक अंग से दिव्य सुगन्धित वायु निकलती है॥828॥

जब आप अपनी इस काया को इधर उधर घुमाती हैं उस समय आप की वेणी में गुथे हुए अलंकरणों से ऐसी ध्वनियाँ सुनायी देती हैं जैसे कहीं पञ्चाङ्गिक तूर्य(वाद्ययन्त्र) बज रहे हों॥829॥

''वटंसका वातधुता, वातेन सम्पकम्पिता।
तेसं सुय्यति निग्घोसो, तूरिये पञ्चङ्गिके यथा॥830॥
''यापि ते सिरस्मिं माला, सुचिगन्धा मनोरमा।
वाति गन्धो दिसा सब्बा, रुक्खो मञ्जूसको यथा॥831॥
''घायसे तं सुचिगन्धं, रूपं पस्ससि अमानुसं।
देवते पुच्छिताचिक्ख, किस्स कम्मस्सिदं फलं'' ति॥832॥
''दासी अहं पुरे आसिं, गयायं ब्राह्मणस्सहं।
अप्पपुञ्ञा अलक्खिका, रज्जुमालाति मं विदुं॥833॥
''अक्कोसानं वधानञ्च, तज्जनाय च उग्गता।
कुटं गहेत्वा निक्खम्म, अगञ्छिं उदहारिया॥834॥
''विपथे कुटं निक्खिपित्वा, वनसण्डं उपागमिं।
इधेवाहं मरिस्सामि, को अत्थो जीवितेन मे॥835॥

संस्कृतच्छाया- ''अवतंसकाः वातधुताः, वातेन सम्प्रकम्पिताः।
तेषां श्रूयते निर्घोषः, तूर्ये पञ्चाङ्गिके यथा॥830॥
''यापि ते शिरसि माला, शुचिगन्धा मनोरमा।
वाति गन्धः दिशः सर्वाः, वृक्षः मञ्जूषकात् यथा॥831॥
''जिघ्रसि तं शुचिगन्धम्, रूपं पश्यसि अमानुषम्।
देवते पृष्टाऽऽचक्षस्व, कस्य कर्मण इदं फलम्'' इति॥832॥
''दासी अहं पुरा आसम्, गयायां ब्राह्मणस्य अहम्।
अल्पपुण्या अलक्षिका, रज्जुमाला इति मां विदुः॥833॥
''आक्रोशात् वधाच्च, तर्ज्जनाच्च उद्गता।
घटं गृहीत्वा निष्क्रम्य, अगच्छम् उदकाहाराय॥834॥
''विपथे घटं निक्षिप्य, वनखण्डम् उपागमम्।
इहैवाहं मरिष्यामि, कः अर्थः जीवितेन मे॥835॥

हिन्दी- आप की वेणी में गुथी हुई पुष्पमाला से, वायु द्वारा कँपाये(हिलाने) जाने पर कानों में टंके हुए पुष्पगुच्छ से निकली हुई ध्वनि ऐसी प्रतीत होती है मानो कहीं पञ्चाङ्गिक वाद्य बज रहे हों॥830॥

आप के शिर में पहनी हुई माला से भी वैसी ही स्वच्छ एवं मनोरम गन्ध सभी दिशाओं में ऐसे फैलती है जैसे मञ्जूसक(देववृक्ष-पारिजातक) के पुष्पों की गन्ध॥831॥

हे देवि! आप इस निर्मल एवं दिव्य गन्ध तथा मानवदुर्लभ रूप का उपभोग कर रही हो! हमारा आपसे यही प्रश्न है कि आपको ये अलौकिक भोग किस विशिष्ट पुण्यकर्म के प्रभाव से उपलब्ध हुए हैं?॥832॥

मैं पूर्व में मनुष्यलोक में उत्पन्न होकर किसी ब्राह्मण के घर दासी का कर्म करती हुई अपना जीवनयापन करती थी। उस समय मैं अत्यन्त दरिद्र एवं अल्प पुण्य वाली थी तथा मैं रज्जुमाला नाम से जानी जाती थी॥833॥

तब मैं लोगों के आक्रोश(निन्दा) तथा मारने की धमकियों से उद्विग्न होकर कुट(घट) एवं जल निकालने वाली रस्सी लेकर घर से निकली॥834॥

''दळ्हं पासं करित्वान, आसुम्भित्वान पादपे।
ततो दिसा विलोकेसिं,को नु खो वनमस्सितो॥836॥
''तत्थद्दसासिं सम्बुद्धं, सब्बलोकहितं मुनिं।
निसिन्नं रुक्खमूलस्मिं, झायन्तं अकुतोभयं॥837॥
''तस्सा मे अहु संवेगो, अब्भुतो लोमहंसनो।
को नु खो वनमस्सितो, मनुस्सो उदाहु देवता॥838॥
''पासादिकं पसादनीयं, वना निब्बनमागतं।
दिस्वा मनो मे पसीदि, नायं यादिसकीदिसो॥839॥
''गुत्तिन्द्रियो झानरतो, अबहिग्गतमानसो।
हितो सब्बस्स लोकस्स, बुद्धो अयं भविस्सति॥840॥
''भयभेरवो दुरासदो, सीहोव गुहमस्सितो।
दुल्लभायं दस्सनाय, पुप्फं ओदुम्बरं यथा॥841॥

संस्कृतच्छाया- 'दृढं पाशं कृत्वा, आस्थाय पादपे।
ततः दिक्षु व्यलोकयम्, कः नु खलु वनमाश्रितः॥836॥
''तत्र अदर्शं सम्बुद्धं, सर्वलोकहितं मुनिम्।
निषण्णं वृक्षमूले, ध्यायन्तम् अकुतोभयम्॥837॥
''तस्माद् मे अभूत् संवेगः, अद्भुतः लोमहर्षणः।
कः नु खलु वनमाश्रितः, मनुष्यः उताहो देवता॥838॥
''प्रासादिकं प्रासादनीयम्, वनात् निर्वनमागतम्।
दृष्ट्वा मनो मे प्रासीदत्, न अयं यादृशकीदृशः॥839॥
''गुप्तेन्द्रियः ध्यानरतः, अबहिर्गतमानसः।
हितः सर्वस्य लोकस्य, बुद्धः अयं भविष्यति॥840॥
''भयभैरवः दुरासदः, सिंह इव गुहामाश्रितः।
दुर्लभोऽयं दर्शनाय, पुष्पम् औदुम्बरं यथा॥841॥

हिन्दी- मार्ग में, कुट(घट) को फेंक कर वनप्रदेश में, कि अब मैं यहीं मर जाऊँगी; क्योंकि मेरे जीवित रहने से क्या प्रयोजन है? यह सोच कर प्रविष्ट हुई॥835॥

वहाँ मैंने रस्सी का एक शिरा वृक्ष की शाखा में दृढतापूर्वक बाँध कर चारों ओर देखा कि मुझको वन में कोई दूसरा देख तो नहीं रहा है॥836॥

तब मैंने सर्वलोकहित्कारी मुनि भगवान् बुद्ध को एक वृक्ष के नीचे निर्भयतापूर्वक ध्यानमग्न बैठे हुए देखा॥837॥ तब मेरे मन में अद्भुत रोमहर्षक व्यग्रता हुई कि इस वन में ये कौन है? यह कोई देवता है या मनुष्य?॥838॥

उस श्रद्धोत्पादक, प्रसन्नाकृति तथा वन(संसार) से निर्वन(वीततृष्ण) हुए को देखकर मेरे मन में उस पुरुष के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई कि यह कोई ऐसा वैसा साधारण पुरुष नहीं है॥439॥

यह गुप्तेन्द्रिय है, ध्यानरत है, इसका मन बाह्य पदार्थ के प्रति पूर्णतः विरक्त है। यह समस्त लोक हितार्थ 'बुद्ध' होगा॥840॥

''सो मं मुदूहि वाचाहि, आलपित्वा तथागतो।
रज्जुमालेति मंवोच, सरणं गच्छ तथागतं॥842॥
''ताहं गिरं सुणित्वान, नेलं अत्थवतिं सुचिं।
सण्हं मुदुञ्च वग्गुञ्च, सब्बसोकापनूदनं॥843॥
''कल्लचित्तञ्च मं ञत्वा, पसन्नं सुद्धमानसं।
हितो सब्बस्स लोकस्स, अनुसासि तथागतो॥844॥
''इदं दुक्खन्ति मंवोच, अयं दुक्खस्स सम्भवो।
दुक्ख निरोधो मग्गो च, अञ्जसो अमतोगधो॥845॥
''अनुकम्पकस्स कुसलस्स, ओवादम्हि अहं ठिता।
अज्झगा अमतं सन्तिं, निब्बानं पदमच्चुतं॥846॥
''साहं अवट्ठितापेमा, दस्सने अविकम्पिनी।
मूलजाताय सद्धाय, धीता बुद्धस्स ओरसा॥847॥

संस्कृतच्छाया- ''सः मां मृदुभिः वाग्भिः, आलाप्य तथागतः।
रज्जुमाला इति मामवोचत्, शरणं गच्छ तथागतम्॥842॥
''तामहं गिरं श्रुत्वा, नेलम् अर्थवतीं शुचिम्।
श्लक्ष्णां मृदुं च वल्गुं च, सर्वशोकापनोदनीम्॥843॥
''कल्यचित्तं च मां ज्ञात्वा, प्रसन्नं शुद्धमानसम्।
हितः सर्वस्य लोकस्य, अन्वशासत् तथागतः॥844॥
''इदं दुःखमिति मामवोचत्, अयं दुःखस्य सम्भवः।
दुःखनिरोधः मार्गः च, अञ्जसा अमृतौकसः॥845॥
''अनुकम्पकस्य कुशलस्य, अववादे अहं स्थिता।
अध्यगाम् अमृतं शान्तम्, निर्वाणं पदमच्युतम्॥846॥
''साऽहम् अवस्थिता प्रेम्णा, दर्शने अविकम्पिनी।
मूलजातया श्रद्धया, धीता बुद्धस्य औरसी॥847॥

हिन्दी- यह भय को भी भय प्रदान करने वाला है, कठिनता से प्राप्त करने योग्य है जैसे कोई सिंह अपनी गुफा में निर्भय बैठा हो। यह उसी तरह दुष्प्राप्य है जैसे गूलर का फूल॥841॥

उन तथागत ने मुझसे बात करने के लिये मुझको मृदु स्वर में 'रज्जुमाला' नाम से सम्बोधित किया- मेरे पास आओ॥842॥

उनकी वह निर्दोष, सार्थक, शुद्ध, श्लक्ष्ण, मृदु तथा सर्वशोकनाशक, मधुर वाणी सुनकर॥843॥

मुझको स्वस्थ एवं शुद्धचित्त हुई जान कर सर्वलोक हितकारी तथागत ने यह समझाया॥844॥

'यह दुःख है', 'यह दुःखसमुदय है', 'यह दुःखनिरोध है', यह दुःखनिरोधगामी मार्ग सरल सीधे निर्वाण तक पहुँचाने वाला है॥845॥

उन अनुकम्पक एवं कुशल(तथागत) के उपदेश को सुनकर तथा इसमें प्रतिष्ठित होकर मैंने अमृतमय, शान्त एवं अच्युत निर्वाण पद प्राप्त कर लिया॥846॥

''साहं रमामि कीळामि, मोदामि अकुतोभया।
दिब्बमालं धारयामि, पिवामि मधुमद्दवं॥848॥
''सट्ठितुरियसहस्सानि, पटिबोधं करोन्ति मे।
आळम्बो गग्गरो भीमो, साधुवादी च संसयो॥849॥
''पोक्खरो च सुफस्सो च, वीणामोक्खा च नारियो।
नन्दा चेव सुनन्दा च, सोणदिन्ना सुचिम्हिता॥850॥
''अलम्बुसा मिस्सकेसी च, पुण्डरीकातिदारुणी।
एणीफस्सा सुफस्सा च, सुभद्दा मुदुवादिनी॥851॥
''एता चञ्ञा च सेय्यासे, अच्छरानं पबोधिका।
ता मं कालेनुपागन्त्वा, अभिभासन्ति देवता॥852॥
''हन्द नच्चाम गायाम, हन्द तं रमयामसे।
नयिदं अकतपुञ्ञानं, कतपुञ्ञानमेविदं॥853॥

संस्कृतच्छाया- ''साऽहं रमे क्रीडामि, मोदे अकुतोभया।
दिव्यमालां धारयामि, पिवामि मधुमद्द्रवम्॥848॥
''षष्टितूर्यसहस्राणि, प्रतिबोधं कुर्वन्ति मे।
आलम्बः गर्गरः भीमः, साधुवादी च संशयः॥849॥
पुष्करश्च सुस्पर्शश्च, वीणामुख्याश्च नार्यः।
नन्दा चैव सुनन्दा च, श्रोणदत्ता शुचिस्मिता॥850॥
अलम्बुषा मिश्रकेशी च, पुण्डरीका इति दारुणी।
''एणीस्पर्शा सुस्पर्शा च, सुभद्रा मृदुवादिनी॥851॥
एता चान्याश्च श्रेयस्तराः, अप्सरसां प्रबोधिकाः।
''ता मां कालेनोपागत्य, अभिभाषन्ते देवता॥852॥
हन्त नृत्यामः गायामः, हन्त त्वां रमयामः।
''नेदम् अकृतपुण्यानाम्, कृतपुण्यानामेवेदम्॥853॥

हिन्दी- वह मैं रत्नत्रय के प्रति श्रद्धापूर्ण तथा बुद्ध-दर्शन में अविचलित रहती हुई, मौलिक श्रद्धा से युक्त रहती हुई स्वयं को भगवान् की औरस पुत्री समझने लगी॥847॥

उस पुण्यकर्म के प्रभाव से मैं निर्भय होकर इस विमान में आमोद-प्रमोद पूर्वक रमण व क्रीड़ा कर रही हूँ तथा दिव्य माला धारण की हुई हूँ और माधुर्यद्रव का पान कर रही हूँ॥848॥

मेरे प्रातः जागरण काल पर साठ हजार विविध वाद्य बजाये जाते हैं। उन (अप्सराओं) में कोई अप्सरा आडम्बर(भेरी), कोई गग्गर(घट), कोई भीम, कोई साधुवाद्य, कोई संशय हाथ में लिये रहती हैं॥849॥

कोई पुष्कर, कोई सुस्पर्श तथा कोई वीणा हाथ में लिये रहती हैं। उनमें कुछ अप्सराओं के नाम ये हैं— नन्दा, सुनन्दा, श्रोणदत्ता, शुचिस्मिता॥850॥

अलम्बुषा, मिश्रकेशा, पुण्डरीका। एणीस्पर्शा, सुस्पर्शा, सुभद्रा, मृदुवादिनी आदि कुछ प्रसिद्ध अप्सराएँ आकर मुझ को जगाती हैं॥851॥

''असोकं नन्दनं रम्मं, तिदसानं महावनं।
सुखं अकतपुञ्ञानं, इध नत्थि परत्थ च॥854॥
''सुखञ्च कतपुञ्ञानं, इध चेव परत्थ च।
तेसं सहब्यकामानं, कत्तब्बं कुसलं बहुं।
कतपुञ्ञा हि मोदन्ति, सग्गे भोगसमङ्गिनो॥855॥
''बहूनं वत अत्थाय, उप्पज्जन्ति तथागता।
दक्खिणेय्या मनुस्सानं, पुञ्ञखेत्तानमाकरा।
यत्थ कारं करित्वान, सग्गे मोदन्ति दायका'' ति॥856॥

रज्जुमालाविमानं द्वादसमं।

मञ्जिट्ठकवग्गो चतुत्थो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं – मञ्जिट्ठा पभस्सरा नागा, अलोमाकञ्जिकदायिका।
विहारचतुरित्थम्बा, पीता उच्छुवन्दनरज्जुमाला च।
वग्गो तेन पवुच्चतीति॥

इत्थिविमानं समत्तं।

संस्कृतच्छाया- ''अशोकं नन्दनं रम्यम्, त्रिदशानां महावनम्।
सुखम् अकृतपुण्यानाम्, इह नास्ति परत्र च॥854॥
''सुखं च कृतपुण्यानाम्, इह चैव परत्र च।
''तेषां सहाय्यकामानाम्, कर्त्तव्यं कुशलं बहु।
कृतपुण्याः हि मोदन्ते, स्वर्गे भोगसमङ्गिनः' इति॥855॥
''बहूनां वत अर्थाय, उत्पद्यन्ते तथागताः।
दाक्षिणेय मनुष्याणाम्, पुण्यक्षेत्राणामाकराः।
यत्र कार्यं कृत्वा, स्वर्गं गच्छन्ति दायकाः'' इति॥856॥

तस्योद्दानम् – मञ्जिष्ठा प्रभास्वरा नागा, अलोमाकञ्जिकदायिका।
विहारचतुरस्राम्रा, पीता इक्षुवन्दनरज्जुमाला च।
वर्गः तेन प्रोच्यते इति॥

हिन्दी- ये अप्सराएँ तथा ऐसी ही कुछ अन्य प्रसिद्ध अप्सराएँ आकर मुझ को जगाती हैं। वे अप्सराएँ मेरे पास समय पर आकर कहती हैं—॥852॥

देवि! हम नाचेंगीं, गायेंगी। और (अपने नृत्य एवं गान से) आपका मन बहलायेंगीं। पापियों को ऐसा सुख सौभाग्य न इस लोक में मिल पाता है न परलोक में ही॥853॥

यह सुख सौभाग्य केवल इस लोक तथा परलोक में पुण्यकर्ताओं को ही मिलता है। क्योंकि पापियों को न कोई सुख इस लोक में मिल पाता है और न परलोक में ही॥854॥

कोई भी सुख पुण्यकर्ताओं को ही उपलब्ध होता है, पापियों को नहीं।ऐसे पुण्यकर्ताओं के साथ रह कर स्वर्गसुख भोगने की कामनावालों को चाहिये कि वे कुशल कर्म करें; क्योंकि ऐसे कुशल कर्म करने वाले पुण्यकर्ता ही इस दिव्य स्वर्गसुख का यथेच्छ उपभोग कर पाते हैं॥855॥

बहुजनों के उपकार के लिये ही तथागत उत्पन्न होते हैं। उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म की साधना करते हुए दानदाता प्राणी पुण्यक्षेत्र (स्वर्ग) में पहुँच जाते हैं॥856॥

1. मञ्जिष्ठकविमान, 2. प्रभास्वरविमान, 3. आलोकविमान, 4. कञ्जिकादायिकाविमान, 5. विहारविमान, 6. चतुःस्त्रीविमान, 7. आम्रविमान, 8. पीतविमान, 9. इक्षुविमान, 10. वन्दनविमान, एवं 11. रज्जुमालाविमान।

****

पुरिसविमानं

5. महारथवग्गो

1. मण्डूकदेवपुत्तविमानवत्थु

"को मे वन्दति पादानि, इद्धिया यससा जलं।
अभिक्कन्तेन वण्णेन, सब्बा ओभासयं दिसा" ति॥1॥
"मण्डूकोहं पुरे आसिं, उदके वारिगोचरो।
तव धम्मं सुणन्तस्स, अवधी वच्छपालको॥2॥
"मुहुत्तं चित्तपसादस्स, इद्धिं पस्स यसञ्च मे।
आनुभावञ्च मे पस्स, वण्णं पस्स जुतिञ्च मे॥3॥
"ये च ते दीघमद्धानं, धम्मं अस्सोसुं गोतम।
पत्ता ते अचलट्ठानं, यत्थ गन्त्वा न सोचरे" ति॥4॥

मण्डूकदेवपुत्तविमानं पठमं।

2. रेवतीविमानवत्थु

"चिरप्पवासिं पुरिसं, दूरतो सोत्थिमागतं।
ञातिमित्ता सुहज्जा च, अभिनन्दन्ति आगतं॥5॥

संस्कृतच्छाया- "को मे वन्दते पादौ, ऋद्ध्या यशसा जलम्।
अभिकान्तेन वर्णेन, सर्वा अवाभासयन् दिशः" इति॥1॥
"मण्डूकोऽहं पुरा आसम्, उदके वारिगोचरः।
तव धर्मं शृण्वन्तम्, अवधीत् वत्सपालकः॥2॥
"मुहूर्तं चित्तप्रसादस्य, ऋद्धिं पश्य यशश्च मे।
अनुभावं च मे पश्य, वर्णं पश्य द्युतिञ्च मे॥3॥
"ये च ते दीर्घमध्वानम्, धर्मम् अश्रौषिषुः गौतम।
प्राप्तास्तेऽचलस्थानं, यत्र गत्वा न शोचन्ति" इति॥4॥
"चिरप्रवासिनं पुरुषम्, दूरतः स्वस्थम् आगतम्।
ज्ञातिमित्राणि सुहृदश्च, अभिनन्दन्ति आगतम्॥5॥

हिन्दी- अपनी ऋद्धि एवं यश से जगमगाता हुआ तथा अपने कान्तिपूर्ण वर्ण से समस्त दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ यह कौन मेरे चरणों की वन्दना कर रहा है? ॥1॥

पूर्व में मैं जल में रहनेवाला मण्डूक (मेंढक) था। कभी आपके द्वारा देशित धर्म का श्रवण करते हुए किसी गोपालक ने अपनी लाठी से दबा कर मेरी हत्या कर दी थी ॥2॥

मुहूर्तमात्र की चैतसिक श्रद्धावश प्राप्त मेरे यश, ऋद्धि, अनुभाव, सुन्दर वर्ण तथा तेज को देखें! ॥3॥

भो गौतम! जिन्होनें दीर्घकाल तक आपके द्वारा देशित धर्म का श्रवण किया है; वे उस अचलस्थान (निर्वाण) को प्राप्त कर लेंगे, जहाँ पहुँचकर किसी प्रकार का शोक नहीं रहता ॥4॥

चिर काल से प्रवास (विदेश) में रहने वाला कोई पुरुष दूरसे स्वस्थतापूर्वक अपने घर लौट आवे तो उसके सम्बन्धिजन एवं मित्रगण उसका स्वागत करते हैं ॥5॥

"तथेव कतपुञ्ञम्पि, अस्मा लोका परं गतं।
पुञ्ञानि पटिगण्हन्ति, पियं ञातीव आगतं॥6॥
"उट्ठेहि रेवते सुपापधम्मे, अपारुतद्वारे, अपारुतद्वारं अदानसीले।
नेस्साम तं यत्थ थुनन्ति दुग्गता, समप्पिता नेरयिका दुक्खेना" ति॥7॥
इच्चेव वत्वान यमस्स दूता, ते द्वे यक्खा लोहितक्खा ब्रहन्ता।
पच्चेकबाहासु गहेत्वा रेवतं, पक्कामयुं देवगणस्स सन्तिके॥8॥
"आदिच्चवण्णं रुचिरं पभस्सरं, ब्यम्हं सुभं कञ्चनजालछन्नं।
कस्सेतमाकिण्णजनं विमानं, सूरियस्स रंसीरिव जोतमानं॥9॥
"नारीगणा चन्दनसारलित्ता, उभतो विमानं उपसोभयन्ति।
तं दिस्सति सूरियसमानवण्णं, को मोदति सग्गपत्तो विमाने" ति॥10॥

संस्कृतच्छाया- "तथैव कृतपुण्यम् अपि, अस्मात् लोकात् परं गतम्।
पुण्यानि प्रतिगृह्णन्ति, प्रियं ज्ञातिमिव आगतम्॥6॥
"उत्तिष्ठ रेवति सुपापधर्मिणि, अनावृतद्वारे अदानशीले।
नेष्यामः त्वां यत्र धुन्वन्ति दुर्गताः, समर्पिताः नैरयिकाः दुःखेन" इति॥7॥
इत्येवमुक्त्वा यमस्य दूताः, तौ द्वौ यक्षौ लोहिताक्षौ बृहन्तौ।
प्रत्येकं बाहुभ्यां गृहीत्वा रैवतम्, प्राक्रामताम् देवगणस्य अन्तिके॥8॥
"आदित्यवर्णं रुचिरं प्रभास्वरम्, विमानं शुभं काञ्चनजालच्छन्नम्।
कस्यैतद् आकीर्णजनं विमानम्, सूर्यस्य रश्मिरिव द्योतमानम्॥9॥
"नारीगणाश्चन्दनसारलिप्ताः, उभयतो विमानम् उपशोभयन्ति।
तत् पश्यति सूर्यसमानवर्णम्, कः मोदते प्राप्तस्वर्गो विमाने" इति॥10॥

हिन्दी- इसी प्रकार, पुण्यकर्मा पुरुष के पुण्यकर्म भी, इस लोक से परलोक में जाने पर, उस का सम्बन्धिजनों के भाँति ही स्वागत करते हैं॥6॥

हे पापकर्मिणी रेवति! तुमने न कोई दान किया, न धर्मसाधन द्वारा अपने लिये अमृत (निर्वाण) का द्वार ही खोला है। अतः हम तुमको वहाँ ले जायेंगे जहाँ दुर्गतिप्राप्त जीवों को ले जाया जाता है। जहाँ वे नारकीय दुःख भोगते **हैं॥ 7॥**

ऐसा कह कर वे लोहिताक्ष, बृहदाकार यक्ष रेवती की दोनों भुजाएं पकड़ कर उसे देवताओं के समक्ष ले चले॥8॥

यह सूर्य सदृश, सुन्दर, चमकीला एवं सुवर्णजालावृत विमान किसका है, जहाँ इतने लोग एकत्रित हैं तथा जो सूर्य की किरणों के समान अपनी छटा बिखेर रहा है? ॥9॥

चन्दनसारलिप्त शरीर वाली नारियों का समूह जिसकी दोनों ओर से शोभा बढ़ा रहा है, वह विमान सूर्य के समान वर्ण वाला दिख रहा है, इसमें कौन स्वर्ग प्राप्त पुरुष सुख भोग रहा है ? ॥10॥

''वाराणसियं नन्दियो नामासि, उपासको अमच्छरी दानपति वदञ्ञू।
तस्सेतमाकिण्णजनं विमानं, सूरियस्स रंसीरिव जोतमानं॥11॥
''नारीगणा चन्दनसारलित्ता, उभतो विमानं उपसोभयन्ति।
तं दिस्सति सूरियसमानवण्णं, सो मोदति सग्गपत्तो विमाने'' ति॥12॥
''नन्दियस्साहं भरिया, अगारिनी सब्बकुलस्स इस्सरा।
भत्तु विमाने रमिस्सामि दानहं, न पत्थये निरयं दस्सनाया'' ति॥13॥
''एसो ते निरयो सुपापधम्मे, पुञ्ञं तया अकतं जीवलोके।
न हि मच्छरी रोसको पापधम्मो, सग्गूपगानं लभति सहब्यतं'' ति॥14॥
''किं नु गूथञ्च मुत्तञ्च, असुची पटिदिस्सति।
दुग्गन्धं किमिदं मीळ्हं, किमेतं उपवायती'' ति॥15॥
''एस संसवको नाम, गम्भीरो सतपोरिसो।
यत्थ वस्ससहस्सानि, तुवं पच्चसि रेवते'' ति॥16॥

संस्कृतच्छाया- ''वाराणस्यां नन्दियनामा आसीत्, उपासक अमात्सरी दानपतिः वदान्यः।
तस्यैतद् आकीर्णजनं विमानम्, सूर्यस्य रश्मिरिव द्योतमानम्॥11॥
''नारीगणाः चन्दनसारलिप्ताः, उभयतो विमानम् उपशोभयन्ति।
तत् पश्यति सूर्यसमानवर्णम्, कः मोदते स्वर्गप्राप्तो विमाने'' इति॥12॥
''नन्दियस्याहं भार्या, अगारिणी सर्वकुलस्य ईश्वरी।
भर्तुः विमाने रमिष्ये इदानीम् अहम्, न प्रार्थये निरयं दर्शनाय'' इति॥13॥
''एष ते निरयः सुपापधर्मे, पुण्यं त्वया अकृतं जीवलोके।
न हि मत्सरी रोषकः पापधर्माः, स्वर्गोपगानं लभते सह वस्तुम्'' इति॥14॥
''किं नु गूथं च मूत्रं च, अशुची प्रतिदृश्येते।
दुर्गन्धं किमिदं मीडम्, किमेतद् उपवाति'' इति॥15॥
''एष संस्रवको नाम्ना, गम्भीरः शतपूरुषः।
यत्र वर्षसहस्राणि, त्वं पच्यसे रेवते'' इति॥16॥

हिन्दी- पूर्वजन्म में वाराणसी में नन्दिय नामक कोई बुद्धोपासक, निरभिमान, उदार एवं दानी था, जिसको इतने लोक घेरे हुए हैं वही इस सूर्य समान शोभित विमान में वास कर रहा है॥11॥

चन्दनसारलिप्त शरीर वाली नारियों का समूह जिसकी दोनों ओर से शोभा बढ़ा रहा है, वह विमान सूर्य के समान वर्ण वाला दिख रहा है, इसमें कौन स्वर्ग प्राप्त पुरुष सुख भोग रहा है?॥12॥

मैं पूर्व में नन्दिय की भार्या थी। मैं उसके समस्त ऐश्वर्य की स्वामिनी थी। अब मैं अपने पति के विमान में रहूँगी। अब मैं नरक के दर्शन भी करना नहीं चाहती॥13॥

अयि पापकारिणि! तुझे नरक में जाना पड़ेगा; क्योंकि तूने जीवलोक में रहकर कोई पुण्यकर्म नहीं किया। कंजूस, क्रोधी एवं पापी, स्वर्ग में रहने वालों के साथ रहने के योग्य नहीं होते।14।

यहाँ मल-मूत्र आदि अशुचिता क्यों दिखायी दे रही है? क्या यह मल की दुर्गन्ध इसी में से आ रही है?॥15॥

यह संस्रवक नामक नरक पुरुषमाप से सौ गुणा गहरा है। जहाँ तुमको एक हजार वर्ष तक अपने पापों का फल भोगना होगा॥16॥

''किं नु कायेन वाचाय, मनसा दुक्कटं कतं।
केन संसवको लद्धो, गम्भीरो सतपोरिसो'' ति॥17॥
''समणे ब्राह्मणे चापि, अञ्ञे वापि वनिब्बके।
मुसावादेन वञ्चेसि, तं पापं पकतं तया॥18॥
''तेन संसवको लद्धो, गम्भीरो सतपोरिसो।
तत्थ वस्ससहस्सानि, तुवं पच्चसि रेवते॥19॥
''हत्थेपि छिन्दन्ति अथोपि पादे, कण्णेपि छिन्दन्ति अथोपि नासं।
अथोपि काकोळगणा समेच्च, सङ्गम्म खादन्ति विफन्दमानं'' ति॥20॥
''साधु खो मं पटिनेथ, काहामि कुसलं बहुं।
दानेन समचरियाय, संयमेन दमेन च।
यं कत्वा सुखिता होन्ति, न च पच्छानुतप्परे'' ति॥21॥

संस्कृतच्छाया- ''किन्नु कायेन वाचा, मनसा दुष्कृतं कृतम्।
केन संस्रवको लब्धः, गम्भीरः शतपूरुषः'' इति॥17॥
''श्रमणे ब्राह्मणे चापि, अन्यस्मिन् वा अपि वनीयके।
मृषावादेन वञ्चयसि, तत् पापं प्रकृतं त्वया॥18॥
''तेन संस्रवको लब्धः, गम्भीरः शतपूरुषः।
तत्र वर्षसहस्राणि, त्वं पच्यसे रेवते'' इति॥19॥
''हस्तौ अपि छिन्दन्ति अथापि पादौ, कर्णौ अपि छिन्दन्ति अथापि नासाम्।
अथापि काकोलूकगणाः समेत्य, सङ्गत्य खादन्ति विपद्यमानाम्'' इति॥20॥
''साधु खलु मां प्रतिनयत, करिष्यामि कुशलं बहु।
दानेन समचर्यया, संयमेन दमेन च।
यत् कृत्वा सुखिताः भवन्ति, न च पश्चाद् अनुतप्यन्ते'' इति॥21॥

हिन्दी- मैंने अपने काय, वाणी एवं मन से ऐसे कौन से दुष्कर्म किये हैं कि मुझको यह सौ पुरुषों की लम्बाई जितना गहरा व मलमूत्र से पूर्ण संस्रवक प्राप्त हुआ? ॥17॥

किसी श्रमण ब्राह्मण या किसी अन्य याचक के सम्मुख आने पर तुमने उन के साथ झूठ बोला और सदा वंचना (धोखा) ही की, यही तुम्हारे द्वारा किया पाप है? ॥18॥

अतः उस पापकर्म के परिणामस्वरूप तुमको यह गन्दा दुर्गन्धमय संस्रवक (गर्त) प्राप्त हुआ है। वहाँ हजार वर्षों तक रहकर तुम्हें उस पाप का फल भोगना पड़ेगा॥19॥

वहाँ हमारे हाथ और पैर काटे जाते हैं, कभी कान तथा नासिका काटी जाती है। साथ-साथ जंगली कौए भी हमारे शरीर का मांस नोच नोच कर खाते रहते हैं॥20॥

अच्छा हो कि आप मुझे पुनः जीव लोक पहुँचा दें। अब मैं वहाँ रह कर दान, मैत्री भावना, संयम एवं दम के साथ उन बहुत से कुशल कर्मों को करुँगी। जिनको करने से जीव सुख का अनुभव करते हैं तथा उनके पश्चात् कोई पश्चाताप भी नहीं करना पड़ता॥21॥

''पुरे तुवं पमज्जित्वा, इदानि परिदेवसि।
सयं कतानं कम्मानं, विपाकं अनुभोस्ससी'' ति॥22॥
''को देवलोकतो मनुस्सलोकं, गन्त्वान पुट्ठो मे एवं वदेय्य।
'निक्खित्तदण्डेसु ददाथ दानं, अच्छादनं सेय्य मथन्नपानं।
नहि मच्छरी रोसको पापधम्मो, सग्गूपगानं लभति सहब्यतं'॥23॥
''साहं नून इतो गन्त्वा, योनिं लद्धान मानुसिं।
वदञ्ञू सीलसम्पन्ना, काहामि कुसलं बहुं।
दानेन समचरियाय, संयमेन दमेन च॥24॥
''आरामानि च रोपिस्सं, दुग्गे सङ्कमनानि च।
पपञ्च उदपानञ्च, विप्पसन्नेन चेतसा॥25॥
''चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।
पाटिहारियपक्खञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं॥26॥

संस्कृतच्छाया- ''पुरा त्वं प्रमज्य, इदानीं परिदेवसे।
स्वयं कृतानां कर्मणाम्, विपाकम् अनुभोक्ष्यसि'' इति॥22॥
''कः देवलोकात् मनुष्यलोकः, गत्वा पृष्टः मे एवं वदेत्।
'निक्षिप्तदण्डेभ्यः दद्यात् दानम्, आच्छादनं शय्याम् अथ अन्नपानम्।
न हि मत्सरी रोषकः पापधर्मा, स्वर्गोपगानं लभते सह वस्तुम्'' इति॥23॥
''साऽहं नूनम् इतो गत्वा, योनिं लब्ध्वा मानुषीम्।
वदान्या शीलसम्पन्ना, करिष्यामि कुशलं बहु।
दानेन समचर्यया, संयमेन दमेन च॥24॥
''आरामांश्च रोपयिष्यामि, दुर्गे सङ्क्रमणानि च।
प्रपाञ्च उदपानं च, विप्रसन्नेन चेतसा॥25॥
''चातुर्दशीं पञ्चदशीम्, या च पक्षस्य अष्टमी।
प्रातिहार्यपक्षे च, अष्टाङ्गसुसमागतम्॥26॥

हिन्दी- पूर्व में तुमने प्रमाद कर अब उसके लिये परिदेवना कर रही हो। तुमको उन स्वकृत कर्मों का फल तो भोगना ही पड़ेगा॥22॥

मैं पूछती हूँ कि देवलोक से मनुष्यलोक में जाकर मुझे कौन बताता कि असहाय पुरुषों को दान, आच्छादन, शय्या एवं भोजन कराना। इन कर्मों को न करता हुआ कंजूस, अभिमानी, क्रोध एवं पाप करने वाला पुरुष स्वर्ग में गये पुरुषों के साथ रहने का अधिकारी नहीं होता॥23॥

अब मैं निश्चित रूप से यहाँ से लौट कर, मानव योनि प्राप्त कर उदारता व सदाचारपूर्वक कुशल कर्मों का दान, मैत्री भावना, संयम एवं दम के साथ पालन करती हुई इनका अभ्यास भी करूँगी॥24॥

मैं प्रसन्नमन से आराम आदि का निर्माण कराऊँगी, छायादार वृक्ष लगाऊँगी, दुर्गम स्थानों पर पहुँचने के लिये मार्गों का निमार्ण कराऊँगी, प्याऊ तथा कूप का निर्माण कराऊँगी॥25॥

चतुर्दशी, पञ्चादशी या पक्ष की अष्टमी तथा किसी प्रातिहार्यपक्ष और अष्टाँगों से युक्त॥26॥

''उपोसथं उपवसिस्सं, सदा सीलेसु संवुता।
न च दाने पमज्जिस्सं, सामं दिट्ठमिदं मया'' ति॥27॥
इच्चेवं विप्पलपन्तिं, फन्दमानं ततो ततो।
खिपिंसु निरये घोरे, उद्धपादं अवंसिरं॥28॥
''अहं पुरे मच्छरिनी अहोसिं, परिभासिका समणब्राह्मणानं।
वितथेन च सामिकं वञ्चयित्वा, पच्चामहं निरये घोररूपे'' ति॥29॥

रेवतीविमानं दुतियं।

3. छत्तमाणवकविमानवत्थु

''ये वदतं पवरो मनुजेसु, सक्यमुनी भगवा कतकिच्चो।
पारगतो बलवीरियसमङ्गी तं सुगतं सरणत्थमुपेहि॥30॥
''रागविरागमनेजमसोकं, धम्ममसङ्खतमप्पटिकूलं।
मधुरमिमं पगुणं सुविभत्तं, धम्ममिमं सरणत्थमुपेहि॥31॥

संस्कृतच्छाया- ''उपोसथम् उपावसिसम्, सदा शीलेषु संवृता।
न च दाने प्रमदिष्यामि, सम्यग् दृष्टमिदं मया'' इति॥27॥
इत्येवं विप्रलपन्तीम्, स्पन्दमानां ततस्ततः।
चिक्षिपुः निरये घोरे, ऊर्ध्वपादाम् अवाक्शिरसम्॥28॥
''अहं पुरा मत्सरिणी अभूवम्, प्रतिभाषिका श्रमणब्राह्मणानाम्।
वितथेन च स्वामिनं वञ्चयित्वा, पचाम्यहं निरये घोररूपे'' इति॥29॥
''यः वदतां प्रवरो मनुजेषु, शाक्यमुनिः भगवान् कृतकृत्यः।
पारंगतः बलवीर्यसमङ्गः, तं सुगतं शरणार्थमुपेहि॥30॥
''रागविरागमनेजन्तमशोकम्, धर्ममसङ्स्कृतमप्रतिकूलम्।
मधुरमिमं प्रगुणं सुविभक्तम्, धर्ममिमं शरणार्थमुपेहि॥31॥

हिन्दी- शीलों में संवृत रहती हुई उपोसथ व्रत का पालन किया करूँगी। और अब मैं कभी दानादि में प्रमाद नहीं करूँगी। मैंने यह भलीभाँति समझ लिया है॥27॥

इस प्रकार उस विलाप करती तथा उन यमदूतों से छूटने के लिये छटपटाती, रेवती को यमदूतों ने पैर ऊपर व शिर नीचे कर घोर नरक कुण्ड में फैंक दिया॥28॥

मैं पूर्वजन्म में बहुत कंजूस थी। श्रमण ब्राह्मणों की निन्दा करती थी। तथा अपने पती के प्रति भी मिथ्या भाषण एवं धोखा करने परिणामस्वरूप मुझको इस घोर नरक में गिरकर दण्ड भोगना पड़ रहा है॥29॥

जो इन मनुष्यों में श्रेष्ठ प्रवक्ता हैं, ऐसे वे शाक्यमुनि भगवान् कृतकृत्य हो चुके हैं। वे अपने ही बल एवं वीर्य के द्वारा इस संसार से पार हो चुके हैं, उन तथागत की शरण में जाओ॥30॥

उन भगवान् का धर्म मनुष्यों के राग को दूर हटाने वाला है, स्थिर है, सांसारिक शोक का नाशक है, असंस्कृत है, अनुकूल है, श्रवणमधुर है, ज्ञान से युक्त है (प्रगुण) है, तथा सुविभक्त होने के कारण समझने में सरल है, अतः इस धर्म की शरण में जाओ॥31॥

''यत्थ च दिन्न महप्फलमाहु, चतूसु सुचीसु पुरिसयुगेसु।
अट्ठ च पुग्गलधम्मदसा ते, सङ्घमिमं सरणत्थमुपेहि॥32॥
''न तथा तपति नभे सूरियो, चन्दो च न भासति न फुस्सो।
यथा अतुलमिदं महप्पभासं, को नु त्वं तिदिवा महिं उपागा॥33॥
''छिन्दति रंसी पभङ्करस्स, साधिकवीसतियोजनानि आभा।
रत्तिमपि यथा दिवं करोति, परिसुद्धं विमलं सुभं विमानं॥34॥
''बहुपदुमविचित्रपुण्डरीकं, वोकिण्णं कुसुमेहि नेकचित्तं।
अरजविरजहेमजालछन्नं, आकासे तपति यथापि सूरियो॥35॥
''रत्तम्बरपीतवससाहि, अगरुपियङ्गुचन्दनुस्सदाहि।
कञ्चनतनुसन्निभत्तचाहि, परिपूरं गगनंव तारकाहि॥36॥

संस्कृतच्छाया- ''यत्र च दत्तं महाफलमाहुः, चतुर्षु शुचिषु पुरुषयुगेषु।
अष्टौ च पुद्गलधर्मद्रष्टारः ते, सङ्घमिमं शरणत्रमुपेहि॥32॥
''न तथा तपति नभसि सूर्यः, चन्द्रश्च न भासते न स्फुरितः।
यथा अतुलमिदं महाप्रभासम्, कः नु त्वं त्रिदिवात् महीम् उपागाः॥33॥
''छिनत्ति रश्मीः प्रभाकरस्य, साधिकविंशतियोजनानि आभा।
रात्रिमपि यथा दिवा करोति, परिशुद्धं विमलं शुभं विमानम्॥34॥
''बहुपद्मविचित्रपुण्डरीकम्, व्याकीर्णं कुसुमैः नैकचित्रम्।
अरजोविरजोहेमजालच्छन्नम्, आकाशे तपति यथापि सूर्यः॥35॥
''रक्ताम्बरपीतवासोभिः, अगुरुप्रियङ्गुचन्दनैः सदा हि।
काञ्चनतनुसन्निभत्वग्भिः, परिपूर्णं गगनमिव तारकाभिः॥36॥

हिन्दी- जहाँ दान का महान् फल होता है, चार शुद्ध पुरुषयुगलों में विभक्त आठ धर्मद्रष्टा होते हैं; अतः ऐसे सङ्घ की शरण में जाओ॥32॥

जहाँ उस प्रकार आकाश में न तो सूर्य ही चमकता है, न निष्कलंक चन्द्रमा ही भासित होता है; जिसप्रकार आपका यह अनुपम एवं विपुल प्रभावान विमान है। देव! आप स्वर्ग से इस पृथ्वी पर आनेवाले कौन हैं?॥33॥

प्रभाकर देव सूर्य की किरणों को अभिभूत करती आपके इस जगमगाते विमान की आभा चारों ओर बीसयोजन तक फैली हुई है। आपके परिशुद्ध, निर्मल एवं शुभ विमान की आभा रात्रि को दिन के समानकर रही है॥34॥

यह आपका विमान अनेक पद्म एवं विचित्र पुण्डरीकों से व्याप्त हैं, तथा इसमें अनेक प्रकार के चित्र विचित्र पुष्प यत्र-तत्र फैले हैं। यह धूलिरहित, स्वच्छ सुवर्णजाल से आवृत है। यह आकाश में सूर्य की भाँति देदीप्यमान है॥35॥

इसमें लाल, पीले वस्त्र-धारी, तथा अपने शरीर पर अगरु एवं चन्दन के गाढ़े लेप की हुई सुवर्ण त्वचा वाली अप्सराएँ संख्या में इतनी अधिक हैं मानो आकाश में तारासमूह॥36॥

''नरनारियो बहुकेत्थनेकवण्णा, कुसुमविभूसिताभरणेत्थ सुमना।
अनिलपमुञ्चिता पवन्ति सुरभिं, तपनियवितता सुवण्णछन्ना॥37॥
''किस्स संयमस्स अयं विपाको, केनासि कम्मफलेनिधूपपन्नो।
यथा च ते अधिगतमिदं विमानं, तदनुपदं अवचासि इङ्घ पुट्ठो'' ति॥38॥
''सयमिध पथे समेच्च माणवेन, सत्थानुसासि अनुकम्पमानो।
तव रतनवरस्स धम्मं सुत्वा, करिस्सामीति च ब्रवित्थ छत्तो॥39॥
''जिनवरपवरं उपेहि सरणं, धम्मं चापि तथेव भिक्खुसङ्घम्।
नो ति पठमं अवोचहं भन्ते, पच्छा ते वचनं तथेवकासिं॥40॥
मा च पाणवधं विविधं चरस्सु असुचिं,
न हि पाणेसु असञ्ञतं अवण्णयिंसु सप्पञ्ञा।
नो ति पठमं अवोचहं भन्ते, पच्छा ते वचनं तथेवकासिं॥41॥

संस्कृतच्छाया- ''नरनार्यः बह्वोत्रानेकवर्णाः, कुसुमविभूषिताभरणैः अत्र सुमनसः।
अनिलप्रमुञ्चिताः प्रवहन्ति सुरभयः, तपनीयविततताः सुवर्णच्छन्नाः॥37॥
''कस्य संयमस्य अयं विपाकः, केनासि कर्मफलेन इहोपपन्नः।
यथा च ते अधिगतमिदं विमानम्, तदनुपदं वद इह पृष्टः'' इति॥38॥
''स्वयम् इह पथि समेत्य माणवेन, शास्तानुशासी अनुकम्पमानः।
तव रत्नवरस्य धर्मं श्रुत्वा, करिष्यामि इति च अब्रवीच्छत्रः॥39॥
''जिनवरप्रवरम् उपेहि शरणम्, धर्मं चापि तथैव भिक्षुसंङ्घम्।
न इति प्रथमम् अवोचम् अहं भदन्त, पश्चात् तव वचनं तथैव अकार्षम्॥40॥
मा च प्राणिवधं विविधं चरस्व अशुचिम्,
न हि प्राणेषु असंयतम् अवर्णयन् सप्रज्ञाः।
न इति प्रथमम् अवोचम् अहं भदन्त, पश्चात् तव वचनं तथैव अकार्षम्॥41॥

हिन्दी- यहाँ बहुत से अनेक वर्ण वाले सुन्दर नर-नारी हैं जो विविध पुष्पों तथा आभूषणों से अलंकृत हैं। यहाँ सुगन्धियुक्त वायु बह रही है। यहाँ सभी वस्तुएँ सुवर्णनिर्मित या सुवर्णाच्छादित हैं॥37॥

आपके किस संयम का यह फल है? आप किस कर्म के विपाकस्वरूप यहाँ उत्पन्न हुई हैं? आपको जिस प्रकार से भी यह विमान प्राप्त हुआ है, उसी के विषय में हमारी जिज्ञासा है, कृपया इसे स्पष्ट बताइये?॥38॥

मार्ग में कभी भगवान् नें स्वयं छत्रमाणव पर अनुकम्पा करते हुए उसको अनुशासित किया। तब उस छत्रमाणव ने भी रत्नश्रेष्ठ भगवान् बुद्ध के धर्म को सुनकर उसके पालन हेतु वचन दिया॥39॥

छत्र! तुम जिनश्रेष्ठ बुद्ध की शरण जाओ, इसी प्रकार धर्म एवं सङ्घ की शरण में भी जाओ'— पहले तो मैनें इसके पालन में असमर्थता प्रकट की, परन्तु बाद में उनके वचन का वैसा ही पालन किया॥40॥

तुम प्राणिहिंसा न करना; क्योंकि प्राणियों के प्रति ऐसा कृत्य बुद्धिमानों द्वारा निन्दित है'— ऐसा भगवान् ने उपदेश किया। पहले तो मैनें इसके पालन में असमर्थता प्रकट की, परन्तु बाद में उनके वचन का वैसा ही पालन किया॥41॥

मा च परजनस्स रख्खितं पि आदातब्बममञ्ञिथो अदिन्नं।
नो ति पठमं अवोचहं भन्ते, पच्छा ते वचनं तथेवकासिं॥42॥
मा च परजनस्स रख्खितायो परभरिया अगमा अनरियमेतं।
नो ति पठमं अवोचहं भन्ते, पच्छा ते वचनं तथेवकासिं॥43॥
मा च वितथं अञ्ञथा अभाणि न हि मुसावादं अवण्णयिंसु सप्पञ्ञा।
नो ति पठमं अवोचहं भन्ते, पच्छा ते वचनं तथेवकासिं॥44॥
येन च पुरिसस्स अपेति सञ्ञा तं मज्जं परिवज्जयस्सु सब्बं।
नो ति पठमं अवोचहं भन्ते, पच्छा ते वचनं तथेवकासिं॥45॥
स्वाहं इध पञ्च सिक्खा करित्वा पटिपज्जित्वा तथागतस् धम्मे।
द्वेपथमगमासिं चोरमज्झे ते मं तत्थ वधिंसु भोगहेतु॥46॥
एत्तकमिदं अनुस्सरामि कुसलं ततो परं न मे वज्जति अञ्ञं।
तेन सुचरितेन कम्मुनाहं उप्पन्नो तिदिवेसु कामकामी॥47॥

संस्कृतच्छाया-
मा च परजनस्य रक्षितम् अपि आदातव्यमन्यथा अदत्तम्।
न इति प्रथमम् अवोचम् अहं भदन्त, पश्चात् तव वचनं तथैव अकार्षम्॥42॥
मा च परजनस्य रक्षिताम् परभार्याम् गमः अनार्यमेतत्।
न इति प्रथमम् अवोचम् अहं भदन्त, पश्चात् तव वचनं तथैव अकार्षम्॥43॥
मा च वितथम् अन्यथा भण न हि मृषावादम् अवर्णयन् सम्प्राज्ञाः।
न इति प्रथमम् अवोचम् अहं भदन्त, पश्चात् तव वचनं तथैव अकार्षम्॥44॥
येन च पुरुषस्य अपैति संज्ञा तत् मद्यं परिवर्जय सर्वम्।
न इति प्रथमम् अवोचम् अहं भदन्त, पश्चात् तव वचनं तथैव अकार्षम्॥45॥
सोऽहम् इह पञ्च शिक्षाः कृत्वा प्रतिपद्य तथागतस्य धर्मम्।
द्विपथमगां चौरमध्ये ते मां तत्र अवधिषुः भोगहेतोः॥46॥
एतद् इदम् अनुस्मरामि कुशलं ततः परं न मे विद्यते अन्यत्।
तेन सुचरितेन कर्मणाहम् उत्पन्नः त्रिदिवेषु कामकामी॥47॥

हिन्दी- दूसरों के की रक्षित वस्तु को भी दिये विना नहीं लेना। पहले तो मैनें इसके पालन में असमर्थता प्रकट की, परन्तु बाद में उनके वचन का वैसा ही पालन किया॥42॥

दूसरों की रक्षित स्त्रियों के साथ मैथुन नहीं करना; क्योंकि ये अनार्य(हीन) कर्म हैं'। पहले तो मैनें इसके पालन में असमर्थता प्रकट की, परन्तु बाद में उनके वचन का वैसा ही पालन किया॥43॥

मृषा(असत्य) एवं वितथ(अयथार्थ) वाणी नहीं बोलना, क्योंकि प्रज्ञावान् जीव ऐसे असत्य भाषण को घृणास्पद मानते हैं। पहले तो मैनें इसके पालन में असमर्थता प्रकट की, परन्तु बाद में उनके वचन का वैसा ही पालन किया॥44॥

जिसके कारण मनुष्य की संज्ञा(चेतना=होश) ही विलुप्त हो जाती हो ऐसे समस्त मद्यपान भी त्याग दो। पहले तो मैनें इसके पालन में असमर्थता प्रकट की, परन्तु बाद में उनके वचन का वैसा ही पालन किया॥45॥

वह मैं इन पाँच शिक्षाओं को पूर्ण कर, तथागत के धर्म में आरूढ वहाँ से चल कर आगे एक द्विपथ (दोराहे) पर चोरों के मध्य आ गया। वहाँ उन्होनें स्वप्रयोजनसिद्धिहेतु मेरा वध कर दिया॥46॥

इस समय मुझको अपना किया हुआ इतना ही कुशल कर्म स्मरण है। इससे आगे मैंने कोई अन्य कुशल कर्म नहीं किया। मैं साधारण कामभोगी पुरुष इस साधारण कुशल कर्म के सहारे ही इस स्वर्ग में उत्पन्न हुआ हूँ॥47॥

पस्स खणमुहुत्तसञ्ञमस्स अनुधम्मप्पटिपत्तिया विपाकं।
जलमिव यससा समेक्खमाना बहुका मं पिहयन्ति हीनकम्मा॥48॥
पस्स कतिपयाय देसनाय सुगतिं चम्हि गतो सुखं च पत्तो।
ये च ते सततं सुणन्ति धम्मं मञ्ञे ते अमतं फुसन्ति खेमं॥49॥
अप्पं पि कतं महाविपाकं विपुलं होति तथागतस्स धम्मे।
पस्स कतपुञ्ञताय छत्तो ओभासेति पथविं यथा पि सुरियो॥50॥
''किमिदं कुसलं किमाचरेम, इच्चेके हि समेच्च मन्तयन्ति।
ते मयं पुनरेव लद्ध मानुसत्तं, पटिपन्ना विहरेमु सीलवन्तो॥51॥
''बहुकारो अनुकम्पको च सत्था, इति मे सति अगमा दिवा दिवस्स।
स्वाहं उपगतोम्हि सच्चनामं, अनुकम्पस्सु पुनपि सुणेमु धम्मं॥52॥
''ये चिध पजहन्ति कामरागं, भवरागानुसयञ्च पहाय मोहं।
न च ते पुनमुपेन्ति गब्भसेय्यं, परिनिब्बानगता हि सीतिभूता'' ति॥53॥

छत्तमाणवकविमानं ततियं।

संस्कृतच्छाया- पश्य क्षणमुहुर्तसङ्गमस्य अनुधर्मप्रतिपत्तेः विपाकम्।
जलमिव यशसा समीक्षमाणाः बहवः मह्यं स्पृहयन्ति हीनकर्माणः॥48॥
पश्य कतिपयायाः देशनायाः सुगतिं चास्मि गतः सुखं च प्राप्तः।
ये च ते सततं शृण्वन्ति धर्मं मन्ये ते अमृतमश्नुवन्ति क्षेमम्॥49॥
अल्पमपि कृतं महाविपाकं विपुलं भवति तथागतस्य धर्मे।
पश्य कृतपुण्यतायाः छत्रोऽवभासते पृथिव्यां यथापि सूर्यः॥50॥
''किमिदं कुशलं किमाचरेम, इत्यनेके हि समेत्य मन्त्रयन्ति।
ते वयं पुनरेव लब्धमानुषत्वम्, प्रतिपन्नाः विहरामः शीलवन्तः॥51॥
''बहुकारोऽनुकम्पकश्च शास्ता, इति मे स्मृतिः आगमद् दिवा दिवा।
सोऽहम् उपगतोऽस्मि सत्यनामानम्, अनुकम्पस्व पुनरपि शृणुमः धर्मम्॥52॥
''ये चेह प्रजहति कामरागम्, भवरागानुशयं च प्रहाय मोहम्।
न च ते पुनरुपयान्ति गर्भशय्याम्, परिनिर्वाणगताः हि शीतीभूताः'' इति॥53॥

हिन्दी- आप मेरे इस मुहूर्तमात्र के संयमपूर्वक धर्मश्रवण तथा उसकी पूर्ति के सङ्कल्पमात्र का विपाक(फल) देखिये कि अपने यश से शोभित हुए मुझसे अनेक हीनकर्मा लोग स्पृहा(ईर्ष्या) करते हैं॥48॥

उस कुछ क्षण तक की गयी सौगत देशना का प्रभाव देखो कि एकमात्र उसके कारण से ही मैनें सुगति(स्वर्ग) एवं सुख— दोनों की प्राप्ति की। अतः जो सतत इस धर्म का श्रवण करते रहते हैं, मैं मानता हूँ कि वे उस क्षेमङ्कर अमृतस्वरूप निर्वाण को पा लेते हैं॥49॥

तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म का अल्पमात्र पालन भी महान् फलदायी होता है। आप मुझ कृतपुण्य छत्र को ही देखो कि मैं इस प्रकार अवभासित हो रहा हूँ जैसे पृथ्वी पर सूर्य अवभासित होता है॥50॥

यहाँ लोग एकत्र होकर यही मन्त्रणा करते हैं कि 'कुशल क्या है?' और 'किस धर्म का आचरण करना चाहिये'? और एक हम हैं कि पुनः मनुष्यत्व प्राप्त होते ही शीलवान् हो विहार कर रहे हैं॥51॥

4. कक्कटकरसदायकविमानवत्थु

''उच्चमिदं मणिथूणं विमानं, समन्ततो द्वादस योजनानि।
कूटागारा सत्तसता उळारा, वेळुरियथम्भा रुचकत्थता सुभा॥54॥
''तत्थच्छसि पिवसि खादसि च, दिब्बा च वीणा पवदन्ति वग्गुं।
दिब्बा रसा कामगुणेत्थ पञ्च, नारियो च नच्चन्ति सुवण्णछन्ना॥55॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥56॥
''पुच्छामि तं देव महानुभाव, मनुस्सभूतो किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावो, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥57॥
सो देवपुत्तो अत्तमनो, मोग्गल्लानेन पुच्छितो।
पञ्हं पुट्ठो वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥58॥
''सतिसमुप्पादकरो , द्वारे कक्कटको ठितो।
निट्ठितो जातरूपस्स, सोभति दसपादको॥59॥

संस्कृतच्छाया- ''उच्चैः इदं मणिस्थूणं विमानम्, समन्ततो द्वादशयोजनानि।
कूटागाराणि सप्तशतम् उदाराणि, वैदूर्यस्तम्भाः रुचककृताः शुभाः॥54॥
''तत्रेच्छसि पिबसि खादसि च, दिव्याश्च वीणाः प्रवदन्ति वल्गुम्।
दिव्याः रसाः कामगुणा अत्र पञ्च, नार्यश्च नृत्यन्ति सुवर्णच्छन्नाः॥55॥
''केन ते तादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥56॥
''पृच्छामि त्वां देव महानुभाव, मनुष्यभूतः किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावः, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते इति॥57॥
सः देवपुत्र आत्तमनाः, मौद्गल्यायनेन पृष्टः।
प्रश्नं पृष्टः व्याकार्षीत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥58॥
'स्मृतिसमुत्पादकरः, द्वारे कर्कटकः स्थितः।
निष्ठितो जातरूपस्य, शोभते दशपादकः॥59॥

हिन्दी- शास्ता बहूपकारक एवं अनुकम्पक हैं'—ऐसा विचार आज दोपहर के समय मेरे ध्यान में आया। इसलिए मैं आप सत्यनाम की शरण में आया हूँ कि आप हम पर अनुकम्पा करें कि हम पुनः धर्मश्रवण कर सकें॥52॥

जो साधक सांसारिक कामभोगों के प्रति आसक्ति का त्याग कर देते हैं, साथ ही भवरागबन्धन एवं मोह का भी त्याग कर देते हैं। वे इस लोक में पुनः किसी गर्भ को धारण नहीं करते तथा वे शान्तभूत हो परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं॥53॥

आप का यह मणिरत्नों से निर्मित स्थूण(स्तम्भ) वाला विमान चारों दिशाओं से बारह योजन लम्बा चौड़ा है। इसके सात सौ उच्च शिखर वैदूर्यमणि एवं सुवर्णनिर्मित सुन्दर स्तम्भों पर टिके हुए हैं॥54॥

वहाँ आप यथेच्छ खाते पीते हैं तथा मधुरध्वनि में वीणावादन करते रहते हैं। वहीं आप दिव्य रसों आदि पञ्च कामभोगों का उपभोग करते रहते हैं तथा वहाँ सुवर्णालंकृत स्त्रियाँ भी नृत्य करती रहती हैं॥55॥

पूर्ववत्....स्त्रीविमान गाथा सं॰ 2....॥56॥

''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥60॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूतो यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावो, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥61॥
(अनन्तरं पञ्चविमानं यथा कक्कटकरसदायकविमानं तथा वित्थारेतब्बं)
कक्कटकरसदायकविमानं चतुत्थं।

5. द्वारपालविमानवत्थु

''उच्चमिदं मणिथूणं विमानं, समन्ततो द्वादस योजनानि।
कूटागारा सत्तसता उळारा, वेळुरियथम्भा रुचकत्थता सुभा॥62॥
''तत्थच्छसि पिवसि खादसि च, दिब्बा च वीणा पवदन्ति वग्गुं।
दिब्बा रसा कामगुणेत्थ पञ्च, नारियो च नच्चन्ति सुवण्णछन्ना॥63॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥64॥

संस्कृतच्छाया- ''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥60॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूतो यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावः, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥61॥
(अनन्तरं पञ्चविमानं यथा कर्कटकरसदायकविमानं तथा विस्तारयितव्यम्)
''उच्चैः इदं मणिस्थूणं विमानम्, समन्ततो द्वादशयोजनानि।
कूटागाराणि सप्तशतम् उदाराणि, वैदूर्यस्तम्भाः रुचककृताः शुभाः॥62॥
''तत्रेच्छसि पिबसि खादसि च, दिव्याश्च वीणाः प्रवदन्ति वल्गुम्।
दिव्याः रसाः कामगुणा अत्र पञ्च, नार्यश्च नृत्यन्ति सुवर्णच्छन्नाः॥63॥
''केन ते तादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उद्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥64॥

हिन्दी- पूर्ववत्....स्त्रीविमान गाथा सं॰ 3....॥57॥
पूर्ववत्....स्त्रीविमान गाथा सं॰ 4.... ॥58॥
मेरे द्वार पर एक स्मृतिवर्धक कर्कटक का वृक्ष स्थित था। सुवर्ण से अलंकृत था तथा उसकी जड़ें स्थूल रूप से (दशपादक) दश भागों में विभक्त थीं॥59॥
पूर्ववत्....स्त्रीविमान गाथा सं॰ 6....॥60॥
पूर्ववत्....स्त्रीविमान गाथा सं॰ 7....॥61॥
अनन्तर पाँच विमानों का विस्तार कर्कटरसदायकविमान की ही भाँति करना चाहिए।
आप का यह मणिरत्नों से निर्मित स्थूण(स्तम्भ) वाला विमान चारों दिशाओं से बारह योजन लम्बा चौड़ा है। इसके सात सौ उच्च शिखर वैदूर्यमणि एवं सुवर्णनिर्मित सुन्दर स्तम्भों पर टिके हुए हैं॥62॥
वहाँ आप यथेच्छ खाते पीते हैं तथा मधुरध्वनि में वीणावादन करते रहते हैं। वहीं आप दिव्य रसों आदि पञ्च कामभोगों का उपभोग करते रहते हैं तथा वहाँ सुवर्णालंकृत स्त्रियाँ भी नृत्य करती रहती हैं॥63॥

''पुच्छामि तं देव महानुभाव, मनुस्सभूतो किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावो, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥65॥
सो देवपुत्तो अत्तमनो, मोग्गल्लानेन पुच्छितो।
पञ्हं पुट्ठो वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥66॥
''दिब्बं ममं वस्ससहस्समायु, वाचाभिगीतं मनसा पवत्तितं।
एत्तावता ठस्सति पुञ्ञकम्मो, दिब्बेहि कामेहि समङ्गिभूतो॥67॥
''तेन मेतादिसो वण्णो...पे....वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥68-69॥

द्वारपालविमानं पञ्चमं।

6. पठमकरणीयविमानवत्थु

''उच्चमिदं मणिथूणं विमानं, समन्ततो द्वादस योजनानि।
कूटागारा सत्तसता उळारा, वेळुरियथम्भा रुचकत्थता सुभा॥70॥
''तत्थच्छसि पिवसि खादसि च, दिब्बा च वीणा पवदन्ति वग्गुं।
दिब्बा रसा कामगुणेत्थ पञ्च, नारियो च नच्चन्ति सुवण्णछन्ना॥71॥

संस्कृतच्छाया- ''पृच्छामि त्वां देव महानुभाव, मनुष्यभूतः किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावः, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते इति॥65॥
सः देवपुत्र आत्तमनाः, मौद्गल्यायनेन पृष्टः।
प्रश्नं पृष्टः व्याकार्षीत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥66॥
''दिव्यं मम वर्षसहस्रमायुः, वाचाभिगीतं मनसा प्रवर्त्तितम्।
एतावता स्थास्यति पुण्यकर्मा, दिव्यैः कामैः समङ्गिभूतः॥67॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः...पे...वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥68-69॥
''उच्चैः इदं मणिस्थूणं विमानम्, समन्ततः द्वादशयोजनानि।
कूटागाराणि सप्तशतम् उदाराणि, वैदूर्यस्तम्भाः रुचककृताः शुभाः॥70॥
''तत्रेच्छसि पिबसि खादसि च, दिव्याश्च वीणाः प्रवदन्ति वल्गुम्।
दिव्याः रसाः कामगुणा अत्र पञ्च, नार्यश्च नृत्यन्ति सुवर्णच्छन्नाः॥71॥

हिन्दी- पूर्ववत्....स्त्रीविमान गाथा सं॰ 2....॥64॥
पूर्ववत्....स्त्रीविमान गाथा सं॰ 3....॥65॥
पूर्ववत्....स्त्रीविमान गाथा सं॰ 4....॥66॥

मेरी दिव्य सहस्रवर्षपर्यन्त आयु है। यह आशीर्वचनों द्वारा मुझको प्राप्त हुई है। इतने समय तक मै पुण्यकर्म करता रहूँगा। और दिव्य कामभोगों का भी उपभोग करुँगा॥67॥

पूर्ववत्.... गाथा सं॰ 6, 7 स्त्रीविमान....॥68-69॥

आप का यह मणिरत्नों से निर्मित स्थूण(स्तम्भ) वाला विमान चारों दिशाओं से बारह योजन लम्बा चौड़ा है। इसके सात सौ उच्च शिखर वैदूर्यमणि एवं सुवर्णनिर्मित सुन्दर स्तम्भों पर टिके हुए हैं॥70॥

वहाँ आप यथेच्छ खाते पीते हैं तथा मधुरध्वनि में वीणावादन करते रहते हैं। वहीं आप दिव्य रसों आदि पञ्च कामभोगों का उपभोग करते रहते हैं तथा वहाँ सुवर्णालंकृत स्त्रियाँ भी नृत्य करती रहती हैं॥71॥

''केन तेतादिसो वण्णो...पे॰...वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥72-73॥
सो देवपुत्तो अत्तमनो...पे॰...यस्स कम्मस्सिदं फलं॥74॥
''करणीयानि पुञ्ञानि, पण्डितेन विजानता।
सम्मग्गतेसु बुद्धेसु, यत्थ दिन्नं महप्फलं॥75॥
''अत्थाय वत मे बुद्धो, अरञ्ञा गाममागतो।
तत्थ चित्तं पसादेत्वा, तावतिंसूपगो अहं॥76॥
''तेन मेतादिसो वण्णो...पे॰...वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥77-78॥
पठमकरणीयविमानं छट्ठं।

7. दुतियकरणीयविमानवत्थु

''उच्चमिदं मणिथूणं विमानं, समन्ततो द्वादस योजनानि।
कूटागारा सत्तसता उळारा, वेळुरियथम्भा रुचकत्थता सुभा॥79॥
''तत्थच्छसि पिवसि खादसि च, दिब्बा च वीणा पवदन्ति वग्गुं।
दिब्बा रसा कामगुणेत्थ पञ्च, नारियो च नच्चन्ति सुवण्णछन्ना॥80॥

संस्कृतच्छाया- ''केन ते एतादृशो वर्णः...पे॰...वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥72-73॥
सः देवपुत्र आत्तमनाः...पे॰...यस्य कर्मण इदं फलम्॥74॥
''करणीयानि पुण्यानि, पण्डितेन विजानता।
समागतेषु बुद्धेषु, यत्र दत्तं महाफलम्॥75॥
''अर्थाय वत मे बुद्धः, अरण्याद् ग्राममागतः।
तत्र चित्तं प्रसाद्य, त्रायस्त्रिंशोपगोऽहम्॥76॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः...पे॰...वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥77-78॥
''उच्चैः इदं मणिस्थूणं विमानम्, समन्ततः द्वादशयोजनानि।
कूटागाराणि सप्तशतम् उदाराणि, वैदूर्यस्तम्भाः रुचककृताः शुभाः॥79॥
''तत्रेच्छसि पिबसि खादसि च, दिव्याश्च वीणाः प्रवदन्ति वल्गुम्।
दिव्याः रसाः कामगुणा अत्र पञ्च, नार्यश्च नृत्यन्ति सुवर्णच्छन्नाः॥80॥

हिन्दी- पूर्ववत्....स्त्रीविमान गाथा सं॰ 2, 3....॥72-73॥
पूर्ववत्....स्त्रीविमान गाथा सं॰ 4....॥74॥
पण्डित पुरुष को चाहिये कि वह पुण्य कर्म की इच्छा से भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध को उद्देश्य कर दानादि कर्म करे। जहाँ किए दान का महाफल होता है॥75॥
भगवान् बुद्ध मेरे हितसम्पादन हेतु अरण्य से ग्राम में आये। तब मैंने अपने चित्त में उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न की। उस श्रद्धोत्पाद का ही यह परिणाम मुझको इस देवलोक में इस विमान की प्राप्ति के रूप में मिला॥76॥
पूर्ववत्....स्त्रीविमान गाथा सं॰ 6, 7॥77-78॥
आप का यह मणिरत्नों से निर्मित स्थूण(स्तम्भ) वाला विमान चारों दिशाओं से बारह योजन लम्बा चौड़ा है। इसके सात सौ उच्च शिखर वैदूर्यमणि एवं सुवर्णनिर्मित सुन्दर स्तम्भों पर टिके हुए हैं॥79॥
वहाँ आप यथेच्छ खाते पीते हैं तथा मधुरध्वनि में वीणावादन करते रहते हैं। वहीं आप दिव्य रसों आदि पञ्च कामभोगों का उपभोग करते रहते हैं तथा वहाँ सुवर्णालंकृत स्त्रियाँ भी नृत्य करती रहती हैं॥80॥

''केन तेतादिसो वण्णो...पे.... वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥81-82॥
सो देवपुत्तो अत्तमनो...पे.... यस्स कम्मस्सिदं फलं॥83॥
''करणीयानि पुञ्ञानि, पण्डितेन विजानता।
सम्मग्गतेसु भिक्खूसु, यत्थ दिन्नं महप्फलं॥84॥
''अत्थाय वत मे भिक्खु, अरञ्ञा गाममागतो।
तत्थ चित्तं पसादेत्वा, तावतिंसूपगो अहं॥85॥
''तेन मेतादिसो वण्णो...पे....वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥86-87॥

दुतियकरणीयविमानं सत्तमं।

8. पठमसूचिविमानवत्थु

''उच्चमिदं मणिथूणं विमानं, समन्ततो द्वादस योजनानि।
कूटागारा सत्तसता उळारा, वेळुरियथम्भा रुचकत्थता सुभा॥88॥

संस्कृतच्छाया- ''केन ते एतादृशो वर्णः...पे॰... वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥81-82॥
सः देवपुत्र आप्तमनाः...पे॰... यस्य कर्मण इदं फलम्॥83॥
''करणीयानि पुण्यानि, पण्डितेन विजानता।
समागतेषु भिक्षुषु, यत्र दत्तं महाफलम्॥84॥
''अर्थाय वत मे बुद्धः, अरण्याद् ग्राममागतः।
तत्र चित्तं प्रसाद्य, त्रायस्त्रिंशोपगोऽहम्॥85॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः...पे॰...वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते''इति॥86-87॥
''उच्चैः इदं मणिस्थूणं विमानम्, समन्ततः द्वादशयोजनानि।
कूटागाराणि सप्तशतम उदाराणि, वैदूर्यस्तम्भाः रुचककृताः शुभाः॥88॥

हिन्दी- पूर्ववत्....स्त्रीविमान गाथा सं॰ 2, 3....॥81-82॥

पूर्ववत्....स्त्रीविमान गाथा सं॰ 4....॥83॥

बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि वह पुण्यकर्म की इच्छा से सम्यग्मार्गारूढ भिक्षुओं को उद्देश्य कर दानादि कर्म करे। जहाँ दिए गए दान का अतिशय फल होता है॥84॥

मेरे हितार्थ, एक भिक्षु, अरण्य से ग्राम में आया। मैंने सहृदय उनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न की। इसका मुझको यह फल मिला कि आज मैनें इस त्रायस्त्रिंश लोक को प्राप्त किया॥85॥

पूर्ववत्....स्त्रीविमान गाथा सं॰ 6, 7॥86-87॥

आप का यह मणिरत्नों से निर्मित स्थूण(स्तम्भ) वाला विमान चारों दिशाओं से बारह योजन लम्बा चौड़ा है। इसके सात सौ उच्च शिखर वैदूर्यमणि एवं सुवर्णनिर्मित सुन्दर स्तम्भों पर टिके हुए हैं॥88॥

''तत्थच्छसि पिवसि खादसि च, दिब्बा च वीणा पवदन्ति वग्गुं।
दिब्बा रसा कामगुणेत्थ पञ्च, नारियो च नच्चन्ति सुवण्णछन्ना॥89॥
''केन तेतादिसो वण्णो...पे.... वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥90-91॥
सो देवपुत्तो अत्तमनो...पे.... यस्स कम्मस्सिदं फलं॥92॥
''यं ददाति न तं होति, यञ्चेव दज्जा तञ्चेव सेय्यो।
सूचि दिन्ना सूचिमेव सेय्यो॥93॥
''तेन मेतादिसो वण्णो...पे.... वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥94-95॥

पठमसूचिविमानं अट्ठमं।

9. दुतियसूचिविमानवत्थु

''उच्चमिदं मणिथूणं विमानं, समन्ततो द्वादस योजनानि।
कूटागारा सत्तसता उळारा, वेळुरियथम्भा रुचकत्थता सुभा॥96॥

संस्कृतच्छाया- ''तत्रेच्छसि पिबसि खादसि च, दिव्याश्च वीणाः प्रवदन्ति वल्गुम्।
दिव्याः रसाः कामगुणा अत्र पञ्च, नार्यश्च नृत्यन्ति सुवर्णच्छन्नाः॥89॥
''केन ते एतादृशो वर्णः...पे.... वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥90-91॥
सः देवपुत्र आत्तमनाः...पे.... यस्य कर्मण इदं फलम्॥92॥
''यद् ददाति न तत् भवति,यच्चैव दद्यात् तच्चैव श्रेयः।
सूची दत्ता सूची एव श्रेयः॥93॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः...पे.... वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥94-95॥
''उच्चैः इदं मणिस्थूणं विमानम्, समन्ततः द्वादशयोजनानि।
कूटागाराणि सप्तशतम् उदाराणि, वैदूर्यस्तम्भाः रुचककृताः शुभाः॥96॥

हिन्दी- वहाँ आप यथेच्छ खाते पीते हैं तथा मधुरध्वनि में वीणावादन करते रहते हैं। वहीं आप दिव्य रसों अदि पञ्च कामभोगों का उपभोग करते रहते हैं तथा वहाँ सुवर्णालंकृत स्त्रियाँ भी नृत्य करती रहती हैं॥89॥

पूर्ववत्....स्त्रीविमान गाथा सं॰ 2, 3॥90-91॥

पूर्ववत्....स्त्रीविमान गाथा सं॰ 4॥92॥

जो देना चाहते हैं वह होता नहीं है, अतः जो दे दें वही श्रेयस्कर है। मैंने सूची (सूई) का दान किया वही सूची ही मेरे लिये श्रेयस्कर हो गयी॥93॥

पूर्ववत्....स्त्रीविमान गाथा सं॰ 6,7॥94-95॥

आप का यह मणिरत्नों से निर्मित स्थूण(स्तम्भ) वाला विमान चारों दिशाओं से बारह योजन लम्बा चौड़ा है। इसके सात सौ उच्च शिखर वैदूर्यमणि एवं सुवर्णनिर्मित सुन्दर स्तम्भों पर टिके हुए हैं॥96॥

''तत्थच्छसि पिवसि खादसि च, दिब्बा च वीणा पवदन्ति वग्गुं।
दिब्बा रसा कामगुणेत्थ पञ्च, नारियो च नच्चन्ति सुवण्णछन्ना॥97॥
''केन तेतादिसो वण्णो...पे.... वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥98-99॥
सो देवपुत्तो अत्तमनो...पे.... यस्स कम्मस्सिदं फलं॥100॥
''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूतो,पुरिमजातिया मनुस्सलोके॥101॥
''अद्दसं विरजं भिक्खुं, विप्पसन्नमनाविलं।
तस्स अदासहं सूचिं, पसन्नो सेहि पाणिभि॥102॥
''तेन मेतादिसो वण्णो...पे....वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥103-104॥
दुतियसूचिविमानं नवमं।

10. पठमनागविमानवत्थु

''सुसुक्कखन्धं अभिरुय्ह नागं, अकाचिनं दन्तिं बलिं महाजवं।
अभिरुय्ह गजवरं सुकप्पितं, इधागमा वेहायसं अन्तलिक्खे॥105॥

संस्कृतच्छाया- ''तत्रेच्छसि पिवसि खादसि च, दिव्याश्च वीणाः प्रवदन्ति वल्गुम्।
दिव्याः रसाः कामगुणा अत्र पञ्च, नार्यश्च नृत्यन्ति सुवर्णच्छन्नाः॥97॥
''केन ते एतादृशो वर्णः...पे.... वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥98-99॥
सः देवपुत्र आत्तमनाः...पे.... यस्य कर्मण इदं फलम्॥100॥
''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूतः, पूर्वस्याः जात्याः मनुष्यलोके॥101॥
''अद्राक्षं विरजं भिक्षुम्, विप्रसन्नमनाविलम्।
तस्मै अदामहं सूचिम्, प्रसन्नः स्वाभ्यां पाणिभ्याम्॥102॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः...पे....वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥103-104॥
''सुशुक्लस्कन्धम् अभिरुह्य नागम्, अर्काचिनं दन्तिनं बलिनं महाजवम्।
अभिरुह्य गजवरं सुकल्पितम्, इहागमं वैहायसाद् अन्तरीक्षे॥105॥

हिन्दी- वहाँ आप यथेच्छ खाते पीते हैं तथा मधुरध्वनि में वीणावादन करते रहते हैं। वहीं आप दिव्य रसों अदि पञ्च कामभोगों का उपभोग करते रहते हैं तथा वहाँ सुवर्णालंकृत स्त्रियाँ भी नृत्य करती रहती हैं॥97॥

पूर्ववत्....स्त्रीविमान गाथा सं॰ 2,3....॥98-99॥

पूर्ववत्....स्त्रीविमान गाथा सं॰ 4....॥100॥

मैनें पूर्वजनम में मनुष्य लोक में मनुष्यरूप में जन्म लिया था॥101॥

मैंने किसी विरज, प्रसन्नेन्द्रिय भिक्षु को देखा। उनको मैंने, प्रसन्नमन से, अपने हाथों से एक सूई का दान किया॥102॥

पूर्ववत्....स्त्रीविमान गाथा सं॰ 6,7॥103-104॥

आप जिस श्वेत पृष्ठ वाले, निर्दोष (निष्कलङ्क), दाँतों वाले बलवान्, वेगवान् और सुसज्जित व श्रेष्ठ गज(हाथी) पर चढ़ कर (अन्तरिक्ष)आकाश मार्ग से यहाँ आये॥105॥

''नागस्स दन्तेसु दुवेसु निम्मिता, अच्छोदका पदुमिनियो सुफुल्ला।
पदुमेसु च तुरियगणा पवज्जरे, इमा च नच्चन्ति मनोहरायो॥106॥
''देविद्धिपत्तोसि महानुभावो, मनुस्सभूतो किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावो, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥107॥
सो देवपुत्तो अत्तमनो, मोग्गल्लानेन पुच्छितो।
पञ्हं पुट्ठो वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥108॥
''अट्ठेव मुत्तपुप्फानि, कस्सपस्स महेसिनो।
थूपस्मिं अभिरोपेसिं, पसन्नो सेहि पाणिभि॥109॥
''तेन मेतादिसो वण्णो...पे॰...वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥110-111॥

पठमनागविमानं दसमं।

11. दुतियनागविमानवत्थु

''महन्तं नागं अभिरुय्ह, सब्बसेतं गजुत्तमं।
वना वनं अनुपरियासि, नारीगणपुरक्खतो।
ओभासेन्तो दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥112॥

संस्कृतच्छाया- ''नागस्य दन्तद्वये निर्मिताः, स्वच्छोदकाः पद्मिन्यः सुफुल्लाः।
पद्मेषु च तूर्यगणा प्रवाद्यन्ते, इमाश्च नृत्यन्ति मनोहराः॥106॥
''देवर्द्धिप्राप्तोऽसि महानुभावः, मनुष्यभूतः किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावः, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥107॥
सः देवपुत्र आप्तमनाः, मौद्गल्यायनेन पृष्टः।
प्रश्नं पृष्टः व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥108॥
''अष्टैव मुक्तापुष्पाणि, कश्यपस्य महर्षेः।
स्तूपे अभ्यरोपयम्, प्रसन्नः स्वाभ्यां पाणिभ्याम्॥109॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः...पे॰...वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥110-111॥
''महान्तं नागम् अभिरुह्य, सर्वश्वेतं गजोत्तमम्।
वनाद् वनम् अनुपरियासि, नारीगणपुरस्कृतः।
अवभासयन्तः दिशः सर्वाः, औषधिरिव तारकाः॥112॥

हिन्दी- इस गजविमान के दोनों दाँतों पर स्वच्छ जलवाली सुपुष्पित पद्मिनियाँ अंकित हैं। तथा पद्मपुष्पों में भिन्न-भिन्न वाद्ययन्त्रों के साथ अप्सराएँ नाच रही हैं॥106॥

आपने ये ऋद्धियाँ किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस दीप्त वर्ण किस हेतु से प्राप्त हुआ है जो समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रहा है॥107॥

उस प्रसन्नमन देवता ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रहा है॥108॥

मैनें महर्षि काश्यप के स्तूप पर श्रद्धापूर्वक अपने हाथों से श्वेत मोती के समान आठ पुष्प अर्पित किये थे॥109॥

पूर्ववत्....स्त्रीविमान गाथा सं॰ 6,7॥110-111॥

''केन तेतादिसो वण्णो...पे॰...वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥113-114॥
सो देवपुत्तो अत्तमनो, वङ्गीसेनेव पुच्छितो।
पञ्हं पुट्ठो वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥115॥
''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूतो, उपासको चक्खुमतो अहोसिं।
पाणातिपाता विरतो अहोसिं, लोके अदिन्नं परिवज्जयिस्सं॥116॥
''अमज्जपो नो च मुसा अभाणिं, सकेन दारेन च तुट्ठो अहोसिं।
अन्नञ्च पानञ्च पसन्नचित्तो, सक्कच्च दानं विपुलं अदासिं॥117॥
''तेन मेतादिसो वण्णो...पे॰...वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥118-119॥
दुतियनागविमानं एकादसमं।

12. ततियनागविमानवत्थु

''को नु दिब्बेन यानेन, सब्बसेतेन हत्थिना।
तुरियताळितनिग्घोसो, अन्तलिक्खे महीयति॥120॥

संस्कृतच्छाया- ''केन ते एतादृशो वर्णः...पे॰...वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥113-114॥
सः देवपुत्र आप्तमनाः, वङ्गीशेनैव पृष्टः।
प्रश्नं पृष्टः व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥115॥
''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूतः, उपासकः चक्षुष्मतः अभूवम्।
प्राणातिपाताद् विरतोऽभूवम्, लोकेऽदृष्टं पर्यवर्जयम्॥116॥
''अमद्यपः न च मृषा अभणम्, स्वकीयैः दारैश्च तुष्टोऽभूवम्।
अन्नं च पानं च प्रसन्नचित्तः सत्कृत्य दानं विपुलम् अदाम्॥117॥
तेन मे एतादृशो वर्णः...पे॰...वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥118-119॥
कः नु दिव्येन यानेन, सर्वश्वेतेन हस्तिना।
तूर्यतालितनिर्घोषः, अन्तरिक्षे महीयते॥120॥

हिन्दी- आप इस सर्वथा श्वेत, श्रेष्ठ व महान् गज पर आरूढ होकर अप्सराओं की अगवानी में एक वन से दूसरे वन में विचरण करते हुए समस्त दिशाओं को उसी प्रकार अवभासित कर रहे हैं जैसे तारागण औषधियों को प्रकाशित करते हैं॥112॥

पूर्ववत्....स्त्रीविमान गाथा सं॰ 2,3॥113-114॥

उस प्रसन्नमन देवता ने उन वङ्गीश(महामौद्गल्यायन) द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रहा है॥115॥

मैं कभी मनुष्यलोक में मनुष्य होकर चक्षुष्मान् बुद्ध का उपासक बना। तब मैंने प्राणातिपात एवं चौरी का त्याग कर दिया॥116॥

मैंने मद्यपान एवं मृषा(असत्यभाषण) का भी त्याग कर दिया। और मैं अपनी धर्मपत्नी से ही सन्तुष्ट रहने लगा। तथा प्रसन्नचित्त हो सत्कारपूर्वक अन्न-पान का विपुल दान किया॥117॥

पूर्ववत्....स्त्रीविमान गाथा सं॰ 6,7॥118-119॥

इस सर्वश्वेत दिव्य हस्तियान पर आरूढ़ आप कौन मधुर मनोहर वाद्ययन्त्रों की ध्वनि के साथ इस अन्तरिक्ष में शोभित हो रहे हैं?॥120॥

''देवता नुसि गन्धब्बो, अदु सक्को पुरिन्ददो।
अजानन्ता तं पुच्छाम, कथं जानेमु तं मयं'' ति॥121॥
''नम्हि देवो न गन्धब्बो, नापि सक्को पुरिन्ददो।
सुधम्मा नाम ये देवा, तेसं अञ्ञतरो अहं'' ति॥122॥
''पुच्छाम देवं सुधम्मं, पुथुं कत्वान अञ्जलिं।
किं कत्वा मानुसे कम्मं, सुधम्मं उपपज्जती'' ति॥123॥
''उच्छागारं तिणागारं, वत्थागारञ्च यो ददे।
तिण्णं अञ्ञतरं दत्वा, सुधम्मं उपपज्जती'' ति॥124॥
ततियनागविमानं द्वादसमं।

13. चूळरथविमानवत्थु

''दळ्हधम्मा निसारस्स, धनुं ओलुब्भ तिट्ठसि।
खत्तियो नुसि राजञ्ञो, अदु लुद्धो वनेचरो'' ति॥125॥

संस्कृतच्छाया- देवता नु अस्ति गन्धर्वः, असौ शक्रः पुरन्दरः।
अजानन्तः त्वां पृच्छामः, कथं जानीमस्त्वाम् अयम्'' इति॥121॥
नास्मि देवः न गन्धर्वः, नापि शक्रः पुरन्दरः।
सुधर्म्मा नामानः ये देवाः, तेषाम् अन्यतमोऽहम्'' इति॥122॥
पृच्छामि देवं सुधर्म्माणम्, पृथु कृत्वा अञ्जलिम्।
किं कृत्वा मानुषे कर्म, सुधर्मा उपपद्यते'' इति॥123॥
उञ्छागारं त्रिणागारम्, वस्त्रागारं च यद् अदाम्।
त्रयाणाम् अन्यतरं दत्वा, सुधर्मा उपपद्यते'' इति॥124॥
दृढधर्म्मा निस्सारस्य, धनुः आलभ्य तिष्ठसि।
क्षत्रियः नु असि राजन्यः, अथ लुब्धः वनेचरः'' इति॥125॥

हिन्दी- आप कोई देवता हैं या गन्धर्व? या पुरन्दर शक्र हैं? हम आपके विषय में कुछ नहीं जानते। इसीलिये आपसे इस विषय में पूछ रहे हैं कि आपको क्या समझूँ?॥121॥

न मैं कोई देवता हूँ, न गन्धर्व, न तो शक्र न पुरन्दर भी। मैं सुधर्मा नामक देवों में एक देव हूँ॥122॥

हे सुधर्मन्! हम आपसे हाथ जोड़कर यह पूछते हैं कि आपने मनुष्यरूप में कौन सा कर्म कर इन सुधर्मा देवों में अपना स्थान बनाया है?॥123॥

खेतों में बिखरी हुई अन्नकणों की राशि (उञ्छ), तृणराशि एवं वस्त्रराशि— इन तीन राशियों में से किसी एक राशि का दान कर कोई मनुष्य सुधर्मा देवों के लोक में पहुँच सकता है॥124॥

तुम विना किसी ध्येय के धनुष पकड़ कर दृढतापूर्क खड़े हो, क्या तुम कोई क्षत्रिय हो? या कोई राजा, या वन में घूमने वाले कोई लुब्धक(डाकू) हो?॥125॥

''अस्सकाधिपतिस्साहं , भन्ते पुत्तो वनेचरो।
नामं मे भिक्खु ते ब्रूमि, सुजातो इति मं विदू॥126॥
''मिगे गवेसमानोहं, ओगाहन्तो ब्रहावनं।
मिगं तञ्चेव नाद्दक्खिं, तञ्च दिस्वा ठितो अहं'' ति॥127॥
''स्वागतं ते महापुञ्ञ, अथो ते अदुरागतं।
एत्तो उदकमादाय, पादे पक्खालयस्सु ते॥128॥
''इदम्पि पानीयं सीतं, आभतं गिरिगब्भरा।
राजपुत्त ततो पित्वा, सन्थतस्मिं उपाविसा'' ति॥129॥
''कल्याणी वत ते वाचा, सवनीया महामुनि।
नेला अत्थवती वग्गु, मन्त्वा अत्थञ्च भाससि॥130॥
''का ते रति वने विहरतो, इसिनिसभ वदेहि पुट्ठो।
तव वचनपथं निसामयित्वा, अत्थधम्मपदं समाचरेमसे'' ति॥131॥

संस्कृतच्छाया- अश्वकाधिपतेः अहम्, भदन्त पुत्रः वनेचरः।
नाम मे भिक्षो ते ब्रवीमि, सुजात इति मां विदुः॥126॥
मृगं गवेषमाणोऽहम्, अवगाहमानो बृहद्वनम्।
मृगं तं चैव न अपश्यम्, तच्च दृष्ट्वा स्थितोऽहम्'' इति॥127॥
स्वागतं ते महापुण्य, अथ ते अतिदूराद् आगतः।
एतद् उदकमादाय, पादौ प्रक्षालय ते॥128॥
इदमपि पानीयं शीतम्, आहृतं गिरिगह्वरात्।
राजपुत्र ततः पीत्वा, संस्तरेऽस्मिन् उपाविश'' इति॥129॥
कल्याणी वत ते वाक्, श्रवणीया महामुने।
निर्मला अर्थवती वल्गु, मत्त्वा अर्थं च भाषसे॥130॥
का ते रतिः वने विहरतः, ऋष्यर्षभ वद पृष्टः।
तव वचनपथं निशम्य, अर्थधर्मपदं समाचरेम'' इति॥131॥

हिन्दी- भन्ते! मैं अश्वकाधिराज, का वनवासी पुत्र हूँ। भिक्षु! मैं आपको अपना नाम बता दूँ, मुझे सुजात नाम से जानते हैं॥126॥

मैं इस वृहत् वन में मृग को खोजने आया था। यहाँ मैं किसी मृग को खोज रहा हूँ, परन्तु कोई मृग दीख ही नहीं रहा है। उसी की प्रतीक्षा में खड़ा हूँ॥127॥

हे महापुण्यात्मन्! आपका स्वागत है। आप बहुत दूर से आए हैं। यहाँ से जल लेकर आपके पैर धो दूँ?॥128॥

यह भी शीतल जल है, इसे मैं पहाड़ की किसी गुफा से भर लाया हूँ। राजपुत्र! इसे पीकर आसन बिछाकर बैठें॥129॥

हे महामुनि! आपकी वाणी मधुर है, श्रवणीय है, आप निर्मल, सार्थक, सुन्दर बातें सोच समझ कर ही कहते हैं॥130॥

हे ऋषिश्रेष्ठ! वनविचरण में आपकी इतनी रुचि किस कारण से है? कृपया मुझे भी कहें। आपकी बात सुनकर मैं भी उसके अर्थ, धर्म तथा पद का तदनुसार व्यवहार करुँगा?॥131॥

''अहिंसा सब्बपाणीनं, कुमारम्हाक रुच्चति।
थेय्या च अतिचारा च, मज्जपाना च आरति॥132॥
''आरति समचरिया च, बाहुसच्चं कतञ्ञुता।
दिट्ठेव धम्मे पासंसा, धम्मा एते पसंसियाति॥133॥
''सन्तिके मरणं तुय्हं, ओरं मासेहि पञ्चहि।
राजपुत्त विजानाहि, अत्तानं परिमोचया'' ति॥134॥
''कतमं स्वाहं जनपदं गन्त्वा, किं कम्मं किञ्च पोरिसं।
काय वा पन विज्जाय, भवेय्यं अजरामरो'' ति॥135॥
''न विज्जते सो पदेसो, कम्मं विज्जा च पोरिसं।
यत्थ गन्त्वा भवे मच्चो, राजपुत्ताजरामरो॥136॥

संस्कृतच्छाया- अहिंसा सर्वप्राणिनाम्, कुमार मह्यं रोचते।
स्तेयाच्च अतिचाराच्च, मद्यपानाच्च अरतिः॥132॥
अरतिः समचर्या च, बहुसत्यं कृतज्ञता।
दृष्टा एव धर्मे प्रशंसा, धर्मा एते प्रशंसनीयाः इति॥133॥
अन्तिके मरणं तव, अस्मात् मासैः पञ्चभिः।
राजपुत्र विजानीहि, आत्मानं परिमोचय'' इति॥134॥
कतमं स्वयम् अहं जनपदं गत्वा, किं कर्म किं च पौरुषम्।
कायं वा पुनः विद्यया, भवेयम् अजरामरः'' इति॥135॥
न विद्यते सः प्रदेशः, कर्म विद्या च पौरुषम्।
यत्र गत्वा भवेत् मर्त्यः, राजपुत्राजरामरः॥136॥

हिन्दी- कुमार! मेरी सभी प्राणियों के प्रति अहिंसा में रुचि है। साथ ही मैं चोरी एवं व्यभिचार तथा मद्यपान से भी दूर रहता हूँ॥132॥

त्याग, समभाव, बाहुश्रुत्य(ज्ञान), एवं कृतज्ञता– ये ही धर्म प्रशंसनीय देखे जाते हैं। विद्वान् लोग भी इन ही धर्मों की प्रशंसा करते हैं॥133॥

राजपुत्र! आज से पाँच माह उपरान्त तुम्हारी मृत्यु अवश्यम्भावी है। तुम अब ज्ञानपूर्वक स्वयं को सांसारिक बन्धनों से मुक्त कर लो॥134॥

भन्ते! मैं स्वयं किस जनपद में जाकर क्या कर्म या क्या पौरुष(प्रयास) करके अथवा किस विद्या से अजर अमर हो सकता हूँ?॥135॥

राजपुत्र! न ऐसा कोई प्रदेश है, न कोई कर्म है, और न कोई ऐसी विद्या है न कोई प्रयास, कि जिससे कोई प्राणी अजर अमर हो सके॥136॥

''महद्धना महाभोगा, रट्ठवन्तोपि खत्तिया।
पहूतधनधञ्ञासे, तेपि नो अजरामरा॥137॥
''यदि ते सुता अन्धकवेण्डुपुत्ता, सूरा वीरा विक्कन्तप्पहारिनो।
तेपि आयुक्खयं पत्ता, विद्धस्ता सस्सतीसमा॥138॥
''खत्तिया ब्राह्मणा वेस्सा, सुद्दा चण्डालपुक्कुसा।
एते चञ्ञे च जातिया, तेपि नो अजरामरा॥139॥
''ये मन्तं परिवत्तेन्ति, छळङ्गं ब्रह्मचिन्तितं।
एते चञ्ञे च विज्जाय, तेपि नो अजरामरा॥140॥
''इसयो चापि ये सन्ता, सञ्ञतत्ता तपस्सिनो।
सरीरं तेपि कालेन, विजहन्ति तपस्सिनो॥141॥
''भावितत्तापि अरहन्तो, कतकिच्चा अनासवा।
निक्खिपन्ति इमं देहं, पुञ्ञपापपरिक्खया'' ति॥142॥

संस्कृतच्छाया- महाधनाः महाभोगाः, राष्ट्रवन्ताऽपि क्षत्रियाः।
प्रभूतधनधान्याः, तेऽपि न अजरामराः॥137॥
यदि ते सुता अन्धकस्य वृष्णेश्च पुत्राः, शूराः वीराः विक्रान्तप्रहारिणः।
तेऽपि आयुःक्षयं प्राप्ताः, विध्वस्ताः शाश्वतीः समाः॥138॥
क्षत्रियाः ब्राह्मणाः वैश्याः, शूद्राः चाण्डालपुल्कसाः।
एते चान्याश्च जातयः, तेऽपि न अजरामराः॥139॥
ये मन्त्रं परिवर्त्तन्ते, षडङ्गब्रह्मचिन्तनम्।
एते चान्ये च विद्यया, तेऽपि न अजरामराः॥140॥
ऋषयश्च अपि ये शान्ताः, संयतात्मानः तपस्विनः।
शरीरं ते अपि कालेन, विजहति तपस्विनः॥141॥
भावितात्मानोऽपि अर्हन्तः, कृतकृत्या अनाश्रवाः।
निक्षिपन्ति इमं देहम्, पुण्यपापपरीक्षयात्'' इति॥142॥

हिन्दी- बड़े बड़े धनवान्, बहुत बड़े भोगी, बड़े-बड़े राष्ट्रवन्त क्षत्रिय(राजा), जिनके पास प्रभूत धन धान्य थे, वे भी अजर अमर नहीं हो सके॥137॥

यद्यपि जो अन्धक एवं वृष्णि राजाओं के शूर वीर पुत्र थे, शत्रुओं पर सफल आक्रमणकर्ता थे वे भी बहुत तो सौ वर्षों तक ही जीवित रहे परन्तु अन्ततः वे भी आयुक्षय को प्राप्त हो गए॥138॥

क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल एवं पुल्कस या अन्य किसी जाति के लोगों में भी कोई अजर अमर नहीं हो पाया॥139॥

जो जीव दिन रात मन्त्र जाप करते हुए षडाङ्ग वेदों का चिन्तन मनन करते रहते हैं वे भी अपनी इस विद्या के द्वारा अजर अमर नहीं हो पाये॥140॥

ऋषिगण जो संयतात्मा तथा तपस्वी हैं वे भी कालवश, अपना शरीर त्याग देते हैं॥141॥

अर्हत्(ज्ञानी), अनाश्रव, कृतकृत्य एवं आत्मस्थ जीव भी अपने कर्मवश फलीभूत पाप-पुण्यों का क्षय हो जाने पर इस देह का त्याग कर देते हैं॥142॥

''सुभासिता अत्थवती, गाथायो ते महामुनि।
निज्झत्तोम्हि सुभट्ठेन, त्वञ्च मे सरणं भवा'' ति॥143॥
''मा मं त्वं सरणं गच्छ, तमेव सरणं वज।
सक्यपुत्तं महावीरं, यमहं सरणं गतो'' ति॥144॥
''कतरस्मिं सो जनपदे, सत्था तुम्हाक मारिस।
अहम्पि दट्ठुं गच्छिस्सं, जिनं अप्पटिपुग्गलं'' ति॥145॥
''पुरत्थिमस्मिं जनपदे, ओक्काककुलसम्भवो।
तत्थासि पुरिसाजञ्ञो, सो च खो परिनिब्बुतो'' ति॥146॥
''सचे हि बुद्धो तिट्ठेय्य, सत्था तुम्हाक मारिस।
योजनानि सहस्सानि, गच्छेय्यं पयिरुपासितुं॥147॥
''यतो च खो परिनिब्बुतो, सत्था तुम्हाक मारिस।
निब्बुतम्पि महावीरं, गच्छामि सरणं अहं॥148॥

संस्कृतच्छाया- सुभाषिता अर्थवती, गाथा ते महामुने।
निध्यापितोऽस्मि शुभार्थेन, त्वं च मे शरणं भव'' इति॥143॥
मा मां त्वं शरणं गच्छ, तम् एव शरणं व्रज।
शाक्यपुत्रं महावीरम्, यमहं शरणं गतः'' इति॥144॥
कतरस्मिन् सः जनपदे, शास्ता युष्माकं मार्ष।
अहमपि द्रष्टुं गमिष्यामि, जिनम् अप्रतिपुद्गलम्'' इति॥145॥
पौरस्त्ये अस्मिन् जनपदे, इक्ष्वाकुकुलसम्भवः।
तत्रास्ति पुरुषाद् जन्म, सः च खलु परिनिर्वृतः'' इति॥146॥
सत्ये हि बुद्धः तिष्ठति, शास्ता युष्माकं मार्ष।
योजनानि सहस्राणि, गच्छेयं पर्युपासितुम्॥147॥
''यतश्च खलु परिनिर्वृतः, शास्ता युष्माकं मार्ष।
निर्वृतमपि महावीरम्, गच्छामि शरणम् अहम्॥148॥

हिन्दी- हे महामुनि! आपकी यह गाथाबद्ध वाणी सार्थक और सुभाषित है। इस को मैंने शुभार्थ ध्यानपूर्वक सुना। अतः आप मेरे शरणस्थल होने की कृपा कीजिये॥143॥

राजपुत्र! मेरी शरण में मत आओ। अपितु, तुम उन्हीं शाक्यपुत्र महावीर(भगवान् बुद्ध) की शरण में जाओ, जिनकी शरण मैं गया था॥144॥

मार्ष! आपके वे शास्ता जिस जनपद में विराजमान हैं। मैं उन जेता(जिन), अप्रतिपुद्गल के दर्शनार्थ उस जनपद में जाऊँगा॥145॥

वहाँ पूर्वदिशा के जनपद में वे इक्ष्वाकुकुलोत्पन्न पुरुषश्रेष्ठ विराजमान थे, परन्तु वे भी अब परिनिर्वृत हो चुके हैं॥146॥

मार्ष! यदि तुम्हारे शास्ता भगवान् बुद्ध आज उपस्थित रहते तो मैं उनकी, हजार योजन दूर जाकर भी शरण ग्रहण करता॥147॥

मार्ष! मैं तो तुम्हारे उन महावीर शास्ता के परिनिर्वृत होने पर भी उनकी ही शरण ग्रहण करूँगा॥148॥

''उपेमि सरणं बुद्धं, धम्मञ्चापि अनुत्तरं।
सङ्घञ्च नरदेवस्स, गच्छामि सरणं अहं॥149॥
''पाणातिपाता विरमामि खिप्पं, लोके अदिन्नं परिवज्जयामि।
अमज्जपो नो च मुसा भणामि, सकेन दारेन च होमि तुट्ठो'' ति॥150॥
''सहस्सरंसीव यथा महप्पभो, दिसं यथा भाति नभे अनुक्कमं।
तथापकारो तवायं महारथो, समन्ततो योजनसत्तमायतो॥151॥
''सुवण्णपट्टेहि समन्तमोत्थटो, उरस्स मुत्ताहि मणीहि चित्तितो।
लेखा सुवण्णस्स च रूपियस्स च, सोभेन्ति वेळुरियमया सुनिम्मिता॥152॥
''सीसञ्चिदं वेळुरियस्स निम्मितं, युगञ्चिदं लोहितकाय चित्तितं।
युत्ता सुवण्णस्स च रूपियस्स च, सोभन्ति अस्सा च इमे मनोजवा॥153॥
''सो तिट्ठसि हेमरथे अधिट्ठितो, देवानमिन्दोव सहस्सवाहनो।
पुच्छामि ताहं यसवन्त कोविदं, कथं तया लद्धो अयं उळारो'' ति॥154॥

संस्कृतच्छाया- ''उपैमि शरणं बुद्धम्, धर्मञ्च अपि अनुत्तरम्।
सङ्घं च नरदेवस्य, गच्छामि शरणम् अहम्॥149॥
''प्राणातिपातात् विरमामि क्षिप्रम्, लोके अदत्तं परिवर्जयामि।
अमद्यपः न च मृषा भणामि, स्वकीयैः दारैश्च भवामि तुष्टः'' इति॥150॥
''सहस्ररश्मिरिव यथा महाप्रभः, दिक्षु यथा भाति नभसि अनुक्रमन्।
तथाप्रकारस्तवायं महारथः, समन्ततः योजनशतमायतः॥151॥
''सुवर्णपट्टैः समन्तत उत्कटः, उरसि मुक्ताभिः मणिभिः चित्रितः।
रेखा सुवर्णस्य च रूप्यस्य च, शोभन्ते वैदूर्यमयाः सुनिर्मिताः॥152॥
''शिरश्च इदं वैदूर्यस्य निर्मितम्, युगं चेदं लोहितकायं चित्रितम्।
युक्ताः सुवर्णस्य च रूप्यस्य च, शोभन्ते अश्वाश्च इमे मनोजवाः॥153॥
''सः तिष्ठसि हेमरथे अधिष्ठितः, देवानाम् इन्द्र इव सहस्रवाहनः।
पृच्छामि त्वाम् अहं यशस्विनं कोविदम्, कथं त्वया लब्धोऽयम् उदारः''इति॥154॥

हिन्दी- अब मैं उन भगवान् बुद्ध, उनके द्वारा उपदिष्ट अनुपम धर्म, तथा उनके सङ्घ की शरण में जा रहा हूँ॥149॥

प्रणातिपात को शीघ्र ही त्याग दूँगा, लोक मे किसी के द्वारा अदत्त वस्तु को नहीं लूँगा। न मद्यपान करूँगा, न मिथ्या भाषण करूँगा और स्वपत्नी के साथ ही सन्तुष्ट रहूँगा॥150॥

जैसे रश्मिमान् सूर्य आकाश में सभी दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ अनुक्रमण करता है; उसी प्रकार, हे देव! आपका यह महान् रथ चारों ओर से सौ सौ योजन तक विस्तृत प्रकाशमान् है॥151॥

यह सब ओर, उत्कृष्ट सुवर्णपत्रों से आच्छादित है। इसके मध्य में विविध मोती(मुक्ता) एवं मणिरत्न जड़े हुए हैं व सोने और चाँदी की रेखाएँ भी अंकित हैं, और यह वैदूर्यमणियों से भी सुशोभित है॥152॥

इसका शीर्ष(शिखर) वैदूर्यमणि से निर्मित है, इसका युग(जुआ) लाल रंग से चित्रित है। तथा इसमें जुते हुए मन की गति से वेगवान् घोड़े सोने और चाँदी के आभूषणों से सज्जित हैं॥153॥

आप इस सुवर्णमय रथ पर इस प्रकार आरूढ़ हैं मानो साक्षात् सहस्रवाहन इन्द्र विराजमान हों। आप यशस्वी एवं विद्वान् से मैं पूछना चाहता हूँ कि आपने यह उदार(विस्तृत विमान) किस प्रकार प्राप्त किया?॥154॥

''सुजातो नामहं भन्ते, राजपुत्तो पुरे अहुं।
त्वञ्च मं अनुकम्पाय, सञ्ञमस्मिं निवेसयि॥155॥
''खीणायुकञ्च मं ञत्वा, सरीरं पादासि सत्थुनो।
इमं सुजात पूजेहि, तं ते अत्थाय हेहिति॥156॥
''ताहं गन्धेहि मालेहि, पूजयित्वा समुय्युतो।
पहाय मानुसं देहं, उपपन्नोम्हि नन्दनं॥157॥
''नन्दने च वने रम्मे, नानादिजगणायुते।
रमामि नच्चगीतेहि, अच्छराहि पुरक्खतो'' ति॥158॥
चूळरथविमानं तेरसमं।

14. महारथविमानवत्थु

''सहस्सयुत्तं हयवाहनं सुभं, आरुय्हिमं सन्दनं नेकचित्तं।
उय्यानभूमिं अभितो अनुक्कमं, पुरिन्ददो भूतपतीव वासवो॥159॥

संस्कृतच्छाया- ''सुजातः नाम्ना अहं भदन्त, राजपुत्रः पुरा अभवम्।
त्वं च माम् अनुकम्पया, संयमेऽस्मिन् न्यवेशयथाः॥155॥
''क्षीणायुषं च मां ज्ञात्वा, शरीरं प्रादाः शास्तुः।
इमं सुजात पूजय, तत् ते अर्थाय भविष्यति॥156॥
''तदहं गन्धैः मालाभिः, पूजयित्वा समुद्यतः।
प्रहाय मानुषं देहम्, उपपन्नोऽस्मि नन्दनम्॥157॥
''नन्दने च वने रम्ये, नानाद्विजगणैः युते।
रमे नृत्यगीतैः, अप्सरोभिः पुरस्कृतः'' इति॥158॥
''सहस्रयुक्तं हयवाहनं शुभम्, आरुह्य इमं स्यन्दनम् अनेकचित्रम्।
उद्यानभूमिम् अभितोऽनुक्रमन्, पुरन्दरः भूतपतिरिव वासवः॥159॥

हिन्दी- भन्ते! मैं पूर्वजन्म में एक राजा का पुत्र था। मेरा नाम सुजात था। और आपने ही अनुकम्पापूर्वक मुझको धर्मसाधना में सन्निविष्ट किया था॥155॥

आपने मुझे अल्पायु समझ कर पूजा हेतु भगवान् के शरीरधातु का कोई अंश प्रदान किया था। और इस धातु की पूजा करो जिससे तुम्हारा अर्थ सिद्ध होगा, ऐसा निर्देश दिया था॥156॥

इसलिए मै माला, गन्ध विलेपन द्रव्यों से इस धात्ववशेष की पूजा करने के फलस्वरूप अपना मानव देह त्याग कर आज इस दिव्य नन्दन वन में उत्पन्न हुआ हूँ॥157॥

इस नन्दनवन में, विविध पक्षियों के मधुर कलरव के बीच, अप्सराओं के मनोहर नृत्य और गीत से आनन्दित व पुरस्कृत हो रहा हूँ॥158॥

हजारों जुते हुए अश्वों से युक्त विविध चित्रों से चित्रित, इस रथ में बैठकर इस उद्यानभूमि में चहुदिश भ्रमण करते हुए आप उसी प्रकार शोभित हो रहे हैं जैसे देवराज इन्द्र॥159॥

''सोवण्णमया ते रथकुब्बरा उभो, फलेहि अंसेहि अतीव सङ्गता।
सुजातगुम्बा नरवीरनिट्ठिता, विरोचती पन्नरसेव चन्दो॥160॥
''सुवण्णजालावततो रथो अयं, बहूहि नानारतनेहि चित्तितो।
सुनन्दिघोसो च सुभस्सरो च, विरोचती चामरहत्थबाहुभि॥161॥
''इमा च नाभ्यो मनसाभिनिम्मिता, रथस्स पादन्तरमज्झभूसिता।
इमा च नाभ्यो सतराजिचित्तिता, सतेरता विज्जुरिवप्पभासरे॥162॥
''अनेकचित्तावततो रथो अयं, पुथू च नेमी च सहस्सरंसिको।
तेसं सरो सुय्यति वग्गुरूपो, पञ्चङ्गिकं तुरियमिवप्पवादितं॥163॥
''सिरस्मिं चित्तं मणिचन्दकप्पितं, सदा विसुद्धं रुचिरं पभस्सरं।
सुवण्णराजीहि अतीव सङ्गतं, वेळुरियराजीव अतीव सोभति॥164॥
''इमे च वाळी मणिचन्दकप्पिता, आरोहकम्बू सुजवा ब्रहूपमा।
ब्रहा महन्ता बलिनो महाजवा, मनो तवञ्ञाय तथेव सिंसरे॥165॥

संस्कृतच्छाया-

''सुवर्णमयौ ते रथकूबरौ उभौ, फलैः अंशैः अतीव सङ्गतौ।
सुजातगुल्मौ नरवीरनिष्ठितौ, विरोचतः पूर्णरसे इव चन्द्रः॥160॥
''सुवर्णजालावततो रथोऽयम्, बहुभिः नानारत्नैः चित्रितः।
सुनन्दिघोषश्च सुभास्वरश्च, विरोचते चामरहस्तबाहुभिः॥161॥
''इमाश्च नाभ्यः मनसाभिनिर्मिताः, रथस्य पादान्तरमध्यभूषिताः।
इमाश्च नाभ्यः शतराजिचित्रिताः, स्फुरन्ति विद्युद् इव प्रभास्वराः॥162॥
''अनेकचित्रावततः रथोऽयम्, पृथवश्च नेमयश्च सहस्ररश्मिकाः।
तेषां स्वरः श्रूयते वल्गुरूपः, पञ्चाङ्गिकं तूर्यमिव प्रवादितम्॥163॥
''शिरसि चित्रं मणिचन्द्रकल्पितम्, सदा विशुद्धं रुचिरं प्रभास्वरम्।
सुवर्णराजिभिः अतीव सङ्गतम्, वैदूर्यराज इव अतीव शोभते॥164॥
''इदम् च वलयं मणिचन्द्रकल्पितम्, आरोहे कम्बु सुजवं बृहदुपमम्।
बृहत् महत् बलिनः महाजवम्, मनस्तव ज्ञात्वा तथैव ससृजे॥165॥

हिन्दी- आपके इस रथ के दोनों सुवर्णमय कूबर(युगन्धर) फलों और अंशों(स्कन्धों) से सम्यक्प्रकारेण जुड़े हुए हैं। किसी कुशल कारीगर द्वारा दक्षता से जोड़े गये ये अंग पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान विरोचित हो रहे हैं॥160॥

आपका यह रथ स्वर्णजाल से आवृत है, तथा अन्यान्य मणिरत्नों से चित्रित है। इसमें मधुर एवं शुभ ध्वनियाँ बज रही हैं। यह अपनी विशिष्ट आभा से जगमगा रहा है तथा आपके अनुचर अपने हाथों से आप पर चामर डुला रहे हैं॥161॥

तथा मनोयोगपूर्वक अभिनिर्मित इस रथ के पाद(चक्रों) के मध्य की नाभिया सैकड़ों रेखातरंगों से चित्रित हैं तथ ये विद्युत की चमक के समान जगमगा रही हैं॥162॥

विविध चित्रों से आवृत आपके इस रथ के पहियों की परिधियाँ विस्तृत हैं तथा उसमें से हजारों प्रकार की रश्मियाँ निकल रही हैं। उनमें से निकलती सुरीली ध्वनियाँ ऐसी प्रतीत हो रही है मानों कहीं मधुर पञ्चाङ्गिक तूर्य बज रहे हों॥163॥

इस रथ के शीर्ष पर मणिरत्न कल्पित(निर्मित) सर्वथा विशुद्ध,देखने में सुन्दर एवं प्रभास्वर चन्द्रमा शोभित हो रहा है। यह स्वर्ण रेखाओं द्वारा भली भाँति चित्रित है। जो वैदूर्यमणि मणि के समान अतीव शोभित हो रही हैं॥164॥

''इमे च सब्बे सहिता चतुक्कमा, मनो तवञ्ञाय तथेव सिंसरे।
समं वहन्ता मुदुका अनुद्धता, आमोदमाना तुरगान मुत्तमा॥166॥
''धुनन्ति वग्गन्ति पतन्ति चम्बरे, अब्भुद्धुनन्ता सुकते पिळन्धने।
तेसं सरो सुय्यति वग्गुरूपो, पञ्चङ्गिकं तुरियमिवप्पवादितं॥167॥
''रथस्स घोसो अपिळन्धनान च, खुरस्स नादो अभिहिंसनाय च।
घोसो सुवग्गू समितस्स सुय्यति, गन्धब्बतूरियानि विचित्रसंवने॥168॥
''रथे ठिता ता मिगमन्दलोचना, आळारपम्हा हसिता पियंवदा।
वेळुरियजालावतता तनुच्छवा, सदेव गन्धब्बसूरग्गपूजिता॥169॥
''ता रत्तरत्तम्बरपीतवाससा, विसालनेत्ता अभिरत्तलोचना।
कुले सुजाता सुतनू सुचिम्हिता, रथे ठिता पञ्जलिका उपट्ठिता॥170॥

संस्कृतच्छाया- ''इमे च सर्वे सहिताः चतुष्क्रमाः, मनस्तव ज्ञात्वा तथैव संसृजिरे।
समं वहन्तः मृदुका अनुद्धताः, आमोदमानाः तुरगा अनुत्तमाः॥166॥
''धुन्वन्ति वल्गन्ति प्लवन्ति चाम्बरे, अद्भुतं धुन्वन्तः सुकृते अपिनद्धे।
तेषां स्वरः श्रूयते वल्गुरूपः, पञ्चाङ्गिकं तुर्यमिव प्रवादितम्॥167॥
''रथस्य घोषोऽपिनद्धमान् च, क्षुरस्य नादोऽभिहिंसनाय च।
घोषः सुवल्गुः समितस्य श्रूयते, गन्धर्वतूर्याणि विचित्रे संवने॥168॥
''रथे स्थिताः ताः मृगमन्दलोचनाः, आलारपक्ष्मिण्यः हसिताः प्रियंवदाः।
वैदूर्यजालावतताः तनुच्छ्रवाः, सदेवगन्धर्वसुराग्रपूजिता॥169॥
''ताः रक्तरक्ताम्बरपीतवाससः, विशालनेत्रा अभिरक्तलोचनाः।
कुले सुजाताः सुतनुशुचिस्मिताः, रथे स्थिताः प्राञ्जलिकाः उपस्थिताः॥170॥

हिन्दी- इस रथ की वाटी (घेरा या आच्छादन) मणिचन्द्र कल्पित है। जो क्रमशः आरोह क्रम से ऊपर की ओर गोलाकार, वृहदाकार, बलशाली तथा रथ को तीव्र गति प्रदान करने में सहायक हैं। ऐसा लगता है इसे आपके मनोनुकूल ही निर्मित किया गया है॥165॥

इस रथ में जुते हुए ये घोड़े भी, आपकी इच्छानुरूप ही जुते हुए हैं। इन अश्वों द्वारा संयुक्त रूप से की गई चौकड़ी समान होती है। ये अनुत्तम, श्रेष्ठ अश्व सरल गति से, अनुद्धत भाव से, मृदुतापूर्वक तथा आनन्द भाव से अपनी चाल चलते हैं॥166॥

अपने शरीर को एक साथ कँपाते हुए, हिनहिनाते हुए, जब अपने पैरों को भूमि पर एक साथ पटकते हैं तो उनसे ऐसी सुन्दर और कर्णप्रिय ध्वनियाँ निकलती हैं मानो कहीं पञ्चाङ्गिक तूर्य बज रहे हों॥167॥

आपके इस गतिमान रथ का घोष(शब्द), साज-सज्जा तथा घोड़ों के पैरों की भूमि पर गिरते समय की ध्वनि— ये सब मिलकर ऐसा मधुर स्वर निकालते हैं मानो कहीं गन्धर्व अपना मनोहर वाद्यगान प्रस्तुत कर रहे हों॥168॥

रथ में बैठी हुई मृगलोचना अप्सराओं के नेत्रों के पक्ष्म भारी हैं, ये हँसमुख एवं प्रियभाषिणी हैं। इनका शरीर वैदूर्य मणिरत्नों से आवृत है, इनके शरीर शोभायुक्त हैं तथा ये देव, गन्धर्व और देवप्रमुखों द्वारा अग्र पूजिता हैं॥169॥

ये लाल पीले वस्त्रों को धारण की हुई हैं, विशाल नेत्रों वाली हैं, ये अभिरक्तलोचना हैं, ये सत्कुलीन हैं, सुन्दर शरीर एवं मन्दहास्ययुक्त मुखवाली हैं। ये हाथ जोड़ कर रथ पर बैठी हुई हैं॥170॥

''ता कम्बुकेयूरधरा सुवाससा, सुमज्झिमा ऊरुथनूपपन्ना।
वट्टङ्गुलियो सुमुखा सुदस्सना, रथे ठिता पञ्जलिका उपट्ठिता॥171॥
''अञ्ञा सुवेणी सुसु मिस्सकेसियो, समं विभत्ताहि पभस्सराहि च।
अनुब्बता ता तव मानसे रता, रथे ठिता पञ्जलिका उपट्ठिता॥172॥
''आवेळिनियो पदुमुप्पलच्छदा, अलङ्कता चन्दनसारवासिता।
अनुब्बता ता तव मानसे रता, रथे ठिता पञ्जलिका उपट्ठिता॥173॥
''ता मालिनियो पदुमुप्पलच्छदा, अलङ्कता चन्दनसारवासिता।
अनुब्बता ता तव मानसे रता, रथे ठिता पञ्जलिका उपट्ठिता॥174॥
''कण्ठेसु ते यानि पिळन्धनानि, हत्थेसु पादेसु तथेव सीसे।
ओभासयन्ती दस सब्बसो दिसा, अब्भुद्दयं सारदिकोव भाणुमा॥175॥
''वातस्स वेगेन च सम्पकम्पिता, भुजेसु माला अपिळन्धनानि च।
मुञ्चन्ति घोसं रूचिरं सुचिं सुभं, सब्बेहि विञ्ञूहि सुतब्बरूपं॥176॥

संस्कृतच्छाया- ''ताः कम्बुकेयूरधराः सुवाससः, सुमध्यमा ऊरुस्तनोपपन्नाः।
वृताङ्गुलीयाः सुमुख्यः सुदर्शनाः, रथे स्थिताः प्राञ्जलिका उपस्थिताः॥171॥
''अन्याः सुवेण्यः सुमिश्रकेश्यः, समं विभक्तैः प्रभास्वरैश्च।
अनुव्रताः तास्तव मानसे रताः, रथे स्थिताः प्राञ्जलिका उपस्थिताः॥172॥
''आवेणिन्यः पद्मोत्पलच्छदाः, अलङ्कृताः चन्दनसारवासिताः।
अनुव्रताः तास्तव मानसे रताः, रथे स्थिताः प्राञ्जलिका उपस्थिताः॥173॥
ता मालिन्यः पद्मोत्पलच्छदाः, अलङ्कृताः चन्दनसारवासिताः।
अनुव्रताः ताः तव मानसे रताः, रथे स्थिताः प्राञ्जलिका उपस्थिताः॥174॥
कण्ठेषु ते यानि अपिनद्धनानि, हस्तेषु पादेषु तथैव शिरसि।
अवभासयन्ति दश सर्वशः दिशः, अभ्युदयन् शारद इव भानुमान्॥175॥
''वातस्य वेगेन च सम्प्रकम्पिताः, भुजेसु माला अपिनद्धानि च।
मुञ्चन्ति घोषं रूचिरं शुचिं शुभम्, सर्वैः विज्ञैः श्रोतव्यरूपम्॥176॥

हिन्दी- ये सुन्दर वस्त्र तथा गोल बाजूबन्द धारण किये हुए हैं,जो मध्यमाकार और सम्पन्न स्तनों (पीनपयोधर) वाली हैं। इनके हाथ पैरों की अंगुलियाँ गोल हैं,ये सुन्दर मुख एवं सुन्दर नेत्रों वाली हैं। ये हाथ जोड़ कर रथ पर बैठी हुई हैं॥171॥

अन्य स्त्रियों की वेणियाँ काले केशों से युक्त तथा समरूप विभक्त एवं चमकीली हैं। ये सभी अपनी क्रियाओं से आपके अनुकूल रहती हुई आपके चित्त में समायी हुई हैं। अतएव ये सब आपको हाथ जोड़ कर रथ में बैठी हुई हैं॥172॥

ये पुष्पमालाएँ धारण कर रखी हैं, ये पद्मपुष्पों से आच्छादित है, इनका शरीर चन्दनसार से लिप्त है। ये सभी अपनी कर्मों से आपके अनुकूल रहती हुई आपके चित्त में समायी हुई हैं। ये सभी आपको हाथ जोड़ कर रथ में बैठी हुई हैं॥173॥

उन्होनें पुष्पमालाएँ धारण कर रखी हैं, ये पद्मपुष्पों से आच्छादित है, इनका शरीर चन्दनसार से लिप्त है। ये सभी अपने कर्मों से आपके अनुकूल रहती हुई आपके चित्त में समायी हुई हैं। ये सभी आपको हाथ जोड़ कर रथ में बैठी हुई हैं॥174॥

इन अप्सराओं ने अपने कण्ठ, हाथ, पैर तथा शीर्ष पर जो सजावट कर रखी हैं उससे समस्त दशो दिशाएँ उसी प्रकार अवभासित हो रही हैं जैसे शरदऋतु में उगता हुआ सूर्य सभी दिशाओं को अवभासित करता है॥175॥

''उय्यानभूम्या च दुवद्धतो ठिता, रथा च नागा तूरियानि च सरो।
तमेव देविन्द पमोदयन्ति, वीणा यथा पोक्खरपत्तबाहुभि॥177॥
''इमासु वीणासु बहूसु वग्गूसु, मनुञ्ञरूपासु हदयेरितं पीतिं।
पवज्जमानासु अतीव अच्छरा, भमन्ति कञ्ञा पदुमेसु सिक्खिता॥178॥
''यदा च गीतानि च वादितानि च, नच्चानि चिमानि समेन्ति एकतो।
अथेत्थ नच्चन्ति अथेत्थ अच्छरा, ओभासयन्ती उभतो वरित्थियो॥179॥
''सो मोदसि तुरियगणप्पबोधनो, महीयमानो वजिरावुधोरिव।
इमासु वीणासु बहूसु वग्गूसु, मनुञ्ञरूपासु हदयेरितं पीतिं॥180॥
''किं त्वं पुरे कम्ममकासि अत्तना, मनुस्सभूतो पुरिमाय जातिया।
उपोसथं कं वा तुवं उपावसि, कं धम्मचरियं वतमाभिरोचयि॥181॥
''नयीदमप्पस्स कतस्स कम्मुनो, पुब्बे सुचिण्णस्स उपोसथस्स वा।
इद्धानुभावो विपुलो अयं तव, यं देवसङ्घं अभिरोचसे भुसं॥182॥

संस्कृतच्छाया-
''उद्यानभूम्यां च द्विबद्धाः स्थिताः, रथाश्च नागाः तूर्याणि च स्वराः।
त्वामेव देवेन्द्र प्रमोदयन्ति, वीणा यथा पुष्करपत्रबाहुभिः॥177॥
''इमासु वीणासु बह्वीषु वल्गुषु, मनोज्ञरूपासु हृदये ईरितां प्रीतिम्।
प्रवाद्यमानासु अतीव अप्सरसः, भ्रमन्ति कन्याः पद्मेषु शिक्षिताः॥178॥
''यदा च गीतानि च वादितानि च, नृत्यानि च इमानि संयन्ति एकतः।
अथ अत्र नृत्यन्ति अथ अत्र अप्सरसः, अवभासयन्ति उभयतः वरस्त्रियः॥179॥
''सः मोदते तुर्यगणप्रबोधनः, महीयमानः वज्रायुध इव।
''इमासु वीणासु बह्वीषु वल्गुषु, मनोज्ञरूपासु हृदये ईरितां प्रीतिम्॥180॥
''किं त्वं पुरा कर्माकार्षीः आत्समनाः, मनुष्यभूतः पुर्वस्यां जात्याम्।
उपोसथं कं वा त्वम् उपावसः, कां धर्मचर्यां वतः अभ्यरोचत॥181॥
''न हि इदम् अल्पस्य कृतस्य कर्मणः, पूर्वे सुचीर्णस्य उपोसथस्य वा।
ऋद्धानुभावः विपुलोऽयं तव, यं देवसङ्घाय अभिरोचसे भृशम्॥182॥

हिन्दी- वायुवेग से काँपती हुई इनके हाथों में धारण की हुई फूलमालाओं तथा अन्य सजावट की वस्तुओं से ऐसी मधुर ध्वनि निकलती है कि उसको सुनना सभी बुद्धिमान् लोगों को रुचिकर लगता है॥176॥

हे देवेन्द्र! इस उद्यान भूमि में दोहरी पंक्ति में खड़े हुए ये रथ एवं हाथी और घोड़े तथा वाद्ययन्त्रों से निकले हुए स्वर आपको उसी प्रकार प्रमुदित कर रहे हैं जैसे कमलपत्र से शोभित बाहुओं में रखी हुई वीणा शोभित हुआ करती है॥177॥

इन बहुत सी सुन्दर मनोहारी वीणाओं के स्वरों से हृदय तक पहुँचने वाली प्रीति के साथ ये शिक्षित कन्याएँ अति आश्चर्यमय रीति से पद्म-पत्रों पर नाच रही हैं॥178॥

जब ये गीत, वाद्य एवं नृत्य– तीनों का मिलन होता है तब उनसे यहाँ प्रमुदित होकर नाचती अप्सराएँ अतिशय सुन्दर प्रतीत होती हैं॥179॥

इन वीणा आदि वाद्य यन्त्रों की सुमधुर मनोज्ञ ध्वनि से जगाये जाते हुए आप उसी प्रकार शोभित होते हैं मानो साक्षात् देवराज इन्द्र हों॥180॥

आपने पूर्व में मनुष्यरूप में ऐसा कौन सा पुण्यकर्म किया था कि आज उसका यह दिव्य फल भोग रहे हैं? या क्या आपने उपोसथव्रत का पालन किया था, कि अन्य किसी धर्मचर्या की साधना की थी?॥181॥

''दानस्स ते इदं फलं, अथो सीलस्स वा पन।
अथो अञ्जलिकम्मस्स, तं मे अक्खाहि पुच्छतो'' ति॥183॥
सो देवपुत्तो अत्तमनो, मोग्गल्लानेन पुच्छितो।
पञ्हं पुट्ठो वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलन्ति॥184॥
''जितिन्द्रियं बुद्धमनोमनिक्कमं, नरुत्तमं कस्सपमग्गपुग्गलं।
अवापुरन्तं अमतस्स द्वारं, देवातिदेवं सतपुञ्ञलक्खणं॥185॥
''तमद्दसं कुञ्जरमोघतिण्णं, सुवण्णसिङ्गीनदबिम्बसादिसं।
दिस्वान तं खिप्पमहुं सुचीमनो, तमेव दिस्वान सुभासितद्धजं॥186॥
''तमन्नपानं अथवापि चीवरं, सुचिं पणीतं रससा उपेतं।
पुप्फाभिक्किणम्हि सके निवेसने, पतिट्ठपेसिं स असङ्गमानसो॥187॥
''तमन्नपानेन च चीवरेन च, खज्जेन भोज्जेन च सायनेन च।
सन्तप्पयित्वा द्विपदानमुत्तमं, सो सग्गसो देवपुरे रमामहं॥188॥

संस्कृतच्छाया- ''दानस्य ते इदं फलम्, अथ शीलस्य वा पुनः।
अथ अञ्जलिकर्मणः, तं मे आख्याहि पृष्टः'' इति॥183॥
सः देवपुत्र आत्मनः, मौद्गल्यायनेन पृष्टः।
प्रश्नं पृष्टः व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम् इति॥184॥
''जितेन्द्रियं बुद्धमनोऽनिष्क्रमं, नरोत्तमं कश्यपमग्रपुद्गलम्।
अवापान्तं अमृतस्य द्वारम्, देवाधिदेवं शतपुण्यलक्षणम्॥185॥
''तमदर्शं कुञ्जरमोघतीर्णम्, सुवर्णश्रिङ्गीनदविम्बसदृशम्।
दृष्ट्वानु तं क्षिप्रमभूवं शुचिमनाः, तमेव दृष्टृवा नु सुभाषितध्वजम्॥186॥
''तमन्नपानम् अथवापि चीवरम्, शुचिं प्रणीतं रसैरुपेतम्।
पुष्पाभिकीर्णे स्वके निवेशने, प्रत्यस्थापयं स असङ्गमानसः॥187॥
''तमन्नपानेन च चीवरेण च, खाद्येन भोज्येन च शयनेन च।
सन्तर्प्य द्विपदानामुत्तमम्, स स्वर्गस्य देवपुरे रमेऽहम्॥188॥

हिन्दी- क्योंकि यह अनुपम परिणाम किसी अल्प पुण्य का परिणाम नहीं है। और न यह केवल किसी उपोसथ व्रत के पालन से ही मिलने वाला है। यह तो किसी महा ऋद्धि का ही फल है जिसके कारण आज आप यहाँ देवगणों से भी अधिक शोभायमान बने हुए हैं॥182॥

आपका यह पुण्यफल किसी दान का परिणाम है, या किसी सदाचारपालन का, या किसी महापुरुष की की सेवा का? कृपया यह स्पष्ट करें?॥183॥

उस प्रसन्नमन देवता ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रहा है॥184॥

शतपुण्य लक्षणों वाले, अमृत का द्वार खोलने वाले, अग्रपुद्गल, पुरुषोत्तम, वीतरागों में श्रेष्ठ, इन्द्रियों को वश में करने वाले एवं भवसागर पार किये हुए देवातिदेव भगवान् काश्यप बुद्ध के॥185॥

सुवर्णशृङ्गी नदी के समान तथा गजतुल्य शरीर के दर्शन किये, तो तत्काल ही मेरा मन शुद्ध (निर्दोष) हो गया। उनका दर्शन करते ही मुझको उनसे सुभाषित ग्रहण करने की इच्छा उत्पन्न हुई॥186॥

''एतेनुपायेन इमं निरग्गळं, यञ्ञं यजित्वा तिविधं विसुद्धं।
पहायहं मानुसकं समुस्सयं, इन्दूपमो देवपुरे रमामहं॥189॥
''आयुञ्च वण्णञ्च सुखं बलञ्च, पणीतरूपं अभिकङ्खता मुनि।
अन्नञ्च पानञ्च बहुं सुसङ्खतं, पतिट्ठपेतब्बमसङ्गमानसे॥190॥
''नयिमस्मिं लोके परस्मिं वा पन, बुद्धेन सेट्ठो व समो व विज्जति।
आहुनेय्यानं परमाहुतिं गतो, पुञ्ञत्थिकानं विपुलप्फलेसिनं'' ति॥191॥

महारथविमानं चुद्दसमं।
महारथवग्गो पञ्चमो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं – मण्डूको रेवती छत्तो, कक्कटो द्वारपालको।
द्वे करणीया द्वे सूचि, तयो नागा च द्वे रथा।
पुरिसानं पठमो वग्गो पवुच्चतीति॥

भाणवारं ततियं निट्ठितं।

संस्कृतच्छाया- ''एतेनोपायेन इमं निरर्गलम्, यज्ञम् इष्ट्वा त्रिविधं विशुद्धम्।
प्रहाय अहं मानुष्यकं समुच्छ्रयम्, इन्द्रोपमः देवपुरे रमे अहम्॥189॥
''आयुश्च वर्णञ्च सुखं बलञ्च, प्रणीतरूपम् अभिकाङ्क्षते मुनिः।
अन्नं च पानं च बहु सुसंस्कृतम्, प्रतिष्ठापयितव्यम् असङ्गमानसे॥190॥
''न अस्मिन् लोके परस्मिन् वा पुनः, बुद्धात् श्रेयान् वा समः वा विद्यते।
आहवनीयानां परमाहुतिं गतः, पुण्यास्तिकानां विपुलफलेप्सिनाम्'' इति॥191॥

तस्योद्दानम् – मण्डूकः रेवती छत्रः, कर्कटः द्वारपालकः।
द्वौ करणीयौ द्वौ सूची, त्रयः नागाः च द्वौ रथाः।
पुरुषाणां प्रथमः वर्गः प्रोच्यते इति॥

हिन्दी- तब मैनें उनको अपने घर ले जाकर पुष्पाभिकीर्ण आसन प्रदान कर, शुद्ध एवं प्रणीत(उत्तम) रसयुक्त भोजन से तथा वस्त्रदान से तृप्त किया। जिस पर वे निरासक्त भाव से विराजमान रहे॥187॥

उस समय उन नरोत्तम को किये गये मेरे उस अन्न-पान, चीवर एवं शयनासन के दान का ही यह पुण्यफल है कि आज मैं इस स्वर्ग समान देवपुरी में रमण कर रहा हूँ॥188॥

इस उपाय द्वारा मैंने यह त्रिविध विशुद्ध यज्ञ पूर्ण कर, मानवदेह को त्याग कर इन्द्रतुल्य विमान में रमण कर रहा हूँ॥189॥

हे मुनि। जो पुरुष अपने लिये आयु, वर्ण, सुख एवं बल चाहता है, उसको चाहिये कि वह निरासक्तभाव से अन्न, पान में अधिक से अधिक सुसंस्कृत एवं व्यवस्थित रहे॥190॥

इस लोक या परलोक में बुद्ध के समान या उनसे श्रेष्ठ कोई नहीं है। वे विपुल पुण्यफल चाह्ने वाले व्यक्तियों के लिये परम अतिथि हैं। उनसे आच्छा दानयोग्य कोई अन्य अतिथि इस लोक या परलोक में नहीं है॥191॥

1. मण्डूकदेवपुत्र, 2. रेवतीविमान, 3. छत्रमाणवविमान, 4. कर्कटरसदायकविमान, 5. द्वारपालविमान, 6. प्रथम करणीयविमान, 7. द्वितीय करणीयविमान, 8. प्रथम सूचिविमान, 9. द्वितीय सूचिविमान, 10. प्रथम नागविमान, 11. द्वितीय नागविमान, 12. तृतीय नागविमान, 13. चूडरथविमान एवं 14.महारथविमान।

****

6. पायासिवग्गो

1. पठमअगारियविमानवत्थु

''यथा वनं चित्तलतं पभासति, उय्यानसेट्ठं तिदसानमुत्तमं।
तथूपमं तुय्हमिदं विमानं, ओभासयं तिट्ठति अन्तलिक्खे॥192॥
''देविद्धिपत्तोसि महानुभावो, मनुस्सभूतो किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावो, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥193॥
सो देवपुत्तो अत्तमनो, मोग्गल्लानेन पुच्छितो।
पञ्हं पुट्ठो वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥194॥
''अहञ्च भरिया च मनुस्सलोके, ओपानभूता घरमावसिम्ह।
अन्नञ्च पानञ्च पसन्नचित्ता, सक्कच्च दानं विपुलं अदम्ह॥195॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥196॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥197॥

पठमअगारियविमानं पठमं।

संस्कृतच्छाया- ''यथा वनं चित्रलतं प्रभासते, उद्यानश्रेष्ठं त्रिदशानामुत्तमम्।
तथोपमं तुभ्यमिदं विमानम्, आभासमानः तिष्ठति अन्तरीक्षे॥192॥
''देवर्धिप्राप्तोऽसि महानुभावः, मनुष्यभूतः किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावः, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥193॥
सः देवपुत्र आप्तमनाः, मौद्गल्यायनेन पृष्टः।
प्रश्नं पृष्टः व्याकार्षीत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥194॥
''अहं च भार्या च मनुष्यलोके, उदपानभूतौ गृहमावसावः।
अन्नं च पानं च प्रसन्नचित्तौ, सत्कृत्य दानं विपुलम् अदाव॥195॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥196॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥197॥

हिन्दी- जिस प्रकार कोई श्रेष्ठ वन विविध प्रकार के चित्र विचित्र लताओं से शोभित होता है, उसी प्रकार आपका यह विमान भी इस अन्तरिक्ष(आकाश) में आभाषित हो रहा है॥192॥

हे देवर्द्धि प्राप्त महानुभाव! मनुष्यलोक में रहते हुए आपने ऐसा कौन सा पुण्य कर्म किया था कि आज आप अपने ज्वलन्त प्रतापयुक्त वर्ण से समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रहे हैं?॥193॥

पूर्ववत्.....गा० स० 4 स्त्रीविमान॥194॥

मैं और मेरी भार्या(धर्मपत्नी)— दोनों ही मनुष्यलोक में घर में एक कूप के समान वास करते थे। हम दोनों प्रसन्नमन से अन्न पान आदि का अतिशय रूप से सत्कारपूर्वक दान किया करते थे॥195॥

उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी के कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रहा हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥196॥

2. दुतियअगारियविमानवत्थु

''यथा वनं चित्तलतं पभासति, उय्यानसेट्ठं तिदसानमुत्तमं।
तथूपमं तुय्हमिदं विमानं, ओभासयं तिट्ठति अन्तलिक्खे॥198॥
''देविद्धिपत्तोसि महानुभावो, मनुस्सभूतो किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावो, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥199॥
सो देवपुत्तो अत्तमनो, मोग्गल्लानेन पुच्छितो।
पञ्हं पुट्ठो वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥200॥
''अहञ्च भरिया च मनुस्सलोके, ओपानभूता घरमावसिम्ह।
अन्नञ्च पानञ्च पसन्नचित्ता, सक्कच्च दानं विपुलं अदम्ह॥201॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥202॥

दुतियअगारियविमानं दुतियं।

संस्कृतच्छाया- ''यथा वनं चित्रलतं प्रभासते, उद्यानश्रेष्ठं त्रिदशानामुत्तमम्।
तथोपमं तुभ्यमिदं विमानम्, आभासमानः तिष्ठति अन्तरीक्षे॥198॥
''देवर्धिप्राप्तोऽसि महानुभावः, मनुष्यभूतः किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावः, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥199॥
सः देवपुत्र आत्तमनाः, मौद्गल्यायनेन पृष्टः।
प्रश्नं पृष्टः व्याकार्षीत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥200॥
''अहं च भार्या च मनुष्यलोके, उदपानभूतौ गृहमावसावः।
अन्नं च पानं च प्रसन्नचित्तौ, सत्कृत्य दानं विपुलम् अदाव॥201॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥202॥

हिन्दी- इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभाषित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥197॥

जिस प्रकार कोई श्रेष्ठ वन विविध प्रकार के चित्र विचित्र लताओं से शोभित होता है, उसी प्रकार आपका यह विमान भी इस अन्तरिक्ष(आकाश) में आभाषित हो रहा है॥198॥

हे देवर्द्धि प्राप्त महानुभाव! मनुष्यलोक में रहते हुए आपने ऐसा कौन सा पुण्य कर्म किया था कि आज आप अपने ज्वलन्त प्रतापयुक्त वर्ण से समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रहे हैं?॥199॥

उस प्रसन्नमन देवपुत्र ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रहा है॥200॥

मैं और मेरी भार्या(धर्मपत्नी)— दोनों ही मनुष्यलोक में घर में एक कूप के समान वास करते थे। वहाँ प्रसन्नमन से विपुल अन्नपान का सत्कारपूर्वक दान किया करते थे॥201॥

उस पुण्य-विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी के कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रही हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥202॥

''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥203॥

3. फलदायकविमानवत्थु

''उच्चमिदं मणिथूणं विमानं, समन्ततो द्वादस योजनानि।
कूटागारा सत्तसता उळारा, वेळुरियथम्भा रुचकत्थता सुभा॥204॥
''तत्थच्छसि पिवसि खादसि च, दिब्बा च वीणा पवदन्ति वग्गुं।
अट्ठट्ठका सिक्खिता साधुरूपा, दिब्बा च कञ्ञा तिदसचरा उळारा।
नच्चन्ति गायन्ति पमोदयन्ति॥205॥
''देविद्धिपत्तासि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥206॥
सो देवपुत्तो अत्तमनो, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥207॥

संस्कृतच्छाया- ''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥203॥
''उच्चैः इदं मणिस्थूणं विमानम्, समन्ततः द्वादशयोजनानि।
कूटागाराणि सप्तशतम् उदाराणि, वैदूर्यस्तम्भाः रुचककृताः शुभाः॥204॥
''तथा इच्छसि पिवसि खादसि च, दिव्याश्च वीणा प्रवदन्ति वल्गुम्।
अष्टाष्ट शिक्षिताः साधुरूपाः, दिव्याश्च कन्याः त्रिदशचर्य उदाराः।
नृत्यन्ति गायन्ति प्रमोदयन्ति॥205॥
''देवर्द्धिं प्राप्तासि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥206॥
सः देवपुत्र आप्तमनः, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकार्षीत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥207॥

हिन्दी- इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभाषित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुआ है॥203॥

आप का यह मणिरत्नों से निर्मित स्थूण(स्तम्भ) वाला विमान चारों दिशाओं से बारह योजन लम्बा चौड़ा है। इसके सात सौ उच्च शिखर वैदूर्यमणि एवं सुवर्णनिर्मित सुन्दर स्तम्भों पर टिके हुए हैं॥204॥

वहाँ आप यथेच्छ खाते पीते हैं तथा मधुरस्वर में वीणावादन करते हुए सङ्गीत का आनन्द लेते हैं। आठ आठ की सङ्ख्या में शिक्षित एवं सुन्दर मुखाकृति वाली देवकन्याएँ आपके सम्मुख नृत्य-गान करती हुई प्रमुदित हो रही हैं॥205॥

हे देवर्द्धि प्राप्त महानुभाव! मनुष्यलोक में रहते हुए आपने ऐसा कौन सा पुण्य कर्म किया था कि आज आप अपने ज्वलन्त प्रतापयुक्त वर्ण से समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रहे हैं?॥206॥

उन प्रसन्नमन देवता ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष का यह फल है॥207॥

''फलदायी फलं विपुलं लभति, ददमुजुगतेसु पसन्नमानसो।
सो हि पमोदति सग्गगतो तिदिवे, अनुभोति च पुञ्ञफलं विपुलं॥208॥
''तवेवाहं महामुनि, अदासिं चतुरो फले॥209॥
''तस्मा हि फलं अलमेव दातुं, निच्चं मनुस्सेन सुखत्थिकेन।
दिब्बानि वा पत्थयता सुखानि, मनुस्ससोभग्गतमिच्छता वा॥210॥
''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥211॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूता यमकासि पुञ्ञं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावा, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥212॥

फलदायकविमानं ततियं।

4. पठमउपस्सयदायकविमानवत्थु

''चन्दो यथा विगतवलाहके नभे, ओभासयं गच्छति अन्तलिक्खे।
तथूपमं तुय्हमिदं विमानं, ओभासयं तिट्ठति अन्तलिक्खे॥213॥

संस्कृतच्छाया- ''फलदायी फलं विपुलं लभते, ददत् ऋजुगतेषु प्रसन्नमानसः।
सः हि प्रमोदते स्वर्गगतः त्रिदिवे, अनुभवति च पुण्यफलं विपुलम्॥208॥
''तवैवाहं महामुने, अदाम् चत्वारि फलानि॥209॥
''तस्मै हि फलम् अलमेव दातुम्, नित्यं मनुष्येण सुखार्थिकेन।
दिव्यानि वा प्रार्थयता सुखानि, मनुष्यसौभाग्यम् इच्छता वा॥210॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥211॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूता यमकार्षं पुण्यम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥212॥
''चन्द्रः यथा विगतबलाहके नभसि, आभासयन् गच्छति अन्तरीक्षे।
तथोपमं तुभ्यमिदं विमानम्, आभासमानं तिष्ठति अन्तरीक्षे॥213॥

हिन्दी- प्रसन्न मन से शान्तचित्त भिक्षुओं को फलों का दाता पुरुष ही मृत्योपरान्त, स्वर्ग में जाकर विपुल पुण्य फल भोगता है॥208॥

हे महामुनि! इसी लिए पूर्व में मैंने आपको चार फलों का दान किया था॥209॥

अतः सदा सुख चाहने वाले पुरुष को चाहिये कि वह अवश्य ही फलों का दान करे; क्योंकि सुख एवं सौभाग्य चाहने वाले तथा स्वर्गलोक में आकर दिव्य सुखों की इच्छा रखने वाले द्वारा फलों का दान किया जाना अत्यावश्यक माना जाता है॥210॥

उस पुण्य-विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी के कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रहा हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥211॥

"देविद्धिपत्तोसि महानुभावा, मनुस्सभूतो किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावो, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती" ति॥214॥
सो देवपुत्तो अत्तमनो, मोग्गल्लानेन पुच्छिता।
पञ्हं पुट्ठा वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥215॥
"अहञ्च भरिया च मनुस्सलोके, उपस्सयं अरहतो अदम्ह।
अन्नञ्च पानञ्च पसन्नचित्ता, सक्कच्च दानं विपुलं अदम्ह॥216॥
"तेन मेतादिसो वण्णो...पे.... वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती" ति॥217-218॥

पठमउपस्सयदायकविमानं चतुत्थं।

5. दुतियउपस्सयदायकविमानवत्थु

सूरियो यथा विगतवलाहके नभे...पे....॥219-222॥
(यथा पुरिमविमानं तथा वित्थारेतब्बं)॥
...पे....वण्णे च मे सब्बदिसा पभासती ति॥223-224॥

दुतियउपस्सयदायकविमानं पञ्चमं।

संस्कृतच्छाया- "देवर्धिप्राप्तोऽसि महानुभावः, मनुष्यभूतः किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावः, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते" इति॥214॥
सः देवपुत्र आप्तमनः, मौद्गल्यायनेन पृष्टा।
प्रश्नं पृष्टा व्याकार्षीत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥215॥
"अहं च भार्या च मनुष्यलोके, उपाश्रयम् अर्हत अदाव।
अन्नं च पानं च प्रसन्नचित्तौ, सत्कृत्य दानं विपुलम् अदाव॥216॥
"तेन मे एतादृशो वर्णः...पे.... वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते" इति॥217-218॥
सूर्यः यथा विगतवलाहके नभसि ...पे....॥219-222॥
(यथा पूर्व विमानं तथा विस्तारयितव्यम्।)
...पे.... वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते इति॥223-224॥
(यथा पूर्व विमानं तथा विस्तारयितव्यम्।)

हिन्दी- इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभाषित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥212॥

जैसे चन्द्रमा मेघरहित आकाश में अवभासमान हो विचरता है उसी प्रकार आपका यह विमान भी अवभासित हो विचरण करता है॥213॥

हे देवर्द्धि प्राप्त महानुभाव! मनुष्यलोक में रहते हुए आपने ऐसा कौन सा पुण्य कर्म किया था कि आज आप अपने ज्वलन्त प्रतापयुक्त वर्ण से समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रहे हैं?॥214॥

उस प्रसन्नमन देवपुत्र ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य–विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रहा है॥215॥

6. भिक्खादायकविमानवत्थु

''उच्चमिदं मणिथूणं विमानं, समन्ततो द्वादस योजनानि।
कूटागारा सत्तसता उळारा, वेळुरियथम्भा रुचकत्थता सुभा॥225॥
''देविद्धिपत्तोसि महानुभावो, मनुस्सभूतो किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावो, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥226॥
सो देवपुत्तो अत्तमनो...पे.... यस्स कम्मस्सिदं फलं॥227॥
''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूतो, दिस्वान भिक्खुं तसितं किलन्तं।
एकाहं भिक्खं पटिपादयिस्सं, समङ्गि भत्तेन तदा अकासिं॥228॥
''तेन मेतादिसो वण्णो...पे.... वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥229-230॥

भिक्खादायकविमानं छट्ठं।

7. यवपालकविमानवत्थु

''उच्चमिदं मणिथूणं विमानं...पे....वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥231-232॥
सो देवपुत्तो अत्तमनो...पे.... यस्स कम्मस्सिदं फलं॥233॥

संस्कृतच्छाया- ''उच्चैः इदं मणिस्थूणं विमानम्, समन्ततः द्वादशयोजनानि।
कूटागाराणि सप्तशतम् उदाराणि, वैदूर्यस्तम्भाः रुचककृताः शुभाः॥225॥
''देवर्धिप्राप्तोऽसि महानुभावः, मनुष्यभूतः किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावः, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥226॥
सः देवपुत्र आत्तमनः...पे.... यस्य कर्मण इदं फलम्॥227॥
''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूतः, दृष्ट्वा नु भिक्षुं त्रस्तं क्रीडन्तम्।
एकां भिक्षां प्रत्यपादयम्, समङ्गीभक्त्या तदा अकार्षम्॥228॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः...पे.... वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥229-230॥
''उच्चैः इदं मणिस्थूणं विमानम्...पे.... वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥231-232॥
सः देवपुत्र आत्तमनः...पे.... यस्य कर्मण इदं फलम्॥233॥

हिन्दी- मैं और मेरी भार्या(धर्मपत्नी)— दोनों ही मनुष्यलोक में घर में एक कूप के समान वास करते थे। हम दोनों प्रसन्नमन से अन्न पान आदि का अतिशय रूप से सत्कारपूर्वक दान किया करते थे॥216॥

पूर्ववत्....गा० सं० 6,7 स्त्रीविमान....॥217-218॥

पूर्व विमान के समान ही इसका विस्तार करना चाहिए ॥219-224॥

आप का यह मणिरत्नों से निर्मित स्थूण(स्तम्भ) वाला विमान चारों दिशाओं से बारह योजन लम्बा चौड़ा है। इसके सात सौ उच्च शिखर वैदूर्यमणि एवं सुवर्णनिर्मित सुन्दर स्तम्भों पर टिके हुए हैं॥225॥

पूर्ववत्....गा० सं० 206....॥226॥

पूर्ववत्....गा० सं० 204 स्त्रीविमान....॥227॥

मैं कभी मनुष्यलोक में मनुष्य रूप में प्रादुर्भूत हुआ था। वहाँ मैंने किसी भूख-प्यास से व्याकुल भिक्षु को देखकर, उसे भिक्षा प्रदान किया॥228॥

पूर्ववत....गा० सं० 6,7 स्त्रीविमान....॥229-230॥

''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूतो, अहोसिं यवपालको।
अद्दसं विरजं भिक्खुं, विप्पसन्नमनाविलं॥234॥
''तस्स अदासहं भागं, पसन्नो सेहि पाणिभि।
कुम्मासपिण्डं दत्वान, मोदामि नन्दने वने॥235॥
''तेन मेतादिसो वण्णो...पे.... वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥236-237॥

यवपालकविमानं सत्तमं।

8. पठमकुण्डलीविमानवत्थु

''अलङ्कतो मल्यधरो सुवत्थो, सुकुण्डली कप्पितकेसमस्सु।
आमुत्तहत्थाभरणो यसस्सी, दिब्बे विमानम्हि यथापि चन्दिमा॥238॥
''दिब्बा च वीणा पवदन्ति वग्गुं, अट्ठट्ठका सिक्खिता साधुरूपा।
दिब्बा च कञ्ञा तिदसचरा उळारा, नच्चन्ति गायन्ति पमोदयन्ति॥239॥

संस्कृतच्छाया- ''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूतः, अभूवं यवपालकः।
अद्राक्षं विरजं भिक्षुम्, विप्रसन्नमनाविलम्॥234॥
''तस्मै अदामहं भागम्, प्रसन्नः स्वैः पाणिभिः।
कुल्माषपिण्डं दत्वा नु, मोदे नन्दने वने॥235॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः...पे.... वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥236-237॥
''अलङ्कृतः माल्यधरः सुवस्त्रः, सुकुण्डली कल्पितकेशश्मश्रुः।
आमुक्तहस्ताभरणः यशस्वी, दिव्ये विमाने यथापि चन्द्रमाः॥238॥
''दिव्याश्च वीणाः प्रवादयन्ति वल्गुम्, अष्ट अष्ट शिक्षिताः साधुरूपाः।
दिव्याश्च कन्या त्रिदशचर्य उदाराः, नृत्यन्ति गायन्ति प्रमोदयन्ति॥239॥

हिन्दी- पूर्ववत....गा० सं० 25, 26....॥231-232॥

पूर्ववत....गा० सं० 4 स्त्रीविमान....॥233॥

मैं कभी मनुष्यलोक में मनुष्यरूप उत्पन्न हो जौ का खेत बोने वाला किसान बना। वहाँ मैंने किसी निर्मल, विमलेन्द्रिय एवं क्षीणास्रव भिक्षु को देखा॥234॥

वहाँ मैंने उसको प्रसन्नमन से अपने ही हाथों द्वारा अपने भोजन का एक भाग एक कुल्माष पिण्ड दान किया, तत्परिणामस्वरूप आज इस नन्दन वन में आनन्दपूर्वक विहार कर रहा हूँ॥235॥

पूर्ववत....गा० सं० 6,7 स्त्रीविमान॥236-237॥

आप सुन्दर मालाओं, वस्त्रों, आभूषणों तथा कानों में कुण्डलों से अलङ्कृत हैं एवं आपके केश एवं दाढी मूँछ सुकल्पित हैं। यशस्वी! आपने हाथों में मोतियों आदि के आभूषण पहन रखे हैं। इस विमान में बैठे हुए आप वैसे ही शोभित हो रहे हैं जैसे आकाश में चन्द्रमा॥238॥

पूर्ववत....गा० सं० 205॥239॥

''देविद्धिपत्तोसि महानुभावो, मनुस्सभूतो किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावो, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥240॥
सो देवपुत्तो अत्तमनो...पे॰... यस्स कम्मस्सिदं फलं॥241॥
''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूतो, दिस्वान समणे सीलवन्ते।
सम्पन्नविज्जाचरणे यसस्सी, बहुस्सुते तण्हक्खयूपपन्ने।
अन्नञ्च पानञ्च पसन्नचित्तो, सक्कच्च दानं विपुलं अदासिं॥242॥
''तेन मेतादिसो वण्णो...पे॰...वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥243-244॥
पठमकुण्डलीविमानं अट्ठमं।

9. दुतियकुण्डलीविमानवत्थु

''''अलङ्कतो मल्यधरो सुवत्थो, सुकुण्डली कप्पितकेसमस्सु।
आमुत्तहत्थाभरणो यसस्सी, दिब्बे विमानम्हि यथापि चन्दिमा॥245॥
''दिब्बा च वीणा पवदन्ति वग्गुं, अट्ठट्ठका सिक्खिता साधुरूपा।
दिब्बा च कञ्ञा तिदसचरा उळारा, नच्चन्ति गायन्ति पमोदयन्ति॥246॥

संस्कृतच्छाया- ''देविर्धिप्राप्तोऽसि महानुभावः, मनुष्यभूतः किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावः, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥240॥
सः देवपुत्र आत्तमनः...पे॰... यस्य कर्मण इदं फलम्॥241॥
''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूतः, दृष्ट्वा नु श्रमणे शीलवते।
सम्पन्नविद्याचरणे यशस्वी, बहुश्रुते तृष्णाक्षयोपपन्ने।
अन्नं च पानं च प्रसन्नचित्तः, सत्कृत्य दानं विपुलम् अदाम्॥242॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः...पे॰...वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥243-244॥
''अलङ्कृतः माल्यधरः सुवस्त्रः, सुकुण्डली कल्पितकेशश्मश्रुः।
आमुक्तहस्ताभरणः यशस्वी, दिव्ये विमाने यथापि चन्द्रमाः॥245॥
''दिव्याश्च वीणाः प्रवादयन्ति वल्गुम्, अष्ट अष्ट शिक्षिताः साधुरूपाः।
दिव्याश्च कन्या त्रिदशचर्य उदाराः, नृत्यन्ति गायन्ति प्रमोदयन्ति॥246॥

हिन्दी- पूर्ववत....गा॰ सं॰ 206॥240॥
पूर्ववत....गा॰ सं॰ 4 स्त्रीविमान॥241॥
मैंने कभी मनुष्यलोक मनुष्यरूप में उत्पन्न होकर किसी शीलवान् श्रमण को देखकर कि वे लोक में विख्यात तथा विद्या एवं आचरण से सम्पन्न थे, बहुश्रुत थे एवं तृष्णा का छेदन कर अपनी साधना पूर्ण कर चुके थे। उनको प्रसन्नमन होकर सत्कारपूर्वक प्रभूत अन्न-पान का दान किया॥242॥
पूर्ववत....गा॰ सं॰ 6,7 स्त्रीविमान॥243-244॥
पूर्ववत....गा॰ सं॰ 238॥245॥
पूर्ववत....गा॰ सं॰ 205॥246॥

''देविद्धिपत्तोसि महानुभावो, मनुस्सभूतो किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावो, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥247॥
सो देवपुत्तो अत्तमनो...पे॰... यस्स कम्मस्सिदं फलं॥248॥
''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूतो, दिस्वान समणे साधुरूपे
सम्पन्नविज्जाचरणे यसस्सी, बहुस्सुते सीलवन्ते पसन्ने।
अन्नञ्च पानञ्च पसन्नचित्तो, सक्कच्च दानं विपुलं अदासिं॥249॥
''तेन मेतादिसो वण्णो...पे॰...वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥250-251॥
दुतियकुण्डलीविमानं नवमं।

10. पायासिविमानवत्थु

''या देवराजस्स सभा सुधम्मा, यत्थच्छति देवसङ्घो समग्गो।
तथूपमं तुय्हमिदं विमानं, ओभासयं तिट्ठति अन्तलिक्खे॥252॥
''देविद्धिपत्तोसि महानुभावो, मनुस्सभूतो किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावो, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥253॥
सो देवपुत्तो अत्तमनो...पे॰... यस्स कम्मस्सिदं फलं॥254॥

संस्कृतच्छाया- देविर्धिप्राप्तोऽसि महानुभावः, मनुष्यभूतः किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावः, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते इति॥247॥
सः देवपुत्र आत्तमनाः पे॰... यस्य कर्मण इदं फलम्॥248॥
''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूतः, दृष्ट्वा नु श्रमणे साधुरूपे।
सम्पन्नविद्याचरणे यशस्वी, बहुश्रुते शीलवते प्रसन्ने।
अन्नं च पानं च प्रसन्नचित्तः, सत्कृत्य दानं विपुलम् अदाम्॥249॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः...पे॰...वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥250-251॥
''या देवराजस्य सभा सुधर्मा, यत्रर्च्छति देवसङ्घः समग्रः।
तथोपमं तुभ्यमिदं विमानम्, आभासयत् तिष्ठति अन्तरीक्षे॥252॥
''देवर्धिप्राप्तोऽसि महानुभावः, मनुष्यभूतः किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावः, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥253॥
सः देवपुत्र आत्तमनाः...पे॰... यस्य कर्मण इदं फलम्॥254॥

हिन्दी- पूर्ववत....गा० सं० 206॥247॥
पूर्ववत....गा० सं० 4 स्त्रीविमान॥248॥
पूर्ववत....गा० सं० 242॥249॥
पूर्ववत....गा० सं० 6,7 स्त्रीविमान॥250-251॥
आप का यह विमान जिस प्रकार देवराज इन्द्र की सुधर्मा नामक देवसभा जहाँ समग्र देवता बैठते हैं, उसी के समान आकाश में आभासित हो रहा है॥252॥
पूर्ववत....गा० सं० 206॥253॥
पूर्ववत....गा० सं० 4 स्त्रीविमान॥254॥

''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूतो, रञ्ञो पायासिस्स अहोसिं माणवो।
लद्धा धनं संविभागं अकासिं, पिया च मे सीलवन्तो अहेसुं।
अन्नञ्च पानञ्च पसन्नचित्तो, सक्कच्च दानं विपुलं अदासिं॥255॥
''तेन मेतादिसो वण्णो...पे॰ ...वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥256-257॥

पायासिविमानं दसमं।

पायासिवग्गो छट्ठो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं –

द्वे अगारिनो फलदायी, द्वे उपस्सयदायी भिक्खाय दायी।
यवपालको चेव द्वे, कुण्डलिनो पायासीति।
पुरिसानं दुतियो वग्गो पवुच्चतीति॥

संस्कृतच्छाया- ''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूतः, राज्ञः पायासेः अभूवं माणवः।
लब्ध्वा धनं संविभागम् अकार्षम्, प्रियाश्च मे शीलवन्त आसन्।
अन्नं च पानं च प्रसन्नचितः, सत्कृत्य दानं विपुलम् अदाम्॥255॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः...पे॰ ... वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥256-257॥

तस्योद्दानम् –

द्वौ अगारिणौ फलदायिनौ, द्वौ उपाश्रयदायिनौ भिक्षादायिनौ।
यवपालकौ चैव द्वौ, कुण्डलिनः पायासी इति।
पुरुषाणां द्वितीयः वर्गः प्रोच्यते इति॥

हिन्दी- मैं कभी मनुष्यलोक मनुष्यरूप में पायासि राजन्य के तरुण(युवा) पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ वहाँ मैंने सम्पत्ति प्राप्त कर अपने प्रिय सदाचारी भिक्षुओं को यथेच्छ दान किया। मैंने उनको प्रसन्नचित्त होकर सत्कारपूर्वक अन्न-पान आदि का भरपूर दान किया॥255॥

पूर्ववत....गा॰ सं॰ 6,7 स्त्रीविमान....॥256-257॥

1. प्रथम अगारीयविमान, 2. द्वितीय अगारीयविमान, 3. फलदायकविमान, 4. प्रथम उपाश्रयदायकविमान, 5. द्वितीय उपाश्रयदायकविमान, 6. भेक्षादायकविमान, 7. यवपालकविमान, 8. प्रथम कुण्डलिविमान, 9. द्वितीय कुण्डलिविमान एवं 10. पायासिविमान।

****

7. सुनिक्खित्तवग्गो

1. चित्तलताविमानवत्थु

''यथा वनं चित्तलतं पभासति, उय्यानसेट्ठं तिदसानमुत्तमं।
तथूपमं तुय्हमिदं विमानं, ओभासयं तिट्ठति अन्तलिक्खे॥258॥
''देविद्धिपत्तोसि महानुभावो, मनुस्सभूतो किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावो, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥259॥
सो देवपुत्तो अत्तमनो...पे॰... यस्स कम्मस्सिदं फलं॥260॥
''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूतो, दलिद्दो अताणो कपणो कम्मकरो अहोसिं।
जिण्णे च मातापितरो अभारिं, पिया च मे सीलवन्तो अहेसुं।
अन्नञ्च पानञ्च पसन्नचित्तो, सक्कच्च दानं विपुलं अदासि॥261॥
''तेन मेतादिसो वण्णो...पे॰... वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥262-263॥

चित्तलताविमानं पठमं।

2. नन्दनविमानवत्थु

''यथा वनं नन्दनं पभासति, उय्यानसेट्ठं तिदसानमुत्तमं।
तथूपमं तुय्हमिदं विमानं, ओभासयं तिट्ठति अन्तलिक्खे॥264॥

संस्कृतच्छाया- ''यथा वनं चित्रलतं प्रभासते, उद्यानश्रेष्ठं त्रिदशानमुत्तमम्।
तथोपमं तुभ्यमिदं विमानम्, आभासयत् तिष्ठति अन्तरीक्षे॥258॥
''देवर्धिप्राप्तोऽसि महानुभावः, मनुष्यभूतः किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावः, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥259॥
सः देवपुत्र आप्तमनः...पे॰... यस्य कर्मण इदं फलम्॥260॥
''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूतः, दरिद्रोऽस्थानः कृपणः कर्मकरोऽभूवम्।
जीर्णौ च मातापितरौ अभरम्, प्रियाश्च मे शीलवन्त आसन्।
अन्नं च पानं च प्रसन्नचित्तः, सत्कृत्य दानं विपुलम् अदाम्॥261॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः...पे॰... वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥262-263॥
''यथा वनं नन्दनं प्रभासते, उद्यानश्रेष्ठं त्रिदशानामुत्तमम्।
तथोपमं तुभ्यमिदं विमानम्, आभासयत् तिष्ठति अन्तरीक्षे॥264॥

हिन्दी- पूर्ववत....गा० सं० 192॥258॥

पूर्ववत....गा० सं० 193॥259॥

पूर्ववत....गा० सं० 4॥260॥

पूर्वजन्म में मैं कभी मनुष्यरूप में एक दरिद्र, आश्रयहीन, कृपण कर्मकार(मजदूर) था। उस जीर्ण अवस्था में भी मैंने अपने माता-पिता का पालन-पोषण किया तथा जो मेरे प्रिय व शीलवान् जन थे, उनको भी प्रसन्नचित्त से अपने हाथों से सत्कारपूर्वक प्रभूत अन्नपान का दान किया॥261॥

पूर्ववत....गा० सं० 6,7 स्त्रीविमान॥262-263॥

जिस प्रकार देवलोक में नन्दन वन नामक श्रेष्ठ उद्यान प्रभासित हो रहा है, उसी प्रकार आपका यह विमान आकाश में आभासित हो रहा है॥264॥

''देविद्धिपत्तोसि महानुभावो, मनुस्सभूतो किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावो, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥265॥
सो देवपुत्तो अत्तमनो...पे.... यस्स कम्मस्सिदं फलं॥266॥
''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूतो, दलिद्दो अताणो कपणो कम्मकरो अहोसिं।
जिण्णे च मातापितरो अभारिं, पिया च मे सीलवन्तो अहेसुं।
अन्नञ्च पानञ्च पसन्नचित्तो, सक्कच्च दानं विपुलं अदासिं॥267॥
''तेन मेतादिसो वण्णो...पे.... वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥268-269॥

नन्दनविमानं दुतियं।

3. मणिथूणविमानवत्थु

''उच्चमिदं मणिथूणं विमानं, समन्ततो द्वादस योजनानि।
कूटागारा सत्तसता उळारा, वेळुरियथम्भा रुचकत्थता सुभा॥270॥
''तत्थच्छसि पिवसि खादसि च, दिब्बा च वीणा पवदन्ति वग्गुं।
दिब्बा रसा कामगुणेत्थ पञ्च, नारियो च नच्चन्ति सुवण्णछन्ना॥271॥

संस्कृतच्छाया- ''देवर्धिप्राप्तोऽसि महानुभावः, मनुष्यभूतः किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावः, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥265॥
सः देवपुत्र आप्तमनः...पे.... यस्य कर्मण इदं फलम्॥266॥
''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूतः, दरिद्रोऽस्थानः कृपणः कर्मकरोऽभूवम्।
जीर्णौ च मातापितरौ अभरम्, प्रियाश्च मे शीलवन्त आसन्।
अन्नं च पानं च प्रसन्नचित्तः, सत्कृत्य दानं विपुलम् अदाम्॥267॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः...पे.... वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥268-269॥
''उच्चैः इदं मणिस्थूणं विमानम्, समन्ततः द्वादशयोजनानि।
कूटागाराणि सप्तशतम् उदाराणि, वैदूर्यस्तम्भाः रुचककृताः शुभाः॥270॥
''तथा इच्छसि पिवसि खादसि च, दिव्याश्च वीणा प्रवदन्ति वल्गुम्।
दिव्याः रसाः कामगुणस्थाः पञ्च, दिव्याः नार्यश्च नृत्यन्ति सुवर्णाच्छादनाः॥271॥

हिन्दी- पूर्ववत....गा० सं० 193....॥265॥
पूर्ववत....गा० सं० 4 स्त्रीविमान....॥266॥
पूर्ववत....गा० सं० 261....॥267॥
पूर्ववत....गा० सं० 6,7 स्त्रीविमान....॥268-269॥
पूर्ववत....गा० सं० 225....॥270॥

वहाँ आप यथेच्छ खाते पीते हैं तथा मधुरस्वर में वीणावादन करते हुए सङ्गीत का आनन्द लेते हैं। दिव्य रसों तथा पञ्च कामगुणों से युक्त तथा स्वर्णाभूषणों से आच्छादित दिव्य देवकन्याएँ आपके सम्मुख नृत्य कर रही हैं॥271॥

''केन तेतादिसो वण्णो...पे॰...वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥272-273॥
सो देवपुत्तो अत्तमनो...पे॰...यस्स कम्मस्सिदं फलं॥274॥
''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूतो, विवने पथे सङ्कमनं अकासिं।
आरामरुक्खानि च रोपयिस्सं, पिया च मे सीलवन्तो अहेसुं।
अन्नञ्च पानञ्च पसन्नचित्तो, सक्कच्च दानं विपुलं अदासिं॥275॥
''तेन मेतादिसो वण्णो...पे॰... वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥276-277॥
मणिथूणविमानं ततियं।

4. सुवण्णविमानवत्थु

''सोवण्णमये पब्बतस्मिं, विमानं सब्बतोपभं।
हेमजालपटिच्छन्नं, किङ्किणि जालकप्पितं॥278॥
''अट्ठंसा सुकता थम्भा, सब्बे वेळुरियामया।
एकमेकाय अंसिया, रतना सत्त निम्मिता॥279॥

संस्कृतच्छाया- ''केन ते तादृशोः वर्णः...पे॰... वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥272-273॥
सः देवपुत्र आत्तमनः...पे॰...यस्य कर्मण इदं फलम्॥274॥
''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूतः, विवने पथि सङ्क्रमम् अकार्षम्।
आरामवृक्षान् च अरोपयम्, प्रियाश्च मे शीलवन्त आसन्।
अन्नं च पानं च प्रसन्नचित्तः, सत्कृत्य दानं विपुलम् अदाम्॥275॥
''तेन मे एतादृशो वर्णः...पे॰... वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥276-277॥
''सौवर्णमये पर्वते, विमानं सर्वतःप्रभम्।
हेमजालप्रतिच्छन्नम्, किङ्किणीजालकल्पितम्॥278॥
''अष्टांशाः सुकृताः स्तम्भाः, सर्वे वैदूर्यमयाः।
एकैकस्य अंशाः, रत्नैः सप्तभिः निर्मिताः॥279॥

हिन्दी- पूर्ववत....गा॰ सं॰ 2, 3 स्त्रीविमान....॥272-273॥

पूर्ववत....गा॰ सं॰ 4 स्त्रीविमान....॥274॥

मैंने पूर्वजन्म में मनुष्य लोक में मनुष्यरूप में उत्पन्न होकर राजमार्गों के छोरों पर प्रिय तथा सदाचारी भिक्षुओं के विश्राम हेतु चबूतरे बनवाये, छायादार वृक्ष लगवाये। तथा उनको सत्कारपूर्वक प्रसन्नमन से प्रभूत अन्न पान का दान किया॥275॥

पूर्ववत....गा॰ सं॰ 6,7 स्त्रीविमान....॥276-277॥

इस सुवर्णमय पर्वत पर आपका यह विमान सब ओर अपनी प्रभा बिखेर रहा है। यह चारों तरफ से सुवर्णजाल से भी आच्छन्न है, इसमें छोटी-छोटी घण्टियाँ बन्धी हुई हैं॥278॥

इसकी आठों दिशाओं में आठ सुनिर्मित स्तम्भ हैं। ये सभी वैदूर्यमणिमय हैं। इनका एक-एक अंश(भाग) सातों रत्नों से निर्मित है-॥279॥

''वेळुरियसुवण्णस्स, फलिका रूपियस्स च।
मसारगल्लमुत्ताहि, लोहितङ्गमणीहि च॥280॥
''चित्रा मनोरमा भूमि, न तत्थुद्धंसती रजो।
गोपाणसीगणा पीता, कूटं धारेन्ति निम्मिता॥281॥
''सोपाणानि च चत्तारि, निम्मिता चतुरो दिसा।
नानारतनगब्भेहि , आदिच्चोव विरोचति॥282॥
''वेदिया चतस्सो तत्थ, विभत्ता भागसो मिता।
दद्दल्लमाना आभन्ति, समन्ता चतुरो दिसा॥283॥
''तस्मिं विमाने पवरे, देवपुत्तो महप्पभो।
अतिरोचसि वण्णेन, उदयन्तोव भाणुमा॥284॥
''दानस्स ते इदं फलं, अथो सीलस्स वा पन।
अथो अञ्जलिकम्मस्स, तं मे अक्खाहि पुच्छितो''॥285॥

संस्कृतच्छाया- ''वैदूर्यसुवर्णस्य, फलिका/स्फटिकस्य रूप्यस्य च।
मसारगल्लमुक्ताभिः, लोहिताङ्गमणिभिश्च॥280॥
''चित्रा मनोरमा भूमिः, न तत्रोद्भ्रस्यति रजः।
गोपानसीगणाः पीताः, कूटं धारयन्ति निर्मितम्॥281॥
''सोपानानि च चत्वारि, निर्मितानि चतसषृ दिक्षु।
नानारत्नगर्भाणि , आदित्यमिव विरोचन्ते॥282॥
''वेद्यः चतस्रः तत्र, विभक्ताः भागशः मिताः।
जाज्वल्यमाना आभान्ति, समन्तात् चतस्रः दिशः॥283॥
''तस्मिन् विमाने प्रवरे, देवपुत्रः महाप्रभः।
अतिरोचते वर्णेन, उदयन्निव भानुमान्॥284॥
''दानस्य ते इदं फलम्, अथ शीलस्य वा पुनः।
अथ अञ्जलिकर्मणः, तन्मे आख्याहि पृष्टः''॥285॥

हिन्दी- जैसे—वैदूर्यमणि, सुवर्ण, स्फटिक, रूप्य(रजत), मसारगल्ल(बहुमूल्य प्रस्तर) मुक्ता(मोती), एवं लोहिताङ्गमणि॥280॥

इसकी भूमि मनोहर चित्रकारी से युक्त है। वहाँ धूल नहीं उड़ते। इसके छत (उपरिभाग) की कड़ियाँ और छज्जे पीतवर्ण के हैं और इसका कूट(शिखर) भी सुन्दर कलाकृति युक्त है॥281॥

इस पर चारों दिशाओं से चार सोपान(सीढियाँ) लगी हुई हैं। नाना रत्न जटित वे सीढ़ियाँ भी सूर्य के समान चमक रही हैं॥282॥

इसके चारों ओर समान भाग में विभक्त चार वेदियाँ बनी हुई हैं जो अपने ज्वलन्त प्रताप से चारों दिशाओं को आभासित कर रही हैं ॥283॥

ऐसे श्रेष्ठ विमान में बैठे हुए देवपुत्र! आपका वर्ण ऐसे शोभित हो रहा है मानो उदीयमान सूर्य॥284॥

यह आपके किसी दानविशेष का फल है? या किसी सदाचारविशेष का या किसी श्रमण के प्रति किए गये अञ्जलिकर्म का? —कृपया आप मेरे प्रश्न को स्पष्ट करें॥285॥

सो देवपुत्तो अत्तमनो...पे.... यस्स कम्मस्सिदं फलं॥286॥
''अहं अन्धकविन्दस्मिं, बुद्धस्सादिच्चबन्धुनो।
विहारं सत्थु कारेसिं, पसन्नो सेहि पाणिभि॥287॥
''तत्थ गन्धञ्च मालञ्च, पच्चयञ्च विलेपनं।
विहारं सत्थु अदासिं, विप्पसन्नेन चेतसा।
तेन मय्हं इदं लद्धं, वसं वत्तेमि नन्दने॥288॥
''नन्दने च वने रम्मे, नानादिजगणायुते।
रमामि नच्चगीतेहि, अच्छराहि पुरक्खतो'' ति॥289॥
सुवण्णविमानं चतुत्थं।

5. अम्बविमानवत्थु

''उच्चमिदं मणिथूणं विमानं, समन्ततो द्वादस योजनानि।
कूटागारा सत्तसता उळारा, वेळुरियथम्भा रुचकत्थता सुभा॥290॥
''तत्थच्छसि पिवसि खादसि च, दिब्बा च वीणा पवदन्ति वग्गुं।
दिब्बा रसा कामगुणेत्थ पञ्च, नारियो च नच्चन्ति सुवण्णछन्ना॥291॥

संस्कृतच्छाया- सः देवपुत्र आत्तमनः...पे.... यस्य कर्मण इदं फलम्॥286॥
''अहम् अन्धकविन्दे, बुद्धस्यादित्यबन्धोः।
विहारं शास्तुः अकार्षम्, प्रसन्नः स्वैः पाणिभिः॥287॥
''तत्र गन्धं च मालां च, प्रचितं च विलेपनम्।
विहारं शास्त्रे अदाम्, विप्रसन्नेन चेतसा।
तेन मया इदं लब्धम्, वसन् वर्ते नन्दने॥288॥
''नन्दने च वने रम्ये, नानाद्विजगणैः युते।
रमे नृत्यगीतैः, अप्सरोभिः पुरस्कृताभिः'' इति॥289॥
''उच्चैः इदं मणिस्थूणं विमानम्, समन्ततः द्वादशयोजनानि।
कूटागाराणि सप्तशतान्युदाराणि, वैदूर्यस्तम्भाः रुचककृताः शुभाः॥290॥
''तथा इच्छसि पिवसि खादसि च, दिव्याश्च वीणाः प्रवदन्ति वल्गुम्।
दिव्याः रसाः कामगुणस्थाः पञ्च-नार्यश्च नृत्यन्ति सुवर्णच्छन्नाः॥291॥

हिन्दी- पूर्ववत....गा० सं० 4 स्त्रीविमान॥286॥

मैंने आदित्यबन्धु शास्ता भगवान् बुद्ध के लिये अन्धकविन्द नगर में प्रसन्नमन से अपने हाथों से एक विहार का निर्माण कराया था॥287॥

मैंने प्रसन्न मन से उस विहार में माला, गन्ध आदि प्रत्ययों का विलेपन कर वह विहार शास्ता को दे दिया। मुझे उसी का यह परिणाम मिला कि आज मैं इस दिव्य नन्दन वन में वास कर रहा हूँ॥288॥

तथा इस रमणीय नन्दनवन में नानाविध पक्षियों के समूह एकत्रित हैं, साथ-साथ मैं अप्सराओं के मनोरम नृत्य एवं गायन से भी अपना मन बहलाता रहता हूँ॥289॥

पूर्ववत....गा० सं० 54....॥290॥

पूर्ववत....गा० सं० 55....॥291॥

''केन तेतादिसो वण्णो...पे.... वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥292-293॥
सो देवपुत्तो अत्तमनो...पे.... यस्स कम्मस्सिदं फलं॥294॥
''गिम्हानं पच्छिमे मासे, पतपन्ते दिवङ्करे।
परेसं भतको पोसो, अम्बाराममसिञ्चति॥295॥
''अथ तेनागमा भिक्खु, सारिपुत्तोति विस्सुतो।
किलन्तरूपो कायेन, अकिलन्तोव चेतसा॥296॥
''तञ्च दिस्वान आयन्तं, अवोचं अम्बसिञ्चको।
साधु तं भन्ते न्हापेय्यं, यं ममस्स सुखावहं॥297॥
''तस्स मे अनुकम्पाय, निक्खिपि पत्तचीवरं।
निसीदि रुक्खमूलस्मिं, छायाय एकचीवरो॥298॥
''तञ्च अच्छेन वारिना, पसन्नमानसो नरो।
न्हापयी रुक्खमूलस्मिं, छायाय एकचीवरं॥299॥

संस्कृतच्छाया- ''केन ते तादृशो: वर्ण:...पे.... वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥292-293॥
स: देवपुत्र आत्तमन:...पे.... यस्य कर्मण इदं फलम्॥294॥
''ग्रीष्मस्य पश्चिमे मासे, प्रतपति दिवाकरे।
परेषां भृतक: पुंसाम्, आम्राराममम् असिञ्चम्॥295॥
''अथ तेनागमद् भिक्षु:, सारिपुत्रोऽतिविश्रुत:।
क्लान्तरूप: कायेन, अक्लान्त इव चेतसा॥296॥
''तं च दृष्ट्वा नु आयान्तम्, अवोचम् आम्रसिञ्चक:।
साधु त्वां भदन्त स्नपयेयम्, यत् अस्माकम् सुखावहम्॥297॥
''तथा मे अनुकम्पया, न्यक्षिपत् पात्रचीवरम्।
न्यषीदत् वृक्षमूले, छायायाम् एकचीवर:॥298॥
''तं स्वच्छेन वारिणा, प्रसन्नमानस: नर:।
अस्नपयं वृक्षमूले, छायायाम् एकचीवरम्॥299॥

हिन्दी- पूर्ववत....गा० सं० 2,3 स्त्रीविमान॥292-293॥

पूर्ववत....गा० सं० 4 स्त्रीविमान॥294॥

मैं कभी पूर्वजन्म में ग्रीष्मऋतु में किसी अन्य पुरुष के आम्रवन में जलसिञ्चन का कार्य करता था॥295॥

तब कभी, काय से क्लान्त परन्तु चित से शान्त, प्रसिद्ध भिक्षु सारिपुत्र वहाँ पधारे॥296॥

उनको वहाँ आया हुआ देख कर आम्रवन की सिंचाई करते हुए मैंने उनसे निवेदन किया— भन्ते! अच्छा हो कि मैं आपको स्नान करा दूँ, जो मेरे लिये सुखकर ही होगा॥297॥

तब उन्होनें, मुझ पर अनुकम्पा करते हुए अपने पात्र एवं चीवर को एक तरफ रख तथा एक वस्त्र धारण कर वे एक वृक्ष की छाया में बैठ गये॥298॥

और तब मैंने उन एकचीवर भिक्षु को वृक्ष की छाया में बैठाकर प्रसन्न हो स्वच्छ जल द्वारा स्नान कराया॥299॥

''अम्बो च सित्तो समणो च न्हापितो, मया च पुञ्ञं पसुतं अनप्पकं।
इति सो पीतिया कायं, सब्बं फरति अत्तनो॥300॥
''तदेव एत्तकं कम्मं, अकासिं ताय जातिया।
पहाय मानुसं देहं, उपपन्नोम्हि नन्दनं॥301॥
''नन्दने च वने रम्मे, नानादिजगणायुते।
रमामि नच्चगीतेहि, अच्छराहि पुरक्खतो'' ति॥302॥

अम्बविमानं पञ्चमं।

6. गोपालविमानवत्थु

''दिस्वान देवं पटिपुच्छि भिक्खु, उच्चे विमानम्हि चिरट्ठितिके।
आमुत्तहत्थाभरणं यसस्सिं दिब्बे विमानम्हि यथापि चन्दिमा॥303॥
''अलङ्कतो मल्यधरो सुवत्थो, सुकुण्डली कप्पितकेसमस्सु।
आमुत्तहत्थाभरणो यसस्सी, दिब्बे विमानम्हि यथापि चन्दिमा॥304॥

संस्कृतच्छाया- ''आम्रश्च सिक्तो श्रमणश्च स्नापितः, मया च पुण्यं प्रसूतम् अनल्पकम्।
इति सः प्रीत्या कार्यम्, सर्वं फलति आत्मनः॥300॥
''तदेव एकं कर्म, अकार्षं तस्मिन् जन्मनि।
प्रहाय मानुषं देहम्, उपपन्नोस्मि नन्दने॥301॥
''नन्दने च वने रम्ये, नानाद्विजगणैः युते।
रमे नृत्यगीतैः, अप्सरोभिः पुरस्कृताभिः'' इति॥302॥
''दृष्ट्वा देवं प्रत्यपृच्छत् भिक्षुः, उच्चैः विमाने चिरस्थितिके।
आमुक्तहस्ताभरणं यशस्विनम्, दिव्ये विमाने यथा हि चन्द्रमाः॥303॥
''अलङ्कृतः माल्यधरः सुवस्त्रः, सुकुण्डली कल्पितकेशश्मश्रुः।
आमुक्तहस्ताभरणः यशस्वी, दिव्ये विमाने यथापि चन्द्रमाः॥304॥

हिन्दी- मेरी इस क्रिया से तीन लाभ हुए— आम्रवृक्ष का सिञ्चन हो गया और, श्रमण ने स्नान भी कर लिया तथा इस अपूर्व कर्म का मुझे महा पुण्य मिला। इस प्रकार प्रीतिपूर्वक किया हुआ कार्य सभी के लिये सुखकर हुआ॥300॥

उस जन्म में मैंने केवल यही एक कर्म किया था। इसी के फलस्वरूप मैं उस देहत्याग के बाद इस नन्दन वन में उत्पन्न हुआ॥301॥

तथा इस रमणीय नन्दनवन में नानाविध पक्षियों के समूह एकत्रित हैं साथ साथ मैं अप्सराओं के मनोरम नृत्य एवं गायन से भी अपना मन बहलाता रहता हूँ॥302॥

भिक्षु ने चिरकाल से उस उच्च विमान में चन्द्रमा के समान बैठे हुए उस अलङ्कारों से विभूषित यशस्वी देवता से पूछा—॥303॥

पूर्ववत.....गा० सं० 238....॥304॥

''दिब्बा च वीणा पवदन्ति वग्गुं, अट्ठट्ठका सिक्खिता साधुरूपा।
दिब्बा च कञ्ञा तिदसचरा उळारा, नच्चन्ति गायन्ति पमोदयन्ति॥305॥
''देविद्धिपत्तोसि महानुभावो, मनुस्सभूतो किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावो, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥306॥
सो देवपुत्तो अत्तमनो...पे.... यस्स कम्मस्सिदं फलं॥307॥
''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूतो, सङ्गम्म रक्खिस्सं परेसं धेनुयो।
ततो च आगा समणो ममन्तिके गावो च मासे अगमंसु खादितुं॥308॥
''द्वयञ्ज किच्चं उभयञ्च कारियं, इच्चेवहं भन्ते तदा विचिन्तयिं।
ततो च सञ्ञं पटिलद्धयोनिसो, ददामि भन्तेति खिपिं अनन्तकं॥309॥
''सो मासखेत्तं तुरितो अवासरिं, पुरा अयं भञ्जति यस्सिदं धनं।
ततो च कण्हो उरगो महाविसो, अडंसि पादे तुरितस्स मे सतो॥310॥

संस्कृतच्छाया- ''दिव्याश्च वीणाः प्रवदन्ति वल्गु, अष्टाष्टकाः शिक्षिताः साधुरूपाः।
दिव्याश्च कन्या त्रिदशचरा उदाराः, नृत्यन्ति गायन्ति प्रमोदयन्ति॥305॥
''देवर्धिप्राप्तोऽसि महानुभाव, मनुष्यभूतः किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभाव, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥306॥
सः देवपुत्र आत्तमनः...पे.... यस्य कर्मण इदं फलम्॥307॥
''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूतः, सङ्गम्य अरक्षं परेषां धेनूः।
ततश्च आगात् श्रमणः ममान्तिके, गावश्च माषे अगमन् खादितुम्॥308॥
''अद्य द्वयं कृत्यम् उभयञ्च कार्यम्, इत्येवाहं भदन्त तदा व्यचिन्तयम्।
ततश्च संज्ञां प्रतिलब्धयोनिषां, ददामि भदन्ताय इति अक्षिपम् अनन्तकम्॥309॥
''सः माषक्षेत्रं त्वरितम् अवासरं, पुरा अयं भक्षयति यस्य इदं धनम्।
ततश्च कृष्णोरगः महाविषः, अदशत् पादे त्वरितस्य मे सतः॥310॥

हिन्दी- पूर्ववत.....गा० सं० 239....॥305॥
पूर्ववत.....गा० सं० 206....॥306॥
पूर्ववत.....गा० सं० 4 स्त्रीविमान....॥307॥

मैं कभी मनुष्यलोक में मनुष्यरूप में उत्पन्न होकर दूसरों की गौएँ चराकर अपना जीवन निर्वाह करता था। उसी समय मेरे समक्ष एक श्रमण आया। उधर गौएँ किसी उड़द के खेत में जाकर चरने लगीं॥308॥

इस प्रकार, मेरे सम्मुख दुविधा उपस्थित हो गयी; क्योंकि मुझको ये दोनों ही कार्य— गौओं से दूसरे के खेत की रक्षा तथा उस भिक्षु का सम्मान— पूर्ण करने थे। भन्ते! उस समय मैं यही विचार करने लगा। अन्त में मैंने उस भिक्षु की ओर अपना अनन्तक (बाहुभूषण) फेंक दिया॥309॥

फिर मैं तत्क्षण उड़द के खेत में गया, जहाँ ये गौएँ दूसरों की फसल चर रही थीं। उसी समय किसी काले महाविषधर सर्प ने मुझको पैर में डस लिया॥310॥

''स्वाहं अट्टोम्हि दुक्खेन पीळितो, भिक्खु च तं सामं मुञ्चित्वानन्तकं।
अहासि कुम्मासं ममानुकम्पया, ततो चुतो कालकतोम्हि देवता॥311॥
''तदेव कम्मं कुसलं कतं मया, सुखञ्च कम्मं अनुभोमि अत्तना।
तया हि भन्ते अनुकम्पितो भुसं, कतञ्ञुताय अभिपादयामि तं॥312॥
''सदेवके लोके समारके च, अञ्ञो मुनि नत्थि तयानुकम्पको।
तया हि भन्ते अनुकम्पितो भुसं, कतञ्ञुताय अभिवादयामि तं॥313॥
''इमस्मिं लोके परस्मिं वा पन, अञ्ञो मुनी नत्थि तयानुकम्पको।
तया हि भन्ते अनुकम्पितो भुसं, कतञ्ञुताय अभिवादयामि तं'' ति॥314॥
गोपालविमानं छट्ठं।

7. कण्डकविमानवत्थु

''पुण्णमासे यथा चन्दो, नक्खत्तपरिवारितो।
समन्ता अनुपरियाति, तारकाधिपती ससी॥315॥

संस्कृतच्छाया- ''सोऽहम् आर्तोस्मि दुःखेन पीडितः, भिक्षुश्च तं सः मां मुक्त्वानन्तकम्।
अहार्षीत् कुल्माषं ममानुकम्पया, ततश्च्युतः कालकृतोस्मि देवता॥311॥
''तदेव कर्म कुशलं कृतं मया, सुखं च कर्मानुभवामि आत्मना।
त्वया हि भदन्त अनुकम्पितः भृशम्, कृतज्ञतायै अभिवादयामि त्वाम्॥312॥
''सदेवके लोके समारके च, अन्यः मुनिः नास्ति त्वयानुकम्पकः।
त्वया हि भदन्त अनुकम्पितः भृशम्, कृतज्ञतायै अभिवादयामि त्वाम्॥313॥
''अस्मिन् लोके परस्मिन् वा पुनः, अन्यो मुनिः नास्ति त्वयानुकम्पकः।
त्वया हि भदन्त अनुकम्पितः भृशम्, कृतज्ञतायै अभिवादयामि त्वाम् इति॥314॥
''पौर्णमास्यां यथा चन्द्रः, नक्षत्रपरिवारितः।
समन्तात् अनुपरियाति, तारकाधिपतिः शशी॥315॥

हिन्दी- उसके विषदंश से मुझको बहुत पीड़ा हुई। उधर भिक्षु ने मुझको उस पीड़ा में देखकर तत्काल ही वह अनन्तक मेरे सम्मुख फेंक दिया। तथा मेरे निवेदन करने पर, मुझ पर अनुकम्पा करते हुए मेरा रखा हुआ कुल्माषपिण्ड लेकर खा लिया। उसी समय मेरी मृत्यु हो गयी। तथा उस देहच्युति के उपरान्त मैं देव हो गया॥311॥

भन्ते! मैंने मनुष्यलोक में केवल यही एक कुशल कर्म किया था। उसी के विपाकस्वरूप मैं आज यह सुख भोग रहा हूँ। भन्ते! आपने मुझ पर महानुकम्पा की थी। इसलिए मैं आपके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ॥312॥

भन्ते! इस समस्त देवलोक तथा मनुष्यलोक में आप से बढ़कर कोई अन्य अनुकम्पक नहीं है। आपने मुझ पर अतिशय अनुकम्पा की है। इसलिए मैं आपके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ॥313॥

पूर्ववत.....गा० सं० 213....॥314॥

जिस प्रकार किसी भी पूर्णिमा के दिन नक्षत्रों से घिरा तारकाधिपति चन्द्रमा आकाश में सभी दिशाओं में शोभित होता है॥315॥

''तथूपमं इदं ब्यम्हं, दिब्बं देवपुरम्हि च।
अतिरोचति वण्णेन, उदयन्तोव रंसिमा॥316॥
''वेळुरियसुवण्णस्स, फलिका रूपियस्स च।
मसारगल्लमुत्ताहि, लोहितङ्गमणीहि च॥317॥
''चित्रा मनोरमा भूमि, वेळूरियस्स सन्थता।
कूटागारा सुभा रम्मा, पासादो ते सुमापितो॥318॥
''रम्मा च ते पोक्खरणी, पुथुलोमनिसेविता।
अच्छोदका विप्पसन्ना, सोवण्णवालुकसन्थता॥319॥
''नानापदुमसञ्छन्ना, पुण्डरीकसमोतता।
सुरभिं सम्पवायन्ति, मनुञ्ञा मालुतेरिता॥320॥
''तस्सा ते उभतो पस्से, वनगुम्बा सुमापिता।
उपेता पुप्फरुक्खेहि, फलरुक्खेहि चूभयं॥321॥

संस्कृतच्छाया-
''तथोपमम् इदं विमानम्, दिव्यं देवपुरे च।
अतिरोचते वर्णेन, उदयन्निव रश्मिमान्॥316॥
''वैदूर्यसुवर्णस्य, फलकं रूप्यस्य च।
मसारगल्लमुक्ताभिः, लोहिताङ्गमणिभिश्च॥317॥
''चित्रा मनोरमा भूमिः, वैदूर्यस्य संस्तृता।
कूटागारा शुभा रम्या, प्रासादस्ते सुमापितः॥318॥
''रम्या च ते पुष्करिणी, पृथुलोमनिसेविता।
अच्छोदका विप्रसन्ना, सौवर्णवालुकासंस्तृता॥319॥
''नानापद्मसच्छन्ना, पुण्डरीकसमुत्थिता।
सुरभिं सम्प्रवान्ति, मनोज्ञा मारुतेरिता॥320॥
''तस्याः ते उभयतः पार्श्वयोः, वनगुल्माः सुमापिताः।
उपेताः पुष्पवृक्षैः, फलवृक्षैश्चोभयम्॥321॥

हिन्दी- उसी प्रकार इस देवपुर में आपका यह विमान, उदीयमान सूर्य के समान अपनी वर्णाभा से सुशोभित हो रहा है॥316॥

पूर्ववत.....गा० सं० 280....॥317॥

पूर्ववत.....गा० सं० 281....॥318॥

मेरे इस विमान में विविध मत्स्य जातियों से युक्त, स्वच्छ जल वाली, साफ-स्वच्छ, सुनहरी बालुका वाली रमणीय पुष्करणियाँ हैं॥319॥

विविध पद्म पुष्पों से युक्त, पुण्डरीकों से भरी हुई, सुगन्धयुक्त मनोज्ञ(मनभावनी) वायु से लहराती हुई पुष्पकरिणियाँ हैं॥320॥

उन पुष्करिणियों के दोनों किनारों पर सुन्दराकार वनगुल्मों(लता) एवं पुष्पों तथा फलों से युक्त वृक्ष शोभित हैं॥321॥

''सोवण्णपादे पल्लङ्के, मुदुके गोणकत्थते।
निसिन्नं देवराजंव, उपतिट्ठन्ति अच्छरा॥322॥
''सब्बाभरणसञ्छन्ना, नानामालाविभूसिता।
रमेन्ति तं महिद्धिकं, वसवत्तीव मोदसि॥323॥
''भेरिसङ्खमुदिङ्गाहि, वीणाहि पणवेहि च।
रमसि रतिसम्पन्नो, नच्चगीते सुवादिते॥324॥
''दिब्बा ते विविधा रूपा, दिब्बा सद्दा अथो रसा।
गन्धा च ते अधिप्पेता, फोट्ठब्बा च मनोरमा॥325॥
''तस्मिं विमाने पवरे, देवपुत्त महप्पभो।
अतिरोचसि वण्णेन, उदयन्तोव भाणुमा॥326॥
''दानस्स ते इदं फलं, अथो सीलस्स वा पन।
अथो अञ्जलिकम्मस्स, तं मे अक्खाहि पुच्छितो''॥327॥

संस्कृतच्छाया- ''सौवर्णपादे पर्यङ्के, मृदुके गोणकस्थिते।
निषण्णं देवराजमिव, उपतिष्ठन्ते अप्सरसः॥322॥
''सर्वाभरणसंछन्नाः, नानामालाविभूषिताः।
रमन्ते तद् महर्द्धिकाः, वशवर्त्तिन्य इव मोदसे॥323॥
''भेरिशङ्खमृदङ्गैः, वीणाभिः पणवैश्च।
रमसे रतिसम्पन्नः, नृत्यगीते सुवादिते॥324॥
''दिव्यानि ते विविधानि रूपाणि, दिव्याः शब्दा अथो रसाः।
गन्धाश्च ते अधिप्रेताः, स्पर्शाश्च मनोरमाः॥325॥
''तस्मिन् विमाने प्रवरे, देवपुत्र महाप्रभ।
अतिरोचसे वर्णेन, उदयन् इव भानुमान्॥326॥
''दानस्य ते इदं फलम्, अथ शीलस्य वा पुनः।
अथ अञ्जलिकर्मणः, तत् मे आख्याहि पृच्छतः''॥327॥

हिन्दी- सुवर्णपादों(पायों) वाले पलंग पर, मुलायम बिछे बिछौने पर देवराज इन्द्र के समान विराजमान आपके समक्ष अप्सराएँ सेवा परिचर्या कर रही हैं॥322॥

सर्वविध आभूषणों तथा मालाओं से विभूषित वे समस्त अप्सराएँ वशवर्ती देवों के समान आपकी परिचर्या कर रही हैं॥323॥

उन अप्सराओं द्वारा भेरी, शंख, मृदंग, वीणा एवं पणव (ढोल) आदि वाद्यों के साथ किये जाते हुए नृत्य-गीत से आप अपना मनोरंजन करते हैं॥324॥

और, आप इस विमान में विविध, दिव्य एवं मनोरम रूप, रस, गन्ध, शब्द एवं स्प्रष्टव्य विषयों का भी उपभोग कर रहे हैं॥325॥

हे देवपुत्र! इस दिव्य विमान में विराजमान आप अपने वर्ण से उदीयमान सूर्य के समान सुशोभित हो रहे हैं॥326॥

पूर्ववत....गा० सं० 285....॥327॥

सो देवपुत्तो अत्तमनो...पे.... यस्स कम्मस्सिदं फलं॥328॥
''अहं कपिलवत्थुस्मिं, साकियानं पुरुत्तमे।
सुद्धोदनस्स पुत्तस्स, कण्डको सहजो अहं॥329॥
''यदा सो अड्ढरत्तायं, बोधाय मभिनिक्खमि।
सो मं मुदूहि पाणीहि, जालि तम्बनखेहि च॥330॥
''सत्थिं आकोटयित्वान, वह सम्माति चब्रवि।
अहं लोकं तारयिस्सं, पत्तो सम्बोधिमुत्तमं॥331॥
''तं मे गिरं सुणन्तस्स, हासो मे विपुलो अहु।
उदग्गचित्तो सुमनो, अभिसीसिं तदा अहं॥332॥
''अभिरूळ्हञ्च मं ञत्वा, सक्यपुत्तं महायसं।
उदग्गचित्तो मुदितो, वहिस्सं पुरिसुत्तमं॥333॥

संस्कृतच्छाया- सः देवपुत्र आत्तमनः...पे.... यस्य कर्मण इदं फलम्॥328॥
''अहं कपिलवस्तौ, शाक्यानां पुरोत्तमे।
शुद्धोदनस्य पुत्रस्य कन्थकः सहजोऽहम्॥329॥
''यदा स अर्धरात्रे, **बोधाय** अभिन्यक्रामत्।
सः मां मृदुभिः पाणिभिः, जालिततताम्रनखैश्च॥330॥
''सक्थि आकोट्य, वह सम्यग् इति च अब्रवीत्।
अहं लोकं तारयिष्यामि, प्राप्तः सम्बोधिमुत्तमाम्॥331॥
''ताम् मे गिरं शृण्वतः, हासो मे विपुलोऽभूत्।
उदग्रचित्तः सुमनाः, अभिशीर्षं तदा अहम्॥332॥
''अभिरूढं च माम् ज्ञात्वा, शाक्यपुत्रं महायशसम्।
उदग्रचित्तः मुदितः, अवहं पुरुषोत्तमम्॥333॥

हिन्दी- पूर्ववत....गा० सं० 4 स्त्रीविमान....॥328॥

मैं कन्थक(नामक अश्व), कभी शाक्यों के महान् कपिलवस्तु नगर में राजा शुद्धोदन के पुत्र(सिद्धार्थ) के समकालीन था॥329॥

जब वे(राजपुत्र) कभी अर्धरात्रि के समय बोधि(ज्ञान) प्राप्ति हेतु मुझ पर आरूढ़ होकर अपने घर से निकले तो उन्होनें अपने मृदुल एवं ताम्रवर्णसम नखों से युक्त हाथों से॥330॥

मेरी जाँघों को थपथपाया और मुझको यह आदेश दिया— 'सम्यक् गति से चलो; क्योंकि मैं उत्तम सम्बोधि प्राप्त कर प्राणियों को भवसागर से पार कराऊँगा॥331॥

उनकी यह वाणी सुनकर मुझे अतिशय हर्ष हुआ। मैंने प्रसन्नमन से उन पुरुषोत्तम को अपनी पीठ पर बैठाया॥332॥

उन महायशस्वी एवं पुरुषोत्तम शाक्यपुत्र को अपनी पीठ पर बैठा कर मैं उत्साह व प्रसन्नतापूर्वक आगे बढ़ा॥333॥

''परेसं विजितं गन्त्वा, उग्गतस्मिं दिवाकरे।
ममं छन्नञ्च ओहाय, अनपेक्खो सो अपक्कमि॥334॥
'तस्स तम्बनखे पादे, जिव्हाय परिलेहिसं।
गच्छन्तञ्च महावीरं, रुदमानो उदिक्खिसं॥335॥
''अदस्सनेनहं तस्स, सक्यपुत्तस्स सिरीमतो।
अलत्थं गरुकाबाधं, खिप्पं मे मरणं अहु॥336॥
''तस्सेव आनुभावेन, विमानं आवसामिदं।
सब्बकामगुणोपेतं , दिब्बं देवपुरम्हि च॥337॥
''यञ्च मे अहुवा हासो, सद्दं सुत्वान बोधिया।
तेनेव कुसलमूलेन, फुसिस्सं आसवक्खयं॥338॥
''सचे हि भन्ते गच्छेय्यासि, सत्थु बुद्धस्स सन्तिके।
ममापि नं वचनेन, सिरसा वज्जासि वन्दनं॥339॥

संस्कृतच्छाया- ''परेषां विजितं गत्वा, उद्गते दिवाकरे।
मां छन्नं च विहाय, अनपेक्षः स अपाक्रमत्॥334॥
''तस्य ताम्रनखे पादे, जिह्वया पर्यलेहिषम्।
गच्छन्तं च महावीरम्, रुदन् उदैक्षिषम्॥335॥
''अदर्शनेनाहं तस्य, शाक्यपुत्रस्य श्रीमतः।
अनर्थं गुरुबाधं, क्षिप्रं मे मरणम् अभूत्॥336॥
''तस्यैव अनुभावेन, विमानम् आवसम् इदम्।
सर्वकामगुणोपेतम् , दिव्यं देवपुरे च॥337॥
''यश्च मे अभूद् वा हासः, शब्दं श्रुत्वा बोधिनः।
तेनैव कुशलमूलेन, अस्फुरम् आस्रवक्षयम्॥338॥
''स चेत् हि भदन्त गमिष्यसि, शास्तुः बुद्धस्य अन्तिके।
ममापि तं वचनेन, शिरसा वक्ता असि वन्दनम्॥339॥

हिन्दी- सूर्योदय के समय दूसरे राज्य में पहुँचकर वे राजपुत्र, मुझको तथा अपने अनुचर छन्न को छोड़ अनपेक्ष भाव से आगे बढ़ गए॥334॥

मैंने उनके ताम्रनख वाले(लाल) चरणों को चाटा। तथा उन महावीर को जाते हुए देख कर मैं रोने लगा॥335॥

जब मैनें उन श्रीमान् शाक्यपुत्र को दृष्टि से ओझल होते देखा तो मुझे अत्यन्त पीड़ा हुई। तथा अन्त में उस पीड़ा के कारण वहीं मेरी मृत्यु हो गई॥336॥

उसी पुण्य के प्राव से मुझे सर्वविध कामभोगों की प्राप्ति हेतु उपयुक्त यह दिव्य विमान तथा दिव्य देवावास मिला है॥337॥

उस समय मेरे द्वारा किए गए हर्षमिश्रित(शब्द)हिनहिनाहट का यह परिणाम हुआ कि मेरे पूर्वजन्मों के सभी आश्रव(चित्तमल) विनष्ट हो गये॥338॥

भन्ते! यदि आप शास्ता बुद्ध के सम्मुख जावें तो मेरी ओर से भी उनके श्रीचरणों में वन्दना कीजियेगा॥339॥

''अहम्पि दट्ठुं गच्छिस्सं, जिनं अप्पटिपुग्गलं।
दुल्लभं दस्सनं होति, लोकनाथान तादिनं'' ति॥340॥
सो कतञ्ञू कतवेदी, सत्थारं उपसङ्कमि।
सुत्वा गिरं चक्खुमतो, धम्मचक्खुं विसोधयि॥341॥
विसोधेत्वा दिट्ठिगतं, विचिकिच्छं वतानि च।
वन्दित्वा सत्थुनो पादे, तत्थेवन्तरधायथाति॥342॥

कण्डकविमानं सत्तमं।

8. अनेकवण्णविमानवत्थु

''अनेकवण्णं दरसोकनासनं, विमानमारुय्ह अनेकचित्तं।
परिवारितो अच्छरासङ्गणेन, सुनिम्मितो भूतपतीव मोदसि॥343॥
''समस्समो नत्थि कुतो पनुत्तरो, यसेन पुञ्ञेन च इद्धिया च।
सब्बे च देवा तिदसगणा समेच्च, तं तं नमस्सन्ति ससिंव देवा।
इमा च ते अच्छरायो समन्ततो, नच्चन्ति गायन्ति पमोदयन्ति॥344॥

संस्कृतच्छाया- ''अहमपि द्रष्टुं गमिष्यामि, जिनम् अप्रतिपुद्गलम्।
दुर्लभं दर्शनं भवति, लोकनाथानां तायिनाम्'' इति॥340॥
सः कृतज्ञः कृतवेदी, शास्तारम् उपसमक्रमीत्।
श्रुत्वा गिरं चक्षुष्मतः, धर्मचक्षुः व्यशोधयत्॥341॥
विशोध्य दृष्टिगताम्, विचिकित्सां व्रतानि च।
वन्दित्वा शास्तुः पादौ, तत्रैवन्तरधीयेम इति॥342॥
''अनेकवर्णं दरशोकनाशनम्, विमानमारुह्य अनेकचित्रम्।
परिवारित अप्सरसङ्गणेन, सुनिर्मितः भूतपतिरिव मोदते॥343॥
''समः समः नास्ति कुतः पुनरुत्तरः, यशसा पुण्येन च ऋद्ध्या च।
सर्वे च देवाः त्रिदशगणाः समेत्य, तम् त्वां नंस्यन्ति शशिनम् इव देवाः।
इमाश्च ता अप्सरसः समन्ततः, नृत्यन्ति गायन्ति प्रमोदयन्ति॥344॥

हिन्दी- मैं भी कभी, उन अप्रतिम ज्ञानी के दर्शन करने हेतु जाऊँगा; क्योंकि ऐसे ज्ञानिजनों के दर्शन दुर्लभ ही होते हैं॥340॥

वह कृतज्ञ एवं उपकार का स्मरण करने वाला कन्थक उन ज्ञानी शास्ता के दर्शन हेतु गया। तथा वहाँ उन ज्ञानी के श्रीमुख से निःसृत पवित्र धर्मोपदेश सुनकर उसने अपने चित्त को परिशुद्ध किया॥341॥

इस प्रकार, उसनें(कन्थक) स्वचित्त का परिशोधन कर मत-मतान्तरजनित संशयों का निवारण कर तथा व्रतपालनपूर्वक शास्ता के श्रीचरणों की वन्दना करता हुआ वहाँ अन्तर्हित(अदृश्य) हो गया॥342॥

विविध प्रकार के चित्रों से चित्रित, भय-शोकनाशक तथा अप्सरासमूह से घिरे हुए इस विमान में बैठे हुए आप भूपति के समान शोभित हो रहे हैं॥343॥

यश, पुण्य एवं ऋद्धि की दृष्टि से आपके इस विमान के समान अन्य कोई विमान नहीं है, समस्त देवता भी आपको उसी प्रकार प्रणाम करते हैं जैसे वे चन्द्रमा को प्रणाम करते हैं। ये अप्सराएँ भी आपके चारों ओर नृत्यगान करती हुई हर्ष मनाती हैं॥344॥

''देविद्धिपत्तोसि महानुभावो, मनुस्सभूतो किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावो, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥345॥
सो देवपुत्तो अत्तमनो...पे.... यस्स कम्मस्सिदं फलं॥346॥
''अहं भदन्ते अहुवासि पुब्बे, सुमेधनामस्स जिनस्स सावको।
पुथुज्जनो अननुबोधोहमस्मि, सो सत्त वस्सानि परिब्बजिस्सहं॥347॥
''सोहं सुमेधस्स जिनस्स सत्थुनो, परिनिब्बुतस्सोघतिण्णस्स तादिनो।
रतनुच्चयं हेमजालेन छन्नं, वन्दित्वा थूपस्मिं मनं पसादयिं॥348॥
''न मासि दानं न च मत्थि दातुं, परे च खो तत्थ समादपेसिं।
पूजेथ नं पूजनीयस्स धातुं, एवं किर सग्गमितो गमिस्सथ॥349॥
''तदेव कम्मं कुसलं कतं मया, सुखञ्च दिब्बं अनुभोमि अत्तना।
मोदामहं तिदसगणस्स मज्झे, न तस्स पुञ्ञस्स खयम्पि अज्झगं'' ति॥350॥

अनेकवण्णविमानं अट्ठमं।

संस्कृतच्छाया- ''देवर्द्धिप्राप्तोऽसि महानुभावः, मनुष्यभूतः किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावः, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥345॥
सः देवपुत्र आत्तमनः...पे.... यस्य कर्मण इदं फलम्॥346॥
''अहं भदन्त आह्वयामि पूर्वे, सुमेधनाम्नः जिनस्य श्रावकः।
पृथग्जनः अननुबोधोऽहमस्मि, सः सप्त वर्षाणि पर्यवर्जयम् अहम्॥347॥
''सोऽहं सुमेधस्य जिनस्य शास्तुः, परिनिर्वृतस्यौघतीर्णस्य तायिनः।
रत्नोच्चयं हेमजालेन छन्नम्, वन्दित्वा स्तूपे मनः प्रासादयम्॥348॥
''न मासि दानं न च मे अस्ति दातुम्, परान् च खलु तत्र समासादयम्।
पूजयथ तं पूजनीयस्य धातुम्, एवं किल स्वर्गम् इतः गमिष्यथ॥349॥
''तदैव कर्म कुशलं कृतं मया, सुखं च दिव्यम् अनुभवामि आत्मना।
मोदेऽहं त्रिदशगणस्य मध्ये, न तस्य पुण्यस्य क्षयमपि अध्यगमम्'' इति॥350॥

हिन्दी- पूर्ववत.....गा० सं० 306....॥345॥

पूर्ववत.....गा० सं० 4 स्त्रीविमान....॥346॥

भन्ते! मैं कभी पूर्वकाल में सुमेध नामक बुद्ध का श्रावक बना। उस समय मैं एक अज्ञ साधारण व्यक्ति था। उनने सात वर्ष की अवस्था में मुझको प्रव्रजित किया॥347॥

वह मैं शास्ता सुमेध बुद्ध का शिष्य, उन ज्ञानी, संसार सागर से उत्तीर्ण तायिन् के परिनिर्वृत्योपरान्त उनके मणिरत्न एवं सुवर्णजालावृत स्तूप पर वन्दना कर उसमें अपना मन लगाया॥348॥

उस समय मैंने कोई दान नहीं किया; न तो दान करने को मेरे पास कोई वस्तु ही थी। अतः मैं उस समय दूसरे श्रद्धालुओं को स्तूप की पूजा हेतु प्रेरित करता रहता था और बताता था कि एक मात्र यही स्वर्ग ले जाने का मार्ग है॥349॥

इस प्रकार मैंने यही एक कुशल कर्म किया था, जिसके परिणामस्वरूप मैं इस देवसमूह के बीच यह दिव्य सुख भोग रहा हूँ। इस पुण्य का क्षय भी नहीं होगा॥350॥

9. मट्ठकुण्डलीविमानवत्थु

''अलङ्कतो मट्ठकुण्डली, मालधारी हरिचन्दनुस्सदो।
बाहा पग्गय्ह कन्दसि, वनमज्झे किं दुक्खितो तुवं'' ति॥351॥
''सोवण्णमयो पभस्सरो, उप्पन्नो रथपञ्जरो मम।
तस्स चक्कयुगं न विन्दामि, तेन दुक्खेन जहामि जीवितं'' ति॥352॥
''सोवण्णमयं मणिमयं, लोहितकमयं अथ रूपियमयं।
आचिक्ख मे भद्दमाणव, चक्कयुगं पटिपादयामि ते'' ति॥353॥
सो माणवो तस्स पावदि, ''चन्दिमसूरिया उभयेत्थ दिस्सरे।
सोवण्णमयो रथो मम, तेन चक्कयुगेन सोभती'' ति॥354॥
''बालो खो त्वं असि माणव, यो त्वं पत्थयसे अपत्थियं।
मञ्ञामि तुवं मरिस्ससि, न हि त्वं लच्छसि चन्दिमसूरिये'' ति॥355॥
''गमनागमनम्पि दिस्सति, वण्णधातु उभयत्थ वीथिया।
पेतो कालकतो न दिस्सति, को निध कन्दतं बाल्यतरो'' ति॥356॥

संस्कृतच्छाया- ''अलङ्कृतः मृष्टकुण्डलिन्, मालाधारी हरिचन्दनोत्सदः।
बाहू प्रगृह्य क्रन्दसि, वनमध्ये किं दुःखितस्त्वम्'' इति॥351॥
''सौवर्णमयः प्रभास्वरः, उत्पन्नः रथपञ्जरः मम।
तस्य चक्रयुगं न विन्दामि, तेन दुःखेन जहामि जीवितम्'' इति॥352॥
''सौवर्णमयं मणिमयम्, अथ रूप्यमयम्।
आचक्ष्व मे भद्रमाणव, चक्रयुगं प्रतिपादयामि ते ''इति॥353॥
सः माणवकस्तस्य अवादीत्, ''चन्द्रसूर्ययोः उभयत्र दृश्यते।
सौवर्णमयः रथः मम, तेन चक्रयुगेन शोभते'' इति॥354॥
''बालः खलु त्वम् असि माणव, यस्त्वं पथ्यसे अपथ्यम्।
मन्ये त्वं मरिष्यसि, न हि त्वं लक्षयसि चन्द्रसूर्यौ'' इति॥355॥
''गमनागमनमपि दृश्यते, वर्णधात्वोः उभयोः वीथ्या।
प्रेतः कालकृतो न दृश्यते, कः नु इह क्रन्दन् बाल्यतरः'' इति॥356॥

हिन्दी- हे मृष्टकुण्डलिन्! सर्वथा अलंकृत, मालाधारी हो, समस्त शरीर पर हरिचन्दन का लेप लगाए आप इस बीच वन में अकेले दोनों बाहें पकड़ कर क्यों रो रहे हैं? आपको ऐसा कौन सा दुःख है?॥351॥

मुझको यह सुवर्णमय, समस्त दिशाओं से प्रभासित एक रथ मिला है; परन्तु इसके दोनों चक्र(पहिये) नहीं है, उसी दुःख के कारण मैं रो रहा हूँ और अपने जीवन का अन्त करना चाहता हूँ॥352॥

हे भद्र माणवक! जैसा तुम कहो– सोने, चाँदी, मणिरत्नों, मूँगे, या अन्य किसी धातु या रत्न का चक्रयुग(पहियों का जोड़ा) बनवा दूँ॥353॥

उस माणवक ने उनसे कहा कि मुझको अपने रथ के लिए ऐसा चक्र चाहिए जो चन्द्रमा एवं सूर्य समान दिखें। उन्ही चक्रयुगों से ही इस रथ की शोभा बढ़ेगी॥354॥

हे माणवक! तुम अवश्य ही मूर्ख हो; क्योंकि तुम अप्राप्य को पाने की इच्छा कर रहे हो। मुझको लगता है तुम्हारी मृत्यु निकट है। तुम चन्द्र एवं सूर्य के समान रथचक्र नहीं पा सकते॥355॥

''सच्चं खो वदेसि माणव, अहमेव कन्दतं बाल्यतरो।
चन्दं विय दारको रुदं, पेतं कालकताभिपत्थयिं'' ति॥357॥
''आदित्तं वत मं सन्तं, घतसित्तंव पावकं।
वारिना विय ओसिञ्चं, सब्बं निब्बापये दरं॥358॥
''अब्बही वत मे सल्लं, सोकं हृदयनिस्सितं।
यो मे सोकपरेतस्स, पुत्तसोकं अपानुदि॥359॥
''स्वाहं अब्बूळ्हसल्लोस्मि, सीतिभूतोस्मि निब्बुतो।
न सोचामि न रोदामि, वत सुत्वान माणवाति॥360॥
''देवता नुसि गन्धब्बो, अदु सक्को पुरिन्ददो।
को वा त्वं कस्स वा पुत्तो, कथं जानेमु तं मयं'' ति॥361॥

संस्कृतच्छाया- ''सत्यं खलु वदसि माणव, अहमेव क्रन्दन् बाल्यतरः।
चन्द्रमिव दारकः रुदन्, प्रेतं कालकृतम् अभिप्रार्थये'' इति॥357॥
''आदीप्तं वत माम् सन्तम्, घृतसिक्तं इव पावकम्।
वारिणा इव अवसिञ्चन्, सर्वं निरवापयः दरम्॥358॥
''आबृही वत मे शल्यम्, शोकं हृदयनिस्सृतम्।
यः मे शोकपरीतस्य, पुत्रशोकम् अपानुदः॥359॥
''सोऽहम् अव्यूढशल्योऽस्मि, शीतीभूतोऽस्मि निर्वृतः।
न शोचामि न रोदिमि, बत श्रुत्वा माणव इति॥360॥
''देवता नु असि गन्धर्वः, अथ शक्रः पुरन्दरः।
कः वा त्वं कस्य वा पुत्रः, कथं जानामि त्वां वयम्'' इति॥361॥

हिन्दी- मुझको दोनो मार्गों— चन्द्र एवं सूर्य के गमन आगमन का ज्ञान है एवं उन दोनों के रूप रंग का भी ज्ञान है; परन्तु तुम तो उस मृत प्रेत के लिये, जो नहीं दिखता, उसके लिये करुण क्रन्दन कर रहे हो! क्यों यहाँ बाल्यतर क्रन्दन(रुदन्) कर रहे हो?॥356॥

माणवक! तुम उचित ही कह रहे हो! मैं उस मृत के लिये मूर्खतापूर्ण क्रन्दन कर रहा हूँ, उसी प्रकार जैसे कोई बालक चन्द्रमा को पाने के लिए क्रन्दन करता है॥357॥

मैं पुत्रशोक रूपी वह्नि मे वैसे ही जल रहा था, जैसे घी पड़ी हुई अग्नि दहकती रहती है। आपने मेरी इस शोकवह्नि पर शीतल वचनरूपी जल डाल कर मेरे समस्त भय का निवारण कर दिया!॥358॥

आपने मेरे हृदय में चुभे हुए शोकरूपी शल्य(काँटे) को निकाल कर बाहर कर दिया तथा मुझ शोकमग्न को पुत्रशोक से मुक्त कर दिया॥359॥

अब मेरे हृदय में चुभा हुआ काँटा निकल चुका है, अतः मेरा चित्त शान्त है, मैं विगतशोक हो चुका हूँ। आपकी बात मानकर अब मैं न शोक करता हूँ न रोता हूँ॥360॥

आप कौन हैं? किसके पुत्र हैं? कोई देवता, गन्धर्व या साक्षात् देवराज इन्द्र? आप किसके पुत्र हैं? आप को हम कैसे जानें?॥361॥

''यञ्च कन्दसि यञ्च रोदसि, पुत्तं आळाहने सयं दहित्वा।
स्वाहं कुसलं करित्वा कम्मं, तिदसानं सहब्यतं गतो''ति ॥362॥
''अप्पं वा बहुं वा नाद्दसाम, दानं ददन्तस्स सके अगारे।
उपोसथकम्मं वा तादिसं, केन कम्मेन गतोसि देवलोकं'' ति॥363॥
''आबाधिकोहं दुक्खितो गिलानो, आतुररूपोम्हि सके निवेसने।
बुद्धं विगतरजं वितिण्णकङ्खं, अद्दक्खिं सुगतं अनोमपञ्ञं॥364॥
''स्वाहं मुदितमनो पसन्नचित्तो, अञ्जलिं अकरिं तथागतस्स।
ताहं कुसलं करित्वान कम्मं, तिदसानं सहब्यतं गतो'' ति॥365॥
''अच्छरियं वत अब्भुतं वत, अञ्जलिकम्मस्स अयमीदिसो विपाको।
अहम्पि मुदितमनो पसन्नचित्तो, अज्जेव बुद्धं सरणं वजामी'' ति॥366॥
''अज्जेव बुद्धं सरणं वजाहि, धम्मञ्च सङ्घञ्च पसन्नचित्तो।
तथेव सिक्खाय पदानि पञ्च, अखण्डफुल्लानि समादियस्सु॥367॥

संस्कृतच्छाया-
''यं च क्रन्दसि यं च रोदिसि, पुत्रम् आदाहने स्वयं दग्ध्वा।
सोऽहं कुशलं कृत्वा कर्म, त्रिदशानां सहव्यतां गतः'' इति॥362॥
''अल्पं वा बहु वा न अदर्शम्, दानं ददतः स्वके आगारे।
उपोसथकर्म वा तादृशम्, केन कर्मणा गतोऽसि देवलोकम्'' इति॥363॥
''आबाधितोऽहं दुःखितः ग्लानः, आतुररूपोऽस्मि स्वके निवेशने।
बुद्धं विगतरजसं विदीर्णकाङ्क्षम्, अदर्शं सुगतम् अनवमप्रज्ञाम्॥364॥
''सोऽहं मुदितमनाः प्रसन्नचित्तः, अञ्जलिम् अकरवम् तथागतस्य।
तदहं कुशलं कृत्वा कर्म, त्रिदशानां सह वस्तुं गतः'' इति॥365॥
''आश्चर्यं वत अद्भुतं वत, अञ्जलिकर्मणोऽयमीदृशो विपाकः।
अहमपि मुदितमनाः प्रसन्नचित्तः, अद्यैव बुद्धं शरणं व्रजामि'' इति॥366॥
''अद्यैव बुद्धं शरणं व्रज, धर्मं च सङ्घं च प्रसन्नचित्तः।
तथैव शिक्षायाः पदानि पञ्च, अखण्डफुल्लानि **समासादय**॥367॥

हिन्दी- आप जिसके लिये अभी दहाड़ें मारकर रो रहे थे, जिस पुत्र को स्वयं कुछ समय पूर्व श्मशान में जला कर आये थे। वही मैं (आपका पुत्र) अब कुशल कर्म करके देवताओं का साहचर्य प्राप्त कर चुका हूँ॥362॥

हमने, अपने घर में रहते हुए आपको किसी को थोड़ा या बहुत दान करते नहीं देखा, न वैसा उपोसथ कर्म करते ही देखा कि जिसके द्वारा आपको देवलोक की प्राप्ति हो सके?॥363॥

जब मैं अपने घर में रोग से पीड़ित होने के कारण अस्वस्थ दुःखी एवं बेचैन था; तब मैनें निर्दोष, वीततृष्ण एवं अनुपमप्रज्ञ भगवान् सुगत(बुद्ध) के दर्शन किये॥364॥

उस समय मैंने प्रसन्न एवं प्रमुदित चित्त से उन भगवान् बुद्ध को हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। वही कुशल कर्म करके मुझको यह देवताओं का साहचर्य मिल पाया है॥365॥

यह आश्चर्य और अद्भुत है कि हाथ जोड़ने मात्र का इतना महान फल किसी को प्राप्त हो जाय! तब तो मैं भी आज ही मुदित एवं प्रसन्नचित्त से भगवन् बुद्ध की शरण में जाता हूँ॥366॥

आप भी आज ही प्रसन्नचित्त से भगवान् बुद्ध के धर्म एवं सङ्घ की शरण ग्रहण करें। तथा उनके पाँच शिक्षावचनों का भी यथारूप पालन करें॥367॥

''पाणातिपाता विरमस्सु खिप्पं, लोके अदिन्नं परिवज्जयस्सु।
अमज्जपो मा च मुसा भणाहि, सकेन दारेन च होहि तुट्ठो'' ति॥368॥
''अत्थकामोसि मे यक्ख, हितकामोसि देवते।
करोमि तुय्हं वचनं, त्वंसि आचरियो ममाति॥369॥
''उपेमि सरणं बुद्धं, धम्मञ्चापि अनुत्तरं।
सङ्घञ्च नरदेवस्स, गच्छामि सरणं अहं॥370॥
''पाणातिपाता विरमामि खिप्पं, लोके अदिन्नं परिवज्जयामि।
अमज्जपो नो च मुसा भणामि, सकेन दारेन च होमि तुट्ठो'' ति॥371॥

मट्ठकुण्डलीविमानं नवमं।

10. सेरीसकविमानवत्थु

सुणोथ यक्खस्स च वाणिजान च, समागमो यत्थ तदा अहोसि।
यथा कथं इतरितरेन चापि, सुभासितं तञ्च सुणाथ सब्बे॥372॥

संस्कृतच्छाया- ''प्राणातिपाताद् विरम क्षिप्रम्, लोके अदत्तं परिवर्जय।
अमद्यपो मा च मृषा भण, स्वकीयैः दारैश्च भव तुष्टः'' इति॥368॥
''अर्थकामोऽसि मे यक्ष, हितकामोऽसि देवते।
करोमि तुभ्यं वचनम्, त्वमसि आचार्यः मम इति॥369॥
''उपैमि शरणं बुद्धम्, धर्मञ्चापि अनुत्तरम्।
सङ्घं च नरदेवस्य, गच्छामि शरणम् अहम्॥370॥
''प्राणातिपाताद् विरमामि क्षिप्रम्, लोके अदत्तं परिवर्जयामि।
अमद्यपः नो च मृषा भणामि, स्वकैः दारैः भवामि तुष्टः'' इति॥371॥
शृणु यक्षस्य च वणिजां च, समागमः यत्र तदा अभूत्।
यथा कथम् इतरेतरेण चापि, सुभाषितं तत् च शृणुत सर्वे॥372॥

हिन्दी- प्राणातिपात को शीघ्र ही त्यागें; लोक में किसी के द्वारा न दी हुई वस्तु न ग्रहण करें; मद्यपान एवं असत्यभाषण से सदा दूर रहें और तथा स्वपत्नी से ही सन्तुष्ट रहें॥368॥

हे देव! हे यक्ष! आप मेरे लिये सार्थक एवं हितकर वाणी ही कह रहे हैं। मैं आपके इन वचनों का पालन करूँगा। अब आप ही मेरे आचार्य हैं॥369॥

मैं भगवान् बुद्ध, उनके द्वारा उपदिष्ट अनुपम धर्म तथा उनके द्वारा स्थापित सङ्घ की शरण में जाता हूँ॥370॥

मैं शीघ्र ही प्राणातिपात से दूर होता हूँ, लोक में सब प्रकार की चोरी का भी त्याग करता हूँ, मद्यपान एवं असत्यभाषण से दूर होता हूँ और मैं अपनी धर्मपत्नी से ही सन्तुष्ट रहूँगा, ऐसा निश्चय करता हूँ॥371॥

अब यक्ष एवं व्यापारियों का संवाद सुनो; एवं उन सबका परस्पर हुआ सुभाषित वार्तालाप भी सुनो॥372॥

''यो सो अहु राजा पायासि नाम, भुम्मानं सहब्यगतो यसस्सी।
सो मोदमानोव सके विमाने, अमानुसो मानुसे अज्झभासीति॥373॥
''वङ्के अरञ्ञे अमनुस्सट्ठाने, कन्तारे अप्पोदके अप्पभक्खे।
सुदुग्गमे वण्णुपथस्स मज्झे, वङ्कं भया नट्ठमना मनुस्सा॥374॥
''नयिध फला मूलमया च सन्ति, उपादानं नत्थि कुतोध भक्खो।
अञ्ञत्र पंसूहि च वालुकाहि च, ततहि उण्हाहि च दारुणाहि च॥375॥
''उज्जङ्गलं तत्तमिवं कपालं, अनायसं परलोकेन तुल्यं।
लुद्दानमावासमिदं पुराणं, भूमिप्पदेसो अभिसत्तरूपो॥376॥
''अथ तुम्हे केन वण्णेन, किमासमाना इमं पदेसं हि।
अनुपविट्ठा सहसा समेच्च, लोभा भया अथ वा सम्पमूळ्हा'' ति॥377॥
''मगधेसु अङ्गेसु च सत्थवाहा, आरोपयित्वा पणियं पुथुत्तं।
ते यामसे सिन्धुसोवीरभूमिं, धनत्थिका उदयं पत्थयाना॥378॥

संस्कृतच्छाया-

''यः सोऽभूत् राजा पायासिनामा, भौम्यानां सह गतः यशस्वी।
सः मोदमान इव स्वके विमाने, अमानुषः मानुषैः अध्यभाषत इति॥373॥
''वक्रे अरण्ये अमनुष्यस्थाने, कान्तारे अल्पोदके अल्पभक्ष्ये।
सुदुर्गमे वर्णोत्पथस्य मध्ये, वक्रं भयाद् नष्टमनसः मनुष्याः॥374॥
''न इह फलानि मूलमयानि च सन्ति, उपादानं नास्ति कुत्र इह भक्ष्यः।
अन्यत्र पांशुभिश्च वालुकाभिश्च, तप्तभिरुष्णाभिश्च दारुणाभिश्च॥375॥
''उज्जङ्गलं तप्तमिव कपालम्, अनायसं परलोकेन तुल्यम्।
लुब्धानामावासोऽयं पुराणो, भूमिप्रदेशोऽभिशप्तरूपः॥376॥
''अथ यूयं केन वर्णेन, किम् आशासमानाः इमं प्रदेशं हि।
अनुप्रविष्टाः सहसा समेत्य, लोभाद् भयाद् अथ वा सम्प्रमूढाः'' इति॥377॥
''मगधेषु अङ्गेषु च सार्थवाहाः, आरोप्य पण्यं पृथु।
ते यामः सिन्धुसौवीरभूमिम्, धनार्थिन उदयं प्रार्थयन्तः॥378॥

हिन्दी- वह जो पहले कभी भौम(देवताओं) के साथ पायासि नामक यशस्वी राजा रहता था। वह प्रसन्नतापूर्वक अपनें विमान पर आज देवता के रूप में मनुष्यों के साथ भाषण कर रहा है॥373॥

इस बाँके, टेढ़े और दुर्गम तथा निर्जन वन की रेतीली(वण्णुपथ= जंगली) भूमि में, जहाँ अन्नपान मिलना भी दुर्लभ है, प्रायः सभी मनुष्य उसके टेढे-मेढ़े पन के कारण यहाँ आने से भय खाते हैं॥374॥

यहाँ इस रेतीले जंगल में न कोई फल ही उपलब्ध होता है और न कोई कन्दमूल ही। उनकी उत्पत्ति का ही यहाँ कोई हेतु नहीं है यहाँ तो केवल सूर्य की उष्णता से तप्त एवं कठोर रेतीले भू-प्रदेश ही हैं॥375॥

यह जांगल प्रदेश तो तपा हुआ ऐसा विशाल कपाल (खप्पर) है मानो लौह रहित नारकीय प्रदेश हो। यह भूमिप्रदेश तो डाकू-लुटेरों की शरणस्थली है तथा अभिशप्त भी है॥376॥

अब तुम किस लिए, किस आशा से तथा कहाँ से इस प्रदेश में आये हो? क्या तुम किसी लोभ, भय या रास्ता भटक कर यहाँ एकत्र हुए हो?॥377॥

मगध एवं अंग प्रदेश से बेचने योग्य वस्तुएँ खरीद कर उनको गाड़ियों पर लादकर, हम सभी व्यापारी अधिक लाभर्जन की कामना से, सिन्धु एवं सौवीर प्रदेश की ओर धनप्राप्ति हेतु जा रहे थे॥378॥

''दिवा पिपासं नधिवासयन्ता, योग्गानुकम्पञ्च समेक्खमाना,
एतेन वेगेन आयाम सब्बे, रत्तिं मग्गं पटिपन्ना विकाले॥379॥
''ते दुप्पयाता अपरद्धमग्गा, अन्धाकुला विप्पनट्ठा अरञ्ञे।
सुदुग्गमे वण्णुपथस्स मज्झे, दिसं न जानाम पमूळ्हचित्ता॥380॥
''इदञ्च दिस्वान अदिट्ठपुब्बं, विमानसेट्ठञ्च तवञ्च यक्ख।
ततुत्तरिं जीवितमासमाना, दिस्वा पतीता सुमना उदग्गा'' ति॥381॥
''पारं समुद्दस्स इमञ्च वण्णुं, वेत्ताचरं सङ्कुपथञ्च मग्गं।
नदियो पन पब्बतानञ्च दुग्गा, पुथुद्दिसा गच्छथ भोगहेतु॥382॥
''पक्खन्दियान विजितं परेसं, वेरज्जके मानुसे पेक्खमाना।
यं वो सुतं वा अथ वापि दिट्ठं, अच्छेरकं तं वो सुणोम ताता'' ति॥383॥
''इतोपि अच्छेरतरं कुमार, न तो सुतं वा अथ वापि दिट्ठं।
अतीतमानुस्सकमेव सब्बं, दिस्वान तप्पाम अनोमवण्णं॥384॥

संस्कृतच्छाया- ''दिवा पिपासां नाधिवासयन्तः, योग्यानुकम्पां च समीक्षमाणाः,
एतेन वेगेन आयाम सर्वे, रात्रिं मार्गं प्रतिपन्नाः विकाले॥379॥
''ते दुष्प्रयाता अपराद्धमार्गाः, अन्धाकुलाः विप्रनष्टा अरण्ये।
सुदुर्गमे वर्णूत्पथस्य/वन्यपथस्य मध्ये, दिशं न **जानीम**ः प्रमूढचित्ताः॥380॥
''इदं च दृष्ट्वा अदृष्टपूर्वम्, विमानश्रेष्ठं च त्वां च यक्ष।
तदुत्तरं जीवितम् आशासमानाः, दृष्ट्वा प्रतीताः सुमनस उदग्राः'' इति॥381॥
''पारं समुद्रस्य इमं च वर्णम्, वेत्राचारं शङ्कुपथं च मार्गम्।
नद्यः पुनः पर्वतानां च दुर्गाः, पृथग् दिशः गच्छथ भोगहेतोः॥382॥
''प्रस्कन्दयन् विजितं परेषाम्, विराज्यके मानुषे प्रेक्षमाणाः।
यत् वः श्रुतं वा अथ वापि दृष्टम्, आश्चर्यकं तत् वः श्रृणुम ताताः'' इति॥383॥
''इतोऽपि आश्चर्यतरं कुमार, न तत् श्रुतं वा अथवा अपि दृष्टम्।
अतीतमानुष्यकमेव सर्वम्, दृष्ट्वा तृप्याम अनवमवर्ण्यम्॥384॥

हिन्दी- मार्ग में हमको दिन में बहुत अधिक तृषा(प्यास) सताने लगी। तब हम किसी जलस्थान की खोज में, भटक कर यहाँ चले आये। इतने में, रात हो गई और हम अन्धकार में यहाँ आ गये॥379॥

वे हम अन्धकार के कारण मिथ्या मार्ग में भटक कर इस घनघोर जंगल में उलझ गए हैं। ऐसे रेतीले दुर्गम मार्ग के मध्य में हम मानो किंकर्तव्यविमूढ हो गये हैं॥380॥

हे यक्ष! हमें आप का यह पहले कभी न देखा श्रेष्ठ विमान देखकर अपने जीवन की कुछ आशा बँधी, हम आश्वस्त होकर प्रसन्न मन एवं उत्सुकता पूर्वक आपके पास आये हैं॥381॥

लाठियों के सहारे इस रेतीले समुद्र के आड़े-तिरछे मार्ग को पार कर आगे कुछ नदियों, पर्वतों एवं दुर्गों से आकीर्ण मार्ग को भी पार करने पर ही आप लोगों को खाने-पीने एवं व्यापार का स्थान प्राप्त हो पायगा॥382॥

इस बीच, आप लोगों को दूसरों के राज्यों को जीतते समय बहुत से मनुष्यों की ऐसी आश्चर्यजनक क्रियाएँ तथा बातें देखने, सुनने को मिलेंगी॥383॥

''वेहायसं पोक्खरञ्ञो सवन्ति, पहूतमल्या बहुपुण्डरीका।
दुमा चिमे निच्चफलूपपन्ना, अतीव गन्धा सुरभिं पवायन्ति॥385॥
''वेळूरियथम्भा सतमुस्सितासे, सिलापवाळस्स च आयतंसा।
मसारगल्ला सहलोहितङ्गा, थम्भा इमे जोतिरसामयासे॥386॥
''सहस्सथम्भं अतुलानुभावं, तेसूपरि साधुमिदं विमानं।
रतनन्तरं कञ्चनवेदिमिस्सं, तपनीयपट्टेहि च साधुछन्नं॥387॥
''जम्बोनदुत्तत्तमिदं सुमट्ठो, पासादसोपाणफलूपपन्नो।
दळ्हो च वग्गु च सुसङ्गतो च, अतीव निज्झानखमो मनुञ्ञो॥388॥
''रतनन्तरस्मिं बहुअन्नपानं, परिवारितो अच्छरासङ्गणेन।
मुरजआलम्बरतूरियघुट्ठो, अभिवन्दितोसि थुतिवन्दनाय॥389॥

संस्कृतच्छाया- ''वैहायसाः पुष्करिण्यः स्रवन्ति, प्रभूतमाल्याः बहुपुण्डरीकाः।
द्रुमाश्च इमे नित्यफलोपपन्नाः, अतीव गन्धान् सुरभीं प्रवान्ति॥385॥
वैदूर्यस्तम्भाः शतमुच्छ्रिताः, शिलाप्रवालस्य च अवतंसिताः।
मसारगल्वाः सहलोहिताङ्गाः, स्तम्भा इमे ज्योतिरसमाः॥386॥
''सहस्रस्तम्भं अतुलानुभावं, तेषामुपरि साधु इदं विमानम्।
रत्नान्तरं काञ्चनवेदिमिश्रम्, तपनीयपट्टैश्च साधु छन्नम्॥387॥
''जाम्बूनदोत्तप्तमिदं सुमृष्टं, प्रासादसोपानफलोपपन्नम्।
दृढं वल्गु च सुसङ्गतं च, अतीव निध्यानक्षमं मनोज्ञम्॥388॥
''रत्नान्तरे बहु अन्नपानम्, परिवारितः अप्सरासङ्गणेन।
मुरजाडम्बरतुर्यघुष्टः, अभिवन्दितः असि स्तुतिवन्दनाय॥389॥

हिन्दी- कुमार! आपके इस विमान जैसा आश्चर्यजनक अन्य कोई वस्तु है— ऐसा हमने न तो सुना है न देखा है। इसमें सभी कुछ लोकातीत हैं। इसके अनुपम सौन्दर्य को देख कर हम तृप्त हो गये!॥384॥

इसमें आकाशीय पुष्करिणियाँ बह रही हैं। यह विविध प्रकार के मालाओं एवं पुण्डरीकों से भरा हुआ है। इसमें सभी वृक्ष सदा फल देने वाले होते हैं। इसमें सदा अत्यन्त शीतल, मन्द सुगन्धित वायु बहती रहती है॥385॥

इसमें सैकड़ों वैदूर्यमणिजटित स्तम्भ खड़े हैं, उन पर मैनसिल एवं प्रवाल का लेप चढ़ा हुआ है। इनमें विविध स्थानों पर अनेक पाषाणरत्न (मसारगल्ल) तथा मनः—कामनापूरक रत्न भी जुड़े हुए हैं॥386॥

अतुल्य प्रताप वाले हजारों स्तम्भों पर आपका यह विमान भलीभाँति टिका हुआ है। इस में अनेक भिन्न माप वाले प्रकोष्ठ बने हुए हैं, जिनकी वेदियाँ सुवर्ण निर्मित हैं तथा उस पर चमकीले पट्ट(शयनासन) विधिवत् बिछे हुए हैं॥387॥

इस समस्त विमान पर उत्तप्त (पिघले हुए) सोने का लेप चढ़ा हुआ है। प्रासाद की सीढियाँ (सोपान) भी बहुमूल्य प्रस्तरखण्डों से निर्मित हैं। ये सुदृढ़, सुन्दर तथा मन को प्रभावित करने वाली हैं॥388॥

इस विमान में अन्न एवं पान का अतिशय भंडार है। इस विमान पर अप्सराओं का विशाल समूह एकत्र है। जो आपकी स्तुति-वन्दना हेतु मुरज(झांझ),आडम्बर(ढोल) आदि वाद्ययन्त्रों का सहारा ले रहा है॥389॥

''सो मोदसि नारिगणप्पबोधनो, विमानपासादवरे मनोरमे।
अचिन्तियो सब्बगुणूपपन्नो, राजा यथा वेस्सवणो नळिन्या॥390॥
''देवो नु आसि उदवासि यक्खो, उदाहु देविन्दो मनुस्सभूतो।
पुच्छन्ति तं वाणिजा सत्थवाहा, आचिक्ख को नाम तुवंसि यक्खो'' ति॥391॥
''सेरीसको नाम अहम्हि यक्खो, कन्तारियो वण्णुपथम्हि गुत्तो।
इमं पदेसं अभिपालयामि, वचनकरो वेस्सवणस्स रञ्ञो'' ति॥392॥
''अधिच्चलद्धं परिणामजं ते, सयं कतं उदाहु देवेहि दिन्नं।
पुच्छन्ति तं वाणिजा सत्थवाहा, कथं तया लद्धमिदं मनुञ्ञं'' ति॥393॥
''नाधिच्चलद्धं न परिणामजं मे, न सयं कतं न हि देवेहि दिन्नं।
सकेहि कम्मेहि अपापकेहि, पुञ्ञेहि मया लद्धमिदं मनुञ्ञं'' ति॥394॥
''किं ते वतं किं पन ब्रह्मचरियं, किस्स सुचिण्णस्स अयं विपाको।
पुच्छन्ति तं वाणिजा सत्थवाहा, कथं तया लद्धमिदं विमानं'' ति॥395॥

संस्कृतच्छाया-
''सः मोदसे नारिगणप्रबोधनः, विमाने प्रासादवरे मनोरमे।
अचिन्त्यः सर्वगुणोपपन्नः, राजा यथा वैश्रवणः नलिन्याः॥390॥
''देवः नु आसीः **उत वा आसीः** यक्षः, उताहो देवेन्द्रः मनुष्यभूतः।
पृच्छन्ति त्वां वणिजः सार्थवाहाः, आचक्ष्व को नाम त्वमसि यक्ष'' इति॥391॥
शिरीषको नाम अहमस्मि यक्षः, कान्तार्यः वर्णूत्पथस्य गोप्ता।
इमं प्रदेशम् अभिपालयामि, वचनकरः वैश्रवणस्य राज्ञः'' इति॥392॥
''अधीत्य लब्धं परिणामजं ते, स्वयं कृतम् उताहो देवैः दत्तम्।
पृच्छन्ति त्वां वणिजः सार्थवाहाः, कथं त्वया लब्धमिदं मनोज्ञम्'' इति॥393॥
''नाधीत्य लब्धं न परिणामजं मे, न स्वयं कृतं न हि देवैः दत्तम्।
स्वकैः कर्मभिः अपापकैः, पुण्यैः मे लब्धमिदं मनोज्ञम्'' इति॥394॥
''किं ते व्रतं किं पुनः ब्रह्मचर्यम्, कस्य सुचीर्णस्य अयं विपाकः।
पृच्छन्ति त्वां वणिजः सार्थवाहाः, कथं त्वया लब्धमिदं विमानम्'' इति॥395॥

हिन्दी- इस नारिसमूह द्वारा जगाये जाते हुए आप उसी तरह प्रतीत होते हैं कि मानो नलिनी नगरी का सर्वगुणयुक्त राजा वैश्रवण हो॥390॥

आप देव हैं, या कोई यक्ष? या यहाँ मनुष्यरूप में साक्षात् देवेन्द्र ही हैं? हे यक्ष! हम सभी व्यापारी आपसे यही पूछते हैं कि आपका क्या नाम है? हमें स्पष्ट करें-॥391॥

मैं शिरीषक नामक यक्ष हूँ। इस रेतीले जंगलप्रदेश का रक्षक हूँ। मैं अपने राजा वैश्रवण के आदेश से इस समस्त जंगल की रक्षा कर रहा हूँ॥392॥

यह विमान आपको अकारण ही मिला है? या इसकी प्राप्ति में कोई विशेष कारण है? या इस का निर्माण आपने स्वयं कराया है? या देवताओं द्वारा आपको दिया गया है? हम व्यापारीगण आपसे यही जानना चाहते हैं कि आपको यह मनोमय विमान कैसे प्राप्त हुआ? ॥393॥

यह मुझको न तो अकारण ही मिला है, न यह किसी परिणाम का ही फल है, न मैंने स्वयं बनाया है और न ही मुझको देवताओं ने दिया है। यह विमान मेरे पापरहित और पुण्यमय कुशल कर्मों का फल है कि मुझको ये मनोमय विमान मिला है॥394॥

''ममं पायासीति अहु समञ्ञा, रज्जं यदा कारयिं कोसलानं।
नत्थिकदिट्ठि कदरियो पापधम्मो, उच्छेदवादी च तदा अहोसिं॥396॥
''समणो च खो आसि कुमारकस्सपो, बहुस्सुतो चित्तकथी उळारो।
सो मे तदा धम्मकथं अभासि, दिट्ठिविसूकानि विनोदयी मे॥397॥
''ताहं तस्स धम्मकथं सुणित्वा, उपासकत्तं पटिवेदयिस्सं।
पाणातिपाता विरतो अहोसिं, लोके अदिन्नं परिवज्जयिस्सं।
अमज्जपो नो च मुसा अभाणिं, सकेन दारेन च अहोसि तुट्ठो॥398॥
''तं मे वतं तं पन ब्रह्मचरियं, तस्स सुचिण्णस्स अयं विपाको।
तेहेव कम्मेहि अपापकेहि, पुञ्ञेहि मे लद्धमिदं विमानं'' ति॥399॥
''सच्चं किराहंसु नरा सपञ्ञा, अनञ्ञथा वचनं पण्डितानं।
यहिं यहिं गच्छति पुञ्ञकम्मो, तहिं तहिं मोदति कामकामी॥400॥

संस्कृतच्छाया- ''मम पायासि इत्यभूत् संज्ञा, राज्यं यदा अकार्षं कौशलानाम्।
नास्तिकदृष्टिः कदर्यः पापधर्मः, उच्छेदवादी च तदा अभूवम्॥396॥
श्रमणश्च खलु आसीत् कुमारकश्यपः, बहुश्रुतः चित्रकथः उदारः।
सः मे तदा धर्मकथाम् अभाषत, दृष्टिविकारान् व्यनोदयत् मे॥397॥
''तस्माद् अहं तस्य धर्मकथां श्रुत्वा, उपासकत्वं प्रत्यवेदयम्।
प्राणातिपाताद् विरतः अभूवम्, लोके अदत्तं पर्यवर्जयम्।
अमद्यपः नो च मृषा अभणम्, स्वकैः दारैः अभूवं तुष्टः॥398॥
''तद् मे व्रतं तत् पुनः ब्रह्मचर्यम्, तस्य सुचीर्णस्य अयं विपाकः।
तैः एव कर्मभिः अपापकैः, पुण्यैः मया लब्धमिदं विमानम्'' इति॥399॥
''सत्यं किल आहुः नराः सप्रज्ञाः, अनन्यथा वचनं पण्डितानाम्।
यत्र यत्र गच्छति पुण्यकर्मा, तत्र तत्र मोदते कामकामी॥400॥

हिन्दी- आपने किस व्रत तथा किस ब्रह्मचर्या का पालन किया? किस सुकृत का यह फल है? हम सभी व्यापारी आपसे इतना ही जानना चाहते हैं कि आपनें इस विमान प्राप्ति कैसे की? ॥395॥

मेरा नाम पायासि था। जब मैं कौसल प्रदेश में राज्य करता था। उस समय नास्तिक दृष्टि, कंजूस पापधर्मी तथा मैं उस समय उच्छेदवादी(पुनर्जन्म मे अविश्वासी) था॥396॥

उस समय बहुश्रुत, उदारविचार एवं श्रेष्ठ वक्ता तथा धर्मकथावाचक श्रमण कुमार काश्यप ने, जिन्होंने कि मुझको धर्मोपदेश किया। इस धर्मोपदेश से मेरे सभी पापमय विचार नष्ट हो गये॥397॥

उनसे वह धर्मकथा सुनकर मैंने उनका उपासकत्व(शिष्यत्व) स्वीकार कर लिया। तब से मैं प्राणातिपात, चोरी आदि दुष्कर्मों से विरत रहने लगा। मैंने मद्यपान तथा असत्यभाषण भीत्याग दिया। मैं अपनी धर्मपत्नी से ही सन्तुष्ट रहने लगा॥398॥

यही मेरा व्रत व यही मेरी ब्रह्मचर्या थी, उसी शुचिता का यह विपाक(फल)है। उन्हीं पुण्य कर्मों के प्रभावस्वरूप मैंने यह विमान पाया है॥399॥

बुद्धिमान् पण्डितजनों नें यह सत्य ही कहा है कि पुण्य कर्म करने वाले जहाँ भी जाते हैं वहाँ यथेच्छ कामभोगों के साथ आनन्दपूर्वक निवास करते हैं॥400॥

''यहिं यहिं सोकपरिद्दवो च, वधो च बन्धो च परिक्किलेसो।
तहिं तहिं गच्छति पापकम्मो, न मुच्चति दुग्गतिया कदाची'' ति॥401॥
''सम्मूळ्हरूपोव जनो अहोसि, अस्मिं मुहुत्ते कललीकतोव।
जनस्सिमस्स तुय्हञ्च कुमार, अप्पच्चयो केन नु खो अहोसी'' ति॥402॥
''इमे च सिरीसवना ताता, दिब्बा गन्धा सुरभी सम्पवन्ति।
ते सम्पवायन्ति इमं विमानं, दिवा च रत्तो च तमं निहन्त्वा॥403॥
''इमेसञ्च खो वस्ससतच्चयेन, सिपाटिका फलति एकमेका।
मानुस्सकं वस्ससतं अतीतं, यदग्गे कायम्हि इधूपपन्नो॥404॥
''दिस्वानहं वस्ससतानि पञ्च, अस्मिं विमाने ठत्वान ताता।
आयुक्खया पुञ्ञक्खया चविस्सं, तेनेव सोकेन पमुच्छितोस्मी'' ति॥405॥

संस्कृतच्छाया- ''यत्र यत्र शोकपरिद्रवश्च, वधश्च बन्धश्च परिक्लेशः।
तत्र तत्र गच्छति पापकर्मा, न मुच्यते दुर्गतेः कदाचिद्'' इति॥401॥
''सम्मूढरूप इव जनोऽभवत्, अस्मिन् मुहूर्त्ते कललीकृत इव।
जनस्य अस्य ते च कुमार, अप्रत्ययः केन नु खलु अभूत्'' इति॥402॥
''इमे च शिरीषवनात् तात, दिव्याः गन्धाः सुरभिं सम्प्रवान्ति।
ते सम्प्रवान्ति इमं विमानम्, दिवा च रात्रौ च तमो निहत्य॥403॥
''एषां च खलु वर्षशतात्ययेन, स्त्रीपाटिका फलति एकैका।
मानुष्यकं वर्षशतं अतीतम्, यदग्रे काये इहोपपन्नः॥404॥
''दृष्ट्वाहं वर्षशतानि पञ्च, अस्मिन् विमाने स्थित्वा तात।
आयुःक्षयात् पुण्यक्षयात् च अच्योतिषम्, तेनैव शोकेन प्रमूर्च्छितोऽस्मि'' इति॥405॥

हिन्दी- जहाँ शोक, विलाप, वध, बन्धन एवं कलेश व्याप्त हों, पापी पुरुष वहाँ पहुँच ही जाते हैं। वे दुर्गतियों से कभी मुक्त नहीं हो पाते॥401॥

ऐसे समय में तो मनुष्य स्मृतिभ्रष्ट हो जाता है। आपका और हमारा मिलन अप्रत्यय(अकारण) कैसे हुआ?॥402॥

माननीय व्यापारिगण। इस शिरीषवन से निकली हुई दिव्य, शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु बह रही है। उस वायु से यह विमान सुगन्धित हो रहा है। इस विमान में दिन हो या रात कभी अन्धकार नहीं होता॥403॥

इन वृक्षों पर, सौ वर्षों के बाद एक बार सिपाटिका(छोटे फल) लगते हैं। मुझको मनुष्य शरीर त्याग कर यहाँ उत्पन्न हुए सौ वर्ष बीत चुके हैं॥404॥

यह सोच कर मेरे होश उड़ गए हैं कि जब मुझे इस विमान में रहते पाँच सौ वर्ष हो जायेंगे तब मेरे आयु एवं पुण्य क्षीण हो जाने पर मेरी देवलोक में रहने के लिये नियत आयु भी क्षीण हो जायगी॥405॥

''कथं नु सोचेय्य तथाविधो सो, लद्धा विमानं अतुलं चिराय।
ये चापि खो इत्तरमुपपन्ना, ते नून सोचेय्युं परित्तपुञ्ञा'' ति॥406॥
''अनुच्छविं ओवदियञ्च मे तं, यं मं तुम्हे पेय्यवाचं वदेथ।
तुम्हे च खो ताता मयानुगुत्ता, येनिच्छकं तेन पलेथ सोत्थिं'' ति॥407॥
''गन्त्वा मयं सिन्धुसोवीरभूमिं, धनत्थिका उद्दयं पत्थयाना।
यथापयोगा परिपुण्णचागा, काहाम सेरीसमहं उळारं'' ति॥408॥
''मा चेव सेरीसमहं अकत्थ, सब्बञ्च वो भविस्सति यं वदेथ।
पापानि कम्मानि विवज्जयाथ, धम्मानुयोगञ्च अधिट्ठहाथ॥409॥
''उपासको अत्थि इमम्हि सङ्घे, बहुस्सुतो सीलवतूपपन्नो।
सद्धो च चागी च सुपेसलो च, विचक्खणो सन्तुसितो मुतीमा॥410॥

संस्कृतच्छाया- ''कथं नु शोचेत् तथाविधः सः, लब्ध्वा विमानम् अतुलं चिराय।
ये चापि खलु इतरम् उपपन्नाः, ते नूनं शोचेयुः प्ररिक्तपुण्याः'' इति॥406॥
''अनुच्छविम् अवदत् च मां तत्, यत् मां यूयं प्रेयोवाचं वदथ।
यूयं च खलु ताताः मयानुगुप्ताः, येनेष्टं तेन पलायध्वं स्वस्ति'' इति॥407॥
''गत्वा वयं सिन्धुसौवीरभूमिम्, धनार्थिका उदयं प्रार्थयन्तः।
यथाप्रयोगाः परिपूर्णत्यागाः, कारयिष्यामः शिरीषमहम् उदारम्'' इति॥408॥
''मा चैव शिरीषमहम् कार्षुः, सर्वं च वः भविष्यति यद् वदथ।
पापानि कर्माणि विवर्जयत, धर्मानुयोगं च अधितिष्ठत॥409॥
''उपासकोऽस्ति अस्मिन् सङ्घे, बहुश्रुतः शीलव्रतोपपन्नः।
सश्रद्धश्च त्यागी च सुपेशलश्च, विचक्षणः सन्तुष्टः स्मृतिमान्॥410॥

हिन्दी- जो चिरकाल से इस सुखप्रद विमान में वास करता आ रहा है, उसे ऐसी चिन्ता क्यों नहीं होगी। उन को तो अवश्य ही अधिक चिन्ता होगी जो इससे भी कम सुखप्रद विमान में रह रहे हैं और जिनकी आयु क्षीण हो चुकी है॥406॥

आप लोग मेरे अनुकूल ही बात कह रहे हैं। अब मैं आपको जैसा प्रियवचन कहूँ तदनुसार इस जंगल से निकल जाओ, इसी में तुम लोगों का हित है। मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा॥407॥

हम यहाँ से अधिक धन की इच्छा से सिन्धु एवं सौवीर देश में जाकर यथेच्छ धन कमा कर त्यागपूर्वक एक उदार (विशाल) शिरीषस्तूप का निर्माण करायेंगे॥408॥

हम लोगों को शिरीषस्तूप बनाने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि इसके बिना भी आप लोगों की मनोकामना पूर्ण हो जायगी। आप लोग मेरी बात मान कर पापकर्मों का त्याग करते हुए धर्माराधना में मन प्रतिष्ठित करें॥409॥

इस भिक्षुसङ्घ के उपासक हैं तो बहुश्रुत, शीलव्रत से युक्त, रत्नत्रय के प्रति श्रद्धालु, त्यागी, सदाचारी, धर्मसाधना में चतुर, सन्तोषवृत्ति वाले एवं स्मृतिमान् बनें॥410॥

''सञ्जानमानो न मुसा भणेय्य, परूपघाताय न चेतयेय्य।
वेभूतिकं पेसुणं नो करेय्य, सण्हञ्च वाचं सखिलं भणेय्य॥411॥
''सगारवो सप्पटिस्सो विनीतो, अपापको अधिसीले विसुद्धो।
सो मातरं पितरञ्चापि जन्तु, धम्मेन पोसेति अरियवुत्ति॥412॥
''मञ्ञे सो मातापितूनं कारणा, भोगानि परियेसति न अत्तहेतु।
मातापितूनञ्च यो अच्चयेन, नेक्खम्मपोणो चरिस्सति ब्रह्मचरियं॥413॥
''उजू अवङ्को असठो अमायो, न लेसकप्पेन च वोहरेय्य।
सो तादिसो सुकतकम्मकारी, धम्मे ठितो किन्ति लभेथ दुक्खं॥414
''तं कारणा पातुकतोम्हि अत्तना, तस्मा धम्मं पस्सथ वाणिजासे।
अञ्ञत्र तेनिह भस्मी भवेथ, अन्धाकुला विप्पनट्ठा अरञ्ञे।
तं खिप्पमानेन लहुं परेन, सुखो हवे सप्पुरिसेन सङ्गमो'' ति॥415

संस्कृतच्छाया- ''सञ्जानन् न मृषा **भणेत्**, परोपघाताय न **चेतयेत**।
वैभूतिकं पैशुन्यं नो **कुर्यात्**, श्लक्ष्णां च वाचम् अखिलां **भणेत्**॥411॥
''सगौरवः सप्रतिस्रः विनीतः, अपापकः अधिशीले विशुद्धः।
सः मातरं पितरं च अपि जन्तुः, धर्मेण पोषयति आर्यवृत्तिः॥412॥
''मन्ये सः पित्रोः कारणात्, भोगान् पर्येषते न आत्महेतोः।
मातृपितृणां च यः अत्ययेन, नैष्कर्म्यप्रवणः चरिष्यति ब्रह्मचर्यम्॥413॥
ऋजुः अवक्रः अशठः अमायः, न लेशकल्पेन च व्यवहरेत्।
सः तादृशः सुकृतकर्मकारी, धर्मे स्थितः किमिति लभेत दुःखम्॥414॥
''तत्कारणात् प्रादुष्कृतोस्मि आत्मानं, तस्मात् धर्मं पश्यथ वणिजः।
अन्यत्र तेन इह भस्मीभवेथ, अन्धाकुलाः विप्रनष्टाः अरण्ये।
तत् क्षिप्यमाणेन लघु परेण, सुखदः भवति सत्पुरुषेण सङ्गमः'' इति॥415॥

हिन्दी- संज्ञानपूर्वक आप कभी असत्य भाषण न करें, दूसरों पर आघात(चोट) करने की चेष्टा न करें। दूसरों से अपशब्द, एवं पैशुन्य (चुगली) का व्यवहार न करें। अपितु, सबों से मृदु व श्लक्ष्ण व्यवहार ही करें॥411॥

जो दूसरों के प्रति गौरव, पूजाभाव एवं विनयभाव रखता है, पापकर्मों से दूर है और शीलारूढ विशुद्धचित्त है, ऐसा उपासक आर्यवृत्ति(उत्तम जीविका) से माता पिता का धर्मपूर्वक पालन करता है॥412॥

तब उसकी समग्र भोग पर्येषणा लगता है माता-पिता के पालन-पोषण हेतु ही हो रही हैं, स्वयं के लिये नहीं। और ऐसा उपासक, माता-पिता के मृत्योपरान्त निष्काम भाव से ब्रह्मचर्या में लग जाता है॥413॥

ऐसा सहज(सीधा), सरल, नम्र, धूर्ततारहित पुरुष किसी की चाटुकारिता (लेस=चापलूसी) नहीं करता। वैसे सुकृत कर्मों का कर्ता यदि धर्माचरण करता है ता उसको दुःख कैसे मिल सकता है!॥414॥

इस कारण, मैंने अपने विचार तुम लोगों के सम्मुख प्रकट कर दिये हैं। अतः हे व्यापारिगण! आप लोग धर्माचरण पर ही अधिक ध्यान दें। इसके विपरीत आचरण करने पर तुम लोग इस अरण्य(वन) के तप्त बालू में भस्म हो जाओगे। या यहाँ लू के थपेड़ों से अन्धें हो जाओगे। अतः तुम शीघ्रता से इस अल्प समय का लाभ उठा लो। सत्पुरुषों की सङ्गति सुखप्रद ही हुआ करती है॥415॥

''किं नाम सो किञ्च करोति कम्मं, किं नामधेय्यं किं पन तस्स गोत्तं।
मयम्पि नं दट्ठुकामम्ह यक्ख, यस्सानुकम्पाय इधागतोसि।
लाभा हि तस्स, यस्स तुवं पिहेसी'' ति॥416॥
''यो कप्पको सम्भवनामधेय्यो, उपासको कोच्छफलूपजीवी।
जानाथ नं तुम्हाकं पेसियो सो, मा खो नं हीळित्थ सुपेसलो सो'' ति॥417॥
''जानामसे यं त्वं पवदेसि यक्ख, न खो नं जानाम स एदिसोति।
मयम्पि तं पूजयिस्साम यक्ख, सुत्वान तुय्हं वचनं उळारं'' ति॥418॥
''ये केचि इमस्मिं सत्थे मनुस्सा, दहरा महन्ता अथवापि मज्झिमा।
सब्बेव ते आलम्बन्तु विमानं, पस्सन्तु पुञ्ञानं फलं कदरिया'' ति॥419॥
ते तत्थ सब्बेव 'अहं पुरे'ति, तं कप्पकं तत्थ पुरक्खत्वा।
सब्बेव ते आलम्बिंसु विमानं, मसक्कसारं विय वासवस्स॥420॥

संस्कृतच्छाया- ''किंनामा सः किं च करोति कर्म, किं नामधेयं किं पुनः तस्य गोत्रम्।
वयमपि तं द्रष्टुकामाः स्म यक्ष, यस्यानुकम्पया इहागतोसि।
लाभो हि तस्मै, यस्मै त्वम् स्पृहयसि'' इति॥416॥
''यः कल्पकः सम्भवनामधेयः, उपासकः कूर्चफलोपजीवी।
जानीथ तं युष्माकं प्रेषकः सः, मा खलु तं हीडथ सुपेशलः सः'' इति॥417॥
''जानीमः यत् त्वं प्रवदसि यक्ष, न खलु नं जानीमः सः ईदृश इति।
वयमपि तं पूजयिष्याम यक्ष, श्रुत्वा तव वचनम् उदारम्'' इति॥418॥
''ये केचिद् अस्मिन् सार्थे मनुष्याः, दहराः महान्तः अथवापि मध्यमाः।
सर्वे एव ते आलम्बन् विमानम्, पश्यन्तु पुण्यानां फलं कदर्याः'' इति॥419॥
ते तत्र सर्वे एव 'अहं पुरा' इति, तं कल्पकं तत्र पुरस्कृत्य।
सर्वे एव ते आलिलम्बयिषवः विमानम्, मसारसारमिव वासवस्य॥420॥

हिन्दी- हे यक्ष! आप जिसकी कृपा से यहाँ तक पहुँचे हैं वे कौन हैं, उनका कर्म क्या है? उनका नाम तथा गोत्र क्या है? जिन पर आप इतनी श्रद्धा रखते हैं हम भी उनके दर्शन की कामना से यहाँ आए हैं हमको भी लाभ ही होगा॥416॥

हमारे विमान का सम्भव नामक यह कर्मचारी, जो धर्म का उपासक है, तुम समझ लो कि यही तुम सबको वहाँ तक पहुँचा देगा। इससे तुम घृणा न करना; क्योंकि यह बहत ही सज्जन एवं सदाचारी है॥417॥

हे यक्ष! आप जो कह रहे हैं उसे हम भी जानते हैं। ऐसा नहीं है कि वह कैसा है— यह हम न जानते हों। हे यक्ष! आपके उदार वचनों को सुन कर हम भी इसका सम्मान करेंगे॥418॥

इस व्यापारिसमूह में जितने भी छोटे-बड़े या मध्यम व्यापारी गण हैं वे सभी इस विमान पर आरूढ़ हो जायँ। साधारण जन ये भी देख लें कि पुण्य कर्मे के क्या फल होते हैं॥419॥

वहाँ उपस्थित वे सभी व्यापारी गण पहले मैं पहले मैं— इस प्रकार उस विमान के कर्मचारी को आगे कर इन्द्र की इन्द्रपुरी के समान उस विशाल विमान पर आरूढ़ हो गये॥420॥

ते तत्थ सब्बेव 'अहं पुरे'ति, उपासकत्तं पटिवेदयिंसु।
पाणातिपाता विरता अहेसुं, लोके अदिन्नं परिवज्जयिंसु।
अमज्जपा नो च मुसा भणिंसु, सकेन दारेन च अहेसुं तुट्ठा॥421॥
ते तत्थ सब्बेव 'अहं पुरे'ति, उपासकत्तं पटिवेदयित्वा।
पक्कामि सत्थो अनुमोदमानो, यक्खिद्धिया अनुमतो पुनप्पुनं॥422॥
''गन्त्वान ते सिन्धुसोवीरभूमिं, धनत्थिका उद्दयं पत्थयाना।
यथापयोगा परिपुण्णलाभा, पच्चागमुं पाटलिपुत्तमक्खतं॥423॥
''गन्त्वान ते सङ्घरं सोत्थिवन्तो, पुत्तेहि दारेहि समङ्गिभूता।
आनन्दी वित्ता सुमना पतीता, अकंसु सेरीसमहं उळारं।
सेरीसकं ते परिवेणं मापयिंसु॥424॥
एतादिसा सप्पुरिसान सेवना, महत्थिका धम्मगुणान सेवना।
एकस्स अत्थाय उपासकस्स, सब्बेव सत्ता सुखिता अहेसुन्ति॥425॥
सेरीसकविमानं दसमं।

संस्कृतच्छाया- ते तत्र सर्वे एव 'अहं पुरा' इति, उपासकत्वं प्रत्यवेदयन्।
प्राणातिपातात् विरता अभूवन्, लोके अदत्तं पर्यवर्जयन्।
अमद्यपाः नो च मृषा अभणन्, स्वकीयैः दारैश्च अभूवन् तुष्टाः॥421॥
ते तत्र सर्वे एव 'अहं पुरा' इति, उपासकत्वं प्रतिवेद्य।
प्राक्रामीत् सार्थः अनुमोदमानः, यक्ष ऋद्ध्या अनुमतः पुनः पुनः॥422॥
''गत्वा ते सिन्धुसौवीरभूमिम्, धनार्थिका उदयं प्रार्थयन्तः।
यथाप्रयोगाः परिपूर्णलाभाः, प्रत्यगुः पाटलिपुत्रमक्षतम्॥423॥
''गत्वा ते स्वं गृहं स्वस्तिमन्तः, पुत्रैः दारैः समङ्गिभूताः।
आनन्दिताः वित्तात् सुमनसः प्रतीताः, अकार्षुः शिरीषमहम् उदारम्।
शिरीषकं ते परिवेणं अमापयन्॥424॥
एतादृशं सत्पुरुषाणां सेवनम्, महर्थिकं धर्मगुणानां सेवनम्।
एकस्य अर्थाय उपासकस्य, सर्वे एव सत्वाः सुखिता अभूवन् इति॥425॥

हिन्दी- वहाँ वे सभी व्यापारी पहले मैं-पहले मैं, इस प्रकार अपना अपना उपासकत्व निवेदन किया। वे सभी प्राणातिपात, चोरी, मद्यपान एवं असत्यभाषण से विरत हो गये, तथा उन सभी ने स्वपत्नी से ही सन्तुष्ट रहने का सङ्कल्प लिया॥421॥

वहाँ वे सभी व्यापारी पहले मैं-पहले मैं, इस प्रकार अपना अपना उपासकत्व निवेदन कर यक्ष की बातों का समर्थन तथा उसके ऋद्धिवैभव की प्रशंसा करने लगे॥422॥

वे क्रमशः अधिक धनप्राप्ति की लालसा में सिन्धु एवं सौवीर जनपदों में पहुँच कर वस्तुओं के व्यापार से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर पुनः सकुशल पाटलिपुत्र लौट आये॥423॥

वे अपने घरों को सकुशल लौट कर अपने पुत्रों एवं पत्नियों आदि से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होनें वहाँ आनन्दित होकर प्रसन्न मन से श्रद्धापूर्वक विशाल शिरीषोत्सव का आयोजन किया। तथा इसी समृति में उनने एक शिरीषपरिवेण की स्थापना भी की॥424॥

सत्पुरुषों की सेवा का यही महात्म्य है। धर्मगुणों की साधना ऐसे ही महाफलदायिका होती है। यहाँ एक उपासक के कारण सभी सत्त्व(प्राणी) सुख-लाभ कर सके!॥425॥

11. सुनिक्खित्तविमानवत्थु

''उच्चमिदं मणिथूणं विमानं, समन्ततो द्वादस योजनानि।
कूटागारा सत्तसता उळारा, वेळुरियथम्भा रुचकत्थता सुभा॥426॥
''तत्थच्छसि पिवसि खादसि च, दिब्बा च वीणा पवदन्ति वग्गुं।
दिब्बा रसा कामगुणेत्थ पञ्च, नारियो च नच्चन्ति सुवण्णछन्ना॥427॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥428॥
''पुच्छामि 'तं देव महानुभाव, मनुस्सभूतो किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावो, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥429॥
सो देवपुत्तो अत्तमनो, मोग्गल्लानेन पुच्छितो।
पञ्हं पुट्ठो वियाकासि, यस्स कम्मस्सिदं फलं॥430॥
''दुन्निक्खित्तं मालं सुनिक्खिपित्वा, पतिट्ठपेत्वा सुगतस्स थूपे।
महिद्धिको चम्हि महानुभावो, दिब्बेहि कामेहि समङ्गिभूतो॥431॥

संस्कृतच्छाया-

''उच्चैः इदं मणिस्थूणं विमानम्, समन्ततः द्वादशयोजनानि।
कूटागाराणि सप्तशतम् उदाराणि, वैदूर्यस्तम्भाः रुचककृताः शुभाः॥426॥
''तत्रेच्छसि पिवसि खादसि च, दिव्याश्च वीणाः प्रवदन्ति वल्गु।
दिव्याः रसाः कामगुणाः अत्र पञ्च, नार्यः च नृत्यन्ति सुवर्णच्छन्नाः॥427॥
''केन ते एतादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥428॥
''पृच्छामि 'त्वां देव महानुभाव, मनुष्यभूतः किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावः, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥429॥
सः देवपुत्र आप्तमनाः, मौद्गल्यायनेन पृष्टः।
प्रश्नं पृष्टः व्याकरोत्, यस्य कर्मण इदं फलम्॥430॥
''दुर्निक्षिप्तां मालां सुनिक्षिप्य, प्रतिष्ठाप्य सुगतस्य स्तूपे।
महर्धिकश्चास्मि महानुभावः, दिव्यैः कामैः समङ्गिभूतः॥431॥

हिन्दी- आप का यह मणिरत्नों से निर्मित स्थूण(स्तम्भ) वाला विमान चारों दिशाओं से बारह योजन लम्बा चौड़ा है। इसके सात सौ उच्च शिखर वैदूर्यमणि एवं सुवर्णनिर्मित सुन्दर स्तम्भों पर टिके हुए हैं॥426॥

वहाँ आप यथेच्छ खाते पीते हैं तथा मधुरध्वनि में वीणावादन करते रहते हैं। वहीं आप दिव्य रसों आदि पञ्च कामभोगों का उपभोग करते रहते हैं तथा वहाँ सुवर्णालंकृत स्त्रियाँ भी नृत्य करती रहती हैं॥427॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग-उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥428॥

देव! मेरी आपसे यही जिज्ञासा है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाले हैं एवं आपकी वर्णआभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥429॥

उस प्रसन्नमन देवपुत्र ने महामौद्गल्यायन द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्नहृदय से बताना आरम्भ किया कि वह मानवलोक मे किये कौन से पुण्य-विशेष के कारण यह पुण्यफल भोग रहा है॥430॥

''तेन मेतादिसो वण्णो, तेन मे इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च मे भोगा, ये केचि मनसो पिया॥432॥
''अक्खामि ते भिक्खु महानुभाव, मनुस्सभूतो यमहं अकासिं।
तेनम्हि एवं जलितानुभावो, वण्णो च मे सब्बदिसा पभासती'' ति॥433॥

सुनिक्खित्तविमानं एकादसमं।
सुनिक्खित्तवग्गो सत्तमो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं –

द्वे दलिद्दा वनविहारा, भतको गोपालकण्डका।
अनेकवण्णमट्ठकुण्डली, सेरीसको सुनिक्खित्तं।
पुरिसानं ततियो वग्गो पवुच्चतीति॥

भाणवारं चतुत्थं निट्ठितं।
विमानवत्थुपाळि निट्ठिता।

संस्कृतच्छाया- ''तेन मे एतादृशो वर्णः, तेन मे इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च मे भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥432॥
''आख्यामि ते भिक्षो महानुभाव, मनुष्यभूतो यमहम् अकार्षम्।
तेनास्मि एवं ज्वलितानुभावः, वर्णश्च मे सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥433॥

तस्योद्दानम् –

द्वे दरिद्राः वनविहाराः, भृतकः गोपालकन्थकाः।
अनेकवर्णमृष्टकुण्डली, शिरीषकः सुनिक्षिप्तम्।
पुरुषाणां तृतीयः वर्गः प्रोच्यते इति॥

हिन्दी- मैंने सुगत(बुद्ध) के स्तूप पर निक्षिप्त(फेंके) माला को श्रद्धापूर्वक प्रतिष्ठापित कर दिया था। केवल इसी पुण्य के फलस्वरूप मैं आज इतना ऋद्धिसम्पन्न एवं दिव्य कामसुखों का उपभोग कर रहा हूँ॥431॥

उस पुण्य–विशेष के प्रभाव से ही मुझको आज यह दिव्य वर्ण प्राप्त हुआ है एवं उसी के कारण से ही मैं आज यह दिव्य सुख भोग रहा हूँ। तथा उसी के प्रभावस्वरूप मुझे यह मनोनुकूल और प्रिय भोग यथासमय प्राप्त होते रहते हैं॥432॥

इस प्रकार हे महानुभाव भिक्षु! मैने आपको सबकुछ कह दिया कि मनुष्यलोक मे मनुष्य देह मिलने पर मैने कौन सा पुण्य कर्म किया था जिसके फलस्वरूप मुझे यह समस्त दिशाओं को अवभाषित करने वाला सुन्दर वर्ण एवं दिव्य सुख प्राप्त हुए हैं॥433॥

1. चित्रलताविमान, 2. नन्दविमान, 3. मणिस्थूणविमान, 4. सुवर्णविमान, 5. आम्रविमान, 6. गोपालविमान, 7. कन्थकविमान, 8. अनेकवर्णविमान, 9. मुष्टकुण्डलिविमान, 10. शिरीषकविमान एवं 11. सुनिक्षिप्तविमान

****

॥नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स॥

खुद्दकनिकाये पेतवत्थुपाळि

उरगवग्गो

1. खेत्तूपमपेतवत्थु

''खेत्तूपमा अरहन्तो, दायका कस्सकूपमा।
बीजूपमं देय्यधम्मं, एत्तो निब्बत्तते फलं॥1॥
''एतं बीजं कसि खेत्तं, पेतानं दायकस्स च।
तं पेता परिभुञ्जन्ति, दाता पुञ्ञेन वड्ढति॥2॥
''इधेव कुसलं कत्वा, पेते च पटिपूजिय।
सग्गञ्च कमति ट्ठानं, कम्मं कत्वान भद्दकं'' ति॥3॥
''कायो ते सब्बसोवण्णो, सब्बा ओभासते दिसा।
मुखं ते सूकरस्सेव, किं कम्ममकरी पुरे''॥4॥

खेत्तूपमपेतवत्थु पठमं।

संस्कृतच्छाया- ''क्षेत्रोपमा अर्हन्तः, दायकाः कृषकोपमाः।
बीजोपमः देयधर्मः, अत्र निर्वर्तते फलम्॥1॥
''एतद् बीजं कृषिः क्षेत्रम्, प्रेतानां दायकस्य च।
तत् प्रेताः परिभुञ्जते, दाता पुण्येन वर्धते॥2॥
''इहैव कुशलं कृत्वा, प्रेतांश्च प्रतिपूज्य।
स्वर्गं च कर्माधिष्ठानम्, कर्म कृत्वा भद्रकम्'' इति॥3॥
''कायः ते सर्वसौवर्णः, सर्वा अवभासयते दिशः।
मुखं ते शूकर इव, किं कर्म अकरोः पुरा''॥4॥

हिन्दी- यहाँ ज्ञानी लोग खेत के समान हैं, दानदाता कृषक के समान तथा दाता द्वारा ज्ञानी जनों को दिया हुआ दान बीज के समान है। इन तीनों के समन्वय से ही पुण्यकर्म सम्पन्न होता है॥1॥

उक्त बीज, कृषि एवं क्षेत्र के माध्यम से ही प्रेतों को दाता द्वारा दिए गये दान का ही प्रेत उपभोग करते हैं। तथा उस दान के पुण्यस्वरूप दाता के आयु, वर्ण, बल एवं यश में वृद्धि होती है॥2॥

यहाँ पुण्यकर्म कर, तथा प्रेतों का सम्मान करते हुए भद्र पुरुष को कुशलकर्मों के आश्रयण से स्वर्ग प्राप्त हो जाता है॥3॥

आपका सम्पूर्ण शरीर स्वर्ण समान है। जिससे समस्त दिशाएँ प्रकाशित हो रही हैं; परन्तु आपकी मुखाकृति शूकर के समान है। पूर्व में आपने कौन सा अकुशल कर्म किया था कि आपको यह रूप मिला?॥4॥

2. सूकरमुखपेतवत्थु

''कायेन सञ्ञतो आसिं, वाचायासिमसञ्ञतो।
तेन मेतादिसो वण्णो, यथा पस्ससि नारद॥5॥
''तं त्याहं नारद ब्रूमि, सामं दिट्ठमिदं तया।
माकासि मुखसा पापं, मा खो सूकरमुखो अहू'' ति॥6॥

सूकरमुखपेतवत्थु दुतियं।

3. पूतिमुखपेतवत्थु

''दिब्बं सुभं धारेसि वण्णधातुं, वेहायसं तिट्ठसि अन्तलिक्खे।
मुखञ्च ते किमयो पूतिगन्धं, खादन्ति किं कम्ममकासि पुब्बे''॥7॥
''समणो अहं पापोतिदुट्ठवाचो, तपस्सिरूपो मुखसा असञ्ञतो।
लद्धा च मे तपसा वण्णधातु, मुखञ्च मे पेसुणियेन पूति॥8॥

संस्कृतच्छाया- ''कायेन संयत आसम्, वाचा आसम् असंयतः।
तेन मे एतादृशो वर्णः, यथा पश्यसि नारद॥5॥
''तत् त्वाम् अहं नारद ब्रवीमि, सम्यग् दृष्टमिदं त्वया।
मा कार्षीः मुखेन पापम्, मा खलु शूकरमुखः भूः'' इति॥6॥
''दिव्यं शुभं धारयसि वर्णधातुं, वैहायसे तिष्ठसि अन्तरीक्षे।
मुखं च ते कृमयः पूतिगन्धम्, खादन्ति किं कर्माकार्षीः पूर्वम्''॥7॥
''श्रमणोऽहं पाप इति दुष्टवाक्, तपस्विरूपः मुखेन असंयतः।
लब्धश्च मे तपसा वर्णधातुः, मुखं च मे पैशुन्येन पूति॥8॥

हिन्दी- पूर्व में मैं अपनी काया से संयत थी किन्तु अपनी वाणी से असंयमित थी। फलस्वरूप दुष्परिणाम यह हुआ कि मेरी मुखाकृति ऐसी हो गयी, जैसी कि हे नारद आपको दिखायी दे रही है॥5॥

इसलिए नारद! आपको भी मेरा यही कहना है, जैसा कि आप मुझमें देख रहे हैं, कि मुख द्वारा ऐसा कोई पाप मत करना, जिसके कारण आप को भी मेरे समान शूकरमुख बनना पड़े॥6॥

आपका शरीर एवं मुखाकृति दिव्य है, आप इस अन्तरिक्ष में विराजमान हैं; परन्तु आपका मुख दुर्गन्धयुक्त व क्रिमियों से भरा हुआ है। आपने पूर्व में कौन सा पापकर्म किया था?॥7॥

पूर्व में मैं एक श्रमण था। पापी एवं मुख से अपशब्दों का ही प्रयोग करता था। मैं शरीर से तपस्वीरूप रहते हुए भी मुख से असंयत था। उस तपस्या के प्रभावस्वरूप मुझे शेष काय तो सौन्दर्ययुक्त मिला; परन्तु वाणी से पिशुनता के कारण मेरा मुख दुर्गन्धि युक्त हो गया॥8॥

''तयिदं तया नारद सामं दिट्ठं, अनुकम्पका ये कुसला वदेय्युं।
'मा पेसुणं मा च मुसा अभाणि, यक्खो तुवं होहिसि कामकामी''' ति॥9॥

पूतिमुखपेतवत्थु ततियं।

4. पिट्ठधीतलिकपेतवत्थु

''यं किञ्चारम्मणं कत्वा, दज्जा दानं अमच्छरी।
पुब्बपेते च आरब्भ, अथ वा वत्थुदेवता॥10॥
कुवेरं धतरट्ठञ्च, विरूपक्खं विरूळ्हकं।
ते चेव पूजिता होन्ति, दायका च अनिप्फला॥11॥
''चत्तारो च महाराजे, लोकपाले यसस्सिने
''न हि रुण्णं वा सोको वा, या चञ्ञा परिदेवना।
न तं पेतस्स अत्थाय, एवं तिट्ठन्ति ञातयो॥12॥

संस्कृतच्छाया- ''तदिदं त्वया नारद सम्यग् दृष्टम्, अनुकम्पकाः ये कुशलाः वदेयुः।
'मा पैशुन्यं मा च मृषाभाणिषुः, यक्षस्त्वं भविष्यसि कामकामी''' इति॥9॥
''यत् किं च आरम्भं कृत्वा, दद्यात् दानम् अमत्सरी।
पूर्वप्रेतांश्च आरभ्य, अथ वा वस्तुदेवतायाः॥10॥
''चत्वारश्च महाराजाः, लोकपालाः यशस्विनः।
ते चैव पूजिताः भवन्ति, दायकाश्च अनिष्फलाः॥11॥
कुबेरः धृतराष्ट्रश्च, विरूपाक्षः विरूढकः।
''न हि रोदनं वा शोकः वा, या च अन्या परिदेवना।
न तत् प्रेतस्य अर्थाय, एवं तिष्ठन्ति ज्ञातयः॥12॥

हिन्दी- हे नारद! तुम मेरे इस दृष्टान्त से समझ लो कि जो व्यक्ति यहाँ दूसरों पर अनुकम्पा करते हुए कुशलवचन बोलता है, पिशुनता तथा मिथ्या भाषा का प्रयोग नहीं करता वही यक्षलोक में आकर यक्षत्त्व प्राप्त कर यथेच्छ कामभोगों को प्राप्त करता है॥9॥

कोई भी कार्य आरम्भ करने के लिए व्यक्ति को पहले मात्सर्य-रहित (मुक्तहस्त) होकर दान करना चाहिए, वह भले ही अपने ज्ञातिजन पूर्व प्रेतों के प्रति हो या स्थानीय देवताओं के प्रति॥10॥

जैसे— चारों दिक्पाल (चतुर्महाराजिक देवता) या यशस्वी लोकपाल— कुबेर, धृतराष्ट्र, विरूपाक्ष एवं विरूढक। इस दान-क्रिया से वे देवता भी पूजित हो जाते हैं और दाता का दान भी निष्फल नहीं जाता॥11॥

यहाँ प्रेतों के लिये रोना, विलाप करना या अन्य किसी प्रकार से उनके प्रति शोक प्रकट करना आदि कर्म कभी नहीं करना चाहिये। इससे जीवित सम्बन्धिजनों का भी हित नहीं होता है॥12॥

''अयञ्च खो दक्खिणा दिन्ना, सङ्घम्हि सुप्पतिट्ठिता।
दीघरत्तं हितायस्स, ठानसो उपकप्पती'' ति॥13॥

पिट्ठधीतलिकपेतवत्थु चतुत्थं।

5. तिरोकुट्टपेतवत्थु

''तिरोकुट्टेसु तिट्ठन्ति, सन्धिसिङ्घाटकेसु च।
द्वारबाहासु तिट्ठन्ति, आगन्त्वान सकं घरं॥14॥
''पहूते अन्नपानम्हि, खज्जभोज्जे उपट्ठिते।
न तेसं कोचि सरति, सत्तानं कम्मपच्चया॥15॥
''एवं ददन्ति ञातीनं, ये होन्ति अनुकम्पका।
सुचिं पणीतं कालेन, कप्पियं पानभोजनं।
'इदं वो ञातीनं होतु, सुखिता होन्तु ञातयो'॥16॥

संस्कृतच्छाया- ''इयं च खलु दक्षिणा दत्ता, सङ्घेषु सुप्रतिष्ठिता।
दीर्घरात्रं हितायास्य, स्थानतः उपकल्प्यते'' इति॥13॥
''तिरःकुड्येषु तिष्ठन्ति, सन्धिशृङ्गाटकेषु च।
द्वारबाह्येषु तिष्ठन्ति, आगत्य स्वकं गृहम्॥14॥
''प्रभूते अन्नपाने, खाद्यभोज्ये उपस्थिते।
न तेषां कश्चिद् स्मरति, सत्वानां कर्मप्रत्ययात्॥15॥
शुचिं प्रणीतं कालेन, कल्प्यं पानभोजनम्।
''एवं ददति ज्ञातिभ्यः, ये भवन्ति अनुकम्पकाः।
'इदं वः ज्ञातीनां भवतु, सुखिताः भवन्तु ज्ञातयः'॥16॥

हिन्दी- वह दान भी उन प्रेतों को सङ्घ के माध्यम से दिया जाना ही उत्तम तथा दीर्घकालस्थायी होता है। तथा यही 'विधिपूर्वक किया हुआ दान' कहलाता है॥13॥

प्रेतगण अपने घरों की दीवारों पर, घरों के मिलनस्थलों पर या चौराहों पर या बाहरी द्वारस्तम्भों पर आकर बैठते हैं॥14॥

उन प्रेतों के, पूर्वजन्मकृत कर्मों के कारण, कुछ सम्बन्धी, किसी विशेष उत्सव के अवसर पर भी जब उनके घरों में भरपूर विशेष भोजन बनाया जाता है, उन प्रेतों का स्मरण नहीं करते॥15॥

कुछ अनुकम्पक, सगे-सम्बन्धी जन, ऐसे विशेष अवसरों पर, उन प्रेतों पर अनुकम्पा करते हुए समय पर, शुद्ध एवं उत्तम भोजन बना कर उनको यह सङ्कल्प करते हुए प्रदान करते हैं— यह हमारे ज्ञाति-जनों के लिये हो, इसका उपयोग कर हमारे ज्ञातिजन सुखी रहें॥16॥

''ते च तत्थ समागन्त्वा, ञातिपेता समागता।
पहूते अन्नपानम्हि, सक्कच्चं अनुमोदरे॥17॥
'''चिरं जीवन्तु नो ञाती, येसं हेतु लभामसे।
अम्हाकञ्च कता पूजा, दायका च अनिप्फला'॥18॥
'''न हि तत्थ कसि अत्थि, गोरक्खेत्थ न विज्जति।
वणिज्जा तादिसी नत्थि, हिरञ्ञेन कयाकयं।
इतो दिन्नेन यापेन्ति, पेता कालगता तहिं'॥19॥
'''उन्नमे उदकं वुट्ठं, यथा निन्नं पवत्तति।
एवमेव इतो दिन्नं, पेतानं उपकप्पति'॥20॥

संस्कृतच्छाया- ''ते च तत्र समागत्य, ज्ञातिप्रेताः समागताः।
प्रभूते अन्नपाने, सत्कृत्यम् अनुमोदिरे॥17॥
'''चिरं जीवन्तु नः ज्ञातयः, येषां हेतोः लभामहे।
अस्माकं च कृता पूजा, दायकाश्च अनिष्फलाः'॥18॥
'''न हि तत्र कृषिः अस्ति, गोरक्षा अत्र न विद्यते।
वणिज्या तादृशी नास्ति, हिरण्येन क्रयाक्रयौ।
इतः दत्तेन यापयन्ति, प्रेताः कालकृताः तर्हि'॥19॥
'''उन्नते उदकं वृष्टम्, यथा निम्नं प्रवर्त्तते।
एवमेव इतः दत्तम्, प्रेतानाम् उपकल्पते'॥20॥

हिन्दी- वे सम्बन्धिजन वहाँ एकत्रित हो, यह विचार कर कि यहाँ हमारे मृतसम्बन्धी प्रेतगण आये होंगे— उनको आदरपूर्वक विपुल अन्नपान अर्पित करते हैं तथा वे प्रेतजन उऩके सत्कृत्य का इस प्रकार अनुमोदन करते हैं— ॥17॥

हमारे ये सम्बन्धी जन चिर काल तक जीवित रहें, जिनके कारण हमको यह लाभ मिल रहा है। इससे एक तो हमारा सत्कार भी हो गया और इन दाताओं का दान भी निष्फल नहीं हुआ॥18॥

वहाँ न कोई खेती होती है, न कोई गो-पालन ही होता है, और न वहाँ किसी प्रकार का वाणिज्य ही करने की स्थिति है तथा न कोई सोने चाँदी के माध्मय से क्रयविक्रय ही होता है। वे तो यहाँ से मृत्योपरान्त यहाँ प्रेतलोक में इन सम्बन्धियों द्वारा किये गये दान से ही अपना जीवनयापन करते हैं॥19॥

जिस प्रकार ऊँचे स्थान पर हुई वर्षा का जल नीचे की ओर प्रवर्तित होता है, उसी प्रकार इस लोक में दिया दान प्रेतों के काम आता है॥20॥

‘‘‘यथा वारिवहा पूरा, परिपूरेन्ति सागरं।
एवमेव इतो दिन्नं, पेतानं उपकप्पति’॥21॥
‘‘‘अदासि मे अकासि मे, ञाति मित्ता सखा च मे।
पेतानं दक्खिणं दज्जा, पुब्बे कतमनुस्सरं’॥22॥
‘‘‘न हि रुण्णं वा सोको वा, या चञ्ञा परिदेवना।
न तं पेतानमत्थाय, एवं तिट्ठन्ति ञातयो’॥23॥
‘‘‘अयञ्च खो दक्खिणा दिन्ना, सङ्घम्हि सुप्पतिट्ठिता।
दीघरत्तं हितायस्स, ठानसो उपकप्पति’॥24॥
‘‘सो ञातिधम्मो च अयं निदस्सितो, पेतान पूजा च कता उळारा।
बलञ्च भिक्खूनमनुप्पदिन्नं, तुम्हेहि पुञ्ञं पसुतं अनप्पकं’’ ति॥25॥

तिरोकुट्टपेतवत्थु पञ्चमं।

संस्कृतच्छाया- ‘‘‘यथा वारिवाहाः पूर्णाः, परिपूरयन्ति सागरम्।
एवमेव इतः दत्तम्, प्रेतानाम् उपकल्प्यते’॥21॥
‘‘‘अदुः मे अकार्षुः मे, ज्ञातिमित्राणि सखायश्च मे।
प्रेतेभ्यः दक्षिणां दद्यात्, पूर्वं कृतम् अनुस्मरन्’॥22॥
‘‘न हि रोदनं वा शोकः वा, या च अन्या परिदेवना।
न तत् प्रेतस्य अर्थाय, एवं तिष्ठन्ति ज्ञातयः॥23॥
दीर्घरात्रं हितायास्य, स्थानतः उपकल्प्यते’’ इति॥24॥
‘‘इयं च खलु दक्षिणा दत्ता, सङ्घे सुप्रतिष्ठिता।
‘‘सः ज्ञातिधर्मः च अयं निदर्शितः, प्रेतानां पूजा च कृता उदारा।
बलं च भिक्षूणामनुप्रदत्तम्, युष्माभिः पुण्यं प्रसूतम् अनल्पकम्’’ इति॥25॥

हिन्दी- जैसे जल से भरे मेघ सागर को भरते हैं, उसी प्रकार यहाँ किया दान प्रेतों के काम आता है॥21॥

ज्ञाति मित्रों ने पूर्व में कभी मुझे कुछ दिया था और उन्होंने कभी कुछ मेरे लिए किया था। इस पूर्व कृत का अनुस्मरण करते हुए प्रेतों के प्रति दान कर्म करना चाहिए॥22॥

यहाँ प्रेतों के लिये रोना, विलाप करना या अन्य किसी प्रकार से उनके प्रति शोक प्रकट करना आदि कर्म कभी नहीं करना चाहिये। इससे जीवित सम्बन्धिजनों की भौतिक उन्नति एवं स्थायिता होती है॥ 23॥

वह दान भी उन प्रेतों को सङ्घ के माध्यम से दिया जाना ही उत्तम तथा दीर्घकालस्थायी होता है। तथा यही ‘विधिपूर्वक किया हुआ दान’ कहलाता है॥24॥

प्रेतों के प्रति उदारतापूर्वक कृत दान से एक उत्तम ज्ञाति-धर्म स्थापित होगा। इस दान-क्रिया से प्रेतजनों की उचित पूजा भी हो जाएगी एवं साथ-साथ भिक्षुओं को भौतिक बल प्राप्त होवेगा जिससे उन्हें अपनी धर्मसाधना में अधिकाधिक सहयोग मिलेगा साथ ही इसका अतिरिक्त पुण्य भी तुम्हें प्राप्त होगा॥25॥

6. पञ्चपुत्तखादपेतिवत्थु

''नग्गा दुब्बण्णरूपासि, दुग्गन्धा पूति वायसि।
मक्खिकाहि परिकिण्णा, का नु त्वं इध तिट्ठसी'' ति॥26॥
''अहं भदन्ते पेतीम्हि, दुग्गता यमलोकिका।
पापकम्मं करित्वान, पेतलोकं इतो गता॥27॥
''कालेन पञ्च पुत्तानि, सायं पञ्च पुनापरे।
विजायित्वान खादामि, तेपि ना होन्ति मे अलं॥28॥
''परिडय्हति धूमायति, खुदाय हृदयं मम।
पानीयं न लभे पातुं, पस्स मं ब्यसनं गतं'' ति॥29॥
''किं नु कायेन वाचाय, मनसा दुक्कटं कतं।
किस्स कम्मविपाकेन, पुत्तमंसानि खादसी'' ति॥30॥

संस्कृतच्छाया- ''नग्ना दुर्वर्णरूपासि, दुर्गन्धा पूतिं वाहयसि।
मक्षिकाः परिकीर्णाः, का नु त्वं इह तिष्ठसि'' इति॥26॥
''अहं भदन्त प्रेता अस्मि, दुर्गताः यमलौकिकाः।
पापकर्म कृत्वा, प्रेतलोकम् इतः गता॥27॥
''कालेन पञ्च पुत्रान्, सायं पञ्च पुनः अपरान्।
विज्ञाय खादामि, ते अपि न भवन्ति मम अलम्॥28॥
''परिदह्यते धूमायते, क्षुधया हृदयं मम।
पानीयं न लभे पातुम्, पश्य माम् ब्यसनं गताम्'' इति॥29॥
''किं नु कायेन वाचा, मनसा दुष्कृतं कृतम्।
कस्य कर्मणः विपाकेन, पुत्रमांसानि खादसि''इति॥30॥

हिन्दी- अरी तुम यहाँ नग्न (निर्वस्त्र) पड़ी हुई हो, वर्ण भी तुम्हारा कुरूप है, तुमसे अतिशय दुर्गन्ध चारों ओर फैल रही है, तुम पर मक्खियाँ भिनभिना रही हैं, ऐसे यहाँ पड़ी तुम कौन हो?॥26॥

भन्ते! मैं प्रेती हूँ, पापकर्म वश इस लोक से दुर्गतिमय प्रेतलोक को पहुँच गई हूँ॥27॥

प्रातः काल में यहाँ पर पाँच पुत्रों को तथा पुनः सायं पाँच पुत्रों को खाने पर भी मेरी भूख शान्त नहीं होती॥28॥

मेरा पेट भूख के कारण जल रहा है। अब मैं पानी भी नहीं पी पा रही हूँ। आप मेरे कष्ट को समझें॥29॥

तुमने काय, वाणी तथा मन से ऐसा कौन सा दुष्कर्म किया था? किस पाप का यह परिणाम भोग रही हो कि तुम्हें अपने पुत्रों का ही भक्षण करना पड़ रहा है॥30॥

''सपती मे गब्भिनी आसि, तस्सा पापं अचेतयिं।
साहं पदुट्ठमनसा, अकरिं गब्भपातनं॥31॥
''तस्सा द्वेमासिको गब्भो, लोहितञ्ञेव पग्घरि।
तदस्सा माता कुपिता, मय्हं ञाती समानयि।
सपथञ्च मं कारेसि, परिभासापयी च मं॥32॥
''साहं घोरञ्च सपथं, मुसावादं अभासिसं।
पुत्तमंसानि खादामि, सचे तं पकतं मया॥33॥
''तस्स कम्मस्स विपाकेन, मुसावादस्स चूभयं।
पुत्तमंसानि खादामि, पुब्बलोहितमक्खिता'' ति॥34॥

पञ्चपुत्तखादपेतिवत्थु

संस्कृतच्छाया- ''सपत्नी मे गर्भिणी आसीत्, तस्याः पापम् अचिन्तयम्।
सा अहं प्रदुष्टमनसा, अकरवम् गर्भपातनम्॥31॥
''तस्याः द्वैमासिकः गर्भः, लोहितम् एव प्रसृता।
तद् अस्मात् माता कुपिता, मह्यं ज्ञातीन् समानयत्।
शपथं च मां अकार्षीः, पर्यभाषत च माम्॥32॥
''साऽहं घोरञ्च शपथम्, मृषावादम् अभाषिसम्।
पुत्रमांसानि खादामि, स चेत् तत् प्रकृतं मया॥33॥
''तस्य कर्मणः विपाकेन, मृषावादस्य चोभयम्।
पुत्रमांसानि खादामि, पूयलोहितमक्षिता'' इति॥34॥

हिन्दी- कभी मेरी सौत गर्भिणी हुई। उसके प्रति मेरे हृदय में विद्वेष उत्पन्न हुआ, मैंने प्रदुष्टमन से उसका गर्भपात करा दिया॥31॥

उसका दो मास का गर्भ, जो अभी रक्त-पिण्ड ही था, गिर गया, यह सुनकर उसकी माता अत्यन्त कुपित हुई, मेरे सम्मुख सगे सम्बंधियों को एकत्र किया और मुझे शपथपूर्वक सत्य बताने को कहा और साथ-साथ अपशब्द भी कहे॥32॥

उसकी धमकी के उपरान्त भी मैंने शपथपूर्वक असत्य ही कहा। उसी असत्य व मिथ्याभाषण के परिणामस्वरूप मैं आज अपने ही पुत्रों का मांस खा रही हूँ॥33॥

उसी अकुशल कर्म मिथ्याभाषण के पश्चात् मैं अपने पुत्रों का रक्त एवं पूय-मिश्रित मांस खा रही हूँ॥34॥

7. सत्तपुत्तखादपेतिवत्थु

''नग्गा दुब्बण्णरूपासि, दुग्गन्धा पूति वायसि।
मक्खिकाहि परिकिण्णा, का नु त्वं इध तिट्ठसी'' ति॥35॥
''अहं भदन्ते पेतीम्हि, दुग्गता यमलोकिका।
पापकम्मं करित्वान, पेतलोकं इतो गता॥36॥
''कालेन सत्त पुत्तानि, सायं सत्त पुनापरे।
विजायित्वान खादामि, तेपि ना होन्ति मे अलं॥37॥
''परिडय्हति धूमायति, खुदाय हृदयं मम।
निब्बुतिं नाधिगच्छामि, अग्गिदड्ढाव आतपे'' ति॥38॥
''किं नु कायेन वाचाय, मनसा दुक्कटं कतं।
किस्स कम्मविपाकेन, पुत्तमंसानि खादसी'' ति॥39॥

संस्कृतच्छाया- ''नग्ना दुर्वर्णरूपासि, दुर्गन्धा पूतिं वाव्यसि/वायसि।
मक्षिकाः परिकीर्णाः, का नु त्वम् इह तिष्ठसि'' इति॥35॥
''अहं भदन्त प्रेता अस्मि, दुर्गता यमलौकिका।
पापकर्म कृत्वा, प्रेतलोकम् इतः गता॥36॥
''कालेन सप्त पुत्रान्, सायं सप्त पुनः अपरान्।
विज्ञाय खादामि, तेऽपि न भवन्ति मम अलम्॥37॥
''परिदह्यति धूम्रायति, क्षुधया हृदयं मम।
निर्वृतिं नाधिगच्छामि, अग्निदग्धा इव आतपे'' इति॥38॥
''किं नु कायेन वाचा, मनसा दुष्कृतं कृतम्।
कस्य कर्मणः विपाकेन, पुत्रमांसानि खादसि''इति॥39॥

हिन्दी- अरी तुम यहाँ नग्न (निर्वस्त्र) पड़ी हुई हो, वर्ण भी तुम्हारा कुरूप है, तुमसे अतिशय दुर्गन्ध चारों ओर फैल रही है, तुम पर मक्खियाँ भिनभिना रही हैं, ऐसे यहाँ पड़ी तुम कौन हो?॥35॥

भन्ते! मैं प्रेती हूँ, पापकर्म वश इस लोक से दुर्गतिमय प्रेतलोक को पहुँच गई हूँ॥36॥

प्रातः काल मैं यहाँ पर सात पुत्रों को तथा पुनः सायं सात पुत्रों को खाती हूँ इसपर भी मेरी भूख शान्त नहीं होती॥37॥

मेरा पेट भूख के कारण जल रहा है। मेरा हृदय भूख की ज्वाला से धूआँ फेंक रहा है। अब मैं उसी प्रकार निर्वृति(शान्ति) नहीं प्राप्त कर सकती जिस प्रकार कोई अग्नि से जली हुई धूप में शान्ति नहीं पाती॥38॥

तुमने काय, वाक्(वाणी) तथा मन से ऐसा कौन सा दुष्कर्म किया था? किस पाप का यह परिणाम भोग रहीं हो कि तुम्हें अपने पुत्रों का ही भक्षण करना पड़ रहा है॥39॥

''अहू मय्हं दुवे पुत्ता, उभो सम्पत्तयोब्बना।
साहं पुत्तबलूपेता, सामिकं अतिमञ्ञिसं॥40॥
''ततो मे सामिको कुद्धो, सपत्तिं मय्हमानयि।
सा च गब्भं अलभित्थ, तस्सा पापं अचेतयिं॥41॥
''साहं पदुट्ठमनसा, अकरिं गब्भपातनं।
तस्सा तेमासिको गब्भो, पुब्बलोहितको पति॥42॥
''तदस्सा माता कुपिता, मय्हं ञाती समानयि।
सपथञ्च मं कारेसि, परिभासापयी च मं॥43॥
''साहं घोरञ्च सपथं, मुसावादं अभासिसं।
पुत्तमंसानि खादामि, सचे तं पकतं मया॥44॥

संस्कृतच्छाया- ''अभूतां मम द्वौ पुत्रौ, उभौ सम्प्राप्तयौवनौ।
सा अहं पुत्रबलोपेता, स्वामिनम् अत्यमन्यसम्॥40॥
''ततः मे स्वामी क्रुद्धः, सपत्नीं मह्यमानयत्।
सा च गर्भम् अलभत, तस्याः पापम् अचिन्तयम्॥41॥
सा अहं प्रदुष्टमनसा, अकरवम् गर्भपातनम्॥
''तस्याः त्रैमासिकः गर्भः, पूर्वलोहितकः अपतत्॥42॥
''तदस्याः माता कुपिता, मह्यं ज्ञातीन् समानयत्।
शपथं च माम् अकार्षीः, पर्यभाषत च माम्॥43॥
''साहं घोरञ्च शपथम्, मृषावादम् अभाषिषम्।
पुत्रमांसानि खादामि, स चेत् तत् प्रकृतं मया॥44॥

हिन्दी- मेरे दो युवा पुत्र थे जिनके बल के भरोसे मैं अपने स्वामी का अपमान करती थी॥40॥

अतः मेरे स्वामी मुझ पर क्रुद्ध होकर मेरी सौतन ले आए। उसके गर्भिणि होने पर मेरे मन में उसके प्रति पाप उत्पन्न हुआ॥41॥

क्रुद्ध मन से मैंने उसका गर्भपात करा दिया जो अभी पूय एवं रक्त-मिश्रित त्रैमासिक गर्भ था, गिर गया॥42॥

यह सुनकर उसकी माता अत्यन्त कुपित हुई और मेरे सम्मुख सगे सम्बंधियों को एकत्र किया तथा मुझे शपथपूर्वक सत्य बताने को कहा और साथ-साथ अपशब्द भी कहे॥43॥

उसके धमकी के उपरान्त भी मैंने शपथपूर्वक असत्य ही कहा। उसी असत्य व मिथ्याभाषण के परिणामस्वरूप मैं आज अपने ही पुत्रों का मास खा रही हूँ॥44॥

''तस्स कम्मस्स विपाकेन, मुसावादस्स चूभयं।
पुत्तमंसानि खादामि, पुब्बलोहितमक्खिता'' ति॥45॥

सत्तपुत्तखादपेतिवत्थु सत्तमं।

8. गोणपेतवत्थु

''किं नु उम्मत्तरूपोव, लायित्वा हरितं तिणं।
खाद खादाति लपसि, गतसत्तं जरग्गवं॥46॥
''न हि अन्नेन पानेन, मतो गोणो समुट्ठहे।
त्वंसि बालो च दुम्मेधो, यथा तञ्ञोव दुम्मती'' ति॥47॥
''इमे पादा इदं सीसं, अयं कायो सवालधि।
नेत्ता तथेव तिट्ठन्ति, अयं गोणो समुट्ठहे॥48॥
''नाय्यकस्स हत्थपादा, कायो सीसञ्च दिस्सति।
रुदं मत्तिकथूपस्मिं, ननु त्वञ्ञेव दुम्मती'' ति॥49॥

संस्कृतच्छाया- ''तस्य कर्मणः विपाकेन, मृषावादस्य चोभयम्।
पुत्रमांसानि खादामि, पूयलोहितमक्षिता'' इति॥45॥
''किं नु उन्मत्तरूपः इव, लात्वा हरितं तृणम्।
खाद खाद इति लपसि, गतसत्त्वं जरद्गवम्॥46॥
''न हि अन्नेन पानेन, मृतः गौः समुत्तिष्ठेत्।
त्वमसि बालश्च दुर्मेधाः, यथा त्वम् अन्यः इव दुर्मतिः'' इति॥47॥
''इमे पादाः इदं शिरः, अयं कायः सबालधिः।
नेत्रे तथैव तिष्ठतः, अयं गौः समुत्तिष्ठेत्॥48॥
''नायकस्य हस्तपादाः, कायः शिरश्च दृश्यते।
रुदन् मृत्तिकास्तूपे, ननु त्वमेव दुर्मतिः'' इति॥49॥

हिन्दी- उसी अकुशल कर्म और मिथ्याभाषण के परिणामस्वरूप मैं अपने पुत्रों का रक्त एवं पूय-मिश्रित मांस खा रही हूँ॥45॥

तुम मुझे उन्मत्त समान दिखाई दे रहे हो, क्योंकि तुम हरा घास लाकर उस मृत बैल को खाओ-खाओ ऐसा कह रहे हो॥46॥

कभी अन्नपान देने पर मृत बैल भी जीवित हुआ है? तुम उसी बैल के समान दुर्बुद्धि एवं मूर्ख हो॥47॥

इसे भी पैर, सींग हैं, नेत्र एवं पूँछ भी है, इसलिए सम्भवतः यह उठ खड़ा हो॥48॥

किन्तु उसका हाथ, पैर, शिर या शरीर कुछ भी नहीं दिख रहा है जिसके लिए तू इस मृत्तिकास्तूप पर खड़ा होकर विलाप कर रहा है, इसलिए तुम मूर्ख ही लग रहे हो॥49॥

''आदित्तं वत मं सन्तं, घतसित्तंव पावकं।
वारिना विय ओसिञ्चं, सब्बं निब्बापये दरं॥50॥
''अब्बही वत मे सल्लं, सोकं हृदयनिस्सितं।
यो मे सोकपरेतस्स, पितुसोकं अपानुदि॥51॥
''स्वाहं अब्बूळ्हसल्लोस्मि, सीतिभूतोस्मि निब्बुतो।
न सोचामि न रोदामि, तव सुत्वान माणव'॥52॥
एवं करोन्ति सप्पञ्ञा, ये होन्ति अनुकम्पका।
विनिवत्तयन्ति सोकम्हा, सुजातो पितरं यथाति॥53॥
गोणपेतवत्थु अट्ठमं।

9. महापेसकारपेतिवत्थु

''गूथञ्च मुत्तं रुहिरञ्च पुब्बं, परिभुञ्जति किस्स अयं विपाको।
अयं नु किं कम्ममकासि नारी, या सब्बदा लोहितपुब्बभक्खा॥54॥

संस्कृतच्छाया- ''आदीप्तं वत मां सन्तम्, घृतसिक्तम् इव पावकम्।
वारिणा इव अवासिञ्चम्, सर्वं निर्वापयामि दरम्॥50॥
''आवृहत् वत मे शल्यम्, शोकं हृदयनिःसृतम्।
यः मे शोकपरीतस्य, पितृशोकम् अपानुदः॥51॥
''स्वयम् अहम् अव्यूढशल्योस्मि, सीतीभूतास्मि निर्वृता।
न शोचामि न रोदिमि, तव श्रुत्वा माणवक'॥52॥
एवं कुर्वन्ति सम्प्रज्ञाः, ये भवन्ति अनुकम्पकाः।
विनिवर्त्तयन्ति शोकान्, सुजातः पितरं यथा इति॥53॥
''गूथं च मूत्रं रुधिरं च पूयम्, परिभुङ्क्ते कस्य अयम् विपाकः।
अयं नु किं कर्माकार्षीत् नारी, या सर्वदा लोहितपूयभक्ष्या॥54॥

हिन्दी- मैं शोकाग्नि में उसी प्रकार जल रहा था जैसे अग्नि में घृत डालने से वो और धधक उठती है। आपने मेरी इस शोकाग्नि पर शीतल जल रूपी ज्ञान का सिंचन कर उसे सर्वथा शान्त कर दिया॥50॥

तुमने मेरे हृदय से शोकरूपी शल्य(काँटें) को निकाल फेंका है। इस शोकाकुल को अपने पितृशोक से सर्वथा मुक्त करा दिया है॥51॥

इसलिए अब मैं शोकरूपी शल्य से मुक्त हूँ। मेरा मन सर्वथा शान्त हो चुका है। अब मैं न तो शोक करता हूँ न विलाप, यह सब आपके उचित उपदेश का ही सुपरिणाम है॥52॥

प्रज्ञावान् व परहितानुकम्पी जीव ऐसे ही उपकार किया करते हैं वे शोकाकुल जीवों को उसी प्रकार मुक्त करा देते हैं जैसे सुपुत्र अपने पितरों को॥53॥

यह मल, मूत्र का तथा रक्त व पूय का भक्षण किया करती है। किस कर्म का यह फल है, इस नारी ने कौन सा ऐसा पापकर्म किया था कि सदा रक्त और पूय खाती रहती है॥54॥

''नवानि वत्थानि सुभानि चेव, मुदूनि सुद्धानि च लोमसानि।
दिन्नानि मिस्सा कितका भवन्ति, अयं नु किं कम्ममकासि नारी'' ति॥55॥
''भरिया ममेसा अहू भदन्ते, अदायिका मच्छरिनी कदरिया।
सा मं ददन्तं समणब्राह्मणानं, अक्कोसति च परिभासति च॥56॥
'''गूथञ्च मुत्तं रुहिरञ्च पुब्बं, परिभुञ्ज त्वं असुचिं सब्बकालं।
एतं ते परलोकस्मिं होतु, वत्था च ते किटकसमा भवन्तु'।
एतादिसं दुच्चरितं चरित्वा, इधागता चिररत्ताय खादती'' ति॥57॥

महापेसकारपेतिवत्थु नवमं।

10. खल्लाटियपेतिवत्थु

''का नु अन्तोविमानस्मिं, तिट्ठन्ती नूपनिक्खमि।
उपनिक्खमस्सु भद्दे, पस्साम तं बहिट्ठितं'' ति॥58॥

संस्कृतच्छाया- ''नवानि वस्त्राणि शुभानि चैव, मृदूनि शुद्धानि च लौहमांसानि।
दत्तानि मिश्राणि किटकानि भवन्ति, इयं नु किं कर्म अकार्षीत् नारी'' इति॥55॥
''भार्या मम एषा अभूत् भदन्त, अदायिका मत्सरिणी कदर्या।
सा मां ददतं श्रमणब्राह्मणानाम्, आक्रोशति च परिभाषते च॥56॥
गूथं च मूत्रं रुधिरं च पूयम्, परिभुङ्क्ष्व त्वम् अशुचिं सर्वकालम्।
एतत् ते परलोके भवतु, वस्त्राणि च ते किटकसमानि भवन्तु'।
एतादृशं दुश्चरितं चरित्वा, इहागता चिरं रक्तादि खादति'' इति॥57॥
''का नु अन्तर्विमाने, तिष्ठन्ती नोपनिष्क्रामति।
उपनिष्क्रम भद्रे, पश्यामः त्वां बहिः स्थिताम्'' इति॥58॥

हिन्दी- इसे चाहे क्यों न नए शुद्ध, कोमल व स्वच्छ वस्त्र धारण करा दिए जायँ किन्तु इसके धारण करते ही वे कृष्ण वर्णी लौह के समान हो जाते हैं। इस स्त्री ने पूर्व में ऐसा कौन सा पापकर्म किया था? ॥55॥

भन्ते! पूर्व में यह मेरी भार्या थी। यह स्वयं तो दान देने में कंजूसी करती ही थी किन्तु मेरे दानादि करने पर मुझे व श्रमण, ब्राह्मणों को अपशब्द और कटु वचन बोलती थी ॥56॥

अतः मैंने इसे शाप दिया था कि तुझे भी परलोक में मल, मूत्र, रक्त आदि गन्दी चीजें खाने को मिलेंगी और जो भी वस्त्र तुम धारण करोगी वे कीड़े-मकोड़े के समान हो जाएँगे। इस प्रकार वह दुष्कर्मों के परिणामस्वरूप चिरकाल से यहाँ आ कर इन मलिन पदार्थों का भक्षण कर रही है ॥57॥

अयि! तू कौन इस विमान में विराजमान है? बाहर क्यों नहीं आती! भद्रे! बाहर आओ! मैं तुम्हें बाहर खड़ी देखना चाहता हूँ? ॥58॥

''अट्टीयामि हरायामि, नग्गा निक्खमितुं बहि।
केसेहम्हि पटिच्छन्ना, पुञ्ञं मे अप्पकं कतं'' ति॥59॥
''हन्दुत्तरीयं ददामि ते, इदं दुस्सं निवासय।
इदं दुस्सं निवासेत्वा, एहि निक्खम सोभने।
उपनिक्खमस्सु भद्दे, पस्साम तं बहिट्ठितं'' ति॥60॥
''हत्थेन हत्थे ते दिन्नं, न मय्हं उपकप्पति।
एसेत्थुपासको सद्धो, सम्मासम्बुद्धसावको॥61॥
''एतं अच्छादयित्वान, मम दक्खिणमादिस।
तथाहं सुखिता हेस्सं, सब्बकामसमिद्धिनी'' ति॥62॥
तञ्च ते न्हापयित्वान, विलिम्पेत्वान वाणिजा।
वत्थेहच्छादयित्वान, तस्सा दक्खिणमादिसुं॥63॥

संस्कृतच्छाया- ''आर्तीयामि जिह्रेमि, नग्ना निष्क्रमितुं बहिः।
केशैः प्रतिच्छन्ना, पुण्यं मे अल्पकं कृतम्'' इति॥59॥
''हन्त उत्तरीयं ददामि तुभ्यम्, इदं दूश्यं निवासय।
इदं दूश्यं निवास्य, एहि निष्क्रम शोभने।
उपनिष्क्रम भद्रे, पश्यामः त्वां बहिः स्थिताम्'' इति॥60॥
''हस्तेन हस्ते त्वया दत्तम्, न मह्यम् उपकल्पते।
एष अर्थोपासकः सश्रद्धः, सम्यक्सम्बुद्धश्रावकः॥61॥
तथाहं सुखिता भविष्यामि, सर्वकामसमृद्धा'' इति॥62॥
''एतेन आच्छाद्य, मम दक्षिणामादिश।
तां च ते स्नापयित्वा, विलिम्प्य वणिजः।
वस्त्रेण आच्छाद्य, तस्याः दक्षिणामादिदिषुः॥63॥

हिन्दी- मुझे नग्न रूप में बाहर निकलने में लज्जा व संकोच हो रहा है, मेरा शिर भी मुँडा हुआ है, क्योंकि मैनें बहुत कम पुण्यकर्म किया था॥59॥

देवी! मैं तुम्हें वस्त्र देता हूँ, इसे धारण करो! इसे धारण कर शोभने! बाहर आओ॥60॥

भन्ते! आप स्वयं अपने हाथों द्वारा मेरे हाथ पर कुछ दें— ये मेरे लिए उचित नहीं है। आप श्रद्धालु, धर्मोपासक, सम्यक्सम्बुद्ध के श्रावक हैं॥61॥

अतः आप मेरे द्वारा दत्त दक्षिणा का अनुमोदन करें, जिसके प्रभावस्वरूप मैं सुखी होऊँगी तथा मेरे समस्त मनोरथ पूर्ण हो जाएँगे॥62॥

उसके बाद वहाँ उपस्थित सेवकों ने उसे स्नान कराकर गन्ध आदि का लेपन कर वस्त्रों से आच्छादित कर उससे दक्षिणा दिलवाई॥63॥

समनन्तरानुद्दिट्ठे, विपाको उदपज्जथ।
भोजनच्छादनपानीयं, दक्खिणाय इदं फलं॥64॥
ततो सुद्धा सुचिवसना, कासिकुत्तमधारिनी।
हसन्ती विमाना निक्खमि, 'दक्खिणाय इदं फलं'' ति॥65॥
''सुचित्तरूपं रुचिरं, विमानं ते पभासति।
देवते पुच्छिताचिक्ख, किस्स कम्मस्सिदं फलं'' ति॥66॥
''भिक्खुनो चरमानस्स, दोणिनिम्मज्जनिं अहं।
अदासिं उजुभूतस्स, विप्पसन्नेन चेतसा॥67॥
अनुभोमि विमानस्मिं, तञ्च दानि परित्तकं॥68॥
''तस्स कम्मस्स कुसलस्स, विपाकं दीघमन्तरं।

संस्कृतच्छाया- समनन्तरम् अनुद्दिष्टे, विपाक उदपद्यत।
भोजनाच्छादनपानीयम्, दक्षिणाया इदं फलम्॥64॥
ततः शुद्धा शुचिवसना, कौशिकेयोत्तमधारिणी।
हसन्ती विमानात् निरक्रमत्, 'दक्षिणाया इदं फलम्' इति॥65॥
''सुचित्ररूपं रुचिरं विमानं ते प्रभासते।
देवते पृष्टा आचक्ष्व, कस्य कर्मण इदं फलम्'' इति॥66॥
''भिक्षोः चरतः, द्रोणिनिमग्न अहम्।
अदाम् ऋजुभूतस्य, विप्रसन्नेन चेतसा॥67॥
''तस्य कर्मणः कुशलस्य, विपाकं दीर्घमन्तरम्।
अनुभवामि विमाने, तच्च इदानीं परीतम्॥68॥

हिन्दी- तत्क्षण ही उस दान का फल उत्पन्न हुआ। उसके विमान में भोजन, पानी एवं आच्छादनीय वस्तुएँ उपलब्ध हो गईं॥64॥

तब वह शुद्धा नारी, काशी के बने उत्तम व पवित्र वस्त्र धारण कर हँसते हुए विमान से बाहर निकली। उस दक्षिणा का यही फल हुआ॥65॥

आपका यह सुन्दर विमान विविध चित्रों से शोभित, दिव्याभा से जगमगा रहा है। यहाँ मेरी जिज्ञासा है कि आपके किस कर्म का यह फल है?॥66॥

पूर्व में मैंने मेरे घर पर आए भिक्षु को भिक्षास्वरूप प्रसन्नतापूर्वक पूड़ी प्रदान की॥67॥

उसी कुशल कर्म का यह फल हुआ कि मैं दीर्घ-काल से इस विमान में सुख भोग रही हूँ, किन्तु अब थोड़ा समय ही शेष है॥68॥

''ऊद्धं चतूहि मासेहि, कालंकिरिया भविस्सति।
एकन्तकटुकं घोरं, निरयं पपतिस्सहं॥69॥
''चतुक्कण्णं चतुद्वारं, विभत्तं भागसो मितं।
अयोपाकारपरियन्तं, अयसा पटिकुज्जितं॥70॥
''तस्स अयोमया भूमि, जलिता तेजसा युता।
समन्ता योजनसतं, फरित्वा तिट्ठति सब्बदा॥71॥
''तत्थाहं दीघमद्धानं, दुक्खं वेदिस्स वेदनं।
फलञ्च पापकम्मस्स, तस्मा सोचामहं भुसं'' ति॥72॥

खल्लाटियपेतिवत्थु दसमं।

11. नागपेतवत्थु

''पुरतोव सेतेन पलेति हत्थिना, मज्झे पन अस्सतरीरथेन।
पच्छा च कञ्ञा सिविकाय नीयति, ओभासयन्ती दस सब्बतो दिसा॥73॥

संस्कृतच्छाया- ''ऊर्ध्वं चतुर्भ्यः मासेभ्यः, कालक्रिया भविष्यति।
एकान्तकटुकं घोरम्, निरयं प्रतिपत्स्ये अहम्॥69॥
''चतुष्कोणं चतुर्द्वारम्, विभक्तं भागशः मितम्।
अयःप्राकारपर्यन्तम्, अयसा प्रतिकुब्जितम्॥70॥
''तस्य अयोमयी भूमिः, ज्वलिता तेजसा युता।
समन्ताद् योजनशतम्, स्फुरित्वा तिष्ठति सर्वदा॥71॥
''तत्र अहं दीर्घमध्वानम्, दुःखं वेदिष्यामि वेदनाम्।
फलं च पापकर्मणः, तस्मात् शोचामि अहं भृशम्'' इति॥72॥
''पुरतः इव श्वेतेन पलायते हस्तिना, मध्ये पुनः अश्वतरीरथेन।
पश्चात् च कन्या शिविकायां नीयते, आभासयन्ती दश सर्वतः दिशः॥73

हिन्दी- चार महीने बाद मेरी मृत्यु हो जाएगी तत्पश्चात् एकान्त, कटुफलदायी नरक में मेरा देहपात हो जाएगा॥69॥

यह चार भागों में विभक्त है तथा समान भागों में निर्मित है। इसके चारों ओर लोहे के प्राकार (दीवार) है तथा इसकी छत भी लोहे की बनी हुई॥70॥

उसकी लौहमयी भूमि अंगारों से जलती रहती है। यह नरक भूमि चारों ओर शत योजन क्षेत्रफल वाली है॥71॥

वहाँ मैं अपने पाप कर्मों के फलस्वरूप दीर्घ काल तक दुःख वेदना को भोगूँगी। यही मेरी चिन्ता का विषय है॥72॥

सबसे आगे वाला हाथी पर बैठा है मध्य अश्वों से सजे रथ पर आरूढ है पीछे चलने वाली कन्या समस्त दशों दिशाओं को अवभासित करती हुई पालकी पर आरूढ़ हो चल रही है॥73॥

''तुम्हे पन मुग्गरहत्थपाणिनो, रुदंमुखा छिन्नपभिन्नगत्ता।
मनुस्सभूता किमकत्थ पापं, येनञ्ञमञ्ञस्स पिवाथ लोहितं'' ति॥74॥
अम्हाक पुत्तो अहु जेट्ठको सो, दानानि दत्वान सुखी पमोदति॥75॥
''या सा च पच्छा सिविकाय नीयति, नारी सपञ्ञा मिगमन्दलोचना।
''यो सो मज्झे अस्सतरीरथेन, चतुब्भि युत्तेन सुवग्गितेन।
अम्हाक पुत्तो अहु मज्झिमो सो, अमच्छरी दानवती विरोचति॥76॥
''पुरतोव यो गच्छति कुञ्जरेन, सेतेन नागेन चतुक्कमेन।
अम्हाक धीता अहु सा कनिट्ठिका, भागड्ढभागेन सुखी पमोदति॥77॥
''एते च दानानि अदंसु पुब्बे, पसन्नचित्ता समणब्राह्मणानं।
मयं पन मच्छरिनो अहुम्ह, परिभासका समणब्राह्मणानं।
एते च दत्वा परिचारयन्ति, मयञ्च सुस्साम नळोव छिन्नो'' ति॥78॥

संस्कृतच्छाया- ''यूयं पुनः मुद्गरहस्तप्राणिनः, रुदन्मुखाः छिन्नप्रभिन्नगात्राः।
मनुष्यभूताः किम् अकुरुत पापम्, येन अन्योऽन्यस्य पिबथ लोहितम्'' इति॥74॥
''पुरत इव यः गच्छति कुञ्जरेण, श्वेतेन नागेन चतुष्क्रमेण।
अस्माकं पुत्रः अभूद् ज्येष्ठकः सः, दानानि दत्वा सुखी प्रमोदते॥75॥
''यः सः मध्ये अश्वतरीरथेन, चतसृभिः युतेन सुवल्गिताभिः।
अस्माकं पुत्रः अभूद् मध्यमः सः, अमत्सरी दानव्रती विरोचते॥76॥
''या सा च पश्चात् शिविकायां नीयते, नारी सप्रज्ञा मृगमन्दलोचना।
अस्माकं पुत्री अभूत् सा कनिष्ठिका, भागार्धभागेन सुखिनी प्रमोदते॥77॥
''एते च दानानि अदुः पूर्वे, प्रसन्नचित्ताः श्रमणब्राह्मणेभ्यः।
वयं पुनः मत्सरिणः अभूम, परिभाषकाः श्रमणब्राह्मणानाम्।
एते च दत्वा परिचरन्ति, वयं च शुष्यामः नडः इव छिन्नाः'' इति॥78॥

हिन्दी- आप सभी मुद्गर हाथ में लेकर, कटे-पिटे, रूदन करते हुए, मनुष्यरूप में ऐसा कौन-सा पापकर्म किया था कि एक दूसरे का रक्त पी रहे हैं॥74॥

इनमें सबसे पहले वाला सफेद हाथी पर चढकर चल रहा है वह मेरा ज्येष्ठ पुत्र था, पूर्व में दानादि पुण्यकर्म के द्वारा यहाँ भी सुख भोग रहा है॥75॥

मध्य में विशेष प्रकार की घोड़ियों से जुते रथ पर मेरा मध्य पुत्र है जो पूर्व में कंजूसी का त्यागकर खुले हाथों से दानादि पुण्यकर्म के फलस्वरूप ही यहाँ सुख भोग रहा है॥76॥

वह जो पीछे से पालकी पर जा रही है, वह बुद्धिमती एवं मृगनयनी मेरी कनिष्ठ पुत्री है, इसने आधे भाग का दान किया और उसी के फलस्वरूप सुख भोग रही है॥77॥

''किं तुम्हाकं भोजनं किं सयानं, कथञ्च यापेथ सुपापधम्मिनो।
पहूतभोगेसु अनप्पकेसु, सुखं विराधाय दुक्खञ्ज पत्ता'' ति॥79॥
''अञ्ञमञ्ञं वधित्वान, पिवाम पुब्बलोहितं।
बहुं पित्वा न धाता होम, नच्छादिम्हसे मयं॥80॥
''इच्चेव मच्चा परिदेवयन्ति, अदायका पेच्च यमस्स ठायिनो।
ये ते विदिच्च अधिगम्म भोगे, न भुञ्जरे नापि करोन्ति पुञ्ञं॥81॥
''ते खुप्पिपासूपगता परत्थ, पच्छा चिरं झायरे डय्हमाना।
कम्मानि कत्वान दुखुद्रानि, अनुभोन्ति दुक्खं कटुकप्फलानि॥82॥
''इत्तरं हि धनं धञ्ञं, इत्तरं इध जीवितं।
इत्तरं इत्तरतो ञत्वा, दीपं कयिराथ पण्डितो॥83॥

संस्कृतच्छाया- ''किं युष्माकं भोजनं किं शयनम्, कथम् च यापयथ सुपापधर्माणः।
प्रभूतभोग्येषु अनल्पकेषु, सुखं विराध्य दुःखमद्य प्राप्ताः'' इति॥79॥
''अन्यमन्यं हत्वा, पिबाम पूर्वलोहितम्।
बहु पीत्वा न तृप्ताः भवामः, न आच्छाद्यामहे वयम्॥80॥
''इत्येव मर्त्याः परिदेवयन्ति, अदायकाः प्रेत्य यमस्य स्थानिनः।
ये ते विदित्वा अधिगत्य भोगम्, न भुञ्जते नापि कुर्वन्ति पुण्यम्॥81॥
''ते क्षुत्पिपासोपगताः परत्र, पश्चात् चिरं क्षीयन्ते दह्यमानाः।
कर्माणि कृत्वा दुःखोदर्काणि, अनुभवन्ति दुःखं कटुकफलानि॥82॥
''इतरत् हि धनं धान्यम्, इतरत् इह जीवितम्।
इतरत् इतरतः ज्ञात्वा, दीपं करोति पण्डितः॥83॥

हिन्दी- इन्होंने अपने पूर्व जन्म में प्रसन्न मन से श्रमण-ब्राह्मणों को दान दिया था किन्त हम कंजूस थे और श्रमण ब्राह्मणों को अपशब्दादि का भी प्रयोग करते थे। इसी के परिणामस्वरूप हम सूखे-कटे पेड़ के समान सूखते जा रहे हैं और वे दिनों दिन सुखी होते जा रहे हैं॥78॥

हे सुपापधर्मिणी! आजकल आप लोगों का भोजन क्या है? सोना, उठना तथा बैठना किस प्रकार चल रहा है? यह प्रचुर काम भोगों के रहते हुए भी सुखी न रहकर आज दुःखों को भोग रही है॥79॥

एक दूसरे का वध कर और एक दूसरे का रक्त व पूय अत्यधिक मात्रा में पीने पर भी हमारी तृषा शान्त नहीं होती और पहनने, ढकने के लिए वस्त्र भी नहीं मिलता॥80॥

दान न करने वाले जीव देहपात के बाद यमलोक पहुँच कर वहाँ विपुल कामभोगों के रहते हुए भी उनका भोग नहीं कर पाते, न कोई पुण्यकर्म करने की बात ही सोचते हैं। केवल अपनी मृत्यु पर विलाप करते रहते हैं॥81॥

वे परलोक में भूख-प्यास से पीडित रहते हुए, उनके कारण उद्विग्न रहते हुए भी दुःखोत्पादक कर्मों में लिप्त रहते हुए कटुफल भोगते हैं॥82॥

धन धान्य भी कम हो, यहाँ जीवन भी कम हो, इस कमी से उस कमी का मूल्याँकन करता हुआ बुद्धिमान् स्वयं के लिये प्रकाश खोजता है॥83॥

''ये ते एवं पजानन्ति, नरा धम्मस्स कोविदा।
ते दाने नप्पमज्जन्ति, सुत्वा अरहतं वचो'' ति॥84॥
नागपेतवत्थु एकादसमं।

12. उरगपेतवत्थु

''उरगोव तचं जिण्णं, हित्वा गच्छति सन्तनुं।
एवं सरीरे निब्भोगे, पेते कालङ्कते सति॥85॥
''डय्हमानो न जानाति, ञातीनं परिदेवितं।
तस्मा एतं न रोदामि, गतो सो तस्स या गति''॥86॥
''अनब्भितो ततो आगा, नानुञ्ञातो इतो गतो।
यथागतो तथा गतो, तत्थ का परिदेवना॥87॥
''डय्हमानो न जानाति, ञातीनं परिदेवितं।
तस्मा एतं न रोदामि, गतो सो तस्स या गति''॥88॥

संस्कृतच्छाया- ''ये ते एवं प्रजानन्ति, नराः धर्मस्य कोविदाः।
ते दाने न प्रमाद्यन्ति, श्रुत्वा अर्हतं वचः'' इति॥84॥
''उरगः इव त्वचं जीर्णाम्, हित्वा गच्छति सन्तनोति।
एवं शरीरे निर्भोगे, प्रेते कालगते सति॥85॥
तस्मात् एतं न रोदिमि, गतः सः तस्य या गतिः''॥86॥
''दह्यमानः न जानाति, ज्ञातीनां परिदेवनाम्।
''अनाहूतः ततः आगात्, अननुज्ञातः इतः गतः।
यथागतः तथा गतः, तत्र का परिदेवना॥87॥
''दह्यमानः न जानाति, ज्ञातीनां परिदेवनाम्।
तस्मात् एतं न रोदिमि, गतः सः तस्य या गतिः''॥88॥

हिन्दी- जो धर्मज्ञ पुरुष ऐसा ठीक से जानते हैं वे अर्हतों(ज्ञानियों) के वचन(धर्मोपदेश) सुनकर अप्रमादपूर्वक(अनालस्य) दानादि कर्मों में लगे रहते हैं॥84॥

जैसे कोई सर्प अपनी जीर्ण त्वचा(केंचुली) का त्याग कर आगे बढ़ जाता है, वैसे ही कोई पुरुष भी, मृत्यु समीप आने पर, अपने इस जीर्ण एवं व्यर्थ हुए शरीर का त्याग कर चला जाता है॥85॥

अपने पूर्वकृत पापवश जलता हुआ, अपने सम्बन्धिजनों का रोना-कलपना नहीं जान पाता। इस लिए मैं इन मृतकों के प्रति नहीं रोता; क्योंकि जो जिसकी गति वह तो होगी ही॥86॥

हमने उससे यहाँ आने के लिये नहीं कहा फिर भी वह यहाँ आया; तथा यहाँ से जाने के लिये नहीं कहा फिर भी यहाँ से गया। जिस प्रकार आया उसी प्रकार चला गया— इसमें क्या रोना क्या चिल्लाना॥87॥

अपने पूर्वकृत पापवश जलता हुआ, अपने सम्बन्धिजनों का रोना कलपना नहीं जान पाता। इस लिए मैं इन मृतकों के प्रति नहीं रोता; क्योंकि जो जिसकी गति वह तो होगी ही॥88॥

''सचे रोदे किसा अस्सं, तत्थ मे किं फलं सिया।
ञातिमित्तसुहज्जानं, भिय्यो नो अरती सिया॥89॥
''डय्हमानो न जानाति, ञातीनं परिदेवितं।
तस्मा एतं न रोदामि, गतो सो तस्स या गति''॥90॥
''यथापि दारको चन्दं, गच्छन्तमनुरोदति।
एवं सम्पदमेवेतं, यो पेतमनुसोचति॥91॥
''डय्हमानो न जानाति, ञातीनं परिदेवितं।
तस्मा एतं न रोदामि, गतो सो तस्स या गति''॥92॥
''यथापि ब्रह्मे उदकुम्भो, भिन्नो अप्पटिसन्धियो।
एवं सम्पदमेवेतं, यो पेतमनुसोचति॥93॥

संस्कृतच्छाया- ''स चेत् रोदिमि कृशः अस्रम्, तत्र मे किं फलं स्यात्।
ज्ञातिमित्रसुहृदाम्, भूयो नः अर्तिः स्यात्॥89॥
''दह्यमानो न जानाति, ज्ञातीनां परिदेवनाम्।
तस्मात् एतं न रोदिमि, गतः सः तस्य या गतिः''॥90॥
''यथापि दारकः चन्द्रम्, गच्छन्तमनुरोदिति।
एवं सम्पदाम् इव एतम्, यः प्रेतम् अनुशोचति॥91॥
''दह्यमानः न जानाति, ज्ञातीनां परिदेवनाम्।
तस्मात् एतं न रोदिमि, गतः सः तस्य या गतिः''॥92॥
''यथापि ब्रह्मे उदकुम्भः, भिन्न अप्रतिसन्धितः।
एवं सम्पदाम् इव एतम्, यः प्रेतम् अनुशोचति॥93॥

हिन्दी- यदि मैं रोऊँ तो कृशता(निर्बलता) के अतिरिक्त मुझको अन्य क्या फल मिलेगा! अपितु मेरे इस रुदन से मेरे ज्ञाति, मित्र एवं सुहृत् जनों को भी कष्ट ही होगा89॥

अपने पूर्वकृत पापवश जलता हुआ जीव, अपने सम्बन्धिजनों का रोना कलपना नहीं जान पाता। इस लिए मैं इन मृतकों के प्रति नहीं रोता; क्योंकि जो जिसकी गति वह तो होगी ही॥90॥

जिस प्रकार चन्द्रमा पाने के लिए बालक व्यर्थ रुदन करता है। उसी प्रकार प्रेतों के प्रति रुदन व्यर्थ है॥91॥

अपने पूर्वकृत पापवश जलता हुआ, अपने सम्बन्धिजनों का रोना कलपना नहीं जान पाता। इस लिए मैं इन मृतकों के प्रति नहीं रोता; क्योंकि जो जिसकी गति वह तो होगी ही॥92॥

जैसे कोई जल से भरा घट किसी कारणवश टूट-फूट जाय, उस प्रेत का देहपात भी ऐसा ही है। इसके लिये कोई रोता नहीं॥93॥

''डय्हमानो न जानाति, ञातीनं परिदेवितं।
तस्मा एतं न रोदामि, गतो सो तस्स या गती'' ति॥94॥

उरगपेतवत्थु द्वादसमं।
उरगवग्गो पठमो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं –

खेत्तञ्च सूकरं पूति, पिट्ठं चापि तिरोकुट्टं।
पञ्चापि सत्तपुत्तञ्च, गोणं पेसकारकञ्च।
तथा खल्लाटियं नागं, द्वादसं उरगञ्चेवाति॥

संस्कृतच्छाया- ''दह्यमानः न जानाति, ज्ञातीनां परिदेवनाम्।
तस्मात् एतं न रोदिमि, गतः सः तस्य या गतिः''॥94॥

तस्योद्दानम् –
क्षेत्रं च शूकरं पूति, पृष्ठं च अपि तिरःकुड्यम्।
पञ्चापि सप्तपुत्रं च, गोणं पेसकारकं च।
तथा खल्वाटियं नागम्, द्वादशम् उरगं चैव इति॥

हिन्दी- अपने पूर्वकृत पापवश जलता हुआ प्राणि अपने सम्बन्धिजनों का रोना कलपना नहीं जान पाता। इस लिए मैं इन मृतकों के प्रति नहीं रोता; क्योंकि जो जिसकी गति वह तो होगी ही॥94॥

****

2. उब्बरिवग्गो

1.संसारमोचकपेतिवत्थु

''नग्गा दुब्बण्णरूपासि, किसा धमनिसन्थता।

उप्फासुलिके किसिके, का नु त्वं इध तिट्ठसी'' ति॥95॥

''अहं भदन्ते पेतीम्हि, दुग्गता यमलोकिका।

पापकम्मं करित्वान, पेतलोकं इतो गता'' ति॥96॥

''किं नु कायेन वाचाय, मनसा दुक्कटं कतं।

किस्स कम्मविपाकेन, पेतलोकं इतो गता'' ति॥97॥

''अनुकम्पका मय्हं नाहेसुं भन्ते, पिता च माता अथवापि ञातका।

ये मं नियोजेय्युं ददाहि दानं, पसन्नचित्ता समणब्राह्मणानं॥98॥

संस्कृतच्छाया- ''नग्ना दुर्वर्णरूपासि, कृशा धमनीसंस्थिता।

गुल्फपार्श्वास्थिनी कृशिके, का नु त्वम् इह तिष्ठसि'' इति॥95॥

''अहं भदन्त प्रेता अस्मि, दुर्गता यमलौकिका।

पापकर्म कृत्वा, प्रेतलोकम् इतः गता'' इति॥96॥

''किं नु कायेन वाचा, मनसा दुष्कृतं कृतम्।

कस्य कर्मविपाकेन, प्रेतलोकम् इतः गता'' इति॥97॥

''अनुकम्पकाः मह्यं न आसन् भदन्त, पिता च माता अथवा अपि ज्ञातयः।

ये मां नियोजयेयुः दद दानम्, प्रसन्नचित्ताः श्रमणब्राह्मणेभ्यः॥98॥

हिन्दी- तुम नग्न हो, तुम कुरूपा हो, कृशा(दुर्बल) एवं धमनियों से आवृत तुम इतनी दुर्बल हो कि तुम्हारी प्रत्येक पार्श्वास्थि(पसली) गिनी जा सकती है। यहाँ खड़ी हुई तुम कौन हो? ॥95॥

भन्ते! मैं प्रेती हूँ। दुर्गतिवश इस यमलोक को प्राप्त हुई हूँ। पापकर्म कर मैं इस लोक से मृत्युलोक पहुँची हूँ ॥96॥

काय वचन एवं मन से तुमने कौन से दुष्कृत्य किये हैं जिनके परिणामस्वरूप तुम इस लोक से प्रेतलोक में आ पहुँची हो? ॥97॥

भन्ते! मेरे माता पिता या सगे सम्बन्धी मुझ पर दयालु नहीं हुए, जो मुझको कभी प्रसन्नचित्त होकर श्रमण-ब्राह्मणों के प्रति दान करने की शिक्षा देते॥98॥

''इतो अहं वस्ससतानि पञ्च, यं एवरूपा विचरामि नग्गा।
खुदाय तण्हाय च खज्जमाना, पापस्स कम्मस्स फलं ममेदं॥99॥
''वन्दामि तं अय्य पसन्नचित्ता, अनुकम्प मं वीर महानुभाव।
दत्वा च मे आदिस यं हि किञ्चि, मोचेहि मं दुग्गतिया भदन्ते'' ति॥100॥
साधूति सो पटिस्सुत्वा, सारिपुत्तोनुकम्पको।
भिक्खूनं आलोपं दत्वा, पाणिमत्तञ्च चोळकं।
थालकस्स च पानीयं, तस्सा दक्खिणमादिसि॥101॥
समनन्तरानुद्दिट्ठे, विपाको उदपज्जथ।
भोजनच्छादनपानीयं, दक्खिणाय इदं फलं॥102॥
ततो सुद्धा सुचिवसना, कासिकुत्तमधारिनी।
विचित्तवत्थाभरणा, सारिपुत्तं उपसङ्कमि॥103॥

संस्कृतच्छाया- ''इतः अहं वर्षशतानि पञ्च, यत् एवंरूपा विचरामि नग्ना।
क्षुधया तृष्णया च खिद्यमाना, पापस्य कर्मणः फलं मम इदम्॥99॥
''वन्दे त्वाम् आर्य प्रसन्नचित्ता, अनुकम्पस्व मां वीर महानुभाव।
दत्वा च मे आदिश यद् हि किञ्चित्, मोचय मां दुर्गत्याः भदन्त'' इति॥100॥
साधु इति सः प्रतिश्रुत्य, सारिपुत्राऽनुकम्पकः।
भिक्षुभ्यः आलोपं दत्वा, प्राणिमात्रं च चैलकम्।
स्थाल्यां च पानीयम्, तस्यै दक्षिणाम् आदिशत्॥101॥
समनन्तरानुद्दिष्टे, विपाक उदपद्यत।
भोजनाच्छादनपानीयम्, दक्षिणायाः इदं फलम्॥102॥
ततः शुद्धा शुचिवसना, काशिकोत्तमधारिणी।
विचित्रवस्त्राभरणा, शारिपुत्रम् उपसमाक्रामत॥103॥

हिन्दी- ये जो रूप है, उसमे मैं पाँच सौ वर्षों से क्षुधा एवं तृष्णा से व्याकुल रहती हुई नग्न घूम रही हूँ। यह मेरे उस पापकर्म का ही फल है॥99॥

भन्ते! मैं प्रसन्नचित होकर आपसे वन्दना करती हूँ कि हे ऋद्धिसम्पन्न! हे साधनावीर! आप मुझ पर कृपा करते हुए मुझे कुछ वस्तुदान करके इस दुर्गति से मुक्त करें॥100॥

उन अनुकम्पक सारिपुत्र ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर उसे अपनी भिक्षा में से एक आहारपिण्ड एवं एक हाथ वस्त्र(चैळक) देकर तथा जलपात्र से जल पिलाकर उसके नाम सङ्कल्प (दक्षिणा) किया॥101॥

सारिपुत्र द्वारा कृत इस अनुपम दानस्वरूप तत्क्षण ही उसका सत्परिणाम प्रकट हुआ। वह स्थान खाने पीने पहनने योग्य पदार्थों से आच्छादित हो गया॥102॥

वहाँ शुद्ध, स्वच्छ वस्त्र, उत्तम काशिकेय तथा विचित्र वस्त्रों व आभूषणों से विभूषित होकर वह स्त्री सारिपुत्र के सम्मुख आयी॥103॥

''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥104॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥105॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥106॥
''उप्पण्डुकिं किसं छातं, नग्गं सम्पतितच्छविं।
मुनि कारुणिको लोके, तं मं अद्दक्खि दुग्गतं॥107॥
''भिक्खूनं आलोपं दत्वा, पाणिमत्तञ्च चोळकं।
थालकस्स च पानीयं, मम दक्खिणमादिसि॥108॥

संस्कृतच्छाया- ''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीरिव तारकाः॥104॥
''केन ते तादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥105॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥106॥
''उत्पाण्डुरोगां कृशां क्षान्तां, नग्नां सम्पतितच्छविम्।
मुने कारुणिकः लोके, त्वं माम् अद्राक्षीर्दुर्गताम्॥107॥
''भिक्षुभ्य आलोपं दत्वा, प्राणिमात्राय च चैलकम्।
स्थाल्याश्च पानीयम्, मां दक्षिणाम् आदिशः॥108॥

हिन्दी- देवी! आप अपने कान्तिपूर्ण वर्ण से समस्त दिशाओं को इस प्रकार अवभासित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को॥104॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग–उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥105॥

देवि मेरी आपसे यही जिज्ञासा है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्णाभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥106॥

हे कारुणिक मुने! कुछ समय पूर्व आपने मुझको पीली पड़ी हुई, कृश, भूखी प्यासी, नग्न, कान्तिविहीन एवं दुर्गतिप्राप्त के रूप में देखा था॥107॥

आपने ही मुझको उद्देश्य कर अपनी भिक्षा का एक अंश, आहार पिण्ड, एक पुराना वस्त्र तथा एक पात्र में पीने के लिये जल दानरूप में देने का आदेश दिया था॥108॥

''आलोपस्स फलं पस्स, भत्तं वस्ससतं दस।
भुञ्जामि कामकामिनी, अनेकरसब्यञ्जनं॥109॥
''पाणिमत्तस्स चोळस्स, विपाकं पस्स यादिसं।
यावता नन्दराजस्स, विजितस्मिं पटिच्छदा॥110॥
''ततो बहुतरा भन्ते, वत्थानच्छादनानि मे।
कोसेय्यकम्बलीयानि, खोमकप्पासिकानि च॥111॥
''विपुला च महग्घा च, तेपाकासेवलम्बरे।
साहं तं परिदहामि, यं यं हि मनसो पियं॥112॥
''थालकस्स च पानीयं, विपाकं पस्स यादिसं।
गम्भीरा चतुरस्सा च, पोक्खरञ्ञो सुनिम्मिता॥113॥

संस्कृतच्छाया- ''आलोपस्य फलं पश्य, भक्तं वर्षशतं दश।
भोक्ष्यामि कामकामिनी, अनेकरसब्यञ्जनम्॥109॥
''प्राणिमात्रस्य चैलस्य, विपाकं पश्य यादृशम्।
यावन्तः नन्दराज्ञः, विजिते प्रतिच्छदाः॥110॥
''ततः बहुतराणि भदन्त, वस्त्राण्याच्छादनानि मे।
कौशेयकम्बलादीनि, क्षौमकार्पासिकानि च॥111॥
''विपुलानि च महार्घाणि च, तेप्याकाशमिव लम्बिते।
साहं तत् परिदधामि, यद् यद्धि मनसः प्रियम्॥112॥
''स्थाल्याश्च पानीयम्, विपाकं पश्य यादृशम्।
गम्भीराश्चतुरस्राश्च, पुष्करिण्यः सुनिर्मिताः॥113॥

हिन्दी- उस पिण्डदान का फल देखें कि मैं अब एक हजार वर्षों तक अनेक प्रिय एवं अनुकूल कामभोगों का उपभोग करती हुई अनेक रसों एवं व्यञ्जनों से युक्त भोजन प्राप्त करती रहूँगी॥109॥

तब उस तौलिये के माप भर वस्त्रखण्ड के दान का परिणाम देखें कि इस नन्द राजा के समस्त राज्य में जो भी वस्त्रराशि है-॥110॥

भदन्त! उससे भी अधिक ओढ़ने, बिछाने तथा पहनने के रेशमी, ऊनी, सूती, सुन्दर एवं महार्घ वस्त्र- ॥111॥

मेरे इस महल में बहुमूल्य और आकाश के समान विशाल विपुल मात्रा में पड़े हुए हैं जिनमें से जो-जो भी मेरे मनोनुकूल हैं उन वस्त्रों को मैं यथेच्छ धारण करती रहती हूँ॥112॥

तथा आपके द्वारा आदिष्ट उस जलदान का परिणाम देखें कि इस महल के चारों ओर अनेक गम्भीर एवं चतुष्कोण पुष्करिणियाँ सुनिर्मित हैं॥113॥

''सेतोदका सुप्पतित्था, सीता अप्पटिगन्धिया।
पदुमुप्पलसञ्छन्ना, वारिकिञ्जक्खपूरिता॥114॥
''साहं रमामि कीळामि, मोदामि अकुतोभया।
मुनिं कारुणिकं लोके, भन्ते वन्दितुमागता'' ति॥115॥

संसारमोचकपेतिवत्थु पठमं।

2. सारिपुत्तत्थेरमातुपेतिवत्थु

''नग्गा दुब्बण्णरूपासि, किसा धमनिसन्थता।
उप्फासुलिके किसिके, का नु त्वं इध तिट्ठसि''॥116॥
''अहं ते सकिया माता, पुब्बे अञ्ञासु जातीसु।
उपपन्ना पेतिविसयं, खुप्पिपाससमप्पिता॥117॥
''छड्डितं खिपितं खेळं, सिङ्घाणिकं सिलेसुमं।
वसञ्च डय्हमानानं, विजातानञ्च लोहितं॥118॥

संस्कृतच्छाया- ''श्वेतोदकाः सुप्रतिष्ठाः, शीताः अप्रतिमगन्धकाः।
पद्मोत्पलसंछन्नाः, वारिकिञ्जल्कपूरिताः॥114॥
''साहं रमे क्रीडामि, मोदे अकुतोभया।
मुनिं कारुणिकं लोके, भदन्त वन्दितुमागता'' इति॥115॥
''नग्ना दुर्वर्णरूपासि, कृशा धमनीसंस्थिता।
गुल्फपार्श्वास्थिनी कृशिके, का नु त्वम् इह तिष्ठसि''॥116॥
''अहं ते स्वकीया माता, पूर्वम् अन्यासु जातिषु।
उपपन्ना प्रेतविषयम्, क्षुत्पिपासासमर्पिता॥117॥
''छर्दितं क्षिप्तं क्ष्वेडम्, सिङ्घाणकं श्लेष्माणम्।
वसां च दह्यमानानाम्, विजातानां च लोहितम्॥118॥

हिन्दी- जो स्वच्छ(श्वेत) एवं सुन्दर तट वाले तथा शीत और सुगन्धित जल वाले हैं, जिनमें कमल के फूल खिले हुए हैं तथा उन फूलों के केशर(किञ्जल्क) जल में भरे रहते हैं॥114॥

भन्ते! मैं निर्भय होकर यहाँ रमण तथा क्रीड़ा, करती हुई प्रमुदित रहती हूँ। मैं इस लोक में आप करुणासागर मुनि की वन्दना करने आयी हूँ॥115॥

तुम नग्न(निर्वस्त्र) हो, तुम्हारा शरीर कुरूप, कृश एवं धमनियों से आवृत(ढका हुआ) है, तुम्हारी प्रत्येक पार्श्वास्थि(पसली) उभरी हुई है। यहाँ खड़ी हुई तुम कौन हो?॥116॥

मैं तुम्हारी अपनी माता हूँ। पूर्व में अनेक जातियों(योनियों) में जन्म लेती हुई अब इस प्रेतलोक में उत्पन्न हुई भूखी प्यासी पड़ी हुई हूँ॥117॥

यहाँ दूसरों का फेंका हुआ खँखार (क्ष्वेड=कफ), नाक, का मैल (सिङ्घाणक), कफ, तथा जलते हुए शवों की वसा(चर्बी) तथा बच्चे जनने वाली स्त्रियों का रक्त-॥118॥

''वणिकानञ्च यं घान-सीसच्छिन्नान लोहितं।
खुदापरेता भुञ्जामि, इत्थिपुरिसनिस्सितं॥119॥
''पुब्बलोहितं भक्खामि, पसूनं मानुसान च।
अलेणा अनगारा च, नीलमञ्चपरायणा॥120॥
''देहि पुत्तक मे दानं, दत्वा अन्वादिसाहि मे।
अप्पेव नाम मुच्चेय्यं, पुब्बलोहितभोजना'' ति॥121॥
मातुया वचनं सुत्वा, उपतिस्सोनुकम्पको।
आमन्तयि मोग्गल्लानं, अनुरुद्धञ्च कप्पिनं॥122॥
चतस्सो कुटियो कत्वा, सङ्घे चातुद्दिसे अदा।
कुटियो अन्नपानञ्च, मातु दक्खिणमादिसी॥123॥

संस्कृतच्छाया- ''वणिजां च यद् घ्राणशीर्षच्छिन्नानां लोहितम्।
क्षुधापरीता भुनज्मि, स्त्रीपुरुषनिस्सृतम्॥119॥
''पूयलोहितं भक्षयामि, पशूनां मानुषाणां च।
अलेणा अनागारा च, नीलमञ्चपरायणा॥120॥
''देहि पुत्रक मे दानम्, दत्वा अन्वादिश माम्।
अल्पमेव नाम मुच्च्ये, पूयलोहितभोजनात्'' इति॥121॥
मातुः वचनं श्रुत्वा, उपातिष्ठत् अनुकम्पकः।
आमन्त्रयद् मौद्गल्यायनम्, अनुरुद्धं च कप्पिनम्॥122॥
चतस्रः कुटीः कृत्वा, सङ्घाय चतुर्दिक्षु अदात्।
कुटीः अन्नपानं च, मातुः दक्षिणामादिशत्॥123॥

हिन्दी- कटे हुए सिर या नाक आदि वाले स्त्री और पुरुष व्यापारियों का रक्त पीकर अपनी भूख शान्त करती हूँ॥119॥

और मैं पशुओं व मनुष्यों का पूय एवं रक्त पीकर घरबार-रहित इस नीले आकाश के नीचे पड़ी रहती हूँ॥120॥

पुत्र! तूँ मेरे लिए दान दे और दान देकर उसका अनुमोदन कर। जिससे इस मलिन पूय एवं रक्त के भोजन से मुझको शीघ्र ही मुक्ति मिल सके॥121॥

सारिपुत्रस्थविर ने अपनी माता के वचन सुनकर, उस पर अनुकम्पा करते हुए, मौद्गल्यायन, अनुरुद्ध एवं कप्पिन— इन तीनों भिक्षुओं को आमन्त्रित किया॥122॥

वहाँ चारो दिशाओं में चार कुटियाँ बनवाकर आगत भिक्षुसङ्घ को कुटी व अन्नपान का दान किया साथ ही माता के लिये उसका अनुमोदन भी किया॥123॥

समनन्तरानुद्दिट्ठे, विपाको उदपज्जथ।
भोजनं पानीयं वत्थं, दक्खिणाय इदं फलं॥124॥
ततो सुद्धा सुचिवसना, कासिकुत्तमधारिनी।
विचित्तवत्थाभरणा, कोलितं उपसङ्कमि॥125॥
''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥126॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥127॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥128॥
''सारिपुत्तस्साहं माता, पुब्बे अञ्ञासु जातीसु।
उपपन्ना पेतिविसयं, खुप्पिपाससमप्पिता॥129॥

संस्कृतच्छाया- समनन्तरम् उद्दिष्टे, विपाक उदपद्यत।
भोजनं पानीयं वस्त्रम्, दक्षिणाया इदं फलम्॥124॥
ततः शुद्धा शुचिवसना, काशिकेयोत्तमधारिणी।
विचित्रवस्त्राभरणा, कोलितम् उपसमक्रामत॥125॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीः इव तारकाः॥126॥
''केन ते तादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचित् मनसः प्रियाः॥127॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥128॥
''शारीपुत्रस्य अहं माता, पूर्वम् अन्यासु जातिषु।
उपपन्ना प्रेतविषयम्, क्षुत्पिपासासमर्पिता॥129॥

हिन्दी- उस दान का तत्काल ही यह प्रभाव हुआ कि वहाँ भोजन, पानी एवं वस्त्र आदि विपुल मात्रा में उपस्थित हो गये। उस दान का यह प्रत्यक्ष फल दिखायी दिया॥124॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 103....॥125॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 104....॥126॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 105....॥127॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 106....॥128॥

मैं सारिपुत्र माता हूँ। पूर्व में अनेक जातियों(योनियों) में जन्म लेती हुई अब इस प्रेतलोक में उत्पन्न हुई भूखी प्यासी पड़ी हुई हूँ॥129॥

''छड्डितं खिपितं खेळं, सिङ्घाणिकं सिलेसुमं।
वसञ्च डय्हमानानं, विजातानञ्च लोहितं॥130॥
''वणिकानञ्च यं घान-सीसच्छिन्नान लोहितं।
खुदापरेता भुञ्जामि, इत्थिपुरिसनिस्सितं॥131॥
''पुब्बलोहितं भक्खिस्सं, पसूनं मानुसान च।
अलेणा अनगारा च, नीलमञ्चपरायणा॥132॥
''सारिपुत्तस्स दानेन, मोदामि अकुतोभया।
मुनिं कारुणिकं लोके, भन्ते वन्दितुमागता'' ति॥133॥

सारिपुत्तत्थेरस्स मातुपेतिवत्थु दुतियं।

3. मत्तापेतिवत्थु

''नग्गा दुब्बण्णरूपासि, किसा धमनिसन्थता।
उप्फासुलिके किसिके, का नु त्वं इध तिट्ठसी'' ति॥134॥

संस्कृतच्छाया- ''छर्दितं क्षिप्तं क्ष्वेडम्, सिङ्घाणकं श्लेष्माणम्।
वसाम् दह्यमानानाम्, विजातानां च लोहितम्॥130॥
''वणिजां च यत् घ्राणशीर्षच्छिन्नानाम् लोहितम्।
क्षुधापरीता भुनज्मि, स्त्रीपुरुषनिस्सृतम्॥131॥
''पूयलोहितं भक्षयामि, पशूनां मनुष्याणां च।
अलेणा अनगारा च, नीलमञ्चपरायणा॥132॥
''सारिपुत्रस्य दानेन, मोदे अकुतोभया।
मुनिं कारुणिकं लोके, भदन्त वन्दितुमागता'' इति॥133॥
''नग्ना दुर्वर्णरूपा असि, कृशा धमनीसंस्थिता।
गुल्फपार्श्वास्थिनी कृशिके, का नु त्वम् इह तिष्ठसि'' इति॥134॥

हिन्दी- पूर्ववत्.....गा० सं० 118....॥130॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 119....॥131॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 120....॥132॥

उन सारिपुत्र के दान के प्रभावस्वरूप यहाँ मैं निर्भय होकर आमोदक्रीडा कर रही हूँ। भन्ते! आप कारुणिक भगवान् की वन्दना हेतु इस लोक में आयी हूँ॥133॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 95....॥134॥

''अहं मत्ता तुवं तिस्सा, सपत्ती ते पुरे अहुं।
पापकम्मं करित्वान, पेतलोकं इतो गता'' ति॥135॥
''किं नु कायेन वाचाय, मनसा दुक्कटं कतं।
किस्स कम्मविपाकेन, पेतलोकं इतो गता'' ति॥136॥
''चण्डी च फरुसा चासिं, इस्सुकी मच्छरी सठा।
ताहं दुरुत्तं वत्वान, पेतलोकं इतो गता'' ति॥137॥
सब्बं अहम्पि जानामि, यथा त्वं चण्डिका अहु।
अञ्ञञ्च खो तं पुच्छामि, केनासि पंसुकुन्थिता'' ति॥138॥
''सीसंन्हाता तुवं आसि, सुचिवत्था अलङ्कता।
अहञ्च खो अधिमत्तं, समलङ्कततरा तया॥139॥

संस्कृतच्छाया- ''अहं मत्ता तव तिष्या, सपत्नी तव पुरा अभूवम्।
पापकर्म कृत्वा, प्रेतलोकं इतः गता'' इति॥135॥
''किं नु कायेन वाचा, मनसा दुष्कृतं कृतम्।
कस्य कर्मविपाकेन, प्रेतलोकम् इतः गता'' इति॥136॥
''चण्डी च परुषा च आसम्, ईर्ष्युकी/ईर्ष्यालुः मत्सरिणी शठा।
तेऽहं दुरुक्तम् उक्त्वा, प्रेतलोकम् इतः गता'' इति॥137॥
सत्यम् अहम् अपि जानामि, यथा त्वं चण्डिका अभूः।
अन्यच्च खलु त्वां पृच्छामि, केनासि पांशुकुण्ठिता'' इति॥138॥
''शीर्षस्नाता त्वम् आसीः, शुचिवस्त्रा अलङ्कृता।
अहं च खलु अधिमात्रम्, समलङ्कृततरः त्वत्॥139॥

हिन्दी- तिष्या! मैं पूर्व में तुम्हारी मत्ता नामक सपत्नी(सौत) थी। मैं पापकर्म करती हुई इस लोक से प्रेतलोक को गयी॥135॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 97....॥136॥

मैं उस समय चण्डी(भयानक) तथा कठोर, ईष्यालु, मात्सर्ययुक्त एवं शठा(धूर्त) स्वभाव वाली थी। वही मैं तुमको अपशब्द कहने के कारण यहाँ से च्युत होकर प्रेतलोक में पहुँच गयी॥137॥

मैं भी सबकुछ जानती हूँ; कि तुम उस समय कितनी भयानक स्वभाव वाली थी— परन्तु तुमसे एक बात और पूछती हूँ कि तुम स्वयं पर धूल मिट्टी क्यों डालती रहती हो?॥138॥

तुम शिर से स्नान कर, शुद्ध वस्त्र एवं आभूषण धारण किये हुई थी। वहाँ मैं तुम्हारी अपेक्षा अधिक सुसज्जित थी॥139॥

''तस्सा मे पेक्खमानाय, सामिकेन समन्तयि।
ततो मे इस्सा विपुला, कोधो मे समजायथ॥140॥
''ततो पंसुं गहेत्वान, पंसुना तं हि ओकिरिं।
तस्स कम्मविपाकेन, तेनम्हि पंसुकुन्थिता'' ति॥141॥
''सच्चं अहम्पि जानामि, पंसुना मं त्वमोकिरि।
अञ्ञञ्च खो तं पुच्छामि, केन खज्जसि कच्छुया'' ति॥142॥
''भेसज्जहारी उभयो, वनन्तं अगमिम्हसे।
त्वञ्च भेसज्जमाहरि, अहञ्च कपिकच्छुनो॥143॥
''तस्सा त्याजानमानाय, सेय्यं त्याहं समोकिरिं।
तस्स कम्मविपाकेन, तेन खज्जामि कच्छुया'' ति॥144॥

संस्कृतच्छाया- ''तस्याः मे प्रेक्षमाणायाः, स्वामिना समामन्त्रयद्।
ततः मे इर्ष्या विपुला, क्रोधः मे समजायत॥140॥
''ततः पांशुं गृहीत्वा, पांशुना त्वां हि अवाकिरम्।
तस्य कर्मविपाकेन, तेन अस्मि पांशुकुण्ठिता'' इति॥141॥
''सत्यम् अहमपि जानामि, पांशुना मां त्वम् अवाकिरः।
अन्यच्च खलु त्वां पृच्छामि, केन कण्डूयसि कच्छ्वा'' ति॥142॥
''भैषज्यहारिण्यौ उभे, वनान्तम् अगमाव।
त्वं च भैषज्यम् अहार्षीः, अहं च कपिकच्छुम्॥143॥
''तस्याः तव अजानतः, शय्यायां तव अहं समाकिरम्।
तस्य कर्मविपाकेन, तेन कण्डूयामि कपिकच्छ्वा'' इति॥144॥

हिन्दी- तुम मुझे देख ही रही थी कि ठीक उसी समय मेरे स्वामि(पतिदेव) वहाँ आकर तुम से बातें करने लगे। इससे मेरे मन में तुम्होर प्रति घोर क्रोध व ईर्ष्या जागृत् हुई॥140॥

इस कारण मैंने तुम पर धूल उठाकर फेंक दी थी। उस दुष्कर्म के विपाकस्वरूप आज मैं स्वयं पर धूल डालती रहती हूँ॥141॥

सत्य ही है यह मैं भी जानती हूँ कि उस समय तुमनें मुझ पर धूल फेंक दी थी— परन्तु तुमसे एक बात और पूछती हूँ कि तुम अपने शरीर को निरन्तर क्यों खुजलाती रहती हो? ॥142॥

कभी हम दोनों कोई औषधि लाने के लिये जंगल में गए परन्तु तुमने ते वहाँ से अपने उपयोग की औषधि लायी और मैं वहाँ से कोंच तोड़ लायी॥143॥

तुम्हें ज्ञात न हो— इसलिए मैंने उन कोंच के बीजों को तुम्हारे पलंग पर बिखेर दिया। उस पापकर्म के विपाकस्वरूप आज मैं निरन्तर अपने शरीर को खुजलाती रहती हूँ॥144॥

''सच्चं अहम्पि जानामि, सेय्यं मे त्वं समोकिरि।
अञ्ञञ्च खो तं पुच्छामि, केनासि नग्गिया तुवं'' ति॥145॥
''सहायानं समयो आसि, ञातीनं समिती अहु।
त्वञ्च आमन्तिता आसि, ससामिनी नो च खो अहं॥146॥
''तस्सा त्याजानमानाय, दुस्सं त्याहं अपानुदिं।
तस्स कम्मविपाकेन, तेनम्हि नग्गिया अहं'' ति॥147॥
''सच्चं अहम्पि जानामि, दुस्सं मे त्वं अपानुदि।
अञ्ञञ्च खो तं पुच्छामि, केनासि गूथगन्धिनी'' ति॥148॥
''तव गन्धञ्च मालञ्च, पच्चग्घञ्च विलेपनं।
गूथकूपे अधारेसिं, तं पापं पकतं मया।
तस्स कम्मविपाकेन, तेनम्हि गूथगन्धिनी'' ति॥149॥

संस्कृतच्छाया- ''सत्यम् अहमपि जानामि, शय्यायां मम त्वं समाकिरः।
अन्यच्च खलु त्वां पृच्छामि, केनासि नग्ना त्वम्'' इति॥145॥
''सहायानां समयः आसीत्, ज्ञातीनां समितिः अभूत्।
त्वं च आमन्त्रितः आसीः, सस्वामिनीकः न च खलु अहम्॥146॥
''तस्याः त्वजानन्त्याः, दूश्यं/द्विशालं तव अहम् अपानुदम्।
तस्य कर्मविपाकेन, तेन अस्मि नग्ना अहम्'' इति॥147॥
''सत्यम् अहमपि जानामि, दुकूलं मम त्वम् अपानुदः।
अन्यच्च खलु त्वां पृच्छामि, केनासि गूथगन्धिनी'' इति॥148॥
''तव गन्धं मालां च, प्रत्यर्घञ्च च विलेपनम्।
गूथकूपे अधारयम्, तत् पापं प्रकृतं मया।
तस्य कर्मणः विपाकेन, तेन अस्मि गूथगन्धिनी'' इति॥149॥

हिन्दी- सत्य है, यह मैं भी जानता हूँ कि तुमने मेरे पलंग पर कोंच फैला दी थी; परन्तु तुमसे एक बात और पूछती हूँ कि तुम नग्न(निर्वस्त्र) क्यों हो?॥145॥

कभी हमारे किसी सहायक के घर में हमारे सभी सम्बन्धी जन एकत्र हुए थे। उसमें तुम्हें स्वामिनी(पत्नी) सहित बुलाया गया था, मुझे नहीं—॥146॥

उस समय, तुमसे छिपाकर, मैंने तुम्हारे वस्त्र छिपा दिये। उस पापकर्म के विपाकस्वरूप आज मैं नग्न हूँ॥147॥

उस समय तुमने मेरे वस्त्र छिपा दिये थे— यह भी मैं ठीक-ठीक जानती हूँ; परन्तु तुमसे एक बात और पूछती हूँ कि तुम्हारे शरीर से मल की दुर्गन्ध क्यों आती है?॥148॥

तुम्हारे माला, गन्ध एवं विलेपन आदि सौन्दर्य प्रसाधन मल के कूएँ में फेंक दिया करती थी। उसी पापकर्मवश, आज मेरे शरीर से निरन्तर गूथगन्ध(मल) आती रहती है॥149॥

''सच्चं अहम्पि जानामि, तं पापं पकतं तया।
अञ्ञञ्च खो तं पुच्छामि, केनासि दुग्गता तुवं'' ति॥150॥
''उभिन्नं समकं आसि, यं गेहे विज्जते धनं।
सन्तेसु देय्यधम्मेसु, दीपं नाकासिमत्तनो।
तस्स कम्मविपाकेन, तेनम्हि दुग्गता अहं॥151॥
''तदेव मं त्वं अवच, 'पापकम्मं निसेवसि।
न हि पापेहि कम्मेहि, सुलभा होति सुग्गती''' ति॥152॥
''वामतो मं त्वं पच्चेसि, अथोपि मं उसूयसि।
पस्स पापानं कम्मानं, विपाको होति यादिसो॥153॥
''ते घरा ता च दासियो, तानेवाभरणानिमे।
ते अञ्ञे परिचारेन्ति, न भोगा होन्ति सस्सता॥154॥

संस्कृतच्छाया- ''सत्यम् अहमपि जानामि, तत् पापं प्रकृतं त्वया।
अन्यच्च खलु त्वां पृच्छामि, केनासि दुर्गता त्वम्'' इति॥150॥
''उभयस्वामिकम् आसीत्, यद् गृहे विद्यते धनम्।
सत्सु देयधर्मेषु, द्वीपं न अकार्षम् आत्मनः।
तस्य कर्मणः विपाकेन, तेन अस्मि दुर्गता अहम्॥151॥
''तदेव मां त्वं अवोचः, 'पापकर्म निषेवसि।
न हि पापैः कर्मभिः, सुलभा भवति सुगतिः''' इति॥152॥
''वामतः मां त्वं प्रत्येषि, अथ अपि माम् असूयसि।
पश्य पापानां कर्मणाम्, विपाकः भवति यादृशः॥153॥
''तानि गृहाणि ताः च दास्यः, तान्येव आभरणानि इमानि।
ते अन्ये परिचारयन्ति, न भोगाः भवन्ति शाश्वताः॥154॥

हिन्दी- यह सत्य मैं भी जानती हूँ कि उस समय तुमने मेरे प्रति यह पापकर्म किया था, परन्तु तुमसे एक बात और पूछती हूँ कि तुम्हारी इस दुर्गति का क्या कारण है?॥150॥

हमारे घर में जितना भी धन धान्य था हम दोनों में समान रूप से था। वहाँ देने योग्य वस्तुओं के रहते हुए भी मैंने दानकर्म के माध्यम से अपने लिए किसी द्वीप का निर्माण नहीं किया। उसी पापकर्म का आज यह परिणाम है कि मैं इस दुर्गति को प्राप्त हुई हूँ॥151॥

तुम उस समय मुझे कहा करते थे, पापकर्म मत करो; पापकर्मों द्वारा सुगति सुलभ नहीं है॥152॥

तुम मेरी बातों को अब स्वीकार कर रही हो, परन्तु पहले तुम मेरी इन बातों की निन्दा करती थी। तुम स्वयं देखो कि पापमय कर्मों का परिणाम कैसा होता है!॥153॥

वही घर है, वे ही ये दासियाँ हैं तथा ये अलंकारादि भी वही हैं, वे अब दूसरों दूसरों की सेवा कर रहे हैं! भोग शाश्वत(स्थायी) नहीं होते॥154॥

''इदानि भूतस्स पिता, आपणा गेहमेहिति।
अप्पेव ते ददे किञ्चि, मा सु ताव इतो अगा'' ति॥155॥
''नग्गा दुब्बण्णरूपाम्हि, किसा धमनिसन्थता।
कोपीनमेतं इत्थीनं, मा मं भूतपितादसा'' ति॥156॥
''हन्द किं वा त्याहं दम्मि, किं वा तेध करोमहं।
येन त्वं सुखिता अस्स, सब्बकामसमिद्धिनी'' ति॥157॥
''चत्तारो भिक्खू सङ्घतो, चत्तारो पन पुग्गला।
अट्ठ भिक्खू भोजयित्वा, मम दक्खिणमादिस।
तदाहं सुखिता हेस्सं, सब्बकामसमिद्धिनी'' ति॥158॥
साधूति सा पटिस्सुत्वा, भोजयित्वाट्ठ भिक्खवो।
वत्थेहच्छादयित्वान, तस्सा दक्खिणमादिसी॥159॥

संस्कृतच्छाया- ''इदानीं भूतस्य पिता, आपणाद् गेहम् आगमिष्यति।
अल्पमेव तुभ्यं दद्यात् किञ्चित्, माशु तावद् इतो गाः'' इति॥155॥
''नग्ना दुर्वर्णरूपा अस्मि, कृशा धमनीसंस्थिता।
कौपीनमेतत् स्त्रीणाम्, मा मां भूतपिता द्राक्षीत्'' इति॥156॥
''हन्त किं वा तुभ्यम् अहं दद्याम्, किं वा तुभ्यम् इह कुर्यामहम्।
येन त्वं सुखिता भवेः, सर्वकामसमृद्धा'' इति॥157॥
''चत्वारः भिक्षवः सङ्घतः, चत्वारः पुनः पुद्गलाः।
अष्ट भिक्षून् भोजयित्वा, मम दक्षिणामादिश।
तदाहं सुखिता भविष्यामि, सर्वकामसमृद्धा'' इति ॥158॥
साधु इति सा प्रतिश्रुत्य, भोजयित्वा अष्ट भिक्षून्।
वस्त्रैः आच्छाद्य, तस्याः दक्षिणामादिशत्॥159॥

हिन्दी- इस भूत(मेरे पुत्र) के पिता आपण(बाजार) से घर को आ रहे होंगे। सम्भवतः वे तुमको अल्पमात्र ही सही कुछ दे दें, अतः तुम यहाँ से मत जाओ!॥155॥

मैं इस समय नग्न हूँ, मेरा शरीर भी कुरूप है, मैं इतनी कृशकाय हूँ कि मेरे शरीर की समस्त धमनियाँ दिख रही हैं, मेरा गुप्तांग भी दिखायी दे रहा है। मेरी इस दशा में ये भूत-पिता मुझे न देखें॥156॥

ठीक है तो मैं तुझको क्या दूँ? या मैं तुम्हारे लिये यहाँ ऐसा क्या करूँ जिससे कि तुम सुखी हो सको तथा तुम्हारे समस्त मनोरथ पूर्ण हो जायँ? ॥157॥

सङ्घ से चार भिक्षु तथा पुनः चार पुद्गल— इन आठ भिक्षुओं को भोजन कराकर उस दक्षिणा का संकल्प मेरे नाम कर दें। तब मैं सुखी हो जाऊँगी और मेरी समस्त मनोकामनाएँ भी पूर्ण हो जायँगी॥158॥

उसकी बातों को ठीक से सुनकर तिष्या ने उन आठ भिक्षुओं को भोजन करा कर तथा उनको चीवर आदि का दान कर, उस दक्षिणा का अनुमोदन मता के नाम कर दिया॥159॥

समनन्तरानुद्दिट्ठे , विपाको उदपज्जथ।
भोजनच्छादनपानीयं, दक्खिणाय इदं फलं॥160॥
ततो सुद्धा सुचिवसना, कासिकुत्तमधारिनी।
विचित्तवत्थाभरणा, सपत्तिं उपसङ्कमि॥161॥
''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥162॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥163॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥164॥

संस्कृतच्छाया- समनन्तरमुद्दिष्टे , विपाक उदपद्यत।
भोजनाच्छादनपानीयम्, दक्षिणाया इदं फलम्॥160॥
ततः शुद्धा शुचिवसना, कौशिकेयोत्तमधारिणी।
विचित्रवस्त्राभरणा, सपत्नीम् उपसमक्रामत्॥161॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीः इव तारकाः॥ ॥162॥
''केन ते तादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥163॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥164॥

हिन्दी- तिष्या द्वारा कृत इस अनुपम दानस्वरूप तत्क्षण ही उसका सत्परिणाम प्रकट हुआ। वह स्थान खाने पीने पहनने योग्य पदार्थों से आच्छादित हो गया॥160॥

वहाँ शुद्ध, स्वच्छ वस्त्र, उत्तम काशिकेय तथा विचित्र वस्त्रों व आभूषणों से विभूषित होकर वह स्त्री अपनी सौतन के सम्मुख आयी॥161॥

देवी! आप अपने कान्तिपूर्ण वर्ण से समस्त दिशाओं को इस प्रकार अवभासित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को॥162॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग-उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं?॥163॥

देवि मेरी आपसे यही जिज्ञासा है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्णाभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥164॥

''अहं मत्ता तुवं तिस्सा, सपत्ती ते पुरे अहुं।
पापकम्मं करित्वान, पेतलोकं इतो गता॥165॥
''तव दिन्नेन दानेन, मोदामि अकुतोभया।
चीरं जीवाहि भगिनि, सह सब्बेहि ञातिभि।
असोकं विरजं ठानं, आवासं वसवत्तिनं॥166॥
''इध धम्मं चरित्वान, दानं दत्वान सोभने।
विनेय्य मच्छेरमलं समूलं, अनिन्दिता सग्गमुपेहि ठानं'' ति॥167॥

मत्तापेतिवत्थु ततियं।

4. नन्दापेतिवत्थु

''काळी दुब्बण्णरूपासि, फरुसा भीरुदस्सना।
पिङ्गलासि कळारासि, न तं मञ्ञामि मानुसिं'' ति॥168॥

संस्कृतच्छाया- ''अहं मत्ता त्वं तिष्या, सपत्नी तव पुरा अभूवम्।
पापकर्म कृत्वा, प्रेतलोकम् इतो गता॥165॥
''त्वया दत्तेन दानेन, मोदे अकुतोभया।
चिरं जीव भगिनि, सह सर्वाभिः ज्ञातिभिः।
अशोकं विरजः स्थानम्, आवासे वशवर्त्तिनम्॥166॥
''इमं धर्मं चरित्वा, दानं दत्वा शोभने।
विनीय मात्सर्यमलं समूलम्, अनिन्दिता स्वर्गमुपैः स्थानम्'' इति॥167॥
''काली दुर्वर्णरूपासि, परुषा भीरुदर्शना।
पिङ्गला असि कराला असि, न त्वां मन्ये मानुषीम्'' इति॥168॥

हिन्दी- मैं(मत्ता), तुम्हारी(तिष्या) की पहले कभी सपत्नी(सौत) हुआ करती थी। पाप कर्म करके मैं, इस लोक से प्रेतलोक में पहुँच गयी॥165॥

आपके द्वारा दिए दान से, अब मैं भयरहित हो इस स्थान में प्रमुदित रहती हूँ। भगिनि! आप भी अपने समस्त सम्बन्धियों के साथ चिरंजीवी हों। तदुपरान्त वशवर्ती देवों के शोकरहित एवं निर्दोष आवासस्थान में उत्पन्न हों॥166॥

शोभने! आप इस लोक में धर्मपूर्वक आचरण कर, दान-दक्षिणा देते हुए अपनी मात्सर्य(कंजूसी) का समूल नाश कर सम्मान सहित स्वर्गस्थान को पहुँचें॥167॥

तूँ कृष्णवर्णा, कुरूपा एवं कर्कश तथा देखने में भयंकर है। तूँ पीली तथा कराला(भयंकर) रूप वाली है। मैं तुझको साधारण मनुष्य नहीं मानता हूँ-॥168॥

''अहं नन्दा नन्दिसेन, भरिया ते पुरे अहुं।
पापकम्मं करित्वान, पेतलोकं इतो गता'' ति॥169॥
''किं नु कायेन वाचाय, मनसा दुक्कटं कतं।
किस्स कम्मविपाकेन, पेतलोकं इतो गता'' ति॥170॥
''चण्डी च फरुसा चासिं, तयि चापि अगारवा।
ताहं दुरुत्तं वत्वान, पेतलोकं इतो गता'' ति॥171॥
''हन्दुत्तरीयं ददामि ते, इमं दुस्सं निवासय।
इमं दुस्सं निवासेत्वा, एहि नेस्सामि तं घरं॥172॥
''वत्थञ्च अन्नपानञ्च, लच्छसि त्वं घरं गता।
पुत्ते च ते पस्सिस्ससि, सुणिसायो च दक्खसी'' ति॥173॥

संस्कृतच्छाया- ''अहं नन्दा नन्दिसेन, भार्या तव पुरा अभूवम्।
पापकर्म कृत्वा, प्रेतलोकम् इतः गता'' इति॥169॥
''किं नु कायेन वाचा, मनसा दुष्कृतं कृतम्।
कस्य कर्मणः विपाकेन, प्रेतलोकम् इतः गता'' इति॥170॥
''चण्डी च परुषा च आसम्, त्वयि च अपि अगौरवा।
त्वाम् अहं दुरुक्तम् उक्त्वा, प्रेतलोकम् इतो गता'' इति॥171॥
''हन्त उत्तरीयं ददामि तुभ्यम्, इदं दूश्यं निवासय।
इदं दुकूलं निवास्य, एहि नेष्यामि त्वां गृहम्॥172॥
''वस्त्रं च अन्नपानं च, लप्स्यसे त्वं गृहं गता।
पुत्रांश्च ते द्रक्ष्यसि, स्नुषाः च द्रक्ष्यसि'' इति॥173॥

हिन्दी- नन्दिसेन! मैं अपने पूर्व जन्म में तुम्हारी नन्दा नामक भार्या(पत्नी) थी। पाप कर्म करके, मैं यहाँ से प्रेतलोक में पहुँच गयी॥169॥

काय वचन एवं मन से तुमने कौन से दुष्कृत्य किये हैं जिनके परिणामस्वरूप तुम इस लोक से प्रेतलोक में आ पहुँची हो?॥170॥

मैं उस जन्म में क्रोधी एवं कर्कश स्वभाव वाली थी। आपको भी अपमानित करती थी। आपको मैं अपशब्द भी कहती रहती थी। जिसके कारण मैं यहाँ से इस प्रेतलोक में पतित हुई हूँ॥171॥

ठीक है तो मैं तुझे अपना यह उत्तरीय(ऊपर ओढ़ने का वस्त्र) दे रहा हूँ, इसे ओढ़ लो। इसे ओढ़ा कर मैं तुझे तुम्हारे घर ले चलूँगा॥172॥

अपने घर जाकर तुम वस्त्र, अन्न-पान आदि सब कुछ प्राप्त करोगी। वहाँ अपने पुत्रों को तथा पुत्रवधुओं को भी देखोगी॥173॥

''हत्थेन हत्थे ते दिन्नं, न मय्हं उपकप्पति।
भिक्खू च सीलसम्पन्ने, वीतरागे बहुस्सुते॥174॥
''तप्पेहि अन्नपानेन, मम दक्खिणमादिस।
तदाहं सुखिता हेस्सं, सब्बकामसमिद्धिनी'' ति॥175॥
साधूति सो पटिस्सुत्वा, दानं विपुलमाकिरि।
अन्नं पानं खादनीयं, वत्थसेनासनानि च।
छत्तं गन्धञ्च मालञ्च, विविधा च उपाहना॥176॥
भिक्खू च सीलसम्पन्ने, वीतरागे बहुस्सुते।
तप्पेत्वा अन्नपानेन, तस्सा दक्खिणमादिसी॥177॥
समनन्तरानुद्दिट्ठे , विपाको उदपज्जथ।
भोजनच्छादनपानीयं, दक्खिणाय इदं फलं॥178॥

संस्कृतच्छाया- ''हस्तेन हस्ते ते दत्तम्, न मह्यम् उपकल्पते।
भिक्षूंश्च शीलसम्पन्नान्, वीतरागान् बहुश्रुतान्॥174॥
''तर्पय अन्नपानेन, मह्यं दक्षिणामादिश।
तदाहं सुखिता भविष्यामि, सर्वकामसमृद्धा'' इति॥175॥
साधु इति सः प्रतिश्रुत्य, दानं विपुलम् अकृत।
अन्नं पानं खादनीयम्, वस्त्रशयनासनानि च।
छत्रं गन्धं च मालां च, विविधां च उपानहम्॥176॥
भिक्षून् च शीलसम्पन्नान्, वीतरागान् बहुश्रुतान्।
तर्पयित्वा अन्नपानेन, तस्यै दक्षिणामादिशम्॥177॥
समनन्तरानुद्दिष्टे, विपाक उदपद्यत।
भोजनाच्छादनपानीयम्, दक्षिणाया इदं फलम्॥178॥

हिन्दी- भन्ते! आप स्वयं अपने हाथों द्वारा मेरे हाथ पर कुछ दें— ये मेरे लिए उचित नहीं है। अपितु जो शीलसम्पन्न, वीतराग, बहुश्रुत हैं-॥174॥

उन भिक्षुओं को अन्न-पान का दान कर उसका दानानुमोदन(संकल्प) मेरे लिये कर दें। जिससे मैं सुखी होऊँगी और मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो सकेंगे॥175॥

साधु(अच्छा) ऐसा कह कर उसने याचकों को विपुल दान किया; जिनमें अन्न, पान, वस्त्र, शयनासन, आच्छादन, छाता, गन्धद्रव्य, माला तथा जूते आदि सब कुछ थे॥176॥

शीलसम्पन्न, वीतराग, एवं बहुश्रुत भिक्षुओं को अन्नदान से सन्तृप्त कर उस दक्षिणा का अनुमोदन नन्दा के नाम कर दिया॥177॥

नन्दीसेन द्वारा कृत उस अनुपम दानस्वरूप तत्क्षण ही उसका सत्परिणाम प्रकट हुआ। वह स्थान खाने पीने पहनने योग्य पदार्थों से आच्छादित हो गया॥178॥

ततो सुद्धा सुचिवसना, कासिकुत्तमधारिनी।
विचित्तवत्थाभरणा, सामिकं उपसङ्कमि॥179॥
''अभिक्कन्तेन वण्णेन, या त्वं तिट्ठसि देवते।
ओभासेन्ती दिसा सब्बा, ओसधी विय तारका॥180॥
''केन तेतादिसो वण्णो, केन ते इध मिज्झति।
उप्पज्जन्ति च ते भोगा, ये केचि मनसो पिया॥181॥
''पुच्छामि तं देवि महानुभावे, मनुस्सभूता किमकासि पुञ्ञं।
केनासि एवं जलितानुभावा, वण्णो च ते सब्बदिसा पभासती'' ति॥182॥
''अहं नन्दा नन्दिसेन, भरिया ते पुरे अहुं।
पापकम्मं करित्वान, पेतलोकं इतो गता॥183॥

संस्कृतच्छाया- ततः शुद्धा शुचिवसना, कौशिकेयोत्तमधारिणी।
विचित्रवस्त्राभरणा, स्वामिनम् उपसमक्रामत्॥179॥
''अभिकान्तेन वर्णेन, या त्वं तिष्ठसि देवते।
अवभासयन्ती दिशः सर्वाः, ओषधीरिव तारकाः॥180॥
''केन ते तादृशो वर्णः, केन ते इह ऋध्यति।
उत्पद्यन्ते च ते भोगाः, ये केचिन्मनसः प्रियाः॥181॥
''पृच्छामि त्वां देवि महानुभावे, मनुष्यभूता किमकार्षीः पुण्यम्।
केनासि एवं ज्वलितानुभावा, वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते'' इति॥182॥
''अहं नन्दा नन्दिसेन, भार्या ते पुरा अभूवम्।
पापकर्म कृत्वा, प्रेतलोकम् इतो गता॥183॥

हिन्दी- वहाँ शुद्ध, स्वच्छ वस्त्र, उत्तम काशिकेय तथा विचित्र वस्त्रों व आभूषणों से विभूषित होकर एक स्त्री स्वामी के सम्मुख आयी॥179॥

देवी! आप अपने कान्तिपूर्ण वर्ण से समस्त दिशाओं को इस प्रकार अवभासित कर रही हैं जैसे तारागण औषधि को॥180॥

आपने अपनी यह सुन्दर काया किस पुण्य विशेष से तथा किसकी सहायता से प्राप्त की है? तथा आपको इस विमान मे यह मनोवांछित एवं प्रिय भोग-उपभोग यथासमय कैसे प्राप्त होते रहते हैं॥181॥

देवि मेरी आपसे यही जिज्ञासा है कि आपने मानव रूप मे ऐसा कौन सा पुण्य विशेष किया था जिसके प्रभाव से आप इतने ज्वलन्त प्रताप वाली हैं एवं आपकी वर्ण आभा से समस्त दिशाएँ प्रभासित हो रही हैं॥182॥

नन्दिसेन! मैं पूर्वजन्म में तुम्हारी नन्दा नामक भार्या(पत्नी) थी। मैं पाप कर्म के परिणामवश यहाँ से च्युत हो प्रेतलोक में आई हूँ॥183॥

''तव दिन्नेन दानेन, मोदामि अकुतोभया।
चिरं जीव गहपति, सह सब्बेहि ञातिभि।
असोकं विरजं खेमं, आवासं वसवत्तिनं॥184॥
''इध धम्मं चरित्वान, दानं दत्वा गहपति।
विनेय्य मच्छेरमलं समूलं, अनिन्दितो सग्गमुपेहि ठानं'' ति॥185॥

नन्दापेतिवत्थु चतुत्थं।

5. मट्ठकुण्डलीपेतवत्थु

''अलङ्कतो मट्ठकुण्डली, मालधारी हरिचन्दनुस्सदो।
बाहा पग्गय्ह कन्दसि, वनमज्झे किं दुक्खितो तुवं'' ति॥186॥
''सोवण्णमयो पभस्सरो, उप्पन्नो रथपञ्जरो मम।
तस्स चक्कयुगं न विन्दामि, तेन दुक्खेन जहामि जीवितं'' ति॥187॥

संस्कृतच्छाया- ''तव दत्तेन दानेन, मोदे अकुतोभया।
चिरं जीव गृहपते, सह सर्वैः ज्ञातिभिः।
अशोकं विरजं क्षेमम्, आवासं वशवर्त्तिनम्॥184॥
''इह धर्मं चरित्वा, दानं दत्वा गृहपते।
विनीय मात्सर्यमलं समूलम्, अनिन्दिता स्वर्गमुपैः स्थानम्'' इति॥185॥
''अलङ्कृतः मृष्टकुण्डलिन्, मालाधारी हरिचन्दनोत्सदः।
बाहू प्रगृह्य क्रन्दसि, वनमध्ये किं दुःखितस्त्वम्'' इति॥186॥
''सौवर्णमयः प्रभास्वरः, उत्पन्नः रथपञ्जरः मम।
तस्य चक्रयुगं न विन्दामि, तेन दुःखेन जहामि जीवितम्'' इति॥187॥

हिन्दी- आपके द्वारा दिए दान से, अब मैं भयरहित हो इस स्थान में प्रमुदित रहती हूँ। हे गृहपति! आप भी अपने समस्त सम्बन्धियों के साथ चिरंजीवी हों। तदुपरान्त वशवर्ती देवों के शोकरहित एवं निर्दोष आवासस्थान में उत्पन्न हों॥184॥

हे गृहपति! आप इस लोक में धर्मपूर्वक आचरण कर, दान-दक्षिणा देते हुए अपने मात्सर्य(कंजूसी) का समूल नाश कर सम्मान सहित स्वर्गस्थान को पहुँचें॥185॥

हे मृष्टकुण्डलिन्! सर्वथा अलंकृत, मालाधारी हो, समस्त शरीर पर हरिचन्दन का लेप लगाए आप इस बीच वन में अकेले दोनों बाहें पकड़ कर क्यों रो रहे हो? आपको ऐसा कौन सा दुःख है?॥186॥

मुझको यह सुवर्णमय, समस्त दिशाओं से प्रभासित एक रथ मिला है; परन्तु इसके दोनों चक्र(पहिये) नहीं है, उसी दुःख के कारण मैं रो रहा हूँ और अपने जीवन का अन्त करना चाहता हूँ॥187॥

''सोवण्णमयं मणिमयं, लोहितकमयं अथ रूपियमयं।
आचिक्ख मे भद्दमाणव, चक्कयुगं पटिपादयामि ते'' ति॥188॥
सो माणवो तस्स पावदि, ''चन्दिमसुरिया उभयेत्थ दिस्सरे।
सोवण्णमयो रथो मम, तेन चक्कयुगेन सोभती'' ति॥189॥
''बालो खो त्वं असि माणव, यो त्वं पत्थयसे अपत्थियं।
मञ्ञामि तुवं मरिस्ससि, न हि त्वं लच्छसि चन्दिमसुरिये'' ति॥190॥
''गमनागमनम्पि दिस्सति, वण्णधातु उभयत्थ वीथिया।
पेतो कालकतो न दिस्सति, को निध कन्दतं बाल्यतरो'' ति॥191॥
''सच्चं खो वदेसि माणव, अहमेव कन्दतं बाल्यतरो।
चन्दं विय दारको रुदं, पेतं कालकताभिपत्थयिं'' ति॥192॥

संस्कृतच्छाया- ''सौवर्णमयं मणिमयम्, अथ रूप्यमयम्।
आचक्ष्व मे भद्रमाणव, चक्रयुगं प्रतिपादयामि ते ''इति॥188॥
सः माणवकस्तस्य अवादीत्, ''चन्द्रसूर्ययोः उभयत्र दृश्यते।
सौवर्णमयः रथः मम, तेन चक्रयुगेन शोभते'' इति॥189॥
''बालः खलु त्वम् असि माणव, यस्त्वं पथ्यसे अपथ्यम्।
मन्ये त्वं मरिष्यसि, न हि त्वं लक्षयसि चन्द्रसूर्यौ'' इति॥190॥
''गमनागमनमपि दृश्यते, वर्णधात्वोः उभयोः वीथ्या।
प्रेतः कालकृतो न दृश्यते, कः नु इह क्रन्दन् बाल्यतरः'' इति॥191॥
''सत्यं खलु वदसि माणव, अहमेव क्रन्दन् बाल्यतरः।
चन्द्रमिव दारकः रुदन्, प्रेतं कालकृतम् अभिप्रार्थये'' इति॥192॥

हिन्दी- हे भद्र माणवक! जैसा तुम कहो— सोने, चाँदी, मणिरत्नों, मूँगे, या अन्य किसी धातु या रत्न का चक्रयुग(पहियों का जोड़ा) बनवा दूँ॥188॥

उस माणवक ने उनसे कहा कि मुझको अपने रथ के लिए ऐसा चक्र चाहिए जो चन्द्रमा एवं सूर्य समान दिखें। उन्ही चक्रयुगों से ही इस रथ की शोभा बढ़ेगी॥189॥

हे माणवक! तुम अवश्य ही मूर्ख हो; क्योंकि तुम अप्राप्य को पाने की इच्छा कर रहे हो। मुझको लगता है तुम्हारी मृत्यु निकट है। तुम चन्द्र एवं सूर्य के समान रथचक्र नहीं पा सकते॥190॥

मुझको दोनो मार्गों— चन्द्र एवं सूर्य के गमन आगमन का ज्ञान है एवं उन दोनों के रूप रंग का भी ज्ञान है; परन्तु तुम तो उस मृत प्रेत के लिये, जो नहीं दिखता, उसके लिये करुण क्रन्दन कर रहे हो! क्यों यहाँ बाल्यतर क्रन्दन(रुदन) कर रहे हो?॥191॥

माणवक! तुम उचित ही कह रहे हो! मैं उस मृत के लिये मूर्खतापूर्ण क्रन्दन कर रहा हूँ, उसी प्रकार जैसे कोई बालक चन्द्रमा को पाने के लिए क्रन्दन करता है॥192॥

''आदित्तं वत मं सन्तं, घतसित्तंव पावकं।
वारिना विय ओसिञ्चं, सब्बं निब्बापये दरं॥193॥
''अब्बही वत मे सल्लं, सोकं हृदयनिस्सितं।
यो मे सोकपरेतस्स, पुत्तसोकं अपानुदि॥194॥
''स्वाहं अब्बूळ्हसल्लोस्मि, सीतिभूतोस्मि निब्बुतो।
न सोचामि न रोदामि, वत सुत्वान माणवाति॥195॥
''देवता नुसि गन्धब्बो, अदु सक्को पुरिन्ददो।
को वा त्वं कस्स वा पुत्तो, कथं जानेमु तं मयं'' ति॥196॥
''यञ्च कन्दसि यञ्च रोदसि, पुत्तं आळाहने सयं दहित्वा।
स्वाहं कुसलं करित्वा कम्मं, तिदसानं सहब्यतं गतो'' ति ॥197॥

संस्कृतच्छाया- ''आदीप्तं वत माम् सन्तम्, घृतसिक्तकम् इव पावकम्।
वारिणा इव अवसिञ्चन्, सर्वं निरवापयः दरम्॥193॥
''आबृही वत मे शल्यम्, शोकः हृदयनिस्सृतः।
यः मे शोकपरीतस्य, पुत्रशोकम् अपानुदः॥194॥
''सोऽहम् अव्यूढशल्योऽस्मि, शीतीभूतोऽस्मि निर्वृतः।
न शोचामि न रोदिमि, बत श्रुत्वा माणव इति॥195॥
''देवता नु असि गन्धर्वः, अथ शक्रः पुरन्दरः।
कः वा त्वं कस्य वा पुत्रः, कथं जानामि त्वां वयम्'' इति॥196॥
''यं च क्रन्दसि यं च रोदिसि, पुत्रम् आदहने स्वयं दग्ध्वा।
सोऽहं कुशलं कृत्वा कर्म, त्रिदशानां सह वस्तुं गतः'' इति॥197॥

हिन्दी- मैं पुत्रशोक रूपी वह्नि मे वैसे ही जल रहा था, जैसे घी पड़ी हुई अग्नि दहकती रहती है। आपने मेरी इस शोकवह्नि पर शीतल वचनरूपी जल डाल कर मेरे समस्त भय का निवारण कर दिया!॥193॥

आपने मेरे हृदय में चुभे हुए शोकरूपी शल्य(काँटे) को निकाल कर बाहर कर दिया तथा मुझ शोकमग्न को पुत्रशोक से मुक्त कर दिया॥194॥

अब मेरे हृदय में चुभा हुआ काँटा निकल चुका है, अतः मेरा चित्त शान्त है, मैं विगतशोक हो चुका हूँ। आपकी बात मानकर अब मैं न शोक करता हूँ न रोता हूँ॥195॥

आप कौन हैं? किसके पुत्र हैं? कोई देवता, गन्धर्व या साक्षात् देवराज इन्द्र? आप किसके पुत्र हैं? आप को हम कैसे जानें?॥196॥

आप जिसके लिये अभी दहाड़ें मारकर रो रहे थे, आप जिस पुत्र को स्वयं कुछ समय पूर्व श्मशान में जला कर आये थे। मैं वही (आपका पुत्र) अब कुशल कर्म करके देवताओं की मित्रता(साहचर्य) प्राप्त कर चुका हूँ॥ 197॥

''अप्पं वा बहुं वा नाद्दसाम, दानं ददन्तस्स सके अगारे।
उपोसथकम्मं वा तादिसं, केन कम्मेन गतोसि देवलोकं'' ति॥198॥
''आबाधिकोहं दुक्खितो गिलानो, आतुररूपोम्हि सके निवेसने।
बुद्धं विगतरजं वितिण्णकङ्खं, अद्दक्खिं सुगतं अनोमपञ्ञं॥199॥
''स्वाहं मुदितमनो पसन्नचित्तो, अञ्जलिं अकरिं तथागतस्स।
ताहं कुसलं करित्वान कम्मं, तिदसानं सहब्यतं गतो'' ति॥200॥
''अच्छरियं वत अब्भुतं वत, अञ्जलिकम्मस्स अयमीदिसो विपाको।
अहम्पि मुदितमनो पसन्नचित्तो, अज्जेव बुद्धं सरणं वजामी'' ति॥201॥
''अज्जेव बुद्धं सरणं वजाहि, धम्मञ्च सङ्घञ्च पसन्नचित्तो।
तथेव सिक्खाय पदानि पञ्च, अखण्डफुल्लानि समादियस्सु॥202॥

संस्कृतच्छाया- ''अल्पं वा बहुं वा न अदर्शम्, दानं ददतः स्वके अगारे।
उपोसथकर्म वा तादृशम्, केन कर्मणा गतोऽसि देवलोकम्'' इति॥198॥
''आबाधितोऽहं दुःखितः ग्लानः, आतुररूपोऽस्मि स्वके निवेशने।
बुद्धं विगतरजसं वितीर्णकाङ्क्षम्, अदर्शं सुगतम् अनवमप्रज्ञम्/अनुपमप्रज्ञम्॥199॥
''सोऽहं मुदितमनाः प्रसन्नचित्तः, अञ्जलिम् अकरवम् तथागतस्य।
तदहं कुशलं कृत्वा कर्म, त्रिदशानां सह वस्तुं गतः'' इति॥200॥
''आश्चर्यं बत अद्भुतं बत, अञ्जलिकर्मणोऽयमीदृशो विपाकः।
अहमपि मुदितमनाः प्रसन्नचित्तः, अद्यैव बुद्धं शरणं व्रजामि'' इति॥201॥
''अद्यैव बुद्धं शरणं व्रज, धर्मं च सङ्घं च प्रसन्नचित्तः।
तथैव शिक्षायाः पदानि पञ्च, अखण्डफुल्लानि **समासादय**॥202॥

हिन्दी- हमने, अपने घर में रहते हुए आपको किसी को थोड़ा या बहुत दान करते नहीं देखा, न वैसा उपोसथ कर्म करते ही देखा कि जिसके द्वारा आपको देवलोक की प्राप्ति हो सके?॥198॥

जब मैं अपने घर में रोग से पीड़ित होने के कारण अस्वस्थ दुःखी एवं बेचैन था; तब मैनें निर्दोष, वीततृष्ण एवं अनुपमप्रज्ञ भगवान् सुगत(बुद्ध) के दर्शन किये॥199॥

उस समय मैंने प्रसन्न एवं प्रमुदित चित्त से उन भगवान् बुद्ध को हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। वही कुशल कर्म करके मुझको यह देवताओं का साहचर्य मिल पाया है॥200॥

यह आश्चर्य और अद्भुत है कि हाथ जोड़ने मात्र का इतना महान फल किसी को प्राप्त हो जाय! तब तो मैं भी आज ही मुदित एवं प्रसन्नचित्त से भगवन् बुद्ध की शरण में जाता हूँ॥201॥

आप भी आज ही प्रसन्नचित्त से भगवान् बुद्ध के धर्म एवं सङ्घ की शरण ग्रहण करें। तथा उनके पाँच शिक्षावचनों का भी यथारूप पालन करें॥ 202॥

''पाणातिपाता विरमस्सु खिप्पं, लोके अदिन्नं परिवज्जयस्सु।
अमज्जपो मा च मुसा भणाहि, सकेन दारेन च होहि तुट्ठो'' ति॥203॥
''अत्थकामोसि मे यक्ख, हितकामोसि देवते।
करोमि तुय्हं वचनं, त्वंसि आचरियो ममाति॥204॥
''उपेमि सरणं बुद्धं, धम्मञ्चापि अनुत्तरं।
सङ्घञ्च नरदेवस्स, गच्छामि सरणं अहं॥205॥
''पाणातिपाता विरमामि खिप्पं, लोके अदिन्नं परिवज्जयामि।
अमज्जपो नो च मुसा भणामि, सकेन दारेन च होमि तुट्ठो'' ति॥206॥

मट्ठकुण्डलीपेतवत्थु पञ्चमं।

6. कण्हपेतवत्थु

''उट्ठेहि कण्ह किं सेसि, को अत्थो सुपनेन ते।
यो च तुय्हं सको भाता, हदयं चक्खु च दक्खिणं।
तस्स वाता बलीयन्ति, ससं जप्पति केसवा'' ति॥207॥

संस्कृतच्छाया- ''प्राणातिपाताद् विरम क्षिप्रम्, लोके अदत्तं परिवर्जय।
अमद्यपो मा च मृषा भण, स्वकीयैः दारैश्च भव तुष्टः'' इति॥203॥
''अर्थकामोऽसि मे यक्ष, हितकामोऽसि देवते।
करोमि तुभ्यं वचनम्, त्वमसि आचार्यः मम इति॥204॥
''उपैमि शरणं बुद्धम्, धर्मञ्चापि अनुत्तरम्।
सङ्घं च नरदेवस्य, गच्छामि शरणम् अहम्॥205॥
''प्राणातिपाताद् विरमामि क्षिप्रम्, लोके अदत्तं परिवर्जयामि।
अमद्यपः नो च मृषा भणामि, स्वकेन दारैः भवामि तुष्टः'' इति॥206॥
''उत्तिष्ठ कृष्ण किं शेषे, कोऽर्थः सुप्तेन तव।
यश्च तव स्वकः भ्राता, हृदयं चक्षुश्च दक्षिणम्।
तस्य वाताः विलीयन्ते, श्वसन् जल्पति केशवः'' इति॥207॥

हिन्दी- प्राणातिपात को शीघ्र ही त्यागें; लोक में किसी के द्वारा न दी हुई वस्तु न ग्रहण करें; मद्यपान एवं असत्यभाषण से सदा दूर रहें तथा स्वपत्नी से ही सन्तुष्ट रहें॥203॥

हे देव! हे यक्ष! आप मेरे लिये सार्थक एवं हितकर वाणी ही कह रहे हैं। मैं आपके इन वचनों का पालन करूँगा। अब आप ही मेरे आचार्य हैं॥204॥

मैं भगवान् बुद्ध, अनुपम धर्म तथा उनके द्वारा स्थापित सङ्घ की शरण में जाता हूँ॥205॥

मैं शीघ्र ही प्राणिहिंसा से दूर होता हूँ, लोक में सब प्रकार की चोरी का भी त्याग करता हूँ, मद्यपान एवं असत्यभाषण से दूर होता हूँ और मैं अपनी धर्मपत्नी से ही सन्तुष्ट रहूँगा, ऐसा निश्चय करता हूँ॥206॥

''तस्स तं वचनं सुत्वा, रोहिणेय्यस्स केसवो।
तरमानरूपो वुट्ठासि, भातुसोकेन अट्टितो॥208॥
''किं नु उम्मत्तरूपोव, केवलं द्वारकं इमं।
ससो ससोति लपसि, कीदिसं ससमिच्छसि॥209॥
''सोवण्णमयं मणिमयं, लोहमयं अथ रूपियमयं।
सङ्खसिलापवाळमयं, कारयिस्सामि ते ससं॥210॥
''सन्ति अञ्ञेपि ससका, अरञ्ञवनगोचरा।
तेपि ते आनयिस्सामि, कीदिसं ससमिच्छसी'' ति॥211॥
''नाहमेते ससे इच्छे, ये ससा पथविस्सिता।
चन्दतो ससमिच्छामि, तं मे ओहर केसवा'' ति॥212॥

संस्कृतच्छाया- ''तस्य तद् वचनं श्रुत्वा, रौहिणेयस्य केशवः।
त्वरमाणरूप उदतिष्ठत्, भ्रातृशोकेन अर्तितः॥208॥
''किं नु उन्मत्तरूप इव, केवलं द्वारकम् इदम्।
शशः शश इति लपसि, कीदृशं शशमिच्छसि॥209॥
''सौवर्णमयं मणिमयम्, लौहमयम् अथ रूप्यमयम्।
शङ्खशिलाप्रवालमयम्, कारयिष्यामि ते शशम्॥210॥
''सन्ति अन्येऽपि शशकाः, अरण्यवनगोचराः।
तेष्वपि तुभ्यम् आनेष्यामि, कीदृशं शशमिच्छसि'' इति॥211॥
''नाहम् एतान् शशान् इच्छामि, ये शशाः पृथिवीस्थिताः।
चन्द्रात् शशमिच्छामि, तं मह्यम् आहर केशव'' इति॥212॥

हिन्दी- कृष्ण! उठो, क्यों सो रहे हो! अब तुम्हारे शयन का क्या अर्थ है! तुम्हारा अपना भाई है, जिसे तुम अपना हृदय और दाहिना नेत्र मानते हो, उसकी प्राण वायु विलीन हो रही है। तथा वह चिल्ला रहा है॥ 207॥

उस रोहिणेय के वे वचन सुनकर भ्रातृशोक से दुःखी वह शीघ्र ही उठा॥208॥

द्वार की ओर देखते हुए उन्मत्त की तरह 'शश(खरगोश) लूँगा, शश लूँगा' ऐसे चिल्ला रहे हो? तुम्हें कैसा खरगोश चाहिये?॥209॥

मैं तुम्हारे लिये स्वर्णमय, मणिमय, लौहमय या रूप्यमय(चाँदी का), शङ्ख, मैन्सिल या प्रवालमय(मूँगे का) खरगोश(शश) बनवा दूँगा॥210॥

यहाँ अन्य खरगोश भी दिखायी देते हैं; यथा— जंगली या बनैले, तुम्हारे लिए उनमें से भी कोई ले आऊँगा। तुम्हें कैसा खरगोश चाहिए?॥211॥

मैं इनमे से कोई खरगोश नहीं चाहता जो पृथ्वी पर स्थित हों। मैं तो चन्द्रमा स्थित खरगोश ही चाहता हूँ। हे केशव! तुम उसे मेरे लिए लाओ॥212॥

''सो नून मधुरं ञाति, जीवितं विजहिस्ससि।
अपत्थियं पत्थयसि, चन्दतो ससमिच्छसी'' ति॥213॥
''एवं चे कण्ह जानासि, यथञ्ञमनुसाससि।
कस्मा पुरे मतं पुत्तं, अज्जापि मनुसोचसि॥214॥
''न यं लब्भा मनुस्सेन, अमनुस्सेन वा पन।
जातो मे मा मरि पुत्तो, कुतो लब्भा अलब्भियं॥215॥
''न मन्ता मूलभेसज्जा, ओसधेहि धनेन वा।
सक्का आनयितुं कण्ह, यं पेतमनुसोचसि॥216॥
''महद्धना महाभोगा, रट्ठवन्तोपि खत्तिया।
पहूतधनधञ्ञासे, तेपि नो अजरामरा॥217॥

संस्कृतच्छाया- ''सः नूनं मधुरं ज्ञातिम्, जीवितं विजहासि।
अप्रार्थनीयं प्रार्थयसि, चन्द्रात् शशमिच्छसि'' इति॥213॥
''एवं चेत् कृष्ण जानासि, यथार्थमनुशाससे।
कस्मात् पुरा मृतं पुत्रम्, अद्यापि अनुशोचसि॥214॥
''न यो लभ्यो मनुष्येण, अमनुष्येण वा पुनः।
जातः मे न म्रियेत पुत्रः, कुतः लभ्यम् अलभ्यम् इदम्॥215॥
''न मन्त्रैः मूलभैषज्यैः, औषधैः धनेन वा।
शक्य आनेतुं कृष्ण, यम् प्रेतमनुशोचसि॥216॥
''महाधनाः महाभोगा, राष्ट्रवन्तः अपि क्षत्रियाः।
प्रभूतधनधान्याः, तेऽपि न अजरामराः॥217॥

हिन्दी- मेरे प्रिय सम्बन्धिन्! तुम्हारी मृत्यु निकट है क्योंकि तुम चन्द्रमा स्थित अप्राप्य खरगोश को पाने की प्रार्थना कर रहे हो!॥213॥

इसलिए हे कृष्ण! यदि आप इस तथ्य(यथार्थ) को जानते हैं तो आप स्वयं किस लिए आज भी अपने पूर्व में मृत पुत्र की पुनः प्राप्ति के विषय में सोचते रहते हैं?॥214॥

जिसकी प्राप्ति मनुष्य या अमनुष्य(देवता) आदि द्वारा कदापि सम्भव नहीं है। मेरा उत्पन्न हुआ पुत्र कभी मृत्यु को न प्राप्त होवे। यह अप्राप्य कहाँ से प्राप्त हो सकता है॥215॥

कृष्ण! तुम जिस प्रेत(मृत) के विषय में शोक कर रहे हो उसे तुम मन्त्रों, जड़ी बूटियों, औषधियों, तथा धन आदि किसी भी उपाय से पुनः यहाँ नहीं ला सकते॥216॥

महाधनपति, ऐश्वर्यसम्पन्न, विशाल राज्यों वाले राजा भी, जो अकूत धन-सम्पदा के स्वामी थे वे भी अजर अमर नहीं रह पाये॥217॥

''खत्तिया ब्राह्मणा वेस्सा, सुद्दा चण्डालपुक्कुसा।
एते चञ्ञे च जातिया, तेपि नो अजरामरा॥218॥
''ये मन्तं परिवत्तेन्ति, छळङ्गं ब्रह्मचिन्तितं।
एते चञ्ञे च विज्जाय, तेपि नो अजरामरा॥219॥
''इसयो वापि ये सन्ता, सञ्ञतत्ता तपस्सिनो।
सरीरं तेपि कालेन, विजहन्ति तपस्सिनो॥220॥
''भावितत्ता अरहन्तो, कतकिच्चा अनासवा।
निक्खिपन्ति इमं देहं, पुञ्ञपापपरिक्खया'' ति॥221॥
''आदित्तं वत मं सन्तं, घतसित्तंव पावकं।
वारिना विय ओसिञ्चं, सब्बं निब्बापये दरं॥222॥

संस्कृतच्छाया- ''क्षत्रियाः ब्राह्मणाः वैश्याः, शूद्राः चाण्डालपुल्कसाः।
एते चान्ये च जातयः, तेऽपि न अजरामराः॥218॥
''ये मन्त्रं परिवर्त्तयन्ति, षडङ्गं ब्रह्मचिन्तितम्।
एते चान्ये च विद्यायाः, तेऽपि न अजरामराः॥219॥
''ऋषयः वापि ये सन्तः, संयतात्मानस्तपस्विनः।
शरीरं तेऽपि कालेन, विजहति तपस्विनः॥220॥
''भावितात्मानः अर्हन्तः, कृतकृत्या अनाश्रवाः।
निक्षिपन्ति इमं देहं, पुण्यपापपरिक्षयात्'' इति॥221॥
''आदीप्तं बत माम् सन्तम्, घृतसिक्तम् इव पावकम्।
वारिणा इव अवसिञ्चन्, सर्वं निरवापयः दरम्॥222॥

हिन्दी- ये क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल, पुल्कस या इनके अन्य ज्ञाति भी अजर अमर नहीं हो पाये॥218॥

जो मन्त्रजाप करने वाले, षडङ्ग ब्रह्म(वेदों) के स्वाध्यायी या इनके समान अन्य विद्याध्यायी थे वे भी अजर अमर नहीं हो पाये॥219॥

वे जो संयतात्मा शान्त ऋषिगण या तपस्वि होते हैं, इन्हें भी कालवश यह शरीर त्यागना ही पड़ता है॥220॥

आत्मभावित, कृतकृत्य एवं अनाश्रव अर्हत्(ज्ञानीजन) भी, पुण्य एवं पापपरिक्षय के वाद, इस देह का त्याग कर देते हैं॥221॥

मैं पुत्रशोक रूपी वह्नि मे वैसे ही जल रहा था, जैसे घी पड़ी हुई अग्नि दहकती रहती है। आपने मेरी इस शोकवह्नि पर शीतल वचनरूपी जल डाल कर मेरे समस्त भय का निवारण कर दिया!॥222॥

''अब्बही वत मे सल्लं, सोकं हृदयनिस्सितं।
यो मे सोकपरेतस्स, पुत्तसोकं अपानुदि॥223॥
''स्वाहं अब्बूळ्हसल्लोस्मि, सीतिभूतोस्मि निब्बुतो।
न सोचामि न रोदामि, तव सुत्वान भातिक''॥224॥
एवं करोन्ति सप्पञ्ञा, ये होन्ति अनुकम्पका।
निवत्तयन्ति सोकम्हा, घटो जेट्ठंव भातरं॥225॥
यस्स एतादिसा होन्ति, अमच्चा परिचारका।
सुभासितेन अन्वेन्ति, घटो जेट्ठंव भातरन्ति॥226॥

कण्हपेतवत्थु छट्ठं।

7. धनपालसेट्ठिपेतवत्थु

''नग्गो दुब्बण्णरूपोसि, किसो धमनिसन्थतो।
उप्फासुलिको किसिको, को नु त्वमसि मारिस''॥227॥

संस्कृतच्छाया- ''आबृही(बहिः अकरोः) बत मे शल्यम्, शोकः हृदयनिस्सृतः।
यः मे शोकपरीतस्य, पुत्रशोकम् अपानुदः॥223॥
''सः अहम् अव्यूढशल्योऽस्मि, शीतीभूतोऽस्मि निर्वृतः।
न शोचामि न रोदिमि, तव श्रुत्वा भाषितम्''॥224॥
एवं कुर्वन्ति सम्प्रज्ञा, ये भवन्ति अनुकम्पकाः।
विनिवर्तयन्ति शोकान्, घटः ज्येष्ठमिव भ्रातरम्॥225॥
यस्य एतादृशा भवन्ति, अमात्याः परिचारकाः।
सुभाषितेन अनुयन्ति, घटः ज्येष्ठमिव भ्रातरम् इति॥226॥
''नग्नः दुर्वर्णरूपोऽसि, कृशः धमनीसंस्थितः।
गुल्फपार्श्वास्थिकः कृशकः, कः नु त्वमसि मार्ष''॥227॥

हिन्दी- आपने मेरे हृदय में चुभे हुए शोकरूपी शल्य(काँटे) को निकाल कर बाहर कर दिया तथा मुझ शोकमग्न को पुत्रशोक से मुक्त कर दिया॥223॥

हे भ्राता! अब मेरे हृदय में चुभा हुआ काँटा निकल चुका है, अतः मेरा चित्त शान्त है, मैं विगतशोक हो चुका हूँ। आपकी बात मानकर अब मैं न शोक करता हूँ न रोता हूँ॥224॥

प्रज्ञावान् व परहितानुकम्पी जीव ऐसे ही उपकार किया करते हैं। वे शोकाकुल जीवों को उसी प्रकार मुक्त करा देते हैं जैसे सुपुत्र अपने पितरों को॥225॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 53....॥226॥

मार्ष! तुम नग्न हो, तुम कुरूप व शरीर से कृश हो, तुम्हारा शरीर धमनियों से ढका हुआ है; तुम इतने दुर्बल हो कि तुम्हारी प्रत्येक पसली उभरी हुई है; तुम कौन हो?॥227॥

''अहं भदन्ते पेतोम्हि, दुग्गतो यमलोकिको।
पापकम्मं करित्वान, पेतलोकं इतो गतो''॥228॥
''किं नु कायेन वाचाय, मनसा दुक्कटं कतं।
किस्स कम्मविपाकेन, पेतलोकं इतो गतो''॥229॥
''नगरं अत्थि पण्णानं, एरकच्छन्ति विस्सुतं।
तत्थ सेट्ठि पुरे आसिं, धनपालोति मं विदू॥230॥
''असीति सकटवाहानं, हिरञ्ञस्स अहोसि मे।
पहूतं मे जातरूपं, मुत्ता वेळुरिया बहू॥231॥
''ताव महद्धनस्सापि, न मे दातुं पियं अहु।
पिदहित्वा द्वारं भुञ्जिं, मा मं याचनकाद्दसुं॥232॥

संस्कृतच्छाया- ''अहं भदन्त प्रेतोऽस्मि, दुर्गतः यमलौकिकः।
पापकर्म कृत्वा, प्रेतलोकम् इतो गतः''॥228॥
''किं नु कायेन वाचा, मनसा दुष्कृतं कृतम्।
कस्य कर्मविपाकेन, प्रेतलोकम् इतो गतः''॥229॥
''नगरम् अस्ति पण्यानाम्, एरकच्छ इति विश्रुतम्।
तत्र श्रेष्ठी पुरा आसम्, धनपाल इति मां विदुः॥230॥
''अशीतिः शकटवाहानाम्, हिरण्यस्य अभूत् मम।
प्रभूतं मम जातरूपं, मुक्ताः वैदूर्याणि बहूनि॥231॥
''तावन्महाधनस्यापि, न मम दातुं प्रियम् अभूत्।
पिधाय द्वारं भुञ्जानः, मा मां याचनका द्राक्षिषुः॥232॥

हिन्दी- भन्ते! मैं एक प्रेत हूँ, दुर्गतिवश इस यम(प्रेत) लोक में आ पहुँचा हूँ। पापकर्मों को करता हुआ मैं जीवलोक से इस लोक में आ पहुँचा हूँ॥228॥

तुमने काय, वाणी एवं मन से कौन से दुष्कृत्य किये? किन दुष्कर्मों के परिणामस्वरूप तुम इसलोक से प्रेतलोक में जा पहुँचे हो? ॥229॥

व्यापार के लिये एक प्रसिद्ध एरकच्छ नामक नगर था जिसमें मैं पहले कभी एक श्रेष्ठी था, वहाँ लोग मुझे धनपाल नाम से जानते थे॥230॥

मेरे पास अस्सी शकटों(गाड़ियों) में भरने योग्य सुवर्ण के साथ-साथ चाँदी, मणि-रत्न, वैदूर्य आदि का भी विपुल भण्डागार था॥231॥

इतने महाधनी होने पर भी, मेरी दानकर्म में कोई रुचि नहीं थी। अपितु, मैं अपना भोजन भी घर के द्वार बन्द करके खाता था कि कोई याचक मुझको भोजन करते हुए देख न ले॥232॥

''अस्सद्धो मच्छरी चासिं, कदरियो परिभासको।
ददन्तानं करोन्तानं, वारयिस्सं बहु जने॥233॥
''विपाको नत्थि दानस्स, संयमस्स कुतो फलं।
पोक्खरञ्ञोदपानानि, आरामानि च रोपिते।
पपायो च विनासेसिं, दुग्गे सङ्कमनानि च॥234॥
''स्वाहं अकतकल्याणो, कतपापो ततो चुतो।
उपपन्नो पेत्तिविसयं, खुप्पिपाससमप्पितो॥235॥
''पञ्चपण्णासवस्सानि, यतो कालङ्कतो अहं।
नाभिजानामि भुत्तं वा, पीतं वा पन पानियं॥236॥
''यो संयमो सो विनासो,यो विनासो सो संयमो।
पेता हि किर जानन्ति, यो संयमो सो विनासो॥237॥

संस्कृतच्छाया- ''अश्रद्धः मत्सरी च आसम्, कदर्यः परिभाषकः।
दानं कुर्वतः, अवारयिषं बहून् जनान्॥233॥
''विपाकः नास्ति दानस्य, संयमस्य कुतः फलम्।
पुष्करिण्य उदपानानि, आरामाश्च रोपितानि।
पपाश्च व्यनाशयम्, दुर्गाणि सङ्क्रमणानि च॥234॥
''सोऽहम् अकृतकल्याणः, कृतपापः ततश्च्युतः।
उपपन्नः प्रेतीविषये, क्षुत्पिपासासमर्पितः॥235॥
''पञ्चपञ्चाशद्वर्षाणि, यतः कालकृतोऽहम्।
नाभिजानामि भुक्तं वा, पीतं वा पुनः पानीयम्॥236॥
''यः संयमः सः विनाशः, यः विनाशः सः संयमः।
प्रेताः हि किल जानन्ति, यः संयमः सः विनाशः॥237॥

हिन्दी- मैं श्रद्धारहित, कंजूस और दूसरों के प्रति गाली-गलौज भी करता था। तथा अन्य लोगों को दान करते देखकर उसे वैसा न करने के लिये प्रेरित भी करता था॥233॥

मेरी दृष्टि में जब दान का ही कोई फल न था तो संयम का क्या महत्व होता! इसलिए मैंने बने बनाए कूए, पुष्करिणियाँ, हरे-भरे उद्यान उजड़वा दिये। साथ ही प्याऊ(जलाशय), दुर्ग तथा राजपथ आदि भी नष्ट करवा दिये॥234॥

इसलिए मैं, कल्याणकर्म न कर, पापकर्म करता हुआ, वहाँ से च्युत होने के बाद, इस प्रेतयोनि में उत्पन्न हुआ और वहाँ भूखा प्यासा रहने लगा॥235॥

आज मुझे जीवलोक से कालकवलित हुए पचास वर्ष बीत गये; परन्तु मुझको स्मरण नहीं आता कि मैंने कभी भर पेट कुछ खाया पीया हो॥236॥

''अहं पुरे संयमिस्सं, नादासिं बहुके धने।
सन्तेसु देय्यधम्मेसु, दीपं नाकासिमत्तनो।
स्वाहं पच्छानुतप्पामि, अत्तकम्मफलूपगो॥238॥
''ऊद्धं चतूहि मासेहि, कालंकिरिया भविस्सति।
एकन्तकटुकं घोरं, निरयं पपतिस्सहं॥239॥
''चतुक्कण्णं चतुद्वारं, विभत्तं भागसो मितं।
अयोपाकारपरियन्तं, अयसा पटिकुज्जितं॥240॥
''तस्स अयोमया भूमि, जलिता तेजसा युता।
समन्ता योजनसतं, फरित्वा तिट्ठति सब्बदा॥241॥
''तत्थाहं दीघमद्धानं, दुक्खं वेदिस्स वेदनं।
फलं पापस्स कम्मस्स, तस्मा सोचामहं भुसं॥242॥

संस्कृतच्छाया- ''अहं पुरा असंयमी, न अदाम् बहुकं धनम्।
सत्सु देयधर्मेषु, द्वीपं नाकार्षमात्मनः।
सोऽहं पश्चादनुतपामि, आत्मकर्मफलोपगः॥238॥
''ऊर्ध्वं चतुर्भ्यः मासेभ्यः, कालक्रिया भविष्यति।
एकान्तकटुके घोरे, निरये प्रपतिष्याम्यहम्॥239॥
''चतुष्कोणं चतुर्द्वारम्, विभक्तं भागशः मितम्।
अयः प्राकारपर्यन्तम्, अयसा प्रतिकुब्जितम्॥240॥
''तस्य अयोमयी भूमिः, ज्वलिता तेजसा युता।
समन्ताद् योजनशतम्, स्फुरित्वा तिष्ठति सर्वदा॥241॥
''तत्र अहं दीर्घमध्वानम्, दुःखं वेदिष्यामि वेदनाम्।
फलं पापकर्मणः, तस्मात् शोचामि अहं भृशम्॥242॥

हिन्दी- यह जो संयम है वही विनाश है, और जो विनाश है वही संयम है; वास्तव में प्रेतात्माएँ ही जानती हैं कि जो संयम है वही विनाश है॥237॥

मैंने अपने पूर्वजन्म में असंयमी हो सन्तो को तथा धर्मार्थ प्रभूत धन आदि का दान नहीं किया। अपने लिए किसी शरणस्थल का निर्माण नहीं किया। इसलिए आज मैं पश्चाताप की अग्नि में जलता हुआ स्वकृत पापकर्मों का फल भोग रहा हूँ॥238॥

चार मास बाद मेरी इस प्रेतलोक से भी च्युति हो जायगी। तदनन्तर मैं एक अन्य एकान्त व कटुक घोर नरक में जा गिरूँगा॥239॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 70....॥240॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 71....॥241॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 72...॥242॥

''तं वो वदामि भद्दं वो, यावन्तेत्थ समागता।
माकत्थ पापकं कम्मं, आवि वा यदि वा रहो॥243॥
''सचे तं पापकं कम्मं, करिस्सथ करोथ वा।
न वो दुक्खा पमुत्यत्थि, उप्पच्चापि पलायतं॥244॥
''मत्तेय्या होथ पेत्तेय्या, कुले जेट्ठापचायिका।
सामञ्ञा होथ ब्रह्मञ्ञा, एवं सग्गं गमिस्सथा'' ति॥245॥

धनपालसेट्ठिपेतवत्थु सत्तमं।

8. चूळसेट्ठिपेतवत्थु

''नग्गो किसो पब्बजितोसि भन्ते, रत्तिं कुहिं गच्छसि किस्स हेतु।
आचिक्ख मे तं अपि सक्कुणेमु, सब्बेन वित्तं पटिपादये तुवं'' ति॥246॥
''बाराणसी नगरं दूरघुट्ठं, तत्थाहं गहपति अड्ढको अहु दीनो।
अदाता गेधितमनो आमिसस्मिं, दुस्सील्येन यमविसयम्हि पत्तो॥247॥

संस्कृतच्छाया- ''तद् वः वदामि भद्रं वः, यावन्तः अत्र समागताः।
मा कुरुथ पापकं कर्म, आविर्वा यदि वा रहः॥243॥
''स चेत् तत् पापकं कर्म, करिष्यथ अकुरुथ वा।
न वः दुःखात् प्रमुक्तिरस्ति, उत्पत्यापि पलायताम्॥244॥
''मातुः याजकाः भवथ पितुः याजकाः, कुले ज्येष्ठोपचारकाः।
श्रामण्याः भवथ ब्रह्मज्ञा, एवं स्वर्गं गमिष्यथ'' इति॥245॥
''नग्नः कृशः प्रव्रजितोऽसि भदन्त, रात्रौ क्व गच्छसि कस्य हेतोः।
आचक्ष्व मां तदपि शक्नुयाम् सर्वेण वित्तं प्रतिपादयेः तुभ्यम्'' इति॥246॥
''वाराणसीनगरं दूरघुष्टं, तत्राहं गृहपतिः आढ्य आसम् दीनः।
अदाता गर्धितमना आमिषे, दौःशील्येन यमविषयम् अस्मि प्राप्तः॥247॥

हिन्दी- इसलिए मैं यहाँ एकत्रित समस्त लोगों को यही सत्परामर्श देता हूँ कि आप परोक्ष-अपरोक्ष रूप से सदा पापकर्म से दूर रहें॥243॥

यदि आप पापकर्म करेंगे या कर रहे हैं तो उससे मुक्ति असम्भव है, फिर क्यों न आप उड़कर भी कहीं चले जायँ॥244॥

आप लोग माता-पिता की तथा कुल परिवार में जो ज्येष्ठ हैं उनकी सेवा-सुश्रूषा करें। इससे आपको श्रामण्य(धर्मसाधना का फल) तथा ब्राह्मण्य(तत्त्वज्ञान) की प्राप्ति होगी। इस प्रकार आपको स्वर्ग की प्राप्ति होगी॥245॥

भदन्त! आप प्रव्रजित होकर भी नग्न एवं दुर्बल हैं, आप रात्रि में कहाँ और किसलिए गये थे? आप मुझे कहें, जिससे मैं आपके लिए उसका सम्पूर्ण निराकरण कर आपको सन्तुष्ट कर सकूँ॥246॥

''सो सूचिकाय किलमितो तेहि, तेनेव ञातीसु यामि आमिसकिञ्चिक्खहेतु।
अदानसीला न च सद्दहन्ति, दानफलं होति परम्हि लोके॥248॥
''धीता च मय्हं लपते अभिक्खणं, 'दस्सामि दानं पितूनं पितामहानं'।
तमुपक्खटं परिविसयन्ति ब्राह्मणा, 'यामि अहं अन्धकविन्दं भोत्तुं''' ति॥249॥
तमवोच राजा ''अनुभवियान तम्पि, एय्यासि खिप्पं अहमपि कस्सं पूजं।
आचिक्ख मे तं यदि अत्थि हेतु, सद्धायितं हेतुवचो सुणोमा'' ति॥250॥
'तथा'ति वत्वा अगमासि तत्थ, भुञ्जिंसु भत्तं न च दक्खिणारहा।
पच्चागमि राजगहं पुनापरं, पातुरहोसि पुरतो जनाधिपस्स॥251॥
दिस्वान पेतं पुनदेव आगतं, राजा अवोच ''अहमपि किं ददामि।
आचिक्ख मे तं यदि अत्थि हेतु, येन तुवं चिरतरं पीणितो सिया'' ति॥252॥

संस्कृतच्छाया- ''सः सूचिकया कीलितः तैः, तेनैव ज्ञातिषु यामि किञ्चिदामिषहेतोः।
अदानशीलाः न च श्रद्दधति, दानफलं भवति परस्मिन् लोके॥248॥
''दुहिता च मह्यं लपति अभीक्ष्णम्, 'दास्यामि दानं पितृभ्यः पितामहेभ्यः।
तमुपकृतं परिवेषयन्ति ब्राह्मणान्, 'यामि अहम् अन्धकविन्दं भोक्तुम् इति॥249॥
तमवोचद् राजा ''अनुभव तमपि, आयासि क्षिप्रम् अहमपि करोमि पूजाम्।
आचक्ष्व माम् तं यदि अस्ति हेतुः, श्रद्धायुतं हेतुवचः श्रृणोमि'' इति॥250॥
'तथा' इति उक्त्वा अगमत् तत्र, भोक्तुं भक्तं न च दक्षिणार्हः।
प्रत्यागमत् राजगृहं पुनः अपरम्, प्रादुरभूत् पुरतः जनाधिपस्य॥251॥
दृष्ट्वा प्रेतं पुनर्देव आगतम्, राजा अवोचत् ''अहमपि किं ददामि।
आचक्ष्व माम् तद् यदि अस्ति हेतुः, येन त्वं चिरतरं प्रीणितः स्याः'' इति॥252॥

हिन्दी- कभी दूर तक विस्तृत वाराणसी नगर में मैं एक धनी गृहस्थ था। मैं कुछ भी दान नहीं करता था। भोगपदार्थों का लोभ=गेध करता था। दुराचारी भी था। जिसके फलस्वरूप मैं, इस दुर्गति में आ पहुँचा॥247॥

यमदूतों ने मुझको वहाँ सूइयों से छेद-छेद कर कष्ट दिया। इसलिए अब मैं अपने सम्बन्धियों के सम्मुख जा भोजन के लिये गिड़गिड़ाता हूँ। परन्तु जो अदानशील हैं उन्हें दान देने में श्रद्धा एवं विश्वास ही नहीं है कि यहाँ किये गए दान का फल परलोक के लिए होता है!॥248॥

मेरी पुत्री मुझसे प्रायः कहती रहती थी कि मैं अपने पिता, पितामह आदि पूर्व पितरों के लिए निरन्तर दान करती हूँ। ब्राह्मण भी उसके घर आकर भोजन करते रहते हैं। मैं उसके यहाँ भोजन के लिये अन्धकविन्द नगर जा रहा हूँ॥249॥

राजा ने उससे कहा— "इसका भी अनुभव कर लो। वहाँ से शीघ्र लौटना। मैं अभी पूजा करता हूँ। लौट कर मुझको अपना विवरण देना। मैं तुम्हारे लिये करणीय वचन को श्रद्धापूर्वक सुनूँगा॥250॥

ठीक है— ऐसा कहकर वह वहाँ गया। वहाँ उसे भाजन तो मिला; परन्तु उसका दानानुमोदन नहीं मिला। अतः वह पुनः राजगृह लौट आया और राजा के सामने आकर प्रकट हुआ॥251॥

''बुद्धञ्च सङ्घं परिविसियान राज, अन्नेन पानेन च चीवरेन।
तं दक्खिणं आदिस मे हिताय, एवं अहं चिरतरं पीणितो सिया'' ति॥253॥
ततो च राजा निपतित्वा तावदे, दानं सहत्था अतुलं ददित्वा सङ्घे।
आरोचेसि पकतं तथागतस्स, तस्स च पेतस्स दक्खिणं आदिसित्थ॥254॥
सो पूजितो अतिविय सोभमानो, पातुरहोसि पुरतो जनाधिपस्स।
''यक्खोहमस्मि परमिद्धिपत्तो, न मय्हमत्थि समा सदिसा मानुसा॥255॥
''पस्सानुभावं अपरिमितं ममयिदं, तयानुदिट्ठं अतुलं दत्वा सङ्घे।
सन्तप्पितो सततं सदा बहूहि, यामि अहं सुखितो मनुस्सदेवा'' ति॥256॥

चूळसेट्ठिपेतवत्थु अट्ठमं निट्ठितं।
भाणवारं पठमं निट्ठितं।

संस्कृतच्छाया- ''बुद्धं च सङ्घं परिवेष्य राजन्, अन्नेन पानेन च चीवरेण।
ताभ्यां दक्षिणाम् आदिश मे हिताय,
एवम् अहं चिरतरं प्रीणितः स्याम्'' इति॥253॥
ततश्च राजा निपत्य तावदेव, दानं स्वहस्ताद् अतुलं दत्वा सङ्घाय।
अरोचयत् प्रकृतं तथागताय, तस्मै च प्रेताय दक्षिणाम् आदिशः अत्र॥254॥
सः पूजितः अतीव शोभमानः, प्रादुरभूत् पुरतः जनाधिपस्य।
''यक्षोऽहमस्मि परमर्द्धिप्राप्तः, न मम सन्ति समाः सदृशाः मानुषाः॥255॥
''पश्यानुभावम् अपरिमितं मम इमं, त्वयानुदिष्टम् अतुलं दत्वा सङ्घाय।
सन्तर्पितः सततं सदा बहुभिः, यामि अहं सुखितः मनुष्यदेव'' इति॥256॥

हिन्दी- पुनः आये उस प्रेत को देख कर राजा बोला— मैं भी आपको क्या दूँ, कृपया बतावें आप जिस कार्य से चिरकाल तक सुखी हो सकें॥252॥

"राजन! आप भगवान् बुद्ध एवं उनके भिक्षुसङ्घ को निमन्त्रित कर तथा मेरे नाम संकल्प कर उनको अन्न, पान एवं चीवर दान करें। इस प्रकार मैं चिरकाल तक सुखी हो जाऊँगा॥253॥

तब राजा ने उसी क्षण विनम्रतापूर्वक भिक्षुसङ्घ को अपने हाथों से अतुल्य दान किया। और भगवान् को उस प्रेत की सम्पूर्ण घटाना सुनायी तथा निवेदन किया कि इस दान का अनुमोदन उसके नाम करने की अनुकम्पा करें। भगवान् ने वैसा ही किया॥254॥

राजा द्वारा पूजित एवं सम्मानित वह अतिशय शोभा प्राप्त प्रेत राजा के सम्मुख प्रकट हुआ और बोला— "राजन्! मैं परम ऋद्धिप्राप्त वह यक्ष हूँ, मेरे समान कोई मनुष्य नहीं हो सकता॥255॥

आप मेरा यह अपरिमित तेज देखें जो आपने भिक्षुसङ्घ को अतुल्य दान दे कर मुझको दिलवाया है। इससे मैं अति सन्तृप्त एवं सन्तुष्ट हूँ। हे राजन्! अब मैं सदैव सुखी रहूँगा, अब मैं जा रहा हूँ॥256॥

9. अङ्कुरपेतवत्थु

''यस्स अत्थाय गच्छाम, कम्बोजं धनहारका।
अयं कामददो यक्खो, इमं यक्खं नयामसे॥257॥
''इमं यक्खं गहेत्वान, साधुकेन पसय्ह वा।
यानं आरोपयित्वान, खिप्पं गच्छाम द्वारकं'' ति॥258॥
''यस्स रुक्खस्स छायाय, निसीदेय्य सयेय्य वा।
न तस्स साखं भञ्जेय्य, मित्तदुब्भो हि पापको'' ति॥259॥
''यस्स रुक्खस्स छायाय, निसीदेय्य सयेय्य वा।
खन्धम्पि तस्स छिन्देय्य, अत्थो चे तादिसो सिया'' ति॥260॥
''यस्स रुक्खस्स छायाय, निसीदेय्य सयेय्य वा।
न तस्स पत्तं भिन्देय्य, मित्तदुब्भो हि पापको'' ति॥261॥

संस्कृतच्छाया- ''यस्मै अर्थाय गच्छामः, कम्बोजं धनहारकाः।
अयं कामदः यक्षः, इमं यक्षं नयामः॥257॥
''इमं यक्षं गृहीत्वा, साधु प्रसह्य वा।
यानम् आरोप्य, क्षिप्रं गच्छाम द्वारकाम्'' इति॥258॥
''यस्य वृक्षस्य छायायां, निषीदामः शयामहे वा।
न तस्य शाखाम् भङ्क्ष्यामः, मित्रद्रोहः हि पापकः'' इति॥259॥
''यस्य वृक्षस्य छायायां, निषीदाम शयामहे वा।
स्कन्धमपि तस्य छेत्स्यामः, अर्थः चेत् तादृशः स्याद्'' इति॥260॥
''यस्य वृक्षस्य छायायां, निषीदामः शयामहे वा।
न तस्य पत्रं भेत्स्यामः, मित्रद्रोहः हि पापकः'' इति॥261॥

हिन्दी- हम धनाभिलाषी जिस प्रयोजन हेतु कम्बोज देश जा रहे हैं, उस प्रयोजन की पूर्ति में यह यक्ष अत्यन्त सहायक होगा, अतः हम इस यक्ष को भी साथ ले चलते हैं॥257॥

हम इस यक्ष को प्रेमपूर्वक या बलपूर्वक(प्रसह्य) यान में बैठा कर शीघ्र ही द्वारका के लिये प्रस्थान करते हैं॥258॥

जिस वृक्ष की छाया में बैठा या सोया गया हो उस की शाखा कभी नहीं तोड़नी चाहिये; क्योंकि मित्रद्रोह ही पाप है॥259॥

जिस वृक्ष की छाया में बैठा या सोया जाय, प्रयोजन आने पर उसकी शाखा भी काट लेनी चाहिए॥260॥

जिस वृक्ष की छाया में बैठा या सोया जाय, उसका एक पत्र भी नहीं काटना चाहिए। मित्रद्रोह सबसे बड़ा पाप है॥261॥

''यस्स रुक्खस्स छायाय, निसीदेय्य सयेय्य वा।
समूलम्पि तं अब्बुहे, अत्थो चे तादिसो सिया'' ति॥262॥
''यस्सेकरत्तिम्पि घरे वसेय्य, यत्थन्नपानं पुरिसो लभेथ।
न तस्स पापं मनसापि चिन्तये, कतञ्ञुता सप्पुरिसेहि वण्णिता॥263॥
''यस्सेकरत्तिम्पि घरे वसेय्य, अन्नेन पानेन उपट्ठितो सिया।
न तस्स पापं मनसापि चिन्तये, अदुब्भपाणी दहते मित्तदुब्भिं॥264॥
''यो पुब्बे कतकल्याणो, पच्छा पापेन हिंसति।
अल्लपाणिहतो पोसो, न सो भद्रानि पस्सती'' ति॥265॥
''नाहं देवेन वा मनुस्सेन वा, इस्सरियेन वाहं सुप्पसय्हो।
यक्खोहमस्मि परमिद्धिपत्तो, दूरङ्गमो वण्णबलूपपन्नो'' ति॥266॥

संस्कृतच्छाया- ''यस्य वृक्षस्य छायायां, निषीदामः शयामहे वा।
समूलमपि तम् आवृढम्, अर्थः चेत् तादृशः स्याद्'' इति॥262॥
''यस्यैकरात्रमपि गृहे वसेत्, यत्रान्नपानं पुरुषः लभेत।
न तस्य पापं मनसापि चिन्तयेत्, कृतज्ञता सत्पुरुषैः वर्णिता॥263॥
''यस्यैकरात्रमपि गृहे वसेत्, अन्नेन पानेन उपस्थितः स्यात्।
न तस्य पापं मनसापि चिन्तयेत्, अदम्भपाणिः दहते मित्रदुर्भियम्॥264॥
''यः पूर्वं कृतकल्याणः, पश्चात् पापेन हिंसति।
आर्द्रप्राणिहतः पुरुषः, न सः भद्राणि पश्यति'' इति॥265॥
''नाहं देवेन वा मनुष्येण वा, ईश्वरेण वा अहं सुप्रसह्यः।
यक्षोऽहमस्मि परमर्द्धिप्राप्तः, दूरङ्गमः वर्णबलोपपन्नः'' इति॥266॥

हिन्दी- जिस वृक्ष की छाया में बैठा या सोया जाय, यदि प्रयोजन हो तो उसको समूल भी नष्ट कर दिया जाय तो कोई हानि नहीं? क्योंकि प्रयोजन का ही अधिक महत्त्व है॥262॥

जिसके घर मे एक रात्रि भी वास कर लिया हो और वहाँ अन्न पान भी प्राप्त हुआ हो तो उसके प्रति मन से भी पाप चिन्तन नहीं करना चाहिये। सज्जनों ने इसे ही कृतज्ञता कहा है॥263॥

जिसके घर मे एक रात्रि भी वास कर लिया हो और जहाँ अन्न पान से सत्कार हुआ हो तो उसके प्रति मन से भी पाप चिन्तन नहीं करना चाहिये। कृतज्ञ पुरुष का हाथ मित्रद्रोही को जला देता है॥264॥

जिसने पूर्व में कल्याण कार्य किया हो और बाद में उसके प्रति पापवश उसकी हिंसा कर दे तो रक्तरञ्जित हाथों वाले ऐसे पुरुष को जीवन में मंगलमय अवसर कभी नहीं मिलता॥265॥

यहाँ किसी देवता, मनुष्य या राजा के द्वारा मेरा मारा जाना बहुत ही कठिन है; क्योंकि मैं परमऋद्धिप्राप्त एक यक्ष हूँ। मुझमें दूर तक जाने का सामर्थ्य है और मैं वर्ण एवं बल से भी युक्त हूँ॥266॥

''पाणि ते सब्बसो वण्णो, पञ्चधारो मधुस्सवो।
नानारसा पग्घरन्ति, मञ्ञेहं तं पुरिन्ददं'' ति॥267॥
''नाम्हि देवो न गन्धब्बो, नापि सक्को पुरिन्ददो।
पेतं मं अङ्कुर जानाहि, रोरुवम्हा इधागतं'' ति॥268॥
''किंसीलो किंसमाचारो, रोरुवस्मिं पुरे तुवं।
केन ते ब्रह्मचरियेन, पुञ्ञं पाणिम्हि इज्झती'' ति॥269॥
''तुन्नवायो पुरे आसिं, रोरुवस्मिं तदा अहं।
सुकिच्छवुत्ति कपणो, न मे विज्जति दातवे॥270॥
''निवेसनञ्च मे आसि, असय्हस्स उपन्तिके।
सद्धस्स दानपतिनो, कतपुञ्ञस्स लज्जिनो॥271॥

संस्कृतच्छाया- ''पाणिः ते सर्वसौवर्णः, पञ्चधारः मधुस्रवः।
नानारसाः प्रक्षरन्ति, मन्येऽहं त्वां पुरन्दरम्'' इति॥267॥
''नास्मि देवः न गन्धर्वः, नापि शक्रः पुरन्दरः।
प्रेतं माम् अङ्कुर जानीहि, रौरवात् इहागतम्'' इति॥268॥
''कः शीलः कः समाचारः, रौरवे पुरा तव।
केन त्वया ब्रह्मचर्येण, पुण्यं पाणौ हि ऋध्यति'' इति॥269॥
''तन्तुवायः पुरा आसम्, रौरवे तदा अहम्।
सुकृच्छ्रवृत्तिः कृपणः, न मे विद्यते दातुम्॥270॥
''निवेशनं च मे आसीत्, असह्यस्य उपान्तिके।
सश्रद्धस्य दानपतेः, कृतपुण्यस्य लज्जिनः॥271॥

हिन्दी- आपका एक हाथ सर्वस्वरूप से सुवर्णमय है, इससे पाँच धाराएँ बह रही हैं, मधुस्राव हो रहा है, इनमें से विविध रस बह रहे हैं। लगता है, मानो आप इन्द्र हों?॥267॥

न मैं कोई देवता हूँ, न कोई गन्धर्व, न देवराज इन्द्र! मैं तो अङ्कुर नामक एक प्रेत हूँ, जो रौरव नामक नरक से यहाँ आया हूँ॥268॥

रौरव से यहाँ आने के पूर्व आपका क्या स्वभाव था? तथा क्या आचरण था? कौन से धर्मसाधना कर आपने अपने इस हाथ में यह ऋद्धि प्राप्त किया है?॥269॥

मैं रौरव नामक नरक में जाने से पूर्व यहाँ एक साधारण दर्जी था। उस समय मेरा स्वभाव अत्यन्त तुच्छ था तथा मैं बहुत ही कंजूस था। मेरे पास दान देने को कुछ भी नहीं था॥270॥

मेरा निवासस्थान असह्य के पड़ोस में था। जो रत्नत्रय के प्रति श्रद्धालु, दानपति, पुण्यकर्म करने वाला तथा पाप कर्मों में लज्जा करने वाला था॥271॥

''तत्थ याचनका यन्ति, नानागोत्ता वनिब्बका।
ते च मं तत्थ पुच्छन्ति, असय्हस्स निवेसनं॥272॥
''कत्थ गच्छाम भद्दं वो, कत्थ दानं पदीयति।
तेसाहं पुट्ठो अक्खामि, असय्हस्स निवेसनं॥273॥
''पग्गय्ह दक्खिणं बाहुं, एत्थ गच्छथ भद्दं वो।
एत्थ दानं पदीयति, असय्हस्स निवेसने॥274॥
''तेन पाणि काममददो, तेन पाणि मधुस्सवो।
तेन मे ब्रह्मचरियेन, पुञ्ञं पाणिम्हि इज्झती'' ति॥275॥
''न किर त्वं अदा दानं, सकपाणीहि कस्सचि।
परस्स दानं अनुमोदमानो, पाणिं पग्गय्ह पावदि॥276॥

संस्कृतच्छाया- ''तत्र याचनकाः यान्ति, नानागोत्राः वनिर्वकाः।
ते च मां तत्र पृच्छन्ति, असह्यस्य निवेशनम्॥272॥
''कुत्र गच्छाम भद्रं वः, कुत्र दानं प्रदीयते।
तेषामहं पृष्टः आख्यामि, असह्यस्य निवेशनम्॥273॥
''प्रगृह्य दक्षिणं बाहुम्, एत गच्छथ भद्रं वः।
अत्र दानं प्रदीयते, असह्यस्य निवेशने॥274॥
''तेन पाणिः कामदः, तेन पाणिः मधुस्रवः।
तेन मे ब्रह्मचर्येण, पुण्यं पाणिभ्यां हि इध्यते'' इति॥275॥
''न किल त्वं अदाः दानं, स्वपाणिभिः कस्मैचित्।
परस्य दानम् अनुमोदयन्, पाणिं प्रगृह्य प्रापयसि॥276॥

हिन्दी- वहाँ अनेक याचक आकर असह्य का नाम पता पूछते थे॥272॥

भद्र! हम कहाँ जाएँ जहाँ दान दिया जाता है? उनके द्वारा ऐसा पूछे जाने पर मैं उनको उस असह्य धनपति का घर बता देता था॥273॥

उनमें से कुछ को तो मैं उनका दाहिना हाथ पकड़ कर, आप लोग यहाँ जायँ, यहीं असह्य के घर पर सर्वविध दान दिया जाता है॥274॥

इसी पुण्य कर्म के प्रभावस्वरूप मेरा यह हाथ सबके लिये मनोरथ सिद्ध करने वाला तथा मधुस्रव हो गया है। और इसी श्रेष्ठ आचरण के कारण मेरा यह हाथ पुण्यवर्द्धन में सहायक है॥275॥

आपने अपने हाथ से कभी किसी को दान नहीं किया; केवल दूसरे दानकर्त्ता के दान का अनुमोदन करने के लिये आप याचकों को, हाथ पकड़ कर उसके घर तक पहुँचा देते थे॥276॥

''तेन पाणि कामददो, तेन पाणि मधुस्सवो।
तेन ते ब्रह्मचरियेन, पुञ्ञं पाणिम्हि इज्झति॥277॥
''यो सो दानमदा भन्ते, पसन्नो सकपाणिभि।
सो हित्वा मानुसं देहं, किं नु सो दिसतं गतो'' ति॥278॥
''नाहं पजानामि असय्हसाहिनो, अङ्गीरसस्स गतिं आगतिं वा।
सुतञ्च मे वेस्सवणस्स सन्तिके, सक्कस्स सहब्यतं गतो असय्हो'' ति॥279॥
''अलमेव कातुं कल्याणं, दानं दातुं यथारहं।
पाणिं कामददं दिस्वा, को पुञ्ञं न करिस्सति॥280॥
''सो हि नून इतो गन्त्वा, अनुप्पत्वान द्वारकं।
दानं पट्ठपयिस्सामि, यं ममस्स सुखावहं॥281॥

संस्कृतच्छाया- ''तेन पाणि कामदः, तेन पाणिः मधुस्रवः।
तेन ते ब्रह्मचर्येण, पुण्यं पाणौ हि ऋध्यति॥277॥
''यः सः दानमदात् भदन्त, प्रसन्नः स्वपाणिभिः।
सः हित्वा मानुषं देहं, कां नु सः दिशं गतः'' इति॥278॥
''नाहं प्रजानामि असह्य सा हि नः, आङ्गिरसस्य गतिमागतिं वा।
श्रुतं च मे वैश्रवणस्य अन्तिके, शक्रेण सह वस्तुं गतः असह्यः'' इति॥279॥
''अलमेव कर्तुं कल्याणं, दानं दातुं यथाऽर्हम्।
पाणिं कामदं दृष्ट्वा, कः पुण्यं न करिष्यति॥280॥
''सः हि नूनम् इतः गत्वा, अनुप्राप्य द्वारकाम्।
दानं प्रत्यर्पयिष्यामि, यत् मम स्यात् सुखावहम्॥281॥

हिन्दी- इसी पुण्य कर्म के प्रभावस्वरूप आपका यह हाथ सबके लिये मनोरथ सिद्ध करने वाला तथा मधुस्रव हो गया है। और इसी श्रेष्ठ आचरण के कारण आपका यह हाथ पुण्यवर्द्धन में सहायक है॥277॥

भदन्त! जिस दानपति ने अपने हाथों द्वारा प्रसन्नतापूर्वक वह सब कुछ दान दिया था उसकी मनुष्य देहच्युति के अनन्तर क्या गति हुई है?॥278॥

उस आङ्गीरस असह्य धनपति की क्या गति हुई— मैं कुछ भी नहीं जानता; परन्तु मैंने वैश्रवण के मुख से कभी सुना था कि वह असह्य शक्र(देवेन्द्र) के साथ स्वर्ग में दिव्य सुख भोग रहा है॥279॥

शुभ कर्म करते रहना ही कल्याणमय होता है— अतः यथायोग्य दान कर्म करते रहना चाहिये। सर्वमनोरथसाधक हाथ को दान करते साक्षात् देखकर भी कौन प्राणि पुण्य कर्म नहीं करना चाहेगा!॥280॥

इसलिए मैं भी यहाँ से निवृत्त होकर, द्वारका पहुँच कर दानकर्म आरम्भ करूँगा। जो सत्कर्म मेरे लिये सुख का वाही होगा॥281॥

''दस्सामन्नञ्च पानञ्च, वत्थसेनासनानि च।
पपञ्च उदपानञ्च, दुग्गे सङ्कमनानि चा'' ति॥282॥
''केन ते अङ्गुली कुणा, मुखञ्च कुणलीकतं।
अक्खीनि च पग्घरन्ति, किं पापं पकतं तया'' ति॥283॥
''अङ्गीरसस्स गहपतिनो, सद्धस्स घरमेसिनो।
तस्साहं दानविस्सग्गे, दाने अधिकतो अहुं॥284॥॥
''तत्थ याचनके दिस्वा, आगते भोजनत्थिके।
एकमन्तं अपक्कम्म, अकासिं कुणलिं मुखं॥285॥
''तेन मे अङ्गुली कुणा, मुखञ्च कुणलीकतं।
अक्खीनि मे पग्घरन्ति, तं पापं पकतं मया'' ति॥286॥

संस्कृतच्छाया- ''दास्यामि अन्नं च पानं च, वस्त्रशयनासनानि च।
पपां च उदपानञ्च, दुर्गे सङ्क्रमणानि च'' इति॥282॥
''केन तव अङ्गुलिः कुणिः, मुखं च कुण्डलीकृतम्।
अक्षिणी च प्रक्षरतः, किं पापं प्रकृतं त्वया'' इति॥283॥
''आङ्गिरसस्य गृहपतेः, सश्रद्धस्य गृहमेधिनः।
तस्याहं दानविसर्गे, दाने अधिकृत आसम्॥284॥
''तत्र याचकान् दृष्ट्वा, आगतान् भोजनार्थिनः।
एकान्तम् अपक्रम्य, अकार्षं कुण्डलिनं मुखम्॥285॥
''तेन मे अङ्गुलिः कुणिः, मुखं च कुण्डलीकृतम्।
अक्षिणी मे प्रक्षरतः, तत् पापं प्रकृतं मया'' इति॥286॥

हिन्दी- भोजन, पानी, वस्त्र, बिछौने आदि का दान करूँगा तथा प्याऊ व कूप आदि का निर्माण कराऊँगा साथ-साथ दुर्गम पथों पर मार्ग आदि का निर्माण भी करवाऊँगा॥282॥

कौन से दुष्कर्मवश आपके अङ्गुलि और मुख विकृत(टेढ़े) हो गए हैं? तथा आपके नेत्रों से निरन्तर आँसू बह रहे हैं?॥283॥

उस श्रद्धावान् आङ्गिरस गृहपति के घर दानोत्सव के अवसर पर याचकों को दान वितरण में मुझको अधिकृत(लगाया) किया गया था॥284॥

वहाँ मैंने भोजन हेतु आए याचकों को अधिक संख्या में आया हुआ देखकर, एकान्त में जाकर ईर्ष्यावश अपना मुँह टेढ़ा किया था॥285॥

उसी दुष्कर्म का यह फल हुआ कि मेरी अङ्गुलि और मुख भी तब से टेढ़े हो गए। तथा उसी समय से मेरे नेत्रों से निरन्तर आँसू भी झर रहे हैं॥286॥

''धम्मेन ते कापुरिस, मुखञ्च कुणलीकतं।
अक्खीनि च पग्घरन्ति, यं तं परस्स दानस्स।
अकासि कुणलिं मुखं॥287॥
''कथं हि दानं ददमानो, करेय्य परपत्तियं।
अन्नं पानं खादनीयं, वत्थसेनासनानि च॥288॥
''सो हि नून इतो गन्त्वा, अनुप्पत्वान द्वारकं।
दानं पट्ठपयिस्सामि, यं ममस्स सुखावहं॥289॥
''दस्सामन्नञ्च पानञ्च, वत्थसेनासनानि च।
पपञ्च उदपानञ्च, दुग्गे सङ्कमनानि चा'' ति॥290॥
ततो हि सो निवत्तित्वा, अनुप्पत्वान द्वारकं।
दानं पट्ठपयि अङ्कुरो, यंतुमस्स सुखावहं॥291॥

संस्कृतच्छाया- ''धर्मेण ते कापुरुष, मुखं च कुण्डलीकृतम्।
अक्षिणी च प्रक्षरतः, यत् तत् परस्य दानस्य।
अकार्षीः कुण्डलिनं मुखम्॥287॥
''कथं हि दानं ददानस्य, कुर्यात् विप्रतिपत्तिम्।
अन्नं पानं खादनीयं, वस्त्रशयनासनानि च॥288॥
''स हि नूनम् इतः गत्वा, अनुप्राप्य द्वारकाम्।
दानं प्रस्थापयिष्यामि, यत् मम स्यात् सुखावहम्॥289॥
''दास्यामि अन्नं च पानं च, वस्त्रशयनासनानि च।
प्रपां च उदपानं च, दुर्गे सङ्क्रमणानि च'' इति॥290॥
ततो हि सो निवर्त्य, अनुप्राप्य द्वारकाम्।
दानं प्रास्थापयद् अङ्कुरः, यत् तव अस्य(स्यात्) सुखावहम्॥291॥

हिन्दी- अरे कापुरुष(कायर)! जो तुमनें दूसरे के दानकर्म जैसे धार्मिक कृत्य में ईर्ष्यावश अपना मुख विकृत किया था। उसी के परिणामस्वरूप तेरे अङ्गुलि और मुख टेढ़े हो गए। तथा नेत्रों से आँसू बह रहे हैं!॥287॥

दूसरों को अन्न पान, भोजन, वस्त्र, आच्छादन आदि का दान करते समय कोई क्यों आपत्ति करेगा? ॥288॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 281....॥289॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 282....॥290॥

वहाँ से निवृत्त होकर, पुनः द्वारका में पहुँच कर उस अङ्कुर ने दान-कर्म आरम्भ किया जो उसके इस सुख का वाही हुआ॥291॥

अदा अन्नञ्च पानञ्च, वत्थसेनासनानि च।
पपञ्च उदपानञ्च, विप्पसन्नेन चेतसा॥292॥
''को छातो को च तसितो, को वत्थं परिदहिस्सति।
कस्स सन्तानि योग्गानि, इतो योजेन्तु वाहनं॥293॥
''को छत्तिच्छति गन्धञ्च, को मालं को उपाहनं।
इतिस्सु तत्थ घोसेन्ति, कप्पका सूदमागधा।
सदा सायञ्च पातो च, अङ्कुरस्स निवेसने॥294॥
'''सुखं सुपति अङ्कुरो', इति जानाति मं जनो।
दुक्खं सुपामि सिन्धक, यं न पस्सामि याचके॥295॥
'''सुखं सुपति अङ्कुरो', इति जानाति मं जनो।
दुक्खं सिन्धक सुपामि, अप्पके सु वनिब्बके'' ति॥296॥

संस्कृतच्छाया- अदाद् अन्नं च पानं च, वस्त्रशयनासनानि च।
प्रपां च उदपानं च, विप्रसन्नेन चेतसा॥292॥
''कः क्षुधितः कश्च तृषितः, कः वस्त्रं परिधास्यति।
कस्य सन्ति युग्याः, इतः योजयतु वाहनम्॥293॥
''कः छत्रम् इच्छति गन्धं च, कः मालां कः उपाहनम्।
इति स्म तत्र घोषयन्ति, कल्पकाः सूतमागधाः।
सदा सायं च प्रातः च, अङ्कुरस्य निवेशने॥294॥
'''सुखं शेते अङ्कुरः', इति जानाति मां जनः।
दुःखं स्वपिमि सिन्धुक, यत् न पश्यामि याचकान्॥295॥
'''सुखं शेते अङ्कुरः', इति जानाति मां जनः।
दुःखं सिन्धुक स्वपिमि, अल्पके सुवनीयके'' इति॥296॥

हिन्दी- वहाँ उसनें प्रसन्नतापूर्वक भोजन, पानी, वस्त्र, बिछौने आदि का दान किया तथा प्याऊ व कूप आदि का निर्माण भी कराया॥292॥

कौन भूखा है? कौन प्यासा है? किसको वस्त्रों की आवश्यकता है? किसके पास अश्व हैं? वह यहाँ से रथ ले जाय॥293॥

किसको छत्र चाहिये? कौन माला गन्धविलेपन या पैरों में पहनने के लिये जूते चाहता है? उस अङ्कुर के घर में सदा सायं, प्रातः कल्पक और सूत के ये घोष गूँजते रहते थे॥294॥

हे सैन्धव! समस्त जन जानते हैं कि अङ्कुर सुख की नींद सोता है; परन्तु मैं तब दुःखपूर्वक सोता हूँ जब किसी याचक को नहीं देखता॥295॥

अङ्कुर सुख की नींद सोता है; यह समस्त जन जानते हैं। किन्तु जब मेरे द्वार पर याचकों की संख्या अत्यल्प होती है, तब हे सैन्धव! मैं अपनी निद्रा में दुःख का अनुभव करता हूँ॥296॥

''सक्को चे ते वरं दज्जा, तावतिंसानमिस्सरो।
किस्स सब्बस्स लोकस्स, वरमानो वरं वरे'' ति॥297॥
''सक्को चे मे वरं दज्जा, तावतिंसानमिस्सरो।
कालुट्ठितस्स मे सतो, सुरियुग्गमनं पति।
दिब्बा भक्खा पातुभवेय्युं, सीलवन्तो च याचका॥298॥
''ददतो मे न खीयेथ, दत्वा नानुतपेय्यहं।
ददं चित्तं पसादेय्यं, एतं सक्कं वरं वरे'' ति॥299॥
''न सब्बवित्तानि परे पवेच्छे, ददेय्य दानञ्च धनञ्च रक्खे।
तस्मा हि दाना धनमेव सेय्यो, अतिप्पदानेन कुला न होन्ति॥300॥
''अदानमतिदानञ्च, नप्पसंसन्ति पण्डिता।
तस्मा हि दाना धनमेव सेय्यो, समेन वत्तेय्य स धीरधम्मो'' ति॥301॥

संस्कृतच्छाया- ''शक्रः चेत् तुभ्यं वरं दद्यात्, त्रायस्त्रिंशानामीश्वरः।
कस्य सर्वस्य लोकस्य, व्रियमाणः वरं वृणे'' इति॥297॥
''शक्रश्चेत् मे वरं दद्यात्, त्रायस्त्रिंशानामीश्वरः।
कालोत्थितस्य मम सतः, सूर्योद्गमनं प्रति।
दिव्या भक्ष्याः प्रादुर्भवेयुः, शीलवन्तश्च याचकाः॥298॥
''ददतः मे न क्षीयेत, दत्वा नानुतप्येऽहम्।
ददत् चित्तं प्रासादयेयम्, एतत् शक्रात् वरं वृणे'' इति॥299॥
''न सर्ववित्तानि परस्मै प्रयच्छेत्, दद्याद् दानं च धनं च रक्षेत्।
तस्माद् हि दानात् धनमेव श्रेयः, अतिप्रदानेन कुलानि न भवन्ति॥300॥
''अदानमतिदानं च, न प्रशंसन्ति पण्डिताः।
तस्माद् हि दानाद् धनमेव श्रेयः, समेन वर्तेत स धीरधर्मः'' इति॥301॥

हिन्दी- यदि देवराज इन्द्र तुमको कोई वर दें तो समस्त संसार के लिये तुम क्या वर माँगोगे?॥297॥

यदि देवराज शक्र मुझको वर दें तो मैं यही वर मागूँगा कि प्रातःकाल सूर्योदय के समय निद्रा से उठने के साथ ही मुझको दिव्यदृष्टि उत्पन्न हो जिससे मैं सदाचारी याचकों का दर्शन कर सकूँ ॥298॥

मेरे द्वारा देयवस्तुओं में कमी न आवे, तथा दान देकर कोई पश्चाताप न हो अपितु दान के समय मेरा चित्त प्रसन्न रहे— शक्र से मैं यह वर माँगूँगा॥299॥

अपना समस्त धन याचकों को नहीं दे देना चाहिये। दान के साथ धन की रक्षा भी करनी चाहिए क्योंकि अतिशयतापूर्वक दान कुल के लिए श्रेयस्कर नहीं होता है॥300॥

बुद्धिमानो नें अदान(दान न देना) तथा अतिदान(क्षमता से बाहर दान देना) —दोनों की ही निन्दा की है। अतः अपना कुछ धन बचाते हुए ही दान करना श्रेयस्कर है। धैर्यवान् पुरुष को दान एवं धनरक्षा— दोनों में सन्तुलन रखना चाहिये॥301॥

''अहो वत रे अहमेव दज्जं, सन्तो च मं सप्पुरिसा भजेय्युं।
मेघोव निन्नानि परिपूरयन्तो, सन्तप्पये सब्बवनिब्बकानं॥302॥
''यस्स याचनके दिस्वा, मुखवण्णो पसीदति।
दत्वा अत्तमनो होति, तं घरं वसतो सुखं॥303॥
''यस्स याचनके दिस्वा, मुखवण्णो पसीदति।
दत्वा अत्तमनो होति, एसा यञ्ञस्स सम्पदा॥304॥
''पुब्बेव दाना सुमनो, ददं चित्तं पसादये।
दत्वा अत्तमनो होति, एसा यञ्ञस्स सम्पदा'' ति॥305॥
सट्ठि वाहसहस्सानि, अङ्कुरस्स निवेसने।
भोजनं दीयते निच्चं, पुञ्ञपेक्खस्स जन्तुनो॥306॥

संस्कृतच्छाया- ''अहो बत रे अहमेव दद्याम्, सन्तः च मां सत्पुरुषाः भजेयुः।
मेघाः इव निम्नानि परिपूरयन्तः, सन्तर्पये सर्ववनीयकान्॥302॥
''यस्य याचकान् दृष्ट्वा, मुखवर्णः प्रसीदति।
दत्वा आत्तमनाः भवति, तद् गृहं वसतः सुखम्॥303॥
''यस्य याचकान् दृष्ट्वा, मुखवर्णः प्रसीदति।
दत्वा आत्तमनाः भवति, एषा यज्ञस्य सम्पदा॥304॥
''पूर्वम् एव दानात् सुमनाः, ददत् चित्तं प्रसादयेत्।
दत्वा आत्तमनाः भवति, एषा यज्ञस्य सम्पदा'' इति॥305॥
षष्टिः वाहसहस्राणि, अङ्कुरस्य निवेशने।
भोजनं दीयते नित्यं, पुण्यप्रेक्षस्य जन्तवे॥306॥

हिन्दी- अरे! यदि मेरे समक्ष कोई सन्त एवं सत्पुरुष आवें तो मैं उनको अपना सर्वसव दान कर दूँ! जिस प्रकार मेघ निम्न स्थलों को भरता हुआ समस्त याचकों को सन्तृप्त कर पाता है॥302॥

याचक को देखकर जिसकी मुखच्छवि खिल उठे और दान करके जिसका चित्त आनन्दमय हो उठे उसके घर मे सुख का वास होता है॥303॥

याचक को देखकर जिसकी मुखच्छवि खिल उठे और दान करके जिसका चित्त आनन्दमय हो उठे, यही इस दानयज्ञ का फल है॥304॥

दान से पूर्व तथा दान के बाद जब मन प्रसन्न एवं प्रमुदित हो जाय— तो यही यज्ञ की सम्पदा है॥305॥

उस अङ्कुर के घर में साठ हजार कार्यकर्ता थे, जिनके द्वारा वहाँ प्रतिदिन याचकों को दान दिया जाता था॥306॥

तिसहस्सानि सूदानि हि, आमुत्तमणिकुण्डला।
अङ्कुरं उपजीवन्ति, दाने यञ्ञस्स वावटा॥307॥
सट्ठि पुरिससहस्सानि, आमुत्तमणिकुण्डला।
अङ्कुरस्स महादाने, कट्ठं फालेन्ति माणवा॥308॥
सोळसित्थिसहस्सानि, सब्बालङ्कारभूसिता।
अङ्कुरस्स महादाने, विधा पिण्डेन्ति नारियो॥309॥
सोळसित्थिसहस्सानि, सब्बालङ्कारभूसिता।
अङ्कुरस्स महादाने, दब्बिगाहा उपट्ठिता॥310॥
बहुं बहूनं पादासि, चिरं पादासि खत्तियो।
सक्कच्चञ्च सहत्था च, चित्तीकत्वा पुनप्पुनं॥311॥

संस्कृतच्छाया- त्रिसहस्रं पाचकाः हि, आमुक्तमणिकुण्डलाः।
अङ्कुरम् उपजीवन्ति, दाने यज्ञस्य व्यापृताः॥307॥
षष्टिः पुरुषसहस्रम्, आमुक्तमणिकुण्डलाः।
अङ्कुरस्य महादाने, काष्ठं स्फालयन्ति माणवकाः॥308॥
षोडश स्त्रीसहस्राणि, सर्वालङ्कारभूषिताः।
अङ्कुरस्य महादाने, विधया पिण्डयन्ति नार्यः॥309॥
षोडश स्त्रीसहस्राणि, सर्वालङ्कारभूषिताः।
अङ्कुरस्य महादाने, दर्वीग्राहिण्य उपस्थिताः॥310॥
बहु बहूभ्यः प्रादात्, चिरं प्रादात् क्षत्रिभ्यः:।
सत्कृत्य स्वहस्ताच्च, चित्तीकृत्य पुनः पुनः॥311॥

हिन्दी- वहाँ विवध मोती, मणि आदि अलङ्काकारों से विभूषित तीस हजार पाचक(रसोइया) थे जो उस यज्ञविधि में सदा व्यापृत रहते थे॥307॥

वहाँ विवध मोती, मणि आदि अलङ्काकारों से विभूषित साठ हजार पुरुष उस अङ्कुर के महादान में काष्ठ(लकड़ी) चीरने का काम करते थे॥308॥

सर्वालङ्कारभूषित तीस हजार स्त्रियाँ विविध पकवान आदि पका रही थीं॥309॥

उस अङ्कुर के महादान में सर्वालङ्कारभूषित सोलह हजार स्त्रियाँ करछुल(दर्वी) पकड़ कर पाचन कार्य कर रही थीं॥310॥

उस अङ्कुर ने प्रसन्नहृदय से अपने हाथों से सत्कारपूर्वक और बारम्बार बहुतों को बहुत कुछ दान दिया॥311॥

बहू मासे च पक्खे च, ऽतुसंवच्छरानि च।
महादानं पवत्तेसि, अङ्कुरो दीघमन्तरं॥312॥
एवं दत्वा यजित्वा च, अङ्कुरो दीघमन्तरं।
सो हित्वा मानुसं देहं, तावतिंसूपगो अहु॥313॥
कटच्छुभिक्खं दत्वान, अनुरुद्धस्स इन्दको।
सो हित्वा मानुसं देहं, तावतिंसूपगो अहु॥314॥
दसहि ठानेहि अङ्कुरं, इन्दको अतिरोचति।
रूपे सद्दे रसे गन्धे, फोट्ठब्बे च मनोरमे॥315॥
आयुना यससा चेव, वण्णेन च सुखेन च।
आधिपच्चेन अङ्कुरं, इन्दको अतिरोचति॥316॥

संस्कृतच्छाया- बहुमासेषु च पक्षेषु च, ऋतुसम्वत्सराणि च।
महादानं प्रावर्त्तत, अङ्कुरः दीर्घमन्तरम्॥312॥
एवं दत्वा इष्ट्वा च, अङ्कुरः दीर्घमन्तरम्।
सः हित्वा मानुषं देहं, त्रायस्त्रिंशोपगः अभूत्॥313॥
कटच्छुभिक्षां दत्वा, अनिरुद्धाय इन्द्रकः।
सः हित्वा मानुषं देहं, त्रायस्त्रिंशोपगः अभूत्॥314॥
दशभिः स्थानैः अङ्कुरम्, इन्द्रकाय अतिरोचते।
रूपे शब्दे रसे गन्धे, स्प्रष्टव्ये च मनोरमे॥315॥
आयुषा यशसा चैव, वर्णेन च सुखेन च।
आधिपत्येन अङ्कुरम्, इन्द्रकाय अतिरोचते॥316॥

हिन्दी- ऽस अङ्कुर ने बहुत मास तक, अनेक पक्षों तक, अनेक ऋतुओं तक तथा दीर्घकाल तक दान देने का क्रम चलाया॥312॥

इस प्रकर वह अङ्कुर दीर्घकाल तक यह दानयज्ञ करता हुआ, देहच्युति के बाद, त्रायस्त्रिंश नामक देवलोक को गया॥313॥

इन्द्रक अनुरुद्ध स्थविर को एक करछुल भिक्षा दे कर, इस मनुष्य देहत्याग के ऽपरान्त त्रायस्त्रिंश में ऽत्पन्न हुआ॥314॥

वह इन्द्रक यक्ष इस अङ्कुर यक्ष को दश बातों से अभिभूत कर रहा था। वह 1. रूप, 2. शब्द, 3. गन्ध, 4. रस, एवं 5. स्प्रष्टव्य, इन मनोरम विषय भोगों में ऽससे अग्रणी था॥315॥

तथा वह 6. आयु, 7. यश, 8. वर्ण, 9. सुख एवं 10. आधिपत्य(ऐश्वर्य) में भी अङ्कुर से अग्रणी था॥316॥

तावतिंसे यदा बुद्धो, सिलायं पण्डुकम्बले।
पारिच्छत्तकमूलम्हि, विहासि पुरिसुत्तमो॥317॥
दससु लोकधातूसु, सन्निपतित्वान देवता।
पयिरुपासन्ति सम्बुद्धं, वसन्तं नगमुद्धनि॥318॥
न कोचि देवो वण्णेन, सम्बुद्धं अतिरोचति।
सब्बे देवे अतिक्कम्म, सम्बुद्धोव विरोचति॥319॥
योजनानि दस द्वे च, अङ्कुरोयं तदा अहु।
अविदूरेव बुद्धस्स, इन्दको अतिरोचति॥320॥
ओलोकेत्वान सम्बुद्धो, अङ्कुरञ्चापि इन्दकं।
दक्खिणेय्यं सम्भावेन्तो, इदं वचनमब्रवि॥321॥

संस्कृतच्छाया- त्रायस्त्रिंशे यदा बुद्धः, शिलायां पाण्डुकम्बले।
पारिच्छत्रकमूले, व्यहरत् पुरुषोत्तमः॥317॥
दशसु लोकधातुषु, सन्निपत्य देवताः।
पर्युपासते सम्बुद्धं, वसन्तं नगमूर्धनि॥318॥
न कश्चिद् देवः वर्णेन, सम्बुद्धम् अतिरोचते।
सर्वान् देवान् अतिक्रम्य, सम्बुद्ध एव विरोचते॥319॥
योजनानि दश द्वे च, अङ्कुरोऽयं तदा अभूत्।
अविदूरे एव बुद्धस्य, इन्द्रकः अतिरोचते॥320॥
अवलोक्य सम्बुद्धः, अङ्कुरं च अपि इन्द्रकम्।
दाक्षिण्येन सम्भावयन्, इदं वचनमब्रवीत्॥321॥

हिन्दी- जब पुरुषोत्तम भगवान् बुद्ध त्रायस्त्रिंश लोक में पारिच्छत्रक(पारिजातक) वृक्ष के नीचे पाण्डुकम्बलशिला पर साधनारत थे॥317॥

तब दशों लोकधातु वासी देवता वहाँ एकत्र होकर आकाश तल पर विराजमान हुए सम्बुद्ध की परिचर्या कर रहे थे॥318॥

उनमे से कोई भी देवता रंग-रूप में भगवान् बुद्ध के समान सुन्दर नहीं था। सभी देवों को अतिक्रान्त कर भगवान् बुद्ध ही वहाँ शोभित हो रहे थे॥319॥

तब अङ्कुर वहाँ बारह योजन दूर ही था। जबकि इन्द्रक भगवान् बुद्ध के समीप ही शोभायमान् था॥320॥

भगवान् नें अङ्कुर और इन्द्रक को भी वहाँ देखकर यह कहा-॥321॥

''महादानं तया दिन्नं, अङ्कुर दीघमन्तरं।
अतिदूरे निसिन्नोसि, आगच्छ मम सन्तिके'' ति॥322॥
चोदितो भावितत्तेन, अङ्कुरो इदमब्रवि।
''किं मय्हं तेन दानेन, दक्खिणेय्येन सुञ्ञतं॥323॥
''अयं सो इन्दको यक्खो, दज्जा दानं परित्तकं।
अतिरोचति अम्हेहि, चन्दो तारगणे यथा'' ति॥324॥
''उज्जङ्गले यथा खेत्ते, बीजं बहुम्पि रोपितं।
न विपुलफलं होति, नपि तोसेति कस्सकं॥325॥
''तथेव दानं बहुकं, दुस्सीलेसु पतिट्ठितं।
न विपुलफलं होति, नपि तोसेति दायकं॥326॥

संस्कृतच्छाया- ''महादानं त्वया दत्तम्, अङ्कुर दीर्घमन्तरम्।
अतिदूरे निषण्णः असि, आगच्छ मम अन्तिके'' इति॥322॥
चोदितः भावितात्मना, अङ्कुरः इदमब्रवीत्।
''किं मह्यं तेन दानेन, दाक्षिण्येन शून्यत्वम्॥323॥
''अयं स इन्द्रकः यक्षः, दद्यात् दानं प्ररिक्तकम्।
अतिरोचते अस्मासु, चन्द्रः तारागणे यथा'' इति॥324॥
''उज्जाङ्गले यथा क्षेत्रे, बीजं बहु अपि रोपितम्।
न विपुलफलं भवति, नाऽपि तोषयति कृषकम्॥325॥
''तथैव दानं बहुकं, दुश्शीलेषु प्रतिष्ठितम्।
न विपुलफलं भवति, नाऽपि तोषयति दायकम्॥326॥

हिन्दी- 'अङ्कुर! तुमने तो पूर्व में दीर्घकाल तक महादान किया था, फिर भी तुम इतना अधिक दूर बैठे हो? आओ, तुम मेरे निकट आओ-॥322॥

भावितात्मा भगवान् द्वारा पूछे जाने पर अङ्कुर ने यह कहा— मेरे उस तुच्छ दान से मुझको क्या लाभ मिला!॥323॥

इस इन्द्रक यक्ष ने मुझसे बहुत कम दान किया था। किन्तु यह हम देवताओं में उसी प्रकार विशेष प्रतीत हो रहा है जैसे तारागणों में चन्द्रमा॥324॥

जैसे किसी उजड़े(उज्जङ्गल) व बंजर खेत में बहुत बीज डालने पर भी कम धान ही पैदा होता है तथा उससे किसान भी सन्तुष्ट नहीं होता॥325॥

उसी प्रकार, दुःशीलों को बहुत अधिक प्रदत्त दान का भी अधिक पुण्यफल नहीं मिलता और न वह दाता को ही सन्तुष्ट कर पाता है॥326॥

''यथापि भद्दके खेत्ते, बीजं अप्पम्पि रोपितं।
सम्मा धारं पवेच्छन्ते, फलं तोसेति कस्सकं॥327॥
''तथेव सीलवन्तेसु, गुणवन्तेसु तादिसु।
अप्पकम्पि कतं कारं, पुञ्ञं होति महप्फलं'' ति॥328॥
विचेय्य दानं दातब्बं, यत्थ दिन्नं महप्फलं।
विचेय्य दानं दत्वान, सग्गं गच्छन्ति दायका॥329॥
विचेय्य दानं सुगतप्पसत्थं, ये दक्खिणेय्या इध जीवलोके।
एतेसु दिन्नानि महप्फलानि, बीजानि वुत्तानि यथा सुखेत्तेति॥330॥

अङ्कुरपेतवत्थु नवमं।

10. उत्तरमातुपेतिवत्थु

दिवाविहारगतं भिक्खुं, गङ्गातीरे निसिन्नकं।
तं पेती उपसङ्कम्म, दुब्बण्णा भीरुदस्सना॥331॥

संस्कृतच्छाया- ''यथापि भद्रके क्षेत्रे, बीजम् अल्पम् अपि रोपितम्।
सम्यग्धारं प्रवर्षन्ति, फलं तोषयति कृषकम्॥327॥
''तथैव शीलवत्सु, गुणवत्सु तादृक्षु।
अल्पकम् अपि कृतं कार्यं, पुण्यं भवति महाफलम्'' इति॥328॥
विचार्य दानं दातव्यं, यत्र दत्तं महाफलम्।
विचार्य दानं दत्वा, स्वर्गं गच्छन्ति दायकाः॥329॥
विचार्य दानं सुगतप्रशस्तं, ये दाक्षिण्येन इह जीवलोके।
एतेषु दत्तानि महाफलानि, बीजानि उप्तानि यथा सुक्षेत्रे इति॥330॥
दिवा विहारगतं भिक्षुं, गङ्गातीरे निषण्णकम्।
तं प्रेती उपसङ्क्रम्य, दुर्वर्णा भीरुदर्शना॥331॥

हिन्दी- जिस प्रकार उपजाऊ खेत में अल्पमात्रा में रोपित बीज भी अच्छी वर्षा होने पर क्षेत्र के स्वामी कृषक को सन्तोषदायक फल दे जाता है॥327॥

उसी प्रकार, शीलवान् एवं गुणवान् पुरुषों को दिया हुआ अल्पदान भी महाफलदायी होता है॥328॥

दान सोच-समझ कर ही करना चाहिये। जहाँ दिया दान महाफलदायी होता है। सोच-विचार कर दान करने वाले ही स्वर्ग लोक को जाते हैं॥329॥

ऐसे सोच-विचार कर किये गये दान की सौगत(शास्ता) भी प्रशंसा करते हैं। जो लोग इस लोक में दान के योग्य हैं उनको किया गया दान उसी प्रकार महाफलदायी होता है, जैसे अच्छे खेत में डाले गए बीजों से अधिक फल प्राप्त होता है॥330॥

गङ्गातट पर दिन को साधनारत, बैठे किसी भिक्षु के पास वह कुरूप एवं भयानक प्रेती गयी॥331॥

केसा चस्सा अतिदीघा, यावभूमावलम्बरे।
केसेहि सा पटिच्छन्ना, समणं एतदब्रवि॥332॥
''पञ्चपण्णासवस्सानि, यतो कालङ्कता अहं।
नाभिजानामि भुत्तं वा, पीतं वा पन पानियं।
देहि त्वं पानियं भन्ते, तसिता पानियाय मे'' ति॥333॥
''अयं सीतोदिका गङ्गा, हिमवन्ततो सन्दति।
पिव एत्तो गहेत्वान, किं मं याचसि पानियं'' ति॥334॥
''सचाहं भन्ते गङ्गाय, सयं गण्हामि पानियं।
लोहितं मे परिवत्तति, तस्मा याचामि पानियं'' ति॥335॥
''किं नु कायेन वाचाय, मनसा दुक्कटं कतं।
किस्स कम्मविपाकेन, गङ्गा ते होति लोहितं'' ति॥336॥

संस्कृतच्छाया- केशाश्च अस्या अतिदीर्घाः, यावत् भूमिम् अवलम्बिताः।
केशैः सा प्रतिच्छन्ना, श्रमणम् एतदब्रवीत्॥332॥
''पञ्चपञ्चाशद्वर्षाणि, यतः कालकृता अहम्।
नाभिजानामि भुक्तं वा, पीतं वा पुनः पानीयम्।
देहि त्वं पानीयं भदन्त, तृषिता पानाय मह्यम्'' इति॥333॥
''इयं शीतोदका गङ्गा, हिमवतः स्यन्दते।
पिब एतस्याः गृहीत्वा, किं मां याचसे पानीयम्'' इति॥334॥
''सा चेद् अहं भदन्त गङ्गायाः, स्वयं गृह्णामि पानीयम्।
लोहितं मे परिवर्त्तेत, तस्माद् याचामि पानीयम्'' इति॥335॥
''किं नु कायेन वचसा, मनसा दुष्कृतं कृतम्।
कस्य कर्मणः विपाकेन, गङ्गा ते भवति लोहितम्'' इति॥336॥

हिन्दी- उसके लम्बे खुले केश इतने बड़े थे कि भूमि तक लटक रहे थे। वह उन केशों से सम्पूर्णरूप से ढकी हुई थी। उसने श्रमण के पास जाकर यह कहा—॥332॥

जीवलोक में मेरा देहपात हुए आज पचपन(55) वर्ष हो चुके। तब से मुझे याद नहीं आता कि मैंने कभी कुछ खाया या पीया हो। भदन्त! आप मुझे पानी पिलाइवें, मैं बहुत प्यासी हूँ॥333॥

यह हिमालय से निःसृत शीतल जल वाली गङ्गा बह रही है। इससे लेकर तुम जल पी लो! मुझसे पानी के लिये क्यों याचना कर रही हो?॥334॥

भदन्त—यदि मैं स्वयं इस गंगा से पीने के लिये जल ग्रहण करूँगी तो यह जल रक्त के रूप में परिवर्तित हो जायगा। इसीलिए मैं आपसे जल माँग रही हूँ॥335॥

''पुत्तो मे उत्तरो नाम, सद्धो आसि उपासको।
सो च मय्हं अकामाय, समणानं पवेच्छति॥337॥
''चीवरं पिण्डपातञ्च, पच्चयं सयनासनं।
तमहं परिभासामि, मच्छेरेन उपद्दुता॥338॥
''यं त्वं मय्हं अकामाय, समणानं पवेच्छसि।
चीवरं पिण्डपातञ्च, पच्चयं सयनासनं॥339॥
''एतं ते परलोकस्मिं, लोहितं होतु उत्तर।
तस्स कम्मस्स विपाकेन, गङ्गा मे होति लोहितं'' ति॥340॥
उत्तरमातुपेतिवत्थु दसमं।

11. सुत्तपेतवत्थु

''अहं पुरे पब्बजितस्स भिक्खुनो, सुत्तं अदासिं उपसङ्कम्म याचिता।
तस्स विपाको विपुलफलूपलब्भति, बहुका च मे उप्पज्जरे वत्थकोटियो॥341॥

संस्कृतच्छाया- ''पुत्रः मे उत्तरः नाम्ना, सश्रद्धः आसीद् उपासकः।
सः च मम अकामायाः, श्रमणेभ्यः प्रयच्छति॥337॥
''चीवरं पिण्डपात्रं च, प्रत्ययं च शयनासनम्।
तमहं परिभाषयामि, मात्सर्येण उपद्रुता॥338॥
''यत् त्वं मम अकामायाः, श्रमणेभ्यः प्रयच्छसि।
चीवरं पिण्डपात्रं च, प्रत्ययं च शयनासनम्॥339॥
''एतत् ते परलोके, लोहितं भवतु उत्तर।
तस्य कर्मणः विपाकेन, गङ्गा मे भवति लोहितम्'' इति॥340॥
''अहं पुरा प्रव्रजितस्य भिक्षोः, सूत्रम् अदाम् उपसङ्क्रम्य याचिता।
तस्य विपाकः विपुलफलः उपलभ्यते, बहवश्च मे उत्पद्यन्ते वस्त्रकोटयः॥341॥

हिन्दी- तुमने काय, वचन तथा मन से ऐसा कौन सा दुष्कर्म किया है कि यह गंगाजल तुम्हारे लिए रक्त में परिवर्तित हो जाता है?॥336॥

भदन्त! मेरा उत्तर नामक पुत्र था, जो श्रद्धालु तथा उपासक था। मेरे न चाहते हुए भी वह श्रमणों को दान करता रहता था॥337॥

चीवर, पिण्डपात, पथ्य एवं शयनासन आदि। इसलिए मैं उसको गालियाँ देती रहती थी और कंजूसी के कारण कहती रहती थी—॥338॥

जो तुम, मेरे न चाहने पर भी, श्रमणों को चीवर, पिण्डपात, पथ्य एवं शयनासन देते हो-॥339॥

यह सब बाद में परलोक में रक्त के रूप में तुम्हारे सामने आयगा। उसी पापकर्मवश आज मेरे सामने उपस्थित वह गंगाजल रक्त बन जाता है॥340॥

''पुप्फाभिकिण्णं रमितं विमानं, अनेकचित्तं नरनारिसेवितं।
साहं भुञ्जामि च पारुपामि च, पहूतवित्ता न च ताव खीयति॥342॥
''तस्सेव कम्मस्स विपाकमन्वया, सुखञ्च सातञ्च इधूपलब्भति।
साहं गन्त्वा पुनदेव मानुसं, काहामि पुञ्ञानि नयय्यपुत्त मं'' ति॥343॥
''सत्त तुवं वस्ससता इधागता,
जिण्णा च वुड्ढा च तहिं भविस्ससि।
सब्बेव ते कालकता च ञातका,
किं तत्थ गन्त्वान इतो करिस्ससी'' ति॥344॥
''सत्तेव वस्सानि इधागताय मे, दिब्बञ्च सुखञ्च समप्पिताय।
साहं गन्त्वान पुनदेव मानुसं, काहामि पुञ्ञानि नयय्यपुत्त मं'' ति॥345॥

संस्कृतच्छाया- ''पुष्पाभिकीर्णं रम्यं विमानम्, अनेकचित्रं नरनारीसेवितम्।
साहं भुञ्जामि च प्रावृणोमि च, प्रभूतवित्ता न च तावत् क्षीयते॥342॥
''तस्यैव कर्मणः विपाकः अन्वयात्, सुखं च सातञ्च इहोपलभ्यते।
साहं गत्वा पुनरेव मानुषं, करिष्यामि पुण्यानि नयार्यपुत्र माम्'' इति॥343॥
''सप्त तव वर्षशतम् इहागतायाः,
जीर्णा च वृद्धा च तत्र भविष्यसि।
सर्वा एव ते कालगताश्च ज्ञातयः,
किं तत्र गत्वा इतः करिष्यसि'' इति॥344॥
''सप्तैव वर्षाणि इहागताय मे, दिव्यं च सुखं च समर्पितायाः।
साहं गत्वा पुनरेव मानुषं, करिष्यामि पुण्यानि नयार्यपुत्र माम्'' इति॥345॥

हिन्दी- पूर्व में कभी मेरे पास आकर माँगने वाले किसी प्रव्रजित भिक्षु को मैंने सूत्र(धागे) का दान किया था। उक्त दान के प्रभावस्वरूप मुझको इतना विपुल(अधिक) पुण्यफल मिला कि आज मेरे पास बहुत से और करोड़ों प्रकार के वस्त्र उपलब्ध हैं॥341॥

मेरा यह पुष्पाच्छादित विमान विविध चित्रों से चित्रित है तथा इसमें अनेक नर एवं नारी परिचारक के रूप में उपस्थित हैं। उन वस्त्रों को मैं पहनती हूँ तथा अन्य विविध प्रकार से उनका उपभोग करती हूँ फिर भी उनका क्षरण(नाश) नहीं होता है॥342॥

उसी पुण्य कर्म के परिणामस्वरूप मैं यहाँ सुख एवं आनन्द का अनुभव कर रही हूँ। परन्तु अब मैं पुनः मनुष्यलोक में जाकर पुण्य कर्म करना चाहती हूँ। अतः हे आर्यपुत्र! आप मुझको वहाँ ले चलिये॥343॥

तुमको यहाँ आए सात सौ वर्ष हो गये हैं। तुम अब जीर्ण एवं वृद्ध हो गयी हो। तुम्हारे सभी सम्बन्धी जन भी अब कालकवलित हो चुके होंगे। अब तुम यहाँ से वहाँ जाकर क्या करोगी? ॥344॥

मुझको यहाँ आये हुए सात वर्ष ही हुए हैं, तभी से मैं यहाँ दिव्य सुख भोग रही हूँ। इसलिए मैं अब पुनः मनुष्यलोक में जाकर पुण्यकर्म करूँगी। अतः आर्यपुत्र! आप मुझको वहाँ ले चलें॥345॥

सो तं गहेत्वान पसय्ह बाहायं, पच्चानयित्वान थेरिं सुदुब्बलं।
''वज्जेसि अञ्ञम्पि जनं इधागतं, 'करोथ पुञ्ञानि सुखूपलब्भति''॥346॥
''दिट्ठा मया अकतेन साधुना, पेता विहञ्ञन्ति तथेव मनुस्सा।
कम्मञ्च कत्वा सुखवेदनीयं, देवा मनुस्सा च सुखे ठिता पजा'' ति॥347॥

सुत्तपेतवत्थु एकादसमं।

12. कर्णमुण्डप्रेतीवस्तु

''सोण्णसोपानफलका , सोण्णवालुकसन्थता।
तत्थ सोगन्धिया वग्गू, सुचिगन्धा मनोरमा॥348॥
''नानारुक्खेहि सञ्छन्ना, नानागन्धसमेरिता।
नानापदुमसञ्छन्ना, पुण्डरीकसमोतता॥349॥
''सुरभिं सम्पवायन्ति, मनुञ्ञा मालुतेरिता।
हंसकोञ्चाभिरुदा च, चक्कवक्काभिकूजिता॥350॥

संस्कृतच्छाया- सः तं गृहीत्वा प्रसह्य बाहुं, प्रत्यानीय स्थविरां सुदुर्बलाम्।
''वर्जयसि अन्यमपि जनम् इहागतं, 'कुरु पुण्यानि सुखम् उपलभ्यते''॥346॥
''दृष्टा मया अकृतेन साधुना, प्रेताः विहन्यन्ते तथैव मनुष्याः।
कर्म च कृत्वा सुखवेदनीयं, देवाः मनुष्याश्च सुखे स्थिताः प्रजाः'' इति॥347॥
''स्वर्णसोपानफलकाः, स्वर्णबालुकाश्रन्थिताः।
तत्र सुगन्धिताः वल्गु, शुचिगन्धा मनोरमाः॥348
''नानावृक्षैः सञ्छन्नाः, नानागन्धसमीरिताः।
नानापद्मसच्छन्नाः, पुण्डरीकसमुत्थिताः॥349॥
''सुरभिं सम्प्रवान्ति, मनोज्ञाः मारुतेरिताः।
हंसक्रौञ्चाभिरुताश्च, चक्रवाकाभिकूजिताः॥350॥

हिन्दी- तब उसने उस(वृद्धा) दुर्बल स्थविरा को, दोनों बाहु से पकड़ कर, मनुष्य लोक में लाकर छोड़ दिया। तथा यहाँ आये हुए अन्य लोगों को भी वह यही परामर्श देने लगा— "आप लोग भी पुण्य कर्मों को करें। फलस्वरूप आपको सुख की प्राप्ति होगी॥346॥

मैंने ऐसे बहुत से लोगों को देखा है जो पाप कर्म करते हुए प्रेत बन जाते हैं अथवा मनुष्य रूप में ही विनष्ट हो जाते हैं। तथा कुछ लोग पुण्य कर्म करके सुखी देवता बन जाते हैं या मनुष्य रूप में स्थिर सुख का लाभ करते हैं॥347॥

तुम्हारे इस नगर में सोने की सीढ़ियों वाली, सोने की बालुका(रेत) वाली, शीतल मन्द सुगन्धयुक्त, मनोरम- ॥348॥

नाना प्रकार के वृक्षों से आचछादित, विविध गन्धों वाले पद्म एवं पुण्डरीक पुष्पों से युक्त अनेक पुष्करिणियाँ हैं॥349॥

''नानादिजगणाकिण्णा , नानासरगणायुता।
नानाफलधरा रुक्खा, नानापुप्फधरा वना॥351॥
''न मनुस्सेसु ईदिसं, नगरं यादिसं इदं।
पासादा बहुका तुय्हं, सोवण्णरूपियामया।
दद्दल्लमाना आभेन्ति, समन्ता चतुरो दिसा॥352॥
''पञ्च दासिसता तुय्हं, या तेमा परिचारिका।
ता कम्बुकायूरधरा, कञ्चनावेळभूसिता॥353॥
''पल्लङ्का बहुका तुय्हं, सोवण्णरूपियामया।
कदलिमिगसञ्छन्ना, सज्जा गोनकसन्थता॥354॥
''यत्थ त्वं वासूपगता, सब्बकामसमिद्धिनी।
सम्पत्तायड्ढरत्ताय, ततो उट्ठाय गच्छसि॥355॥

संस्कृतच्छाया- ''नानाद्विजगणाकीर्णाः, नानास्वरगणैर्युताः।
नानाफलधराः वृक्षाः, नानापुष्पधराणि वनानि॥351॥
''न मनुष्येषु ईदृशं, नगरं यादृशम् इदम्।
प्रासादाः बहवः तव, सौवर्णरूप्यमयाः।
जाज्वल्यमाना आभान्ति, समन्ताच्चतुर्षु दिक्षु॥352॥
''पञ्च दासीशतं तव, या ते इमाः परिचारिकाः।
ताः कम्बुकेयूरधराः, काञ्चनवलयभूषिताः॥353॥
''पर्यङ्काः बहुकाः तुभ्यं, सौवर्णरूप्यमयाः।
कदलीमृगसंञ्छन्नाः, शय्याः गोणिकश्रन्थिताः॥354॥
''यत्र त्वं वासोपगता, सर्वकामसमृद्धा।
सम्प्राप्ते अर्धरात्रे, तत उत्थाय गच्छसि॥355॥

हिन्दी- जिनकी वायु से लहराती हुई तरंगों से मन को लुभाने वाली सुगन्धित वायु बह रही है। उसमें हंस एवं क्रौञ्च तथा चक्रवाक पक्षी मधुर कलरव कर रहे हैं॥350॥

तथा उस नगर में विविध ध्वनियों वाले पक्षियों से युक्त और अनेक फल एवं पुष्पों वाले वृक्षों के बड़े-बड़े वन हैं॥351॥

मानवलोक में इस सुन्दर नगर के समान् कोई नगर नहीं है। इसमें सुनहले एवं रुपहले(चाँदी जैसे) जगमगाते भवन चारों दिशाओं में शोभायमान हैं॥352॥

जा पाँच सौ दासियाँ तुम्हारी परिचर्या कर रही हैं; वे सुन्दर बाजूबन्द तथा सुनहरी मालाओं से विभूषित हैं॥353॥

तुम्हारे यहाँ सोने चाँदी से बने बहुत से पलंग हैं, जिन पर कदली मृग के चर्म वाले बिस्तर बिछे हुए हैं॥354॥

''उय्यानभूमिं गन्त्वान, पोक्खरञ्ञा समन्ततो।
तस्सा तीरे तुवं ठासि, हरिते सद्दले सुभे॥356॥
''ततो ते कण्णमुण्डो सुनखो, अङ्गमङ्गानि खादति।
यदा च खायिता आसि, अट्ठिसङ्खलिका कता।
ओगाहसि पोक्खरणिं, होति कायो यथा पुरे॥357॥
''ततो त्वं अङ्गपच्चङ्गी, सुचारु पियदस्सना।
वत्थेन पारुपित्वान, आयासि मम सन्तिकं॥358॥
''किं नु कायेन वाचाय, मनसा दुक्कटं कतं।
किस्स कम्मविपाकेन, कण्णमुण्डो सुनखो तवअङ्गमङ्गानि खादती'' ति॥359॥
''किमिलायं गहपति, सद्धो आसि उपासको।
तस्साहं भरिया आसिं, दुस्सीला अतिचारिनी॥360॥

संस्कृतच्छाया- ''उद्यानभूमिं गत्वा, पुष्करिण्यां समन्ततः।
तस्याः तीरे त्वं तिष्ठसि, हरिते शाद्वले शुभे॥356॥
''ततः तव कर्णमुण्डः शुनकः, अङ्गमङ्गानि खादति।
यदा च खादिता आसीः, अस्थिकङ्कालिका कृता।
अवगाहसे पुष्करिणीं, भवति कायो यथा पुरा॥357॥
''ततः त्वम् अङ्गप्रत्यङ्गा, सुचारु प्रियदर्शना।
वस्त्रेण प्रावृत्य, आयासि मम अन्तिकम्॥358॥
''किं नु कायेन वचसा, मनसा दुष्कृतं कृतम्।
कस्य कर्मणो विपाकेन, कर्णमुण्डः शुनकः तव अङ्गमङ्गानि खादति" इति॥359॥
''किमिलायां गृहपतिः, सश्रद्ध आसीद् उपासकः।
तस्याहं भार्या आसम्, दुश्शीला अतिचारिणी॥360॥

हिन्दी- जहाँ तुम वास करती हुई समस्त कामभोगों को भोगती रहती हो। परन्तु तुम अर्धरात्रि के समय उस पलंग से उठकर चल देती हो॥355॥

पुष्पकरिणी के चौतरफा बने उद्यानभूमि में आकर सुन्दर हरी घास पर खड़ी हो जाती हो॥356॥

तब एक कनकटा कुत्ता वहाँ आकर तुम्हारे अंगों का मांस खाने लगता है और वह तब तक खाता रहता है जब तक तुम्हारा अस्थि कंकालमात्र नहीं रह जाता। तब तुम्हारे उस पुष्पकरिणी में उतर कर उसमें डुबकी लगाते ही तुम्हारा शरीर पूर्ववत् हो जाता है॥357॥

वहाँ से तुम समस्त अंगप्रत्यंग सुन्दरी, वस्त्र धारण कर मेरे पास आ जाती हो॥358॥

तुम्हारे द्वारा काय, वचन तथा मन से किए किस पाप कर्म के परिणामस्वरूप यह कनकटा कुत्ता, यहाँ प्रतिदिन, तुम्हारे अंग-अंग का मांस खाता है?॥359॥

''सो मं अतिचरमानाय, सामिको एतदब्रवि।
'नेतं छन्नं पतिरूपं, यं त्वं अतिचरासि मं'॥361॥
''साहं घोरञ्च सपथं, मुसावादञ्च भासिसं।
'नाहं तं अतिचरामि, कायेन उद चेतसा॥362॥
'''सचाहं तं अतिचरामि, कायेन उद चेतसा।
कण्णमुण्डो यं सुनखो, अङ्गमङ्गानि खादतु'॥363॥
''तस्स कम्मस्स विपाकं, मुसावादस्स चूभयं।
सत्तेव वस्ससतानि, अनुभूतं यतो हि मे।
कण्णमुण्डो च सुनखो, अङ्गमङ्गानि खादति॥364॥
''त्वञ्च देव बहुकारो, अत्थाय मे इधागतो।
सुमुत्ताहं कण्णमुण्डस्स, असोका अकुतोभया॥365॥

संस्कृतच्छाया- ''सः माम् अतिचारिणीं, स्वामी एतदब्रवीत्।
'न इदं छन्नं पत्युः अनुरूपं, यत् त्वम् अतिचरसि माम्'॥361॥
''साहं घोरं च शपथं, मृषावादं च अभाषिषम्।
'नाहं त्वाम् अतिचरामि, कायेन उत चेतसा॥362॥
'''सा चेद् अहं त्वाम् अतिचरामि, कायेन उत चेतसा।
कर्णमुण्डः यत् शुनकः, अङ्गमङ्गानि खादतु'॥363॥
''तस्य कर्मणः विपाकं, मृषावादस्य चोभयम्।
सप्तैव वर्षशतम्, अनुभूतो यतो हि मे।
कर्णमुण्डश्च शुनकः, अङ्गमङ्गानि खादति॥364॥
''त्वं च देव बहूपाकरकः, अर्थाय मे इहागतः।
सुमुक्ताहं कर्णमुण्डात्, अशोका अकुतोभया॥365॥

हिन्दी- किमिला नगरी में एक श्रद्धालु द्वोपासक गृहपति था। उसकी मैं दुश्चरित्र एवं अत्याचारी भार्या थी॥360॥

उस मेरे स्वामी नें मेरे इस दुश्चारित्र्य से उद्विग्न होकर मुझसे कहा— इस प्रकार मुझसे छिप कर कार्य करके मेरी आज्ञा का उल्लंघन करती हो यह तुम्हारे लिये उचित नहीं है॥361॥

तब मैंने घोर शपथपूर्वक तथा असत्य बोल कर उनको विश्वास दिलाया कि मैं काय या मन से आपके प्रति दुश्चरित्र नहीं हूँ॥362॥

यदि मैं काया, वाणी या मन से दुश्चरित्र या आपकी आज्ञा का उल्लंघन करूँ तो कोई कानकटा कुत्ता आकर मेरे समस्त अंगों का मांस नोच कर खा जाय॥363॥

उसी पापकर्म व असत्य भाषण का परिणाम है कि आज मैं सात सौ वर्षों से यह भोग रही हूँ। तथा प्रतिदिन आधी रात को यह कनकटा कुत्ता मेरे अंगों का मांस खाता है॥364॥

''ताहं देव नमस्सामि, याचामि पञ्जलीकता।
भुञ्ज अमानुसे कामे, रम देव मया सहा'' ति॥366॥
''भुत्ता अमानुसा कामा, रमितोम्हि तया सह।
ताहं सुभगे याचामि, खिप्पं पटिनयाहि मं'' ति॥367॥

कण्णमुण्डपेतिवत्थु द्वादसमं।

13. उब्बरिपेतवत्थु

अहु राजा ब्रह्मदत्तो, पञ्चालानं रथेसभो।
अहोरत्तानमच्चया, राजा कालमकुब्बथ ॥368॥
तस्स आळाहनं गन्त्वा, भरिया कन्दति उब्बरी।
ब्रह्मदत्तं अपस्सन्ती, ब्रह्मदत्ताति कन्दति॥369॥
इसि च तत्थ आगच्छि, सम्पन्नचरणो मुनि।
सो च तत्थ अपुच्छित्थ, ये तत्थ सुसमागता॥370॥

संस्कृतच्छाया- ''त्वां देव नंस्यामि, याचे प्राञ्जलिं कृत्वा।
भुंक्ष्व अमानुषं कामं, रमस्व देव मया सह'' इति॥366॥
''भुक्ता अमानुषाः कामाः, रमितोऽस्मि त्वया सह।
त्वामहं सुभगे याचे, क्षिप्रं प्रतिनय माम्'' इति॥367॥
अभूद्राजा ब्रह्मदत्तः, पाञ्चालानां रथर्षभः।
अहोरात्रमत्ययात्, राजा कालं कालकृतः॥368॥
तस्य आदाहनं गत्वा, भार्या क्रन्दति उर्वरी।
ब्रह्मदत्तम् अपश्यन्ती, ब्रह्मदत्ताय अति क्रन्दति॥369॥
ऋषिश्च तत्र आगच्छत्, सम्पन्नाचरणो मुनिः।
स च तत्र अपृच्छत्, ये तत्र सुसमागताः॥370॥

हिन्दी- देव! आपने मेरा बहुत उपकार किया है, आप मेरे कल्याण हेतु यहाँ आए हैं। आज मैं इस कनकटे कुत्ते से मुक्त हो चुकी हूँ, अब मुझको कोई भय या शोक नहीं रह गया है॥365॥

इसलिए हे देव!, मैं आपको प्रणाम करती हूँ तथा हाथ जोड़कर निवेदन करती हूँ कि आप यहाँ मेरे साथ दिव्य कामसुखों का उपभाग करें॥366॥

सुभगे! मैंने बहुत कामसुख भोग लिये। तुम्हारे साथ रमण भी कर लिया। मैं आपसे याचना करता हूँ कि मुझको आप पुनरवापसी की अनुमति दें॥367॥

कभी पञ्चाल देश में एक अतिशय बलशाली(रथर्षभ) ब्रह्मदत्त नामक राजा था। कुछ समय बीतने पर उस राजा का देहपात हो गया॥368॥

उसकी उब्बरी नाम की रानी ब्रह्मदत्त को न देखकर उसके श्मशान(चिता) पर जाकर उसका नाम ले ले कर रोने लगी॥369॥

''कस्स इदं आळाहनं, नानागन्धसमेरितं।
कस्सायं कन्दति भरिया, इतो दूरगतं पतिं।
ब्रह्मदत्तं अपस्सन्ती, 'ब्रह्मदत्ता'ति कन्दति''॥371॥
ते च तत्थ वियाकंसु, ये तत्थ सुसमागता।
''ब्रह्मदत्तस्स भदन्ते, ब्रह्मदत्तस्स मारिस॥372॥
''तस्स इदं आळाहनं, नानागन्धसमेरितं।
तस्सायं कन्दति भरिया, इतो दूरगतं पतिं।
ब्रह्मदत्तं अपस्सन्ती, 'ब्रह्मदत्ता'ति कन्दति''॥373॥
''छळासीतिसहस्सानि, ब्रह्मदत्तस्सनामका।
इमस्मिं आळाहने दड्ढा, तेसं कमनुसोचसी'' ति॥374॥

संस्कृतच्छाया- ''कस्य इदम् आदाहनं, नानागन्धसमीरितम्।
कस्य इयं क्रन्दति भार्या, इतो दूरगतं पतिम्।
ब्रह्मदत्तम् अपश्यन्ती, 'ब्रह्मदत्ता 'अतिक्रन्दति''॥371॥
ते च तत्र व्याक्रोशिषुः, ये तत्र सुसमागताः।
''ब्रह्मदत्तस्य भदन्त, ब्रह्मदत्तस्य मार्ष॥372॥
''तस्य इदम् आदाहनं, नानागन्धसमीरितम्।
तस्य इयं क्रन्दति भार्या, इतः दूरगतं पतिम्।
ब्रह्मदत्तम् अपश्यन्ती, 'ब्रह्मदत्ता 'अति क्रन्दति''॥373॥
''षडशीतिसहस्राणि, ब्रह्मदत्तस्य नामकाः।
अस्मिन् आदाहने दग्धाः, तेषां कम् अनुशोचति'' इति॥374॥

हिन्दी- उसी समय वहाँ एक शुद्धाचरण सम्पन्न ऋषि आये तथा वहाँ उपस्थित जनों से उन्होंने पूछा—॥370॥

यह किस की चिता जल रही है, जिससे से इती सुगन्ध उठ रही है और यह रोती हुई स्त्री कौन है जो अपने दूर गये(मृत) पति ब्रह्मदत्त को न देखकर बहुत रो रही है? ॥371॥

वहाँ उपस्थित लोगों ने उन ऋषि को सबकुछ बताया— "भदन्त! यह चिता राजा ब्रह्मदत्त की है॥372॥

और पूजनीय! उस ब्रह्मदत्त की ही यह चिता है जो नाना गन्ध फैला रही है। उसी ब्रह्मदत्त की यह भार्या, अपने पति के दूर चले जाने के कारण, उसे न देखकर क्रन्दन कर रही है॥373॥

इस चिता(श्मशान) में अब तक ब्रह्मदत्त नाम के छियासी हजार पुरुष जलाये जा चुके हैं, यह स्त्री उनमें से किस ब्रह्मदत्त के लिये शोक कर रही है?॥374॥

''यो राजा चूळनीपुत्तो, पञ्चालानं रथेसभो।
तं भन्ते अनुसोचामि, भत्तारं सब्बकामदं'' ति॥375॥
''सब्बे वाहेसुं राजानो, ब्रह्मदत्तस्सनामका।
सब्बेवचूळनीपुत्ता, पञ्चालानं रथेसभा॥376॥
''सब्बेसं अनुपुब्बेन, महेसित्तमकारयि।
कस्मा पुरिमके हित्वा, पच्छिमं अनुसोचसी'' ति॥377॥
''आतुमे इत्थिभूताय, दीघरत्ताय मारिस।
यस्सा मे इत्थिभूताय, संसारे बहुभाससी'' ति॥378॥
''अहु इत्थी अहु पुरिसो, पसुयोनिम्पि आगमा।
एवमेतं अतीतानं, परियन्तो न दिस्सती'' ति॥379॥

संस्कृतच्छाया- ''यः राजा चूलनीपुत्रः, पाञ्चालानां रथर्षभः।
तं भदन्त अनुशोचामि, भर्त्तारं सर्वकामदम्'' इति॥375॥
''सर्व एव अभूवन् राजानः, ब्रह्मदत्तस्य नामकाः।
सर्व एवचूलनीपुत्राः, पञ्चालानां रथर्षभाः॥376॥
''सर्वेषाम् आनुपूर्व्येण, महिषीं त्वाम् अकारयन्।
कस्मात् पूर्वगान् हित्वा, पश्चिमम् अनुशोचसि'' इति॥377॥
''आतुमा-नगरे स्त्रीभूता, दीर्घरात्राय मार्ष।
यस्याः मे स्त्रीभूतायाः, संसारे बहु भाषते'' इति॥378॥
''अभूः स्त्री अभूः पुरुषः, पशुयोनिमपि अगमः।
एवम् एषाम् अतीतानां, पर्यन्तो न दृश्यते'' इति॥379॥

हिन्दी- भदन्त! जो चूळनी के पुत्र तथा पंचाल देश के अतिशय बलशाली राजा ब्रह्मदत्त थे, उन्ही के लिये मैं रो रही हूँ। वो मेरे भर्त्ता और मेरी समस्त इच्छाओं को पूर्ण करने वाले थे॥375॥

वे सभी ब्रह्मदत्त नामक राजा थे, वे सभी पंचाल देश के अतिशय बलशाली राजा थे, सभी चूड़नी के पुत्र थे॥376॥

उन सब की रानी भी समय समय पर तूँ ही बनी थी। तो क्यों तूँ उन सब पूर्व ब्रह्मदत्तों को छोड़ कर इस अन्तिम ब्रह्मदत्त के लिये ही शोक कर रही है? ॥377॥

हे मार्ष! मैं बहुत पहले आतुमा नगर में स्त्री रूप में उत्पन्न हुई थी। संसारी मुझको उन्हीं की स्त्री बताते हैं॥378॥

तुम अपनी इस जन्म परम्परा में कितनी बार स्त्री बनी, कितनी बार पुरुष बनी, कितनी बार पशुयोनि में भी उत्पन्न हुई, तुम्हारे समस्त अतीत जन्मों का आदि और अन्त नही दिखाई पड़ता! ॥379॥

''आदित्तं वत मं सन्तं, घतसित्तंव पावकं।
वारिना विय ओसिञ्चं, सब्बं निब्बापये दरं॥380॥
''अब्बही वत मे सल्लं, सोकं हृदयनिस्सितं।
यो मे सोकपरेताय, पतिसोकं अपानुदि॥381॥
''साहं अब्बूळ्हसल्लास्मि, सीतिभूतास्मि निब्बुता।
न सोचामि न रोदामि, तव सुत्वा महामुनी'' ति॥382॥
तस्स तं वचनं सुत्वा, समणस्स सुभासितं।
पत्तचीवरमादाय, पब्बजि अनगारियं॥383॥
सा च पब्बजिता सन्ता, अगारस्मा अनगारियं।
मेत्ताचित्तं अभावेसि, ब्रह्मलोकूपपत्तिया॥384॥
गामा गामं विचरन्ती, निगमे राजधानियो।
उरुवेला नाम सो गामो, यत्थ कालमक्रुब्बथ॥385॥

संस्कृतच्छाया- ''आदीप्तं बत माम् सन्तम्, घृतसिक्तं इव पावकम्।
वारिणा इव अवसिञ्चन्, सर्वं निरवापयः दरम्॥380॥
''आबृही बत मे शल्यम्, शोकः हृदयनिस्सृतः।
यो मे शोकपरीतायाः, पुत्रशोकम् अपानुदत्॥381॥
''सोऽहम् अव्यूढशल्याऽस्मि, शीतीभूताऽस्मि निर्वृता।
न शोचामि न रोदिमि, तव श्रुत्वा महामुने इति॥382॥
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा, श्रमणस्य सुभाषितम्।
पात्रचीवरमादाय, प्राव्राजीत् अनागारिकम्॥383॥
सा च प्रव्रजिता सती, अगाराद् अनागारिकम्।
मैत्रीचित्तम् अभावयत्, ब्रह्मलोकोपपत्तये॥384॥
ग्रामाद् ग्रामं विचरन्ती, निगमे राजधान्याम्।
उरुवेला नाम स ग्रामः, यत्र कालमकरोत्॥385॥

हिन्दी- पूर्ववत्.....गा० सं० 358 विमानवत्थु....॥380॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 359 विमानवत्थु....॥381॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 360 विमानवत्थु....॥382॥

उस महामुनि श्रमण बोधिसत्त्व के वे सुभाषित वचन सुनकर वह रानी(उब्बरी) पात्र चीवर ग्रहण कर अनागारिक हो प्रव्रजित हो गयी॥383॥

वह घर से निष्क्रमण कर प्रव्रजित हो कर ब्रह्मलोक की प्राप्ति हेतु मैत्रीचित्त की साधना करने लगी॥384॥

मेत्ताचित्तं आभावेत्वा, ब्रह्मलोकूपपत्तिया।
इत्थिचित्तं विराजेत्वा, ब्रह्मलोकूपगा अहूति॥386॥

उब्बरिपेतवत्थु तेरसमं।
उब्बरिवग्गो दुतियो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं –
मोचकं माता मत्ता च, नन्दा कुण्डलीना घटो।
द्वे सेट्ठी तुन्नवायो च, उत्तर सुत्तकण्ण उब्बरीति॥

संस्कृतच्छाया- मैत्रीचित्तम् आभाव्य, ब्रह्मलोकोपपत्तये।
स्त्रीचित्तं विरहय्य, ब्रह्मलोकोपगा अभूत् इति॥386॥

तस्योद्दानम् –
मोचकं माता मत्ता च, नन्दा कुण्डलीना घटः।
द्वे श्रेष्ठी तुन्नवायश्च, उत्तरः सूत्रकर्ण ऊर्वरी इति॥

हिन्दी- इस ग्राम से उस ग्राम में विचरण करती हुई तथा छोटे नगरों(निगमों) से बड़े नगरों(राजधानियों) में विचरण करते हुए ऊरुवेला नामक ग्राम में उसका देहावसान हो गया॥385॥

ब्रह्मलोकप्राप्तिहेतु मैत्रीचित्त की साधना कर, स्त्रीचित्त का त्याग कर ब्रह्मलोकगामिनि हो गयी॥386॥

वर्ग की सूची-

1. संसारमोचकप्रेती, 2. सारिपुत्रस्थविरमाता प्रेती, 3. मत्ता प्रेती, 4. नन्दा प्रेती, 5. मृष्टकुण्डली, 6. कृष्णप्रेत, 7. धनपालश्रेष्ठी प्रेत, 8. चूड़श्रेष्ठी प्रेत, 9. अङ्कुर प्रेत, 10. उत्तरमाता प्रेती, 11. सूत्र प्रेत, 12. कर्णमुण्डप्रेती एवं 13. ऊर्वरी प्रेती।

****

3.चूळवग्गो

1. अभिज्जमानपेतवत्थु

''अभिज्जमाने वारिम्हि, गङ्गाय इध गच्छसि।
नग्गो पुब्बद्धपेतोव मालधारी अलङ्कतो।
कुहिं गमिस्ससि पेत, कत्थ वासो भविस्सती'' ति॥387॥
''चुन्दट्ठिलं गमिस्सामि, पेतो सो इति भासति।
अन्तरे वासभगामं, बाराणसिं च सन्तिके''॥388॥
तञ्च दिस्वा महामत्तो, कोलियो इति विस्सुतो।
सत्तुं भत्तञ्च पेतस्स, पीतकञ्च युगं अदा॥389॥
नावाय तिट्ठमानाय, कप्पकस्स अदापयि।
कप्पकस्स पदिन्नम्हि, ठाने पेतस्स दिस्सथ॥390॥

संस्कृतच्छाया- ''अभिद्यमाने वारिणि हि, गङ्गायाः इह गच्छसि।
नग्नः पूर्वार्द्धप्रेत इव मालाधारी अलङ्कृतः।
क्व गमिष्यसि प्रेत, कुत्र वासः भविष्यति'' इति॥387॥
''चुन्दट्ठिकं गमिष्यामि, प्रेतः स इति भाषते।
अन्तरे वासभग्रामे, वाराणस्याश्च अन्तिके''॥388॥
तम् च दृष्ट्वा महामात्यः, कोलियः इति विश्रुतः।
सक्तुं भक्तं च प्रेताय, पीतकं च युगम् अदात्॥389॥
नावि तिष्ठति, कल्पकास्य अदापयत्।
कल्पकस्य प्रदत्तं हि, स्थाने प्रेतस्य दृश्यते॥390॥

हिन्दी- प्रेत! तुम इस गङ्गा(नदी) का जलस्पर्श किये विना ही इसपर चल रहे हो। तुम नग्न हो, तुम्हारे शरीर का पूर्वार्द्ध भाग प्रेत के समान प्रतीत हो रहा है। माला धारण किये हो, और आभूषणों से अलङ्कृत हो। तुम कहाँ जा रहे हो? और कहा जाकर ठहरोगे?॥387॥

मैं चुन्दट्ठिक जाऊँगा। मुझे लोग 'प्रेत' कहते हैं। मैं वाराणसी के समीप वासभग्राम में रहता हूँ॥388॥

और उस प्रेत को देख कर कोलिय नामक विख्यात महामात्य ने खाने के लिये सत्तू और भात तथा पीले वस्त्र- ॥389॥

नाव के ठहरने पर एक नाई के माध्यम से दिये; क्योंकि नाई के माध्यम से दी गयी वस्तु प्रेत को मिल जाया करती है— ऐसा देखा जाता है॥390॥

ततो सुवत्थवसनो, मालधारी अलङ्कतो।
ठाने ठितस्स पेतस्स, दक्खिणा उपकप्पथ।
तस्मा दज्जेथ पेतानं, अनुकम्पाय पुनप्पुनं॥391॥
सातुन्नवसना एके, अञ्ञे केसनिवासना।
पेता भत्ताय गच्छन्ति, पक्कमन्ति दिसोदिसं॥392॥
दूरे एके पधावित्वा, अलद्धाव निवत्तरे।
छाता पमुच्छिता भन्ता, भूमियं पटिसुम्भिता॥393॥
ते च तत्थ पपतिता, भूमियं पटिसुम्भिता।
पुब्बे अकतकल्याणा, अग्गिदड्ढाव आतपे॥394॥
''मयं पुब्बे पापधम्मा, घरणी कुलमातरो।
सन्तेसु देय्यधम्मेसु, दीपं नाकम्ह अत्तनो॥395॥

संस्कृतच्छाया- ततः सुवस्त्रवसनः, मालाधारी अलङ्कृतः।
स्थाने स्थिताय प्रेताय, दक्षिणा उपकल्पिता।
तस्मात् दद्यात् प्रेतेभ्यः, अनुकम्पया पुनः पुनः॥391॥
साहुलवसना एके, अन्ये केशवसनाः।
प्रेताः भक्ताय गच्छन्ति, प्रक्रमन्ति दिशःदिशम्॥392॥
दूरे एके प्रधाव्य, अलब्ध्वा निवर्त्तन्ते।
क्षन्ताः प्रमूर्च्छिताः भ्रान्ताः, भूम्यां प्रतिशुम्भिताः॥393॥
ते च तत्र प्रपतिताः, भूम्यां प्रतिलुण्ठिताः।
पूर्वम् अकृतकल्याणाः, अग्निदग्धाः इव आतपे॥394॥
''वयं पूर्वं पापधर्माः, गृहणी कुलमातरः।
सत्सु देयधर्मेषु, दीपं नाकरवम् आत्मनः॥395॥

हिन्दी- तब उस सुन्दर वस्त्रधारी, मालाधारी तथा आभूषणों से अलङ्कृत उचित स्थान पर खड़े हुए उस प्रेत के लिये माहामात्य नें दान का संकल्प किया। अतः प्रेतों को कृपापूर्वक पुनः पुनः दान करना चाहिये॥391॥

कुछ प्रेत सूती वस्त्र धारण करते हैं, कुछ बालों वाले कम्बल ओढ़ते हैं। प्रेतजन अपने भोजन हेतु प्रतिदिन अन्यान्य दिशाओं में जाया करते हैं॥392॥

इनमें से कुछ प्रेत तो कुछ भी पाये विना ही लौट आते हैं तथा भूखे प्यासे, मूर्छित तथा बेसुध हो इधर उधर चक्कर लगा कर भूमि पर लोट-पोट होते रहते हैं॥393॥

वे वहाँ भूमि पर गिरकर लोट-पोट होते रहने वाले प्रेत पूर्व में कल्याणकर्म न करके वैसे ही कष्ट पाते हैं जैसे कोई सूर्य की धूप से दग्ध कष्ट पाया करता है॥394॥

हम भी पहले पापधर्मी थे। हमारे घरों में स्त्रियाँ तथा कुलमाताएँ भी थीं। घरों में देने योग्य वस्तुएँ भी थीं, किन्तु हमने स्वयं के लिये दानयज्ञ कर अपने लिए किसी द्वीप का निर्माण नहीं किया॥395॥

''पहूतं अन्नपानम्पि, अपिस्सु अवकिरीयति।
सम्मग्गते पब्बजिते, न च किञ्चि अदम्हसे॥396॥
''अकम्मकामा अलसा, सादुकामा महग्घसा।
आलोपपिण्डदातारो, पटिग्गहे परिभासिम्हसे॥397॥
''ते घरा ता च दासियो, तानेवाभरणानि नो।
ते अञ्ञे परिचारेन्ति, मयं दुक्खस्स भागिनो॥398॥
''वेणी वा अवञ्ञा होन्ति, रथकारी च दुब्भिका।
चण्डाली कपणा होन्ति, कप्पका च पुनप्पुनं॥399॥
''यानि यानि निहीनानि, कुलानि कपणानि च।
तेसु तेस्वेव जायन्ति, एसा मच्छरिनो गति॥400॥

संस्कृतच्छाया- ''प्रभूतम् अन्नपानमपि, अपि स्यात् अवकीर्यते।
सम्यग्गते प्रव्रजिते, न च किञ्चिद् अदामः॥396॥
''अकर्मकामा अलसाः, स्वादुकामाः महार्घाः।
आलोपपिण्डदातारः, प्रतिग्रहे परिभाषामहे॥397॥
''ते गृहाः ताः च दास्यः, तान्येवाभरणानि नः।
ते अन्ये परिचरन्ति, वयं दुःखस्य भागिनः॥398॥
''वेण्यः वा अवज्ञाताः भवन्ति, रथकाराश्च दर्भिक्षाः।
चाण्डाल्यः कृपणाः भवन्ति कल्पकाश्च पुनः पुनः॥399॥
''यानि यानि निहीनानि, कुलानि कृपणानि च।
तेषु तेषु एव जायन्ते, एषा मत्सरिणां गतिः॥400॥

हिन्दी- ढेर सारा अन्न-पान व्यर्थ ही नष्ट हो जाता था; परन्तु किसी सम्यक्मार्गारूढ़ प्रव्रजित भिक्षु को, हम कुछ भी नहीं देते थे॥396॥

हम न करने योग्य कार्यों में रहते थे, करने योग्य कर्मों में आलस्य दिखाते थे। स्वादिष्ट भोजन की लालसा में अत्यधिक खाते थे। एक कौरमात्र(अल्पमात्र) दान माँगने वाले को अपशब्द कहते हुए देते थे॥397॥

आज भी वे ही घर हैं, वहाँ वे ही दास दासियाँ हैं, वे ही आभूषण तथा अलंकरण के साधन हैं, परन्तु उनका उपभोग अन्यजन कर रहे हैं तथा हम कष्ट भोग रहे हैं॥398॥

बाँस की टोकरी बनाने वाली, या रथकार(बढ़ई), भूखों मरने वाली, चाण्डाल या नाई जाति के मजदूरों या-॥399॥

दीन हीन जातियों, कुलों में ऐसे कंजूसों की, दानक्रिया से घृणा करने वालों की, उत्पत्ति होती रहती है॥400॥

''पुब्बे च कतकल्याणा, दायका वीतमच्छरा।
सग्गं ते परिपूरेन्ति, ओभासेन्ति च नन्दनं॥401॥
''वेजयन्ते च पासादे, रमित्वा कामकामिनो।
उच्चाकुलेसु जायन्ति, सभोगेसु ततो चुता॥402॥
''कूटागारे च पासादे, पल्लङ्के गोनकत्थते।
बीजितङ्गा मोरहत्थेहि, कुले जाता यसस्सिनो॥403॥
''अङ्कतो अङ्कं गच्छन्ति, मालधारी अलङ्कता।
धातियो उपतिट्ठन्ति, सायं पातं सुखेसिनो॥404॥
''नयिदं अकतपुञ्ञानं, कतपुञ्ञानमेविदं।
असोकं नन्दनं रम्मं, तिदसानं महावनं॥405॥

संस्कृतच्छाया- ''पूर्वं च कृतकल्याणाः, दायकाः वीतमत्सराः।
स्वर्गं ते परिपूरयन्ति, आभासयन्ति च नन्दनम्॥401॥
''वैजयन्ते च प्रासादे, रन्त्वा कामकामिनः।
उच्चैः कुलेषु जायन्ते, सभोगेषु ततश्च्युताः॥402॥
''कूटागारे च प्रासादे, पर्यङ्के और्णकस्थिते।
बीजिताङ्गाः मयूरहस्तैः, कुले जाताः यशस्विनः॥403॥
''अङ्कतः अङ्कं गच्छन्ति, मालाधारिणः अलङ्कृताः।
धात्र्यः उपतिष्ठन्ते, सायं प्रातः सुखैषिणः॥404॥
''नेदम् अकृतपुण्यानाम्, कृतपुण्यानामेवेदम्।
अशोकं नन्दनं रम्यं, त्रिदशानां महावनम्॥405॥

हिन्दी- परन्तु, जिन लोगों ने पूर्व जन्म में पुण्य कर्म किये हैं, मात्सर्यरहित हो दान किया है, वे सीधे स्वर्ग में ही पहुँचते हैं तथा नन्दनवन को शोभित करते हैं॥401॥

वे वैजयन्त प्रासाद में, यथेच्छ कामसुख भोगते हुए, रमण करते हैं। वे वहाँ से च्युत होकर यहाँ उच्च कुलों में जन्म लेते हैं जहाँ कामभोगों का बाहुल्य होता है॥402॥

शिखरयुक्त महलों में ऊनी वस्त्र बिछे हुए पलंगों पर, मयूर पंखों से हवा किये जाते हुए यशस्वी कुलों में उनकी उत्पत्ति होती है॥403॥

प्रातः एवं सायंकाल सुखपूर्वक माला धारण किए हुए तथा अलङ्कारों से अलङ्कृत हो धात्रियों की एक गोद से दूसरी गोद में स्नेहपूर्वक लिये जाते हैं॥404॥

यह देवताओं के नन्दनवन एवं महावन का समस्त सुख पूर्वजन्म में पुण्यकर्ताओ को ही प्राप्त होता है, पाप करने वालों को नहीं॥405॥

''सुखं अकतपुञ्ञानं, इध नत्थि परत्थ च।
सुखञ्च कतपुञ्ञानं, इध चेव परत्थ च॥406॥
''तेसं सहब्यकामानं, कत्तब्बं कुसलं बहुं।
कतपुञ्ञा हि मोदन्ति, सग्गे भोगसमङ्गिनो'' ति॥407॥

अभिज्जमानपेतवत्थु पठमं।

2. साणवासीथेरपेतवत्थु

कुण्डिनागरियो थेरो, साणवासि निवासिको।
पोट्ठपादोति नामेन, समणो भावितिन्द्रियो॥408॥
तस्स माता पिता भाता, दुग्गता यमलोकिका।
पापकम्मं करित्वान, पेतलोकं इतो गता॥409॥
ते दुग्गता सूचिकट्टा, किलन्ता नग्गिनो किसा।
उत्तसन्ता महत्तासा, न दस्सेन्ति कुरूरिनो॥410॥

संस्कृतच्छाया- ''सुखम् अकृतपुण्यानाम्, इह नास्ति परत्र च।
सुखं च कृतपुण्यानाम्, इह चैव परत्र च॥406॥
''तेषां सहवस्तुकामानां, कर्त्तव्यं कुशलं बहु।
कृतपुण्याः हि मोदन्ते, स्वर्गे भोगसमङ्गिनः'' इति॥407॥
कुण्डिनागरः स्थविरः, शाणवासी निवासकः।
प्रोष्ठपादः इति नाम्ना, श्रमणः भावितेन्द्रियः॥408॥
तस्य माता पिता भ्राता, दुर्गताः यमलौकिकाः।
पापकर्म कृत्वा, प्रेतलोकम् इतो गताः॥409॥
ते दुर्गताः सूचीकृत्ताः, क्लान्ताः नग्नाः कृशाः।
उत्त्रस्यन्तः महात्रासाः, न दृश्यन्ते क्रूराः॥410॥

हिन्दी- पुण्य न करने वालों के लिए न तो यहाँ सुख है न परलोक में। किन्तु पुण्य करने वालों के लिए यहाँ भी सुख है और परलोक में भी॥406॥

ऐसे सुखी जनों के साथ रहने की जिनकी इच्छा हो वे बहुत से कुशल कर्म करें; क्योंकि पुण्यकर्मी ही स्वर्ग में दिव्य कामभोगों के अधिकारी हुआ करते हैं॥407॥

शाण पर्वत के समीप कुण्डिनगर के रहने वाले प्रोष्ठपाद नामक स्थविर एक जितेन्द्रिय श्रमण थे॥408॥

उनके माता पिता एवं भ्राता—सभी लोग दुर्गति प्राप्त कर यमलोक पहुँच गये। वे यहाँ पाप कर्म करते हुए, मृत्योपरान्त, प्रेतलोक को पहुँचे थे॥409॥

वे दुर्गतिप्राप्त प्राणि सूइयों द्वारा बींधे जाने से क्लेश पाते हुए, नग्न, कृश(दुर्बल), भयभीत, अतिशय दु:ख भोगने वाले तथा क्रूर होते हुए भी अदृश्य हैं॥410॥

तस्स भाता वितरित्वा, नग्गो एकपथेकको।
चतुकुण्डिको भवित्वान, थेरस्स दस्सयीतुमं॥411॥
थेरो चामनसिकत्वा, तुण्हीभूतो अतिक्कमि।
सो च विञ्ञापयी थेरं, 'भाता पेतगतो अहं'॥412॥
''माता पिता च ते भन्ते, दुग्गता यमलोकिका।
पापकम्मं करित्वान, पेतलोकं इतो गता॥413॥
''ते दुग्गता सूचिकट्टा, किलन्ता नग्गिनो किसा।
उत्तसन्ता महत्तासा, न दस्सेन्ति कुरूरिनो॥414॥
''अनुकम्पस्सु कारुणिको, दत्वा अन्वादिसाहि नो।
तव दिन्नेन दानेन, यापेस्सन्ति कुरूरिनो'' ति॥415॥

संस्कृतच्छाया- तस्य भ्राता वितीर्य, नग्नः एकपथे एकाकी।
चतुष्कुण्डिकः भूत्वा, स्थविरं द्रष्टुम्॥411॥
स्थविरः चामनसिकृत्य, तूष्णीम्भूतः अत्यक्रमत्।
स च व्यज्ञपयत् स्थविरं, 'भ्राता प्रेतगतोऽहम्'॥412॥
''माता पिता च ते भदन्त, दुर्गताः यमलौकिकाः।
पापकर्म कृत्वा, प्रेतलोकम् इतः गताः॥413॥
ते दुर्गताः सूचीकृताः, क्लान्ताः नग्नाः कृशाः।
उत्त्रस्यन्तः महात्रासाः, न दृश्यन्ते क्रूराः॥414॥
''अनुकम्पस्व कारुणिकः, दत्वा अन्वादिश नः।
त्वया दत्तेन दानेन, यापयिष्यन्ति क्रूराः'' इति॥415॥

हिन्दी- परन्तु उसका भाई कभी उन दुर्गतिप्राप्त लोगों से पृथक् होकर नग्न एवं मार्ग में एकाकी चलता हुआ, अपने दोनों हाथों तथा दोनों पैरों सें झुका हुआ, स्थविर के दर्शन हेतु आया॥411॥

स्थविर उसकी ओर ध्यान न देते हुए मौनपूर्वक आगे बढ़ गये। परन्तु उस प्रेत ने स्थविर से पुनः निवेदन किया— भदन्त! मैं प्रेतयोनि प्राप्त आपका भाई हूँ॥412॥

भन्ते! आपके माता पिता भी दुर्गति प्राप्त कर यमलोक पहुँच गये। वे यहाँ पाप कर्म करते हुए, मृत्योपरान्त, प्रेतलोक को पहुँचे थे॥413॥

वे दुर्गतिप्राप्त प्राणि सूइयों द्वारा बींधे जाने से क्लेश पाते हुए, नग्न, कृश(दुर्बल), भयभीत, अतिशय दुःख भोगने वाले तथा क्रूर होते हुए भी अदृश्य हैं॥414॥

हे करुणामय! आप उन पर अनुकम्पापूर्वक उनके प्रति संकल्प कर कुछ दान करें, आपके द्वारा दिये दान के फलस्वरूप वे क्रूर दुर्गतिप्राप्त अपनी इस दुरवस्था से मुक्ति पा सकेंगे॥415॥

थेरो चरित्वा पिण्डाय, भिक्खू अञ्ञे च द्वादस।
एकज्झं सन्निपतिंसु, भत्तविस्सग्गकारणा॥416॥
थेरो सब्बेव ते आह, ''यथालद्धं ददाथ मे।
सङ्घभत्तं करिस्सामि, अनुकम्पाय ञातिनं''॥417॥
निय्यादयिंसु थेरस्स, थेरो सङ्घं निमन्तयि।
दत्वा अन्वादिसि थेरो, मातु पितु च भातुनो।
''इदं मे ञातीनं होतु, सुखिता होन्तु ञातयो''॥418॥
समनन्तरानुद्दिट्ठे, भोजनं उदपज्जथ।
सुचिं पणीतं सम्पन्नं, अनेकरसब्यञ्जनं॥419॥
ततो उद्दस्सयी भाता, वण्णवा बलवा सुखी।
''पहूतं भोजनं भन्ते, पस्स नग्गाम्हसे मयं।
तथा भन्ते परक्कम, यथा वत्थं लभामसे'' ति॥420॥

संस्कृतच्छाया- स्थविरः चरित्वा पिण्डाय, भिक्षून् अन्यान् च द्वादश।
एकध्यं संन्यपतन्, भक्तविसर्गकारणात्॥416॥
स्थविरः सर्वान् एव तान् आह, ''यथालब्धं दत्त मह्यम्।
सङ्घभक्तं करिष्यामि, अनुकम्पायै ज्ञातीनाम्''॥417॥
निर्यासिषुः(निरयापयिषुः) स्थविराय, स्थविरः सङ्घं न्यमन्त्रयत्।
दत्वा अन्वादिशत् स्थविरः, मातुः पितुः च भ्रातृणाम्।
''इदं मे ज्ञातीनां भवतु, सुखिताः भवन्तु ज्ञातयः''॥418॥
समनन्तरम् अनूद्दिष्टे, भोजनम् उदपद्यत।
शुचि प्रणीतं सम्पन्नम्, अनेकरसव्यञ्जनम्॥419॥
ततः उददृश्यत भ्राता, वर्णवान् बलवान् सुखी।
''प्रभूतं भोजनं भदन्त, पश्य नग्नाः स्मः वयम्।
तथा भदन्त प्रक्रम, यथा वस्त्रं लभामहे'' इति॥420॥

हिन्दी- भिक्षाकर्म को सम्पन्न कर भिक्षु ने स्वयं तथा बारह अन्य भिक्षुओं को एकत्र किया तथा उन सबसे इन प्रेतों को दान करने की चर्चा की॥416॥

स्थविर ने उन सभी से कहा— आप लोगों नें जो प्राप्त किया हो, वह मुझको दें। जिससे मैं दुर्गतिप्राप्त सगे सम्बन्धियों की दुर्गति के निवारण हेतु भिक्षुसंघ को सामूहिक भोजनदान करूँगा॥417॥

उन अन्य भिक्षुओं ने जो कुछ भी था, स्थविर को लाकर दे दिया। तब उसने भोजन हेतु संघ को निमन्त्रित किया। भोजन कराने के लिये उसने अपने माता, पिता तथा भाई के लिये यह संकल्प किया— यह दान मेरे सम्बन्धिजनों के निमित्त हो। जिससे मेरे ये सभी सम्बन्धिजन सुखी होवें॥418॥

थेरो सङ्कारकूटम्हा, उच्चिनित्वान नन्तके।
पिलोतिकं पटं कत्वा, सङ्घे चातुद्दिसे अदा॥421॥
दत्वा अन्वादिसी थेरो, मातु पितु च भातुनो।
''इदं मे ञातीनं होतु, सुखिता होन्तु ञातयो''॥422॥
समनन्तरानुद्दिट्ठे, वत्थानि उदपज्जिसुं।
ततो सुवत्थवसनो, थेरस्स दस्सयीतुमं॥423॥
''यावता नन्दराजस्स, विजितस्मिं पटिच्छदा।
ततो बहुतरा भन्ते, वत्थानच्छादनानि नो॥424॥

संस्कृतच्छाया- स्थविरः संकारकूटात्, उच्चित्यानन्तके।
प्लोतकं पटं कृत्वा, सङ्घे चतुर्दिक्षु अदात्॥421॥
दत्वा अन्वादिशत् स्थविरः, मातुः पितुश्च भ्रातृणाम्।
''इदं मे ज्ञातीनां भवतु, सुखिताः भवन्तु ज्ञातयः''॥422॥
समनन्तरम् अनूद्दिष्टे, वस्त्राणि उदपद्यन्त।
ततः सुवस्त्रवसनः, स्थविरं द्रष्टुम्॥423॥
''यावन्तः नन्दराजस्य, विजिते प्रतिच्छदाः।
ततः बहुतराणि भदन्त, वस्त्राणि आच्छादनानि नः॥424॥

हिन्दी- स्थविर द्वारा ऐसा संकल्प करते ही वहाँ तत्काल उत्तम एवं रुचिकर तथा अनेक रस-व्यंजनों से युक्त भोजन प्रचुर मात्रा में उपस्थित हो गया॥419॥

संघ द्वारा भोजन ग्रहण करते ही, स्थविर के बलवान्, रूपवान् एवं सुखी भ्राता नें वहाँ प्रकट होकर यह निवेदन किया—

भदन्त! भोजन तो पर्याप्त मात्रा में मिला परन्तु आप देखें कि हम अभी भी नग्न ही हैं अतः आप वैसा उपाय करें कि जिससे हमें वस्त्र प्राप्त होवे॥420॥

तब स्थविर ने ग्राम के सङ्कारकूट(कूड़ाघर) से फटे-पुराने(जीर्ण) वस्त्र एकत्र कर उनको धोकर तथा उनसे चीवर बनाकर चारो दिशाओं से अभ्यागत भिक्षुओं को दान दिया॥421॥

संघ को दान करते हुए स्थविर ने अपने माता पिता एवं भ्राता को उद्देश्य कर- यह चीवरदान मेरे माता पिता तथा भाई के लिए हो। इस दान के प्रभाव से सम्बन्धी सुखी हों, ऐसा संकल्प किया॥422॥

इस दानसंकल्प के साथ ही उन सम्बन्धियों के सम्मुख वस्त्रराशि उत्पन्न हो गयी। तब स्थविर का भ्राता उनमें से स्वच्छ एवं सुन्दर वस्त्र धारण कर स्थविर के दर्शन हेतु पुनः प्रकट हुआ॥423॥

भदन्त! नन्द के राज्य में जितनी भी वस्त्रराशि है, उससे बहुत अधिक वस्त्र व आच्छादन आपकी अनुकम्पा से हम लोगों को मिल गये हैं॥424॥

''कोसेय्यकम्बलीयानि, खोम कप्पासिकानि च।
विपुला च महग्घा च, तेपाकासेवलम्बरे॥425॥
''ते मयं परिदहाम, यं यं हि मनसो पियं।
तथा भन्ते परक्कम, यथा गेहं लभामसे'' ति॥426॥
थेरो पण्णकुटिं कत्वा, सङ्घे चातुद्दिसे अदा।
दत्वा अन्वादिसी थेरो, मातु पितु च भातुनो।
''इदं मे ञातीनं होतु, सुखिता होन्तु ञातयो''॥427॥
समनन्तरानुद्दिट्ठे , घरानि उदपज्जिसुं।
कूटागारनिवेसना, विभत्ता भागसो मिता॥428॥
''न मनुस्सेसु ईदिसा, यादिसा नो घरा इध।
अपि दिब्बेसु यादिसा, तादिसा नो घरा इध॥429॥

संस्कृतच्छाया- ''कौशेयकम्बलीयानि, क्षौमकार्पासिकानि च।
विपुलानि च महार्घाणि च, तान्यप्याकाशावलम्बितानि॥425॥
''तेषु वयं परिदध्मः, यद् यद् हि मनसः प्रियम्।
तथा भदन्त प्रक्रम, यथा गृहं लभामहे'' इति॥426॥
स्थविरः पर्णकुटीं कृत्वा, सङ्घाय चतुर्दिक्षु अदात्।
दत्वा अन्वादिशत् स्थविरः, मातुः पितुः च भ्रातृणाम्।
''इदं मे ज्ञातीनां भवतु, सुखिताः भवन्तु ज्ञातयः''॥427॥
समनन्तरम् अनूद्दिष्टे , गृहाणि उदपद्यन्त।
कूटागारनिवेशनानि, विभक्तानि भागशो मितानि॥428॥
''न मनुष्येषु ईदृशानि, यादृंशि नो गृहाणि इह।
अपि दिव्येषु यादृंशि, तादृंशि नः गृहाणि इह॥429॥

हिन्दी- उनमें रेशमी, ऊनी, सण तथा रूई आदि से निर्मित महर्घ वस्त्र विपुल मात्रा में मिल चुके हैं जो हमारे सम्मुख आकाश में लटक रहे हैं॥425॥

उनमें से हम जो-जो प्रिय एवं मनोनुकूल वस्त्र होंगे उन्हें पहनेंगे। परन्तु, भन्ते! अब आप हमारे लिए ऐसा प्रयास करें जिससे कि हमें रहने के लिये गृह(घर) भी उपलब्ध हो सके॥426॥

तब स्थविर ने एक पर्णकुटी बनाकर चारो दिशाओं से आए भिक्षुसंघ को अपने माता, पिता एवं भाई को उद्देश्य कर दान दे दिया और कहा जिससे वे सुखी रहें॥427॥

ऐसा संकल्प करते ही स्थविर के सम्बन्धियों हेतु आवास उपस्थित हो गए। तब स्थविर का भ्राता स्थविर से यह बोला— ऊँचे शिखरों वाले, उचित क्रम एवं विभाजन के साथ निर्मित आवास भी आपकी कृपा से हमको प्राप्त हो गये॥428॥

''दद्दल्लमाना आभेन्ति, समन्ता चतुरो दिसा।
'तथा भन्ते परक्कम, यथा पानीयं लभामसे'' ति॥430॥
थेरो करणं पूरेत्वा, सङ्घे चातुद्दिसे अदा।
दत्वा अन्वादिसी थेरो, मातु पितु च भातुनो।
''इदं मे ञातीनं होतु, सुखिता होन्तु ञातयो'॥431॥
समनन्तरानुद्दिट्ठे, पानीयं उदपज्जथ।
गम्भीरा चतुरस्सा च, पोक्खरञ्ञो सुनिम्मिता॥432॥
सीतोदिका सुप्पतित्था, सीता अप्पटिगन्धिया।
पदुमुप्पलसञ्छन्ना, वारिकिञ्जक्खपूरिता॥433॥

संस्कृतच्छाया- ''जाज्वल्यमानानि आभान्ति, समन्तात् चतस्रः दिशः।
'तथा भदन्त प्रक्रम, यथा पानीयं लभामहे'' इति॥430॥
स्थविरः करकं पूरयित्वा, सङ्घाय चतुर्दिक्षु अदात्।
दत्वा अन्वादिशत् स्थविरः, मातुः पितुः च भ्रातृणाम्।
''इदं मे ज्ञातीनां भवतु, सुखिताः भवन्तु ज्ञातयः''॥431॥
समनन्तरम् अनूद्दिष्टे, पानीयम् उदपद्यत।
गम्भीराः चतुरस्राः च, पुष्करिण्यः सुनिर्मिताः॥432॥
शीतोदकाः सुप्रतिष्ठाः, शीताः अप्रतिगन्धिन्यः।
पद्मोत्पलसञ्छन्नाः, वारिकिञ्जल्कपूरिताः॥433॥

हिन्दी- इन आवासों के समान आवास इस लोक में कहीं नहीं दिखते हैं। ये आवास तो स्वर्ग के समान, दिव्य, सुन्दर हैं॥429॥

घरों के आलोक से चारों दिशाएँ शोभित हो रही हैं। परन्तु, भदन्त! अब आप ऐसा उपाय करें कि हमें पीने के लिये स्वच्छ जल भी उपलब्ध हो सकें॥430॥

तब स्थविर ने एक जलपात्र जल से भर कर उपस्थित भिक्षुओं को दिया तथा साथ ही यह संकल्प, अपने माता, पिता तथा भाई को उद्देश्य कर, किया— "यह जलदान मेरे इन सम्बन्धियों के लिये हो। इस जलदान के प्रभाव से मेरे सम्बन्धीजन सुखी रहें॥431॥

स्थविर द्वारा यह पवित्र संकल्प करते ही तत्काल सम्बन्धियों के लिये जलपूर्ति हेतु गम्भीर एवं भलीभाँति निर्मित चतुष्कोणी पुष्करिणियाँ उपस्थित हो गयीं॥432॥

इनका जल शीतल था, इनके घाट शीतल, मन्द, सुगन्धित एवं छायायुक्त थे। इनमें श्वेत एवं नील कमल के फूल खिले हुए थे, इन फूलों के केशर से उनका जल पूर्ण था॥433॥

तत्थ न्हत्वा पिवित्वा च, थेरस्स पटिदस्सयुं।
''पहूतं पानीयं भन्ते, पादा दुक्खा फलन्ति नो''॥434॥
''आहिण्डमाना खञ्जाम, सक्खरे कुसकण्टके।
'तथा भन्ते परक्कम, यथा यानं लभामसे''' ति॥435॥
थेरो सिपाटिकं लद्धा, सङ्घे चातुद्दिसे अदा।
दत्वा अन्वादिसी थेरो, मातु पितु च भातुनो।
''इदं मे ञातीनं होतु, सुखिता होन्तु ञातयो''॥436॥
समनन्तरानुद्दिट्ठे , पेता रथेन मागमुं।
''अनुकम्पितम्ह भदन्ते, भत्तेनच्छादनेन च॥437॥
''घरेन पानीयदानेन, यानदानेन चूभयं।
मुनिं कारुणिकं लोके, भन्ते वन्दितुमागता'' ति॥438॥

साणवासीथेरपेतवत्थु दुतियं।

संस्कृतच्छाया- तत्र स्नात्वा पीत्वा च, स्थविरस्य प्रत्यदृश्यत।
''प्रभूतं पानीयं भदन्त, पदां दुःखानि फलन्ति नः''॥434॥
''आहिण्डमानाः खञ्जाम, सखरे कुशकण्टके।
'तथा भदन्त प्रक्रम, यथा यानं लभामहे''' इति॥435॥
स्थविरः सृपाटिकं लब्ध्वा, सङ्घाय चातुर्दिक्षु अदात्।
दत्वा अन्वादिशत् स्थविरः, मातुः पितुः च भ्रातृणाम्।
''इदं मे ज्ञातीनां भवतु, सुखिताः भवन्तु ज्ञातयः''॥436॥
समनन्तरम् अनूद्दिष्टे , प्रेताः रथेन आगमन्।
''अनुकम्पिताः स्मः भदन्त, भक्तेनाच्छादनेन च॥437॥
''गृहेण पानीयदानेन, यानदानेन चोभयम्।
मुनिं कारुणिकं लोके, भदन्त वन्दितुमागताः'' इति॥438॥

हिन्दी- वहाँ स्नान कर, जल पीकर वे सब स्थविर के दर्शन हेतु उनके सम्मुख प्रकट हुए और यह कहा— भदन्त! हमने जल भी पी लिया। परन्तु हमारे पैरों के फटने के कारण हम कष्ट भोग रहे हैं॥434॥

हम कंकड़, कुश एवं काँटों पर चलते चलते, पैरों के कट-फट जाने के कारण, लंगड़ा रहे हैं; अब भदन्त! आप ऐसा उपाय करें कि हमें आरोहण के लिये यान प्राप्त हो सकें॥435॥

तब स्थविर ने कहीं से एक पटल का जूता प्राप्त कर सङ्घ को इस संकल्प के साथ दान कर दिया— यह दान मेरे सम्बन्धियों के लिये हो, इस दान के प्रभाव से मेरे सम्बन्धिजन सुखी हों॥436॥

इस संकल्प के पुण्य प्रभावस्वरू तत्काल ही स्थविर के वे सम्बन्धिजन एक सुन्दर रथ पर आरूढ़ होकर स्थविर के सम्मुख उपस्थित होकर यह बोले— भदन्त! आपने हम लोगों को भोजन, वस्त्र, आवास, जल तथा यान आदि के दान से अनुकम्पापूर्वक सन्तृप्त एवं सन्तुष्ट कर दिया॥437॥

3. रथकारपेतिवत्थु

''वेळुरियथम्भं रुचिरं पभस्सरं, विमानमारुय्ह अनेकचित्तं।
तत्थच्छसि देवि महानुभावे, पथद्धनि पन्नरसेव चन्दो॥439॥
''वण्णो च ते कनकस्स सन्निभो, उत्तरूपो भुस दस्सनेय्यो।
पल्लङ्कसेट्ठे अतुले निसिन्ना, एका तुवं नत्थि च तुय्ह सामिको॥440॥
''इमा च ते पोक्खरणी समन्ता, पहूतमल्या बहुपुण्डरीका।
सुवण्णचुण्णेहि समन्तमोत्थता, न तत्थ पङ्को पणको च विज्जति॥441॥
''हंसा चिमे दस्सनीया मनोरमा, उदकस्मिमनुपरियन्ति सब्बदा।
समय्य वग्गूपनदन्ति सब्बे, बिन्दुस्सरा दुन्दुभीनंव घोसो॥442॥

संस्कृतच्छाया- ''वैदूर्यस्तम्भं रुचिरं प्रभास्वरं, विमानमारुह्य अनेकचित्रम्।
तत्रेच्छसि देवि महानुभावे, पथ्यध्वनि पूर्णिमाया इव चन्द्रः॥439॥
''वर्णश्च ते कनकेन सन्निभः, उत्तमरूपः भृशम् दर्शनीयः।
पर्यङ्कश्रेष्ठे अतुले निषण्णा, एका त्वं नास्ति च तव स्वामी॥440॥
''इमाश्च ते पुष्करिण्यः समन्तात्, प्रभूतमाल्याः बहुपुण्डरीकाः।
सुवर्णचूर्णैः समन्तत उत्थिताः, न तत्र पङ्कः पर्णकश्च विद्यते॥441॥
''हंसाश्च इमे दर्शनीयाः मनोरमाः, उदके अनुपरियन्ति सर्वदा।
समेत्य वल्गूपनदन्ति सर्वे, बिन्दुस्वराः दुन्दुभीनाम् इव घोषः॥442॥

हिन्दी- भदन्त! घर, पानी तथा यान दान करने के कारण लोक में इन सब वस्तुओं के दाता आप कारुणिक को प्रणाम करने हेतु हम आपके सम्मुख उपस्थित हुए हैं॥438॥

हे महानुभावे देवि! आप विविध चित्रकलाओं से युक्त तथा वैदूर्यमणि-रचित स्तम्भों पर टिकी हुई इस सुन्दर जगमगाते विमान में बैठ कर उसी प्रकार शोभित हो रही हैं जैसे आकाश में पूर्णिमा का चन्द्र शोभित होता है॥439॥

आपके शरीर का वर्ण उत्तम सुवर्ण के समान सुन्दर एवं दर्शनीय है। परन्तु इस अतुल एवं श्रेष्ठ पलंग पर आप अकेली अपने स्वामी(पति) के विना ही विराजमान हैं॥440॥

आपके इस विमान के चारों ओर ये सुन्दर पुष्करिणियाँ भी हैं, जिनमें विविध कमल आदि पुष्प खिले हुए हैं। इनके चारों तरफ सोने का चूर्ण बिखरा हुआ है। तो भी इनमें कहीं पङ्क(कीचड़) दिखायी नहीं देते हैं, न जल पर कहीं काई॥441॥

इन पुष्करिणियों में दर्शनीय एवं मनोहर हंस सदा ऐसा मधुर कलरव करते हुए तैरते रहते हैं मानो मधुर स्वर वाली दुन्दुभियाँ बज रही हों॥442॥

''दद्दल्लमाना यससा यसस्सिनी, नावाय च त्वं अवलम्ब तिट्ठसि।
आळारपम्हे हसिते पियंवदे, सब्बङ्गकल्याणि भुसं विरोचसि॥443॥
''इदं विमानं विरजं समे ठितं, उय्यानवन्तं रतिनन्दिवड्ढनं।
इच्छामहं नारि अनोमदस्सने, तया सह नन्दने इध मोदितुं'' ति॥444॥
''करोहि कम्मं इध वेदनीयं, चित्तञ्च ते इध निहितं भवतु।
कत्वान कम्मं इध वेदनीयं, एवं ममं लच्छसि कामकामिनिं'' ति॥445॥
''साधू'' ति सो तस्सा पटिस्सुणित्वा, अकासि कम्मं तहिं वेदनीयं।
कत्वान कम्मं तहिं वेदनीयं, उपपज्जि सो माणवो तस्सा सहब्यतं'' ति॥446॥

रथकारपेतिवत्थु ततियं।
भाणवारं दुतियं निट्ठितं।

संस्कृतच्छाया- ''जाज्वल्यमाना यशसा यशस्विनी, नावि च त्वम् अवलम्ब्य तिष्ठसि।
अरालपक्ष्मे हसिते प्रियंवदे, सर्वाङ्गकल्याणि भृशं विरोचसे॥443॥
''इदं विमानं विरजः समे स्थितम्, उद्यानवत् रत्यानन्दवर्धनम्।
इच्छामि अहं नारि अनवमदर्शने, त्वया सह नन्दने इह मोदितुम्'' इति॥444॥
''करोषि कर्म इह वेदनीयं, चित्तं च ते इह निहितं भवतु।
कृत्वा कर्म इह वेदनीयम्, एवं मां लप्स्यसे कामकामिनीम्'' इति॥445॥
''साधु'' इति सः तस्यै प्रतिश्रुत्य, अकार्षीत् कर्म तत्र वेदनीयम्।
कृत्वा कर्म तत्र वेदनीयम्, उपपद्य सः माणवः तया सहवस्तुम् इति॥446॥

हिन्दी- हे यशस्विनी! आप अपने यशप्रताप से जगमगाती हुई नाव के सहारे खड़ी हैं। आपके नेत्रपक्ष्म चौड़े हैं, आप हँसमुख एवं प्रियम्वदा हैं तथा आप सर्वांगसुन्दरी होने के कारण अत्यन्त रुच रही हैं॥443॥

आपका यह विरज(धूलकण रहित) विमान समतल भूमि पर स्थित है, इसका उद्यान भी रति एवं आनन्द वर्द्धक है। अतः हे अनवमदर्शने! मैं आपके साथ इस नन्दन वन में आनन्द करना चाहता हूँ॥444॥

यदि तुम इस नन्दन वन में मेरे साथ रह कर आनन्द करना चाहते हो तो पहले उसके अनुकूल कर्म करो तथा उन कर्मों में अपना मन लगाओ। इसी प्रकार तुम मेरे साथ रह कर यथेच्छ कामभोग प्राप्त कर पाओगे॥445॥

ठीक है— ऐसा उसको कह कर वैसे प्रोक्त शुभ कर्म आरम्भ किये। ऐसे अनुकूल कर्म करता हुआ वह मनुष्य अन्त में उन देवी के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त कर सका॥446॥

4. भुसपेतवत्थु

''भुसानि एको सालिं पुनापरो, अयञ्च नारी सकमंसलोहितं।
तुवञ्च गूथं असुचिं अकन्तं, परिभुञ्जसि किस्स अयं विपाको'' ति॥447॥
''अयं पुरे मातरं हिंसति, अयं पन कूटवाणिजो।
अयं मंसानि खादित्वा, मुसावादेन वञ्चेति॥448॥
''अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूता, अगारिनी सब्बकुलस्स इस्सरा।
सन्तेसु परिगुहामि, मा च किञ्चि इतो अदं॥449॥
''मुसावादेन छादेमि, 'नत्थि एतं मम गेहे।
सचे सन्तं निगुहामि, गूथो मे होतु भोजनं'॥450॥
''तस्स कम्मस्स विपाकेन, मुसावादस्स चूभयं।
सुगन्धं सालिनो भत्तं, गूथं मे परिवत्तति॥451॥

संस्कृतच्छाया- ''बुसानि एकः शालेः पुनः अपरः, इयं च नारी स्वकम् मांसलोहितम्।
त्वं च गूथम् अशुचिं अकान्तं, परिभुङ्क्षे कस्य अयं विपाकः'' इति॥447॥
''अयं पुरा मातरं अहिंसत्, अयं पुनः कूटवणिक्।
अयं मांसानि खादित्वा, मृषावादेन वञ्चयते॥448॥
''अहं मनुष्येषु मनुष्यभूता, अगारिणी सर्वकुलस्य ईश्वरी।
सत्सु परिगूहयामि, मा च किञ्चिद् इतो दाम्॥449॥
''मृषावादेन छादयामि, 'नास्ति एतद् मम गृहे।
सा चेत् सन्तं निगूहयामि, गूथः मे भवतु भोजनम्'॥450॥
''तस्य कर्मणः विपाकेन, मृषावादस्य चोभयम्।
सुगन्धं शालिनः भक्तं, गूथं मे परिवर्त्तते॥451॥

हिन्दी- तुम में से एक शालिधान का त्याग कर उसका भूसा खा रहा है, बाद में यह नारी बन कर अपना ही मांस एवं रक्त पी रहा है? और तुम अपवित्र एवं अप्रिय पुरुषमल खा रही हो? — यह तुम्हारे द्वारा कृत किस अशुभ कर्म का परिणाम है? ॥447॥

इसने पूर्व जन्म में अपनी माता का वध कर दिया था, तथा व्यापार में सदा कम तौल कर सौदा करता था। उसी पाप कर्म के फलस्वरूप यह मांस खाकर तथा व्यापार में असत्यभाषण के कारण वञ्चना कर रहा है॥448॥

मैं कभी मनुष्यलोक में मनुष्य होकर किसी उच्च धनाढ्य कुल में अतुल सम्पदा की स्वामिनी थी। परन्तु मैं घर में दान योग्य वस्तु के होने पर भी उसे याचकों से छिपाती थी॥449॥

तथा उनसे शपथपूर्वक यह कहती थी कि मेरे घर में यह वस्तु नहीं है। यदि होने पर भी उसे मैं छिपाऊँ तो पुरुष मल ही मेरा भोजन हो॥450॥

''अवञ्झानि च कम्मानि, न हि कम्मं विनस्सति।
दुग्गन्धं किमिनं मीळं, भुञ्जामि च पिवामि चा'' ति॥452॥

भुसपेतवत्थु चतुत्थं।

5. कुमारपेतवत्थु

अच्छेररूपं सुगतस्स ञाणं, सत्था यथा पुग्गलं ब्याकासि।
उस्सन्नपुञ्ञापि भवन्ति हेके, परित्तपुञ्ञापि भवन्ति हेके॥453॥
अयं कुमारो सीवथिकाय छड्डितो, अङ्गुट्ठस्नेहेन यापेति रत्तिं।
न यक्खभूता न सरीसपा वा, विहेठयेय्युं कतपुञ्ञं कुमारं॥454॥
सुनखापिमस्स पलिहिंसु पादे, धङ्का सिङ्गाला परिवत्तयन्ति।
गब्भासयं पक्खिगणा हरन्ति, काका पन अक्खिमलं हरन्ति॥455॥

संस्कृतच्छाया- ''अबन्ध्यानि च कर्माणि, न हि कर्म विनश्यति।
दुर्गन्धं कृमिभिः मीढं, भुञ्जामि च पिबामि च'' इति॥452॥
आश्चर्यरूपं सुगतस्य ज्ञानं, शास्ता यथा पुद्गलं व्याकार्षीत्।
उत्सन्नपुण्याः अपि भवन्ति ह्येके, परीत्तपुण्या अपि भवन्ति ह्येके॥453॥
अयं कुमारः शीवनस्थिकाये त्यक्तः, अङ्गुष्ठस्नेहेन यापयति रात्रिम्।
न यक्षभूताः न सरीसृपाः वा, विहिंसयेयुः कृतपुण्यं कुमारम्॥454॥
शुनकाः अपि अस्य प्रलिहन् पादे, ध्वांक्षाः शृगालाः परिवर्त्तन्ते।
गर्भाशयं पक्षिगणाः हरन्ति, काकाः पुनरक्षिमलं हरन्ति॥455॥

हिन्दी- उसी अदान और मृषावाद, दोनों ही पापकर्मों के विपाकस्वरूप मेरे सम्मुख रखा हआ शालिधान का सुगन्धित भात भी आज पुरुषमल के रूप में परिवर्तित हो जाता है॥451॥

किये हुए कर्म कभी निष्फल नहीं होते तथा कोई भी कर्म फल दिये बिना नष्ट नहीं होता। इसलिए आज मैं यह दुर्गन्धयुक्त कीड़ों से भरा हुआ पुरुषमल खा और पी रही हूँ॥452॥

शास्ता बुद्ध का ज्ञान आश्चर्यमय एवं अद्भुत है। शास्ता नें सांसारिक पुद्गल की यथार्थ व्याख्या की है। उनके अनुसार कुछ पुद्गल बहुत पुण्यकर्मा होते हैं तथा कुछ पुद्गल अल्प पुण्य ही कर पाते हैं॥453॥

यह कुमार किसी के द्वारा श्मशान में फेंक दिया गया। इसने अपना अंगूठा चूसते हुए अपनी समस्त रात्रि बिता दी। परन्तु पूर्वजन्म के पुण्यकर्ता इस शिशु को न किसी भूत-प्रेत ने और न किसी सर्प आदि ने ही कोई कष्ट दिया॥454॥

श्मशान के कुत्ते भी इसके तलवे ही चाटते रहे। कौए एवं शृगाल भी इसके आस-पास ही चक्कर काटते रहे। पक्षियों ने इसके शरीर पर चिपका हुआ गर्भाशय का मल ही खाया। तथा कौओं ने भी इसकी आँखों का मैल ही हटाया॥455॥

नयिमस्स रक्खं विदहिंसु केचि, न ओसधं सासपधूपनं वा।
नक्खत्तयोगम्पि न अग्गहेसुं, न सब्बधञ्ञानिपि आकिरिंसु॥456॥
एतादिसं उत्तमकिच्छपत्तं, रत्ताभतं सीवथिकाय छड्डितं।
नोनीतपिण्डंव पवेधमानं, ससंसयं जीवितसावसेसं॥457॥
तमद्दसा देवमनुस्सपूजितो, दिस्वा च तं ब्याकरि भूरिपञ्ञो।
''अयं कुमारो नगरस्सिमस्स, अग्गकुलिको भविस्सति भोगतो च''॥458
''किस्स वतं किं पन ब्रह्मचरियं, किस्स सुचिण्णस्स अयं विपाको।
एतादिसं ब्यसनं पापुणित्वा, तं तादिसं पच्चनुभोस्सतिद्धिं'' ति॥459॥
बुद्धपमुखस्स भिक्खुसङ्घस्स, पूजं अकासि जनता उळारं।
तत्रस्स चित्तस्सहु अञ्ञथत्तं, वाचं अभासि फरुसं असब्भं॥460॥

संस्कृतच्छाया- न अस्य रक्षां विदध्युः केचित्, न औषधं सार्षपधूपनं वा।
नक्षत्रयोगमपि न अग्रहीषुः, न सर्वधान्यानि अपि अवाकिरन्॥456॥
एतादृशम् उत्तमकृच्छ्रपात्रं, रक्ताभृतं शीवनस्थिकाये छर्दितम्।
नवनीतपिण्डम् इव प्रवेधमानं, ससंशयं जीवितसावशेषम्॥457॥
तमपश्यत् देवमनुष्यपूजितः, दृष्ट्वा च तं व्याकरोत् भूरिप्रज्ञः।
''अयं कुमारः नगरस्य अस्य, अग्रकुलीनः भविष्यति भोगतः च''॥458॥
''कस्य व्रतं किं पुनः ब्रह्मचर्यं, कस्य सुचीर्णस्य अयं विपाकः।
एतादृशं व्यसनं प्राप्य, तां तादृशीम् प्रत्यनुभविष्यति ऋद्धिम्'' इति॥459॥
बुद्धप्रमुखस्य भिक्षुसङ्घस्य, पूजाम् अकार्षीत् जनतोऽदाराम्।
तत्रास्य चित्तस्य अभूत् अन्यथात्वं, वाचं अभाषिष्ट परुषाम् असभ्याम्॥460॥

हिन्दी- न किसी ने इसको रक्षा बाँधा, न कोई औषधि ही दी, न कोई सरसों या धूप ही इसकी रक्षा के लिये जलाया गया, न तो किसी ने इसकी जन्मकुण्डली ही बनायी, न किसी ने इस पर शुभनिमित्तक धान का खील ही छीटा॥456॥

रात्रिपर्यन्त श्मशान में ऐसी अच्छी एवं विपरीत परिस्थितयों में छोड़ा हुआ वह शिशु ऐसा लग रहा था मानो कोई काँपता हुआ घृतपिण्ड हो। और उसका जीवन भी संशयपूर्ण लग रहा था॥457॥

देवता एवं मनुष्यों से पूजित एवं भूरिप्रज्ञ बुद्ध ने उस शिशु को देखा तो उसके विषय में कहा कि यह शिशु इस नगर का ऐश्वर्यभोगी कोई उच्चकुलीन बनेगा॥458॥

इस शिशु ने किस व्रत का पालन किया तथा इसने कौन सी धर्मसाधना की थी? कि सत्परिणामस्वरूप इतने संकट में पड़ा हुआ भी एक दिन वैसा अनुपम भोग भागने की स्थिति में पहुँच जायगा?॥459॥

कभी पूर्व में जनता द्वारा बुद्धप्रमुख भिक्षुसंघ की श्रद्धापूर्वक विशेष(उदार) पूजा की गई। यह पूजा इसके चित्त में कुटिलता उत्पन्न कर गयी और यह बुद्ध के प्रति असभ्य वचन बोलने लगा॥460॥

सो तं वितक्कं पविनोदयित्वा, पीतिं पसादं पटिलद्धा पच्छा।
तथागतं जेतवने वसन्तं, यागुया उपट्ठासि सत्तरत्तं॥461॥
तस्स वतं तं पन ब्रह्मचरियं, तस्स सुचिण्णस्स अयं विपाको।
एतादिसं ब्यसनं पापुणित्वा, तं तादिसं पच्चनुभोस्सतिद्धिं॥462॥
ठत्वान सो वस्ससतं इधेव, सब्बेहि कामेहि समङ्गिभूतो।
कायस्स भेदा अभिसम्परायं, सहब्यतं गच्छति वासवस्साति॥463॥

कुमारपेतवत्थु पञ्चमं।

6. सेरिणीपेतवत्थु

''नग्गा दुब्बण्णरूपासि, किसा धमनिसन्थता।
उप्फासुलिके किसिके, का नु त्वं इध तिट्ठसी'' ति॥464॥
''अहं भदन्ते पेतीम्हि, दुग्गता यमलोकिका।
पापकम्मं करित्वान, पेतलोकं इतो गता'' ति॥465॥

संस्कृतच्छाया- सः तं वितर्कं प्रविनोद्य, प्रीतिं प्रसादं प्रतिलब्धा पश्चात्।
तथागतं जेत्रवने वसन्तं, यवागुदानेन उपतस्थौ सप्तरात्रम्॥461॥
तस्य व्रतं तत् पुनः ब्रह्मचर्यं, तस्य सुचीर्णस्य अयं विपाकः।
एतादृशं व्यसनं प्राप्य, तां तादृशीम् प्रत्यनुभविष्यति ऋद्धिम्'' इति॥462॥
स्थित्वा सः वर्षशतम् इहैव, सर्वैः कामैः समङ्गिभूतः।
कायस्य भेदात् अभिसम्परायं, सहवस्तुं गच्छति वासवस्य इति॥463॥
''नग्ना दुर्वर्णरूपा असि, कृशा धमनीसंस्थिता।
गुल्फपार्श्वास्थिनी कृशिके, का नु त्वम् इह तिष्ठसि'' इति॥464॥
''अहं भदन्त प्रेता अस्मि, दुर्गता यमलोकगा।
पापकर्म कृत्वा, प्रेतलोकम् इतो गता'' इति॥465॥

हिन्दी- परन्त कुछ समय पश्चात् ही उसनें अपने मन से दौर्मनस्य को दूर कर दिया और बुद्ध के प्रति अपने मन में श्रद्धा उत्पन्न की। इसके परिणामस्वरूप इसने जेतवन में रहते हुए सङ्घ सहित भगवान् बुद्ध की निरन्तर सात दिनों तक यागुदान द्वारा सेवा की॥461॥

उसका यही व्रत था एवं यही धर्मसाधना थी, उसी के सुपरिणामस्वरूप इतने संकट आ जाने पर भी उसकी कोई हानि नहीं हुई! ॥462॥

यहाँ वह सौ वर्षों तक समस्त कामभोगों का उपभोग करता हुआ, मृत्योपरान्त, स्वर्ग में इन्द्र के साथ वास करेगा॥463॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 95 पेतवत्थु....॥464॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 96 पेतवत्थु....॥465॥

''किं नु कायेन वाचाय, मनसा कुक्कटं कतं।
किस्स कम्मविपाकेन, पेतलोकं इतो गता'' ति॥466॥
''अनावटेसु तित्थेसु, विचिनिं अड्ढमासकं।
सन्तेसु देय्यधम्मेसु, दीपं नाकासिमत्तनो॥467॥
''नदिं उपेमि तसिता, रित्तका परिवत्तति।
छायं उपेमि उण्हेसु, आतपो परिवत्तति॥468॥
''अग्गिवण्णो च मे वातो, डहन्तो उपवायति।
एतञ्च भन्ते अरहामि, अञ्ञञ्च पापकं ततो॥469॥
''गन्त्वान हत्थिनिं पुरं, वज्जेसि मय्ह मातरं।
'धीता च ते मया दिट्ठा, दुग्गता यमलोकिका।
पापकम्मं करित्वान, पेतलोकं इतो गता'॥470॥

संस्कृतच्छाया- ''किं नु कायेन वाचा, मनसा कुकृतं कृतम्।
कस्य कर्मविपाकेन, प्रेतलोकम् इतो गता'' इति॥466॥
''अनावृतेषु तीर्थेषु, व्यचरम् अर्द्धमासकम्।
सत्सु देयधर्मेषु, द्वीपं नाकार्षमात्मनः॥467॥
''नदीम् उपैमि तृषिता, रिक्ता परिवर्त्तते।
छायाम् उपैमि ऊष्णेषु, आतपः परिवर्त्तते॥468॥
''अग्निवर्णः च मे वातः, दहन् उपवाति।
एतच्च भदन्त अर्हामि, अन्यच्च पापकं ततः॥469॥
''गत्वा हस्तिनीपुरं, वद मम मातरम्।
दुहिता च ते मया दृष्टा, दुर्गता यमलौकिकी।
पापकर्म कृत्वा, प्रेतलोकम् इतो गता'॥470॥

हिन्दी- पूर्ववत्.....गा० सं० 97 पेतवत्थु....॥466॥

मैनें बाधारहित तीर्थों में पन्द्रह दिन तक स्वतन्त्र रूप से विचरण किया; परन्तु अपने पास दानयोग्य वस्तुएँ होने पर भी मैनें कोई दान नहीं किया। इस प्रकार मैंने सद्धर्मपालन न कर अपने लिये कोई द्वीप नहीं बनाया॥467॥

परिणामस्वरूप मैं प्यास लगने पर जिस किसी नदी पर जाती हूँ तो वह जलरहित हो जाती है। गर्मी के दिनों में, छाया हेतु किसी छायायुक्त वृक्ष के नीचे जाती हूँ तो वह ताप में परिवर्तित हो जाती है॥468॥

हवा भी मुझे अग्नि के समान जलाती हुई बहती है। अतः, भदन्त! मुझसे अन्य पापकर्म भी हो जाता है॥469॥

आप हस्तिनीपुर जाकर मेरी माता को यह कह दें कि आपकी पुत्री को मैंने देखा है। वह प्रेतलोक में जाकर प्रेती बन गयी। इस लोक में पाप कर्म करने के कारण ही वह यहाँ से प्रेतलोक को पहुँची है॥470॥

''अत्थि मे एत्थ निक्खित्तं, अनक्खातञ्च तं मया।
चत्तारिसतसहस्सानि, पल्लङ्कस्स च हेट्ठतो॥471॥
''ततो मे दानं ददतु, तस्सा च होतु जीविका।
दानं दत्वा च मे माता, दक्खिणं अनुदिच्छतु।
तदाहं सुखिता हेस्सं, सब्बकामसमिद्धिनी'' ति॥472॥
''साधू'' ति सो पटिस्सुत्वा, गन्त्वान हत्थिनिं पुरं।
अवोच तस्सा मातरं –
'धीता च ते मया दिट्ठा, दुग्गता यमलोकिका।
पापकम्मं करित्वान, पेतलोकं इतो गता'॥473॥
''सा मं तत्थ समादपेसि, वज्जेसि मय्ह मातरं।
'धीता च ते मया दिट्ठा, दुग्गता यमलोकिका।
पापकम्मं करित्वान, पेतलोकं इतो गता'॥474॥

संस्कृतच्छाया-
''अस्ति मेऽत्र निक्षिप्तम्, अनाख्यातं च तन्मया।
चत्वारिंशत्सहस्राणि, पर्यङ्कस्य च अधस्तात्॥471॥
''ततः मे दानं ददातु, तस्याः च भवतु जीविका।
दानं दत्वा च मे माता, दक्षिणाम् अनुदिशतु।
तदाहं सुखिता भविष्यामि, सर्वकामसमृद्धा'' इति॥472॥
''साधु'' इति सः प्रतिश्रुत्य, गत्वा हस्तिनीपुरम्।
अवोचत् तस्याः मातरम् –
'दुहिता च ते मया दृष्टा, दुर्गता यमलौकिकी।
पापकर्म कृत्वा, प्रेतलोकम् इतो गता'॥473॥
''सा मां तत्र समादिशत्, वद मम मातरम्।
'दुहिता च ते मया दृष्टा, दुर्गता यमलौकिकी।
पापकर्म कृत्वा, प्रेतलोकम् इतो गता'॥474॥

हिन्दी- मेरे द्वारा गाड़ा हुआ धन यहाँ है, जो मैंने आपको नहीं बताया था। मैंने कभी लाख मुद्राएँ पलंग के नीचे गाड़ रखा था॥471॥

उसे आप मेरे लिये मेरी माता को दान कर दें, जिससे दान ग्रहण करने वालों को जीविका भी मिल जायगी। वह दान करने के बाद मेरी माता उसका संकल्प मेरे नाम कर दें, जिससे मैं सुखी हो जाऊँगी तथा मेरी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाएँगी॥472॥

ठीक है ऐसा कह कर वह हस्तिनीपुर गया और उसकी माता से उसने यह कहा— आपकी पुत्री को मैंने देखा है। वह प्रेतलोक में जाकर प्रेती बन गयी है। इस लोक में पाप कर्म करने के कारण ही वह यहाँ से प्रेतलोक को पहुँची है॥473॥

''अत्थि च मे एत्थ निक्खित्तं, अनक्खातञ्च तं मया।
चत्तारिसतसहस्सानि, पल्लङ्कस्स च हेट्ठतो॥475॥
''ततो मे दानं ददतु, तस्सा च होतु जीविका।
दानं दत्वा च मे माता, दक्खिणं अनुदिच्छतु।
'तदा सा सुखिता हेस्सं, सब्बकामसमिद्धिनी''' ति॥476॥
ततो हि सा दानमदा, तस्सा दक्खिणमादिसी।
पेती च सुखिता आसि, तस्सा चासि सुजीविकाति॥477॥

सेरिणीपेतवत्थु छट्ठं।

7. मिगलुद्दकपेतवत्थु

''नरनारिपुरक्खतो युवा, रजनीयेहि कामगुणेहि सोभसि।
दिवसं अनुभोसि कारणं, किमकासि पुरिमाय जातिया'' ति॥478॥

संस्कृतच्छाया- ''अस्ति च मे अत्र निक्षिप्तम्, अनाख्यातं च तत् मया।
चत्वारिंशत्सहस्राणि, पर्यङ्कस्य च अधस्ततः॥475॥
''ततः मे दानं ददातु, तस्याश्च भवतु जीविका।
दानं दत्वा च मे माता, दक्षिणाम् अनुदिशतु।
तदाहं सुखिता भविष्यामि, सर्वकामसमृद्धा'' इति॥476॥
ततः हि सा दानमदात्, तस्याः दक्षिणामादिशत्।
प्रेता च सुखिता आसीत्, तस्याश्चासीत् सुजीविका इति॥477॥
''नरनारीपुरस्कृतः युवा, रञ्जनीयैः कामगुणैः शोभसे।
दिवसे अनुभवसि कारणं, किमकार्षीः पूर्वस्मिन् जन्मनि'' इति॥478॥

हिन्दी- उसने मुझसे कहा है— कि आप हस्तिनीपुर जाकर मेरी माता को यह कह दें कि आपकी पुत्री को मैंने देखा है। वह प्रेतलोक में जाकर प्रेती बन गयी। इस लोक में पाप कर्म करने के कारण ही वह यहाँ से प्रेतलोक को पहुँची है॥474॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 471....॥475॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 472....॥476॥

तब उसकी माता ने वह धन दान कर दिया और उसका संकल्प उसके नाम कर दक्षिणा दिया। फलस्वरूप प्रेती को सुख प्राप्त हुआ तथा उसको सुजीविका भी प्राप्त हो गई॥477॥

आपने पूर्व जन्म में ऐसा कौन सा कर्म किया था? जिसके कारण नर-नारी से पुरस्कृत आप रागमय समस्त कामभोगों से शोभित युवा हैं, रात्रिपर्यन्त सुखमय जीवन बिताने के उपरान्त भी दिन में आप कष्ट भोगते हैं—॥478॥

''अहं राजगहे रम्मे, रमणीये गिरिब्बजे।
मिगलुद्धो पुरे आसिं, लोहितपाणि दारुणो॥479॥
''अविरोधकरेसु पाणिसु, पुथुसत्तेसु पदुट्ठमानसो।
विचरिं अतिदारुणो सदा, परहिंसाय रतो असञ्ञतो॥480॥
''तस्स मे सहायो सुहृदयो, सद्धो आसि उपासको।
सोपि मं अनुकम्पन्तो, निवारेसि पुनप्पुनं॥481॥
'''माकासि पापकं कम्मं, मा तात दुग्गतिं अगा।
सचे इच्छसि पेच्च सुखं, विरम पाणवधा असंयमा'॥482॥
''तस्साहं वचनं सुत्वा, सुखकामस्स हितानुकम्पिनो।
नाकासिं सकलानुसासनिं, चिरपापाभिरतो अबुद्धिमा॥483॥

संस्कृतच्छाया- ''अहं राजगृहे रम्ये, रमणीये गिरिव्रजे।
मृगलुब्धः पुरा आसम्, लोहितपाणिः दारुणः॥479॥
''अविरोधकरेषु प्राणिषु, पृथक्सत्वेषु प्रदुष्टमानसः।
व्यचरम् अतिदारुणः सदा, परहिंसायां रतोऽसंयतः॥480॥
''तस्य मे सहायः सुहृदयः, सश्रद्ध आसीद् उपासकः।
सोऽपि माम् अनुकम्पमानः, न्यवारीत् पुनः पुनः॥481॥
'''मा कार्षीः पापकं कर्म, मा तात दुर्गतिं गाः।
स चेद् इच्छसि प्रेत्य सुखं, विरम प्राणिवधाद् असंयमाद्'॥482॥
''तस्याहं वचनं श्रुत्वा, सुखकामस्य हितानुकम्पिनः।
नाकार्षं सकलानुशासनम्, चिरपापाभिरतः अबुद्धिमान्॥483॥

हिन्दी- मैं पूर्वजन्म में राजगृह के रमणीय गिरिव्रज में अपने रक्तरंजित हाथों से व्याघ्रकर्म में निरन्तर लगा रहता था॥479॥

वहाँ मैं विरोध न कर सकने वाले प्राणियों पर प्रदुष्टमन से सदा क्रूरतापूर्ण व्यवहार करता हुआ दूसरों की हत्या में रत हो असंयत जीवन बिता रहा था॥480॥

परन्तु मेरा एक सुहृद सहायक था, वह श्रद्धालु उपासक था। मुझ पर अनुकम्पा करते हुए उसने मुझे हिंसाकर्म से दूर रहने के लिये बार-बार परामर्श दिया॥481॥

उसने मुझसे कहा— तुम पापकर्म न करो! तुम स्वयं के लिये नरकगामी मत बनो। यदि मृत्योपरान्त सुख चाहते हो तो इस प्राणिवध कर्म तथा असंयत जीवन त्याग दो॥482॥

उस हितैषी के ये वचन सुनकर भी मैं दुर्बुद्धि उसके परामर्श को न मानकर पापकर्म में रत रहा॥483॥

''सो मं पुन भूरिसुमेधसो, अनुकम्पाय संयमे निवेसयि।
'सचे दिवा हनसि पाणिनो, अथ ते रत्तिं भवतु संयमो'॥484॥
''स्वाहं दिवा हनित्वा पाणिनो, विरतो रत्तिमहोसि सञ्ञतो।
रत्ताहं परिचारेमि, दिवा खज्जामि दुग्गतो॥485॥
''तस्स कम्मस्स कुसलस्स, अनुभोमि रत्तिं अमानुसिं।
दिवा पटिहताव कुक्कुरा, उपधावन्ति समन्ता खादितुं॥486॥
''ये च ते सततानुयोगिनो, धुवं पयुत्ता सुगतस्स सासने।
मञ्ञामि ते अमतमेव केवलं, अधिगच्छन्ति पदं असङ्खतं'' ति॥487॥

मिगलुद्दकपेतवत्थु सत्तमं।

8. दुतियमिगलुद्दकपेतवत्थु

''कूटागारे च पासादे, पल्लङ्के गोनकत्थते।
पञ्चङ्गिकेन तुरियेन, रमसि सुप्पवादिते॥488॥

संस्कृतच्छाया- ''सः मां पुनः भूरिसुमेधाः, अनुकम्पया संयमे न्यवेशयत्।
'स चेद् दिवा हंसि प्राणिनः, अथ ते रात्रौ भवतु संयमः'॥484॥
''सोऽहं दिवा हत्वा प्राणिनः, विरतः रात्रौ अभूवम् संयतः।
रात्रौ अहं परिचरामि, दिवा खञ्जामि दुर्गतः॥485॥
''तस्य कर्मणः कुशलस्य, अनुभवामि रात्रौ अमानुषम्।
दिवा प्रतिहत इव कुक्कुराः, उपधावन्ति समन्तात् खादितुम्॥486॥
''ये च ते सततानुयोगिनः, ध्रुवं प्रयुक्ताः सुगतस्य शासने।
मन्ये ते अमृतम् एव केवलम्, अधिगच्छन्ति पदम् असंस्कृतम्'' इति॥487॥
''कूटागारे च प्रासादे, पर्यङ्के गोणिकस्थिते।
पंचाङ्गिकेन तुर्येण, रमसे सुप्रवादिते॥488॥

हिन्दी- परन्तु मेरे उस बुद्धिमान् साथी ने मुझको पुनः चेताया और कहा कि यदि तुम दिन में यह हिंसाकर्म नहीं छोड़ सकते तो केवल रात्रि में ही इस हिंसा कर्म के त्याग की प्रतिज्ञा कर लो॥484॥

इसलिए मैं दिन में प्राणियों की हत्या करके रात को प्राणिवध को त्याग कर रहते हुए संयत जीवन बिताने लगा। उसी के फलस्वरूप मैं रात्रि में सुखमय जीवन बिताता हूँ किन्तु दिन में दुर्गति को भोग रहा हूँ॥485॥

उस कुशल कर्म के प्रभावस्वरूप यहाँ मैं दिव्य सुख का अनुभव कर रहा हूँ; परन्तु दिन में चोट खाए कुत्तों की तरह अन्य क्रूर कुत्तों से चारों ओर से खाने के लिए काटा जाता हूँ॥486॥

जो साधक सतत बुद्ध-देशित धर्म में रत रहते हैं, मेरी ऐसी धारणा है कि वे उस असंस्कृत अमृत पद(निर्वाण) को अवश्य ही अधिगत कर लेंगे॥487॥

विशाल शिखरयुक्त प्रासाद में ऊनी वस्त्रों से ढके पलङ्ग पर विराजमान आप रात्रिपर्यन्त स्वर एवं तालबद्ध बजाये गये पञ्चाङ्गिक वाद्ययन्त्रों से अपना मनोरञ्जन करते रहते हैं॥488॥

''ततो रत्या विवसाने, सूरियुग्गमनं पति।
अपविद्धो सुसानस्मिं, बहुदुक्खं निगच्छसि॥489॥
''किं नु कायेन वाचाय, मनसा दुक्कटं कतं।
किस्स कम्मविपाकेन, इदं दुक्खं निगच्छसि''॥490॥
''अहं राजगहे रम्मे, रमणीये गिरिब्बजे।
मिगलुद्धो पुरे आसिं, लुद्धो चासिमसञ्ञतो॥491॥
''तस्स मे सहायो सुहृदयो, सद्धो आसि उपासको।
तस्स कुलुपको भिक्खु, आसि गोतमसावको।
सोपि मं अनुकम्पन्तो, निवारेसि पुनप्पुनं॥492॥
'''माकासि पापकं कम्मं, मा तात दुग्गतिं अगा।
सचे इच्छसि पेच्च सुखं, विरम पाणवधा असंयमा'॥493॥

संस्कृतच्छाया- ''ततः रात्र्या अवसाने, सूर्योद्गमनं प्रति।
अपविद्धः श्मशाने, बहुदुःखम् अधिगच्छसि॥489॥
''किं नु कायेन वाचा, मनसा दुष्कृतं कृतम्।
कस्य कर्मविपाकेन, इदं दुःखम् अधिगच्छसि'' इति॥490॥
''अहं राजगृहे रम्ये, रमणीये गिरिव्रजे।
मृगलुब्धः पुरा आसम्, लुब्धश्च आसमसंयतः॥491॥
''तस्य मे सहायः सुहृदयः, सश्रद्ध आसीत् उपासकः।
तस्य कुलोपकः भिक्षुः, आसीद् गोतमश्रावकः।
सोऽपि मामनुकम्पमानः, न्यवारयत् पुनः पुनः॥492॥
'''मा कार्षीः पापकं कर्म, मा तात दुर्गतिं गाः।
स चेद् इच्छसि प्रेत्य सुखं, विरम प्राणिवधाद् असंयमात्'॥493॥

हिन्दी- परन्तु रात्रि के ढलते ही सूर्योदय के साथ ही, यहाँ से दूर श्मशान में बहुत दुःख भोगते हैं॥489॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 97....॥490॥

मैं पूर्वजन्म में राजगृह के रमणीय गिरिव्रज में एक व्याघ्र था और सदा असंयत जीवन व्यतीत करता था॥491॥

परन्तु मेरा एक सुहृद सहायक था, वह श्रद्धालु उपासक था। उसके यहाँ आकर भिक्षा करने वाला एक बुद्धश्रावक(भिक्षु) था। मुझ पर अनुकम्पा करते हुए उसने मुझे हिंसाकर्म से दूर रखने के लिये बार-बार परामर्श दिया॥492॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 482....॥493॥

''तस्साहं वचनं सुत्वा, सुखकामस्स हितानुकम्पिनो।
नाकासिं सकलानुसासनिं, चिरपापाभिरतो अबुद्धिमा॥494॥
''सो मं पुन भूरिसुमेधसो, अनुकम्पाय संयमे निवेसयि।
'सचे दिवा हनसि पाणिनो, अथ ते रत्तिं भवतु संयमो'॥495॥
''स्वाहं दिवा हनित्वा पाणिनो, विरतो रत्तिमहोसि सञ्ञतो।
रत्ताहं परिचारेमि, दिवा खञ्जामि दुग्गतो॥496॥
''तस्स कम्मस्स कुसलस्स, अनुभोमि रत्तिं अमानुसिं।
दिवा पटिहताव कुक्कुरा, उपधावन्ति समन्ता खादितुं॥497॥
''ये च ते सततानुयोगिनो, धुवं पयुत्ता सुगतस्स सासने।
मञ्ञामि ते अमतमेव केवलं, अधिगच्छन्ति पदं असङ्खतं'' ति॥498॥

दुतियमिगलुद्दकपेतवत्थु अट्ठमं।

9. कूटविनिच्छयिकपेतवत्थु

''माली किरिटी कायूरी, गत्ता ते चन्दनुस्सदा।
पसन्नमुखवण्णोसि, सूरियवण्णोव सोभसि॥499॥

संस्कृतच्छाया-
''तस्याहं वचनं श्रुत्वा, सुखकामस्य हितानुकम्पिनः।
नाकार्षं सकलानुशासनम्, चिरपापाभिरतोऽबुद्धिमान्॥494॥
''सः मां पुनः भूरि सुमेधाः, अनुकम्पया संयमे न्यवेशयत्।
'स चेद् दिवा हंसि प्राणिनः, अथ ते रात्रौ भवतु संयमः'॥495॥
''सोऽहं दिवा हत्वा प्राणिनः, विरतः रात्रौ अभूवम् संयतः।
रात्रौ अहं परिचरामि, दिवा खञ्जामि दुर्गतः॥496॥
''तस्य कर्मणः कुशलस्य, अनुभवामि रात्रौ अमानुषम्।
दिवा प्रतिहत इव कुक्कुराः, उपधावन्ति समन्तात् खादितुम्॥497॥
''ये च ते सततानुयोगिनः, ध्रुवं प्रयुक्ताः सुगतस्य शासने।
मन्ये ते अमृतम् एव केवलम्, अधिगच्छन्ति पदम् असंस्कृतम्'' इति॥498॥
''माली किरीटी केयूरी, गात्रं ते चन्दनश्रितम्।
प्रसन्नमुखवर्णोऽसि, सूर्यवर्ण इव शोभसे॥499॥

हिन्दी-
पूर्ववत्.....गा० सं० 483....॥494॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 484....॥495॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 485....॥496॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 486....॥497॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 487....॥498॥

''अमानुसा पारिसज्जा, ये तेमे परिचारका।
दस कञ्ञासहस्सानि, या तेमा परिचारिका।
ता कम्बुकायूरधरा, कञ्चनावेळभूसिता॥500॥
''महानुभावोसि तुवं, लोमहंसनरूपवा।
पिट्ठिमंसानि अत्तनो, सामं उक्कच्च खादसि॥501॥
''किं नु कायेन वाचाय, मनसा दुक्कुटं कतं।
किस्स कम्मविपाकेन, पिट्ठिमंसानि अत्तनो।
सामं उक्कच्च खादसी'' ति॥502॥
''अत्तनोहं अनत्थाय, जीवलोके अचारिसं।
पेसुञ्ञमुसावादेन, निकतिवञ्चनाय च॥503॥

संस्कृतच्छाया- ''अमानुषाः पारिषदाः, ये ते इमे परिचारकाः।
दश कन्यासहस्राणि, या ते इमाः परिचारिकाः।
ताः कम्बुकेयूरधराः, काञ्चनवलयभूषिताः॥500॥
''महानुभावोऽसि त्वं, लोमहर्षणरूपवान्।
पृष्ठमांसानि आत्मनः, स्वयम् उत्कृत्य खादसि॥501॥
''किं नु कायेन वाचा, मनसा दुष्कृतं कृतम्।
कस्य कर्मविपाकेन, पृष्ठमांसानि आत्मनः।
स्वयम् उत्कृत्य खादसि॥'' इति॥502॥
''आत्मनाहम् अनर्थाय, जीवलोके अचारिषम्।
पैशुन्यमृषावादेन, निष्कृतिवञ्चनया च॥503॥

हिन्दी- आप माला, किरीट(राजमुकुट) एवं केयूर(बाजूबन्द) धारण किये हुए हैं, आपके सम्पूर्ण गात्र(शरीर) पर चन्दनसार लिप्त है, आप प्रसन्नमुख एवं प्रसन्नवर्ण हैं, सूर्य के समान शोभित हो रहे हैं॥499॥

आपकी परिषद् के सभी सदस्य या आपके ये समस्त परिचारक भी गोल केयूर तथा सुनहरी लम्बी पुष्पमालाएँ धारण किए हुए हैं॥500॥

आप महाप्रतापवान् हैं, आप का रूप लोमहर्षक है। आप अपनी पीठ के मांस को स्वयं ही नोच नोच कर खा रहे हैं॥501॥

आपने काय, वचन एवं मन से ऐसा कौन सा दुष्कृत्य किया था कि जिसका परिणाम यह हुआ कि आप स्वयं ही अपने पीठ का मांस नोच-नोच कर खा रहे हैं॥502॥

मैंने जीवलोक में पैशुन्य, असत्यभाषण एवं कृतघ्नता आदि अनर्थक कार्य के सहारे अपना जीवन बिताया॥503॥

''तत्थाहं परिसं गन्त्वा, सच्चकाले उपट्ठिते।
अत्थं धम्मं निराकत्वा, अधम्ममनुवत्तिसं॥504॥
''एवं सो खादतत्तानं, यो होति पिट्ठिमंसिको।
यथाहं अज्ज खादामि, पिट्ठिमंसानि अत्तनो॥505॥
''तयिदं तया नारद सामं दिट्ठं, अनुकम्पका ये कुसला वदेय्युं।
मा पेसुणं मा च मुसा अभाणि, मा खोसि पिट्ठिमंसिको तुवं'' ति॥506॥

कूटविनिच्छयिकपेतवत्थु नवमं।

10. धातुविवण्णपेतवत्थु

''अन्तलिक्खस्मिं तिट्ठन्तो, दुग्गन्धो पूति वायसि।
मुखञ्च ते किमयो पूतिगन्धं, खादन्ति किं कम्ममकासि पुब्बे॥507॥
''ततो सत्थं गहेत्वान, ओक्कन्तन्ति पुनप्पुनं।
खारेन परिप्फोसित्वा, ओक्कन्तन्ति पुनप्पुनं॥508॥

संस्कृतच्छाया- ''तत्र अहं परिषदं गत्वा, सत्यकाले उपस्थिते।
अर्थं धर्मं निराकृत्य, अधर्ममन्ववर्त्तयम्॥504॥
''एवं सः अखादत् आत्मनः, यद् भवति पृष्ठमांसम्।
यथाहं अद्य खादामि, पृष्ठमांसानि आत्मनः॥505॥
''तदिदं त्वया नारद स्वयं दृष्टम्, अनुकम्पकाः ये कुशलाः वदेयुः।
मा पैशुन्यं मा च मृषा भणः, मा खलु असि पृष्ठमांसिकः त्वम्'' इति॥506॥
''अन्तरीक्षे तिष्ठन्ः, दुर्गन्धं पूतिं वापयसि।
मुखञ्च ते कृमयः पूतिगन्धं, खादन्ति किं कर्माकार्षीः पूर्वम्॥507॥
''ततः शस्त्रं गृहीत्वा, उत्कृन्तन्ति पुनः पुनः।
क्षारेण परिस्पृश्य, उत्कृन्तन्ति पुनः पुनः॥508॥

हिन्दी- वहाँ मैं परिषद् में जाकर, सत्य बात कहने के समय पर राग, अर्थवत धर्म का निराकरण कर अधर्मयुक्त निर्णय करता रहा॥504॥

उसी प्रकार वह स्वयं अपनी ही पीठ का मांस नोच कर खाता रहा; जैसे कि आज मैं अपनी पीठ का मांस खा रहा हूँ॥505॥

इसलिए हे नारद! तुम स्वयं ही देख रहे हो। इसी लिये अनुकम्पकजन सत्य ही कहते हैं कि कभी भी पैशुन्य, असत्यभाषण आदि का आश्रय नहीं लो जिससे तुमको अपनी ही पीठ का मांस खाना पड़े॥506॥

अन्तरिक्ष में खड़े तुम्हारे शरीर से सड़ान्ध मांस की दुर्गन्ध आ रही है। तुम्हारे मुख में पड़े कीड़े वहाँ का दुर्गन्धयुक्त पदार्थ खा रहे हैं। तुमने पूर्वजन्म में ऐसा कौन सा कर्म किया था कि आज तुम्हारी ऐसी दुर्दशा है?॥507॥

''किं नु कायेन वाचाय, मनसा दुक्कटं कतं।
किस्स कम्मविपाकेन, इदं दुक्खं निगच्छसी'' ति॥509॥
''अहं राजगहे रम्मे, रमणीये गिरिब्बजे।
इस्सरो धनधञ्ञस्स, सुपहूतस्स मारिस॥510॥
''तस्सायं मे भरिया च, धीता च सुणिसा च मे।
ता मालं उप्पलञ्चापि, पच्चग्घञ्च विलेपनं।
थूपं हरन्तियो वारेसिं, तं पापं पकतं मया॥511॥
''छळासीतिसहस्सानि, मयं पच्चत्तवेदना।
थूपपूजं विवण्णेत्वा, पच्चाम निरये भुसं॥512॥
''ये च खो थूपपूजाय, वत्तन्ते अरहतो महे।
आदीनवं पकासेन्ति, विवेचयेथ ने ततो॥513॥

संस्कृतच्छाया- ''किं नु कायेन वचसा, मनसा दुष्कृतं कृतम्।
कस्य कर्मविपाकेन, इदं दुःखम् अधिगच्छसि'' इति॥509॥
''अहं राजगृहे रम्ये, रमणीये गिरिव्रजे।
ईश्वरः धनधान्यस्य, सुप्रभूतस्य मार्ष॥510॥
''तस्य इयम् मे भार्या च, दुहिता च स्नुषा च मे।
ताः मालाम् उत्पलं च अपि, प्रत्यर्घञ्च विलेपनम्।
स्तूपम् आहरत्यः अवारयम्, तत् पापं प्रकृतं मया॥511॥
''षडशीतिसहस्राणि , वयं प्रत्यात्मवेदनाः।
स्तूपपूजां विवर्ण्य, पचामः निरये भृशम्॥512॥
''ये च खलु स्तूपपूजायां, वर्त्तन्ते अर्हतो महे।
आदीनवं प्रकाशयन्ति, विवेचयन्ति तान् ततः॥513॥

हिन्दी- वहाँ कुछ लोग शस्त्र लेकर तुम्हारा मांस बार-बार काट रहे हैं तथा उस कटे हुए स्थान पर बार बार नमक(क्षार) छिड़क कर रगड़ रहे हैं?॥508॥

पूर्ववत्....गा० सं० 97...यह दुःख भोग रहे हो?॥509॥

हे मार्ष! मैं पूर्वजन्म में रम्य राजगृह के रमणीय गिरिव्रज में प्रभूत धन-धान्य का स्वामी था॥510॥

मुझ धनपति की पत्नी, पुत्री एवं पुत्रवधू जब भी किसी स्तूप पर माला, फूल और श्रेष्ठ गन्धद्रव्य अर्पण करने जाती थीं तो मैं उनको वैसा करने को मना करता था॥511॥

मैंने स्तूपपूजा के निषेध के फलस्वरूप 86000 बार उपर्युक्त वेदनाएँ भोगी हैं और आज भी मैं स्तूपपूजा के निषेधवश यह घोर नरकदुःख भोग रहा हूँ॥512॥

और जो नारकीय जीव किसी अर्हत् के स्तूप की पूजा का निषेध करते हैं, तथा उसमें दोष बताते हैं, वे भी मेरे ही समान ऐसे ही घोर नरक में गिरेंगे॥513॥

''इमा च पस्स आयन्तियो, मालधारी अलङ्कता।
मालाविपाकंनुभोन्तियो, समिद्धा च ता यसस्सिनियो॥514॥
''तञ्च दिस्वान अच्छेरं, अब्भुतं लोमहंसनं।
नमो करोन्ति सप्पञ्ञा, वन्दन्ति तं महामुनिं॥515॥
''सोहं नून इतो गन्त्वा, योनिं लद्धान मानुसिं।
थूपपूजं करिस्सामि, अप्पमत्तो पुनप्पुनं'' ति॥516॥

धातुविवण्णपेतवत्थु दसमं।
चूळवग्गो ततियो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं –

अभिञ्ज्मानो कुण्डियो, रथकारी भुसेन च।
कुमारो गणिका चेव, द्वे लुद्दा पिट्ठिपूजना।
वग्गो तेन पवुच्चतीति॥

संस्कृतच्छाया- ''इमाश्च पश्य आगच्छतीः, मालाधारी अलङ्कृताः।
मालाविपाकम् अनुभवन्ति, समृद्धाश्च ताः यशस्विन्यः॥514॥
''तञ्च दृष्ट्वा आश्चर्यम्, अद्भुतं लोमहर्षणम्।
नमस्कुर्वन्ति सम्प्राज्ञाः, वन्दन्ति तत् महामुनिम्॥515॥
''सोऽहं नूनम् इतो गत्वा, योनिं लब्ध्वा मानुषीम्।
स्तूपपूजां करिष्यामि, अप्रमत्तः पुनः पुनः'' इति॥516॥

तस्योद्दानम् –

अभिद्यमानः कौण्डिन्यः, रथकारी भृशेन च।
कुमारः गणिका चैव, द्वौ लुब्धौ पृष्ठिपूजनात्।
वर्गः तेन प्रोच्यते इति॥

हिन्दी- और तुम इधर आती हुई इन मालाधारी एवं अलंकृत स्त्रियों को देखो जो पूर्वकृत माल्यार्पण कर्म के पुण्य प्रभावस्वरूप आज भी समृद्धशालिनी एवं यशस्वी बनी हुई हैं॥514॥

इस आश्चर्यमय, अद्भुत एवं लोमहर्षक दृश्य को देखकर सभी प्रज्ञावान् उन महामुनि की बारम्बार वन्दना करते हैं॥515॥

अतः मैं भी यहाँ से मुक्त हो कर जब पुनः मानव योनि प्राप्त करूँगा तो पूर्ण सजगता से अर्हत् की स्तूपपूजा में अपना मन लगाऊँगा॥516॥

इस वर्ग के प्रेतकथाओं की सूची-

अभिद्यमान प्रेत, 2. साणवासि (कुण्डिय) स्थविर प्रेत, 3. रथकारप्रेती, 4. बुसखादक प्रेत, 5. कुमार प्रेत, 6. स्वैरिणी प्रेती, 7. प्रथम मृगलुब्धक प्रेत, 8. द्वितीय मृगलुब्धक प्रेत, 9. कूटविनिश्चयिक प्रेत एवं 10. धातुविवर्ण प्रेत— ये दश प्रेतकथाएँ इस वर्ग में कही गयी हैं।

****

4. महावग्गो

1. अम्बसक्करपेतवत्थु

वेसाली नाम नगरत्थि वज्जीनं, तत्थ अहु लिच्छवि अम्बसक्करो।
दिस्वान पेतं नगरस्स बाहिरं, तत्थेव पुच्छित्थ तं कारणत्थिको॥517॥
''सेय्या निसज्जा नयिमस्स अत्थि, अभिक्कमो नत्थि पटिक्कमो च।
असितपीतखायितवत्थभोगा, परिचारिका सापि इमस्स नत्थि॥518॥
''ये ञातका दिट्ठसुता सुहज्जा, अनुकम्पका यस्स अहेसुं पुब्बे।
दट्ठुम्पि ते दानि न तं लभन्ति, विराजितत्तो हि जनेन तेन॥519॥
''न ओग्गतत्तस्स भवन्ति मित्ता, जहन्ति मित्ता विकलं विदित्वा।
अत्थञ्च दिस्वा परिवारयन्ति, बहू मित्ता उग्गतत्तस्स होन्ति॥520॥
''निहीनत्तो सब्बभोगेहि किच्छो, सम्मक्खितो सम्परिभिन्नगत्तो।
उस्सावबिन्दूव पलिम्पमानो, अज्ज सुवे जीवितस्सूपरोधो॥521॥

संस्कृतच्छाया- वैशाली नाम्नी नगर्यस्ति वज्जीनाम्, तत्र अभूत् लिच्छविः आम्रशर्करः।
दृष्ट्वा प्रेतं नगराद् बहिः, तत्रैव अपृच्छत् तं कारणमस्ति किम्॥517॥
''शय्या निषद्या न अस्य अस्ति, अभिक्रमः नास्ति प्रतिक्रमश्च।
अशितपीतखादितवस्त्रभोगाः, परिचारिका सा अपि अस्य नास्ति॥518॥
''ये ज्ञातिकाः दृष्टश्रुताः सुहृद्याः, अनुकम्पकाः यस्य अभूवन् पूर्वम्।
द्रष्टुमपि ते इदानीं न ते लभ्यन्ते, विराधितत्वेन हि जनेन तेन॥519॥
''न अधोगतस्य भवन्ति मित्राणि, जहति मित्राणि विकलं विदित्वा।
अर्थं च दृष्ट्वा परिवारयन्ति, बहूनि मित्राणि उद्गतस्य भवन्ति॥520॥
निहीनात्मा सर्वभोगैः कृच्छ्रः, सम्मक्षितः सम्परिभिन्नगात्रः।
ऊषरे अव् बिन्दुरिव प्रलिम्प्यमानः, अद्य स्वः जीवितस्योपरोधः॥521॥

हिन्दी- वज्जियों की वैशाली नामक नगरी में एक आम्रशर्कर नामक लिच्छवि हुआ था। उसने नगर के बाहर किसी प्रेत को देख कर, उससे उसकी इस अवस्था का कारण पूछा॥517॥

न यह सोया हुआ है, न यह बैठा हुआ है, न यह आगे चल रहा है, न पीछे चल रहा है, इसका खाना, पीना, वस्त्र एवं भोग या परिचारिका आदि कुछ भी नहीं दिख रहा है॥518॥

पूर्व में कभी जो इसके सम्बन्धी या मित्र थे, या जो इसके अनुकम्पक थे इस समय उनमें से कोई भी दिखायी नहीं देता। ऐसा प्रतीत होता है मानो उन्होनें भी इसका परित्याग कर दिया है॥519॥

अवनति-प्राप्त जनों का कोई भी मित्र नहीं होता। उसकी यह दुर्दशा देखकर मित्रगण भी उसका साथ छोड़ जाते हैं। किन्तु उसके सम्पन्नता-काल में स्वार्थवश वे पुनः उसको घेर लेते हैं; क्योंकि उन्नत व्यक्ति के बहुत-से मित्र होते है॥520॥

''एतादिसं उत्तमकिच्छप्पत्तं, उत्तासितं पुचिमन्दस्स सूले।
'अथ त्वं केन वण्णेन वदेसि यक्ख, जीव भो जीवितमेव सेय्यो''' ति॥522॥
''सालोहितो एस अहोसि मय्हं, अहं सरामि पुरिमाय जातिया।
दिस्वा च मे कारुञ्ञमहोसि राज, मा पापधम्मो निरयं पतायं॥523॥
''इतो चुतो लिच्छवि एस पोसो, सत्तुस्सदं निरयं घोररूपं।
उपपज्जति दुक्कटकम्मकारी, महाभितापं कटुकं भयानकं॥524॥
''अनेकभागेन गुणेन सेय्यो, अयमेव सूलो निरयेन तेन।
एकन्तदुक्खं कटुकं भयानकं, एकन्ततिब्बं निरयं पतायं॥525॥
''इदञ्च सुत्वा वचनं ममेसो, दुक्खूपनीतो विजहेय्य पाणं।
तस्मा अहं सन्तिके न भणामि, मा मे कतो जीवितस्सूपरोधो''॥526॥

संस्कृतच्छाया- ''एतादृशम् उत्तमकृच्छ्रप्राप्तम्, उत्रासितं पुचिमन्दस्य शूले।
'अथ त्वं केन वर्णेन वदसि यक्ष, जीव भोः जीवितमेव श्रेयः'''इति॥522॥
''सलोहित एषः अभूत् मह्यम्, अहं स्मरामि पूर्वस्याः जात्याः।
दृष्ट्वा च मे कारुण्यम् अभूत् राजन्, मा पापधर्मा निरये पतेदयम्॥523॥
''इतश्च्युतः लिच्छवि एषः पुंमान्, सप्तोत्सदं निरयं घोररूपम्।
उत्पद्यते दुष्कृतकर्मकारी, महाभितापं कटुकं भयानकम्॥524॥
''अनेकभागेन गुणेन श्रेयः, अयमेव शूलः निरयेन तेन।
एकान्तदुःखं कटुकं भयानकम्, एकन्ततीव्रं निरये पतेदयम्॥525॥
''इदं च श्रुत्वा वचनं ममैषः, दुःखोपनीतः विजह्यात् प्राणान्।
तस्माद् अहं अन्तिके न भणामि, मा मे कृतः जीवितस्योपरोधः''॥526॥

हिन्दी- अवनति प्राप्त व्यक्ति, जिसके सभी भोग क्षीण हो चुके हों, जो वित्त-विहीन हो चुका हो, जिसका शरीर भी ऊषर में जल बिन्दु के समान आज खत्म हो या कल'— ऐसा सन्देह उत्पन्न हो गया हो॥521॥

यह उत्तम भोग से रहित पुरुष, जो जीवन की प्रत्येक दशा से उत्त्रस्त (दुःखी)हो चुका हो, और नीम के वृक्ष के नीचे शूली पर लटकाया गया हो, इसलिए हे यक्ष! तुम यह क्यों बोल रहे हो— जीवित रहो। जीवन ही श्रेष्ठ है॥522॥

राजन्! पूर्व जन्म में यह मेरा रक्तसम्बन्धी था, मैं इसे भलीभाँति जानता हूँ। इसको देख कर मुझको इस पर करुणा आ गयी कि कहीं इस पापधर्मी का नरक पात न हो जाय॥523॥

यहाँ से चयुत होकर यह दुष्कर्मी लिच्छवि पुरुष इस सात पुरुष-माप जितने गहरे घोर नरक में उत्पन्न होकर दुःख का महाताप भोगेगा॥524॥

इसकी अपेक्षा इसका इस शूली पर लटके रहना ही ज्यादा श्रेयस्कर है। वह भयानक नरकपात तो इसके लिये एकान्ततः कटु एवं दुःखमय होगा॥525॥

''अञ्ञातो एसो पुरिसस्स अत्थो, अञ्ञम्पि इच्छामसे पुच्छितुं तुवं।
ओकासकम्मं सचे नो करोसि, पुच्छाम तं नो न च कुज्झितब्बं'' ति॥527॥
''अद्धा पटिञ्ञा मे तदा अहु, नाचिक्खना अप्पसन्नस्स होति।
अकामा सद्धेय्यवचोति कत्वा, पुच्छस्सु मं कामं यथा विसय्हं'' ति॥528॥
''यं किञ्चहं चक्खुना पस्सिस्सामि, सब्बम्पि ताहं अभिसद्दहेय्यं।
दिस्वाव तं नोपि चे सद्दहेय्यं, करेय्यासि मे यक्ख नियस्सकम्मं'' ति॥529॥
''सच्चप्पटिञ्ञा तव मेसा होतु, सुत्वान धम्मं लभ सुप्पसादं।
अञ्ञत्थिको नो च पदुट्ठचित्तो, यं ते सुतं असुतञ्चापि धम्मं।
सब्बम्पि अक्खिस्सं यथा पजानन्ति॥530॥

संस्कृतच्छाया- ''आज्ञात एषः पुरुषस्य अर्थः, अन्यदपि इच्छामः प्रष्टुं त्वाम्।
अवकाशकर्म स चेद् न करोषि, पृच्छामः तत् न च क्रोधितव्यम्'' इति॥527॥
''अद्धा प्रतिज्ञामे तदाभूत्, न आचिख्यासा अप्रसन्नस्य भवति।
अकामः श्रद्धेयवच इति कृत्वा, पृच्छस्व मां कामं यथा विसह्यम्'' इति॥528॥
''यत् किञ्चनाहं चक्षुषा पश्यामि, सर्वमपि त्वामहम् अभिश्रद्दधेयम्।
दृष्ट्वा च तत् नो अपि चेत् श्रद्दधेयं, करिष्यसि मे यक्ष निजस्य कर्म" इति॥529॥
''सत्या प्रतिज्ञा तव मे एषा भवतु, श्रुत्वा नु धर्मं लभस्व सुप्रसादम्।
अन्यार्थिकः नो च प्रदुष्टचित्तः, यं ते श्रुतम् अश्रुतं च अपि धर्मम्।
सर्वमपि आख्यास्ये यथा प्रजानन्ति॥530॥

हिन्दी- मेरे यह वचन सुनकर दुःखी एवं भयत्रस्त होकर वह अपने प्राण न त्याग दे— इसलिये मैं यह सब उसके पास नहीं कहता कि मुझे जीवहत्या का दोष न लग जाय॥526॥

तुमने इस मनुष्य होने का अर्थ समझ लिया है, इसलिए हम तुमसे कुछ अन्य बातें भी पूछना चाहते हैं, यदि तुम हमें पूछने की आज्ञा दो और हमारे प्रश्न से क्रुद्ध न हो॥527॥

अवश्य ही मुझे यह ज्ञात है कि क्रुद्ध होना, पूछी हुई बात का उत्तर नहीं देना; अप्रसन्नता की बात है क्यों कि उसको हितकर बात उचित एवं प्रिय नहीं लगती। तो भी आप मुझसे पूछिये, मैं यथाशक्ति उसका उत्तर दूँगा॥528॥

मैं जो कुछ भी अपने नेत्रों से देखूँगा उन सब को मुझे यथार्थ मानना पड़ेगा। आप उसको देख कर यथार्थ मानें या न मानें, हे यक्ष! मेरे प्रश्न का उत्तर अवश्य दें॥529॥

चलो, आपको मेरी यह स्पष्ट प्रतिज्ञा है कि आपकी धर्ममयी एवं प्रसादमयी वाणी सुनकर आप के द्वारा श्रुत धर्म के प्रति न कोई उपेक्षाभाव रखूँगा, न किसी प्रकार का द्वेष। तथा आपको सब कुछ कह दूँगा, जो मैं जानता होऊँगा॥530॥

''सेतेन अस्सेन अलङ्कतेन, उपयासि सूलावुतकस्स सन्तिके।
यानं इदं अब्भुतं दस्सनेय्यं, किस्सेतं कम्मस्स अयं विपाको'' ति॥531॥
''वेसालिया नगरस्स मज्झे, चिक्खल्लमग्गे नरकं अहोसि।
गोसीसमेकाहं पसन्नचित्तो, सेतं गहेत्वा नरकस्मिं निक्खिपिं॥532॥
''एतस्मिं पादानि पतिट्ठपेत्वा, मयञ्च अञ्ञे च अतिक्कमिम्हा।
यानं इदं अब्भुतं दस्सनेय्यं, तस्सेव कम्मस्स अयं विपाको'' ति॥533॥
''वण्णो च ते सब्बदिसा पभासति, गन्धो च ते सब्बदिसा पवायति।
यक्खिद्धिपत्तोसि महानुभावो, नग्गो चासि किस्स अयं विपाको'' ति॥534॥
''अक्कोधनो निच्चपसन्नचित्तो, सण्हाहि वाचाहि जनं उपेमि।
तस्सेव कम्मस्स अयं विपाको, दिब्बो मे वण्णो सततं पभासति॥535॥

संस्कृतच्छाया- ''श्वेतेन अश्वेन अलङ्कृतेन, उपयासि शूलावृतकस्य अन्तिके।
यानमिदमद्भुतं दर्शनीयं, कस्यैतत् कर्मणोऽयं विपाक'' इति॥531॥
''वैशालीनगरस्य मध्ये, चिक्वणमार्गे नरकमस्ति।
गोशीर्षमेकाहं प्रसन्नचित्तः, श्वेतं गृहीत्वा नरके न्यक्षिपम्॥532॥
''एतस्मिन् पादान् प्रतिष्ठाप्य, वयं च अन्ये च अत्यक्रामाम।
यानम् इदम् अद्भुतं दर्शनीयं, तस्यैव कर्मणोऽयं विपाक'' इति॥533॥
''वर्णश्च ते सर्वदिक्षु प्रभासते, गन्धश्च ते सर्वदिक्षु प्रवाति।
यक्ष ऋद्धिप्राप्तोऽसि महानुभावः, नग्नः चासि कस्य अयं विपाक'' इति॥534॥
''अक्रोधनः नित्यप्रसन्नचित्तः, स्निग्धाभिः वाग्भिः जनम् उपैमि।
तस्यैव कर्मणोऽयं विपाकः, दिव्यः मे वर्णः सततं प्रभासते॥535॥

हिन्दी- शूली पर चढ़े हुए आपके समीप स्थित अलङ्कृत तथा श्वेत अश्वों से युक्त यह अद्भुत एवं दर्शनीय यान(रथ) आपके किस पुण्य कर्म का विपाक(फल) है?॥531॥

वैशाली नगर के मध्य में किसी मार्ग पर कीचड़-युक्त कोई नरक था। उसमें मैंने प्रसन्नमन से एक श्वेत चन्दन की लकड़ी डाल दिया॥532॥

उस पर पैर रख कर मैं तथा अन्य पथिक जन उस मार्ग को पार करते थे। उसी पुण्य कर्म के विपाकस्वरूप आज यह श्वेत रथ मेरे निकट खड़ा है॥533॥

आपकी वर्णाभा समस्त दिशाओं को प्रभासित कर रही है तथा आपके शरीर की गन्ध समस्त दिशाओं में फैल रही है। हे महानुभाव एवं ऋद्धिप्राप्त यक्ष! आप नग्न हैं— यह किसका विपाक(फल) है?॥534॥

मैं मुझसे मिलने वालों के साथ सदा क्रोधरहित और प्रसन्नचित्त होकर तथा प्रेममयी वाणी से मिलता था। उसी कर्म के फलस्वरूप मेरा यह दिव्य वर्ण सदा प्रभासित होता रहता है॥535॥

''यसञ्च कित्तिञ्च धम्मे ठितानं, दिस्वान मन्तेमि पसन्नचित्तो।
तस्सेव कम्मस्स अयं विपाको, दिब्बो मे गन्धो सततं पवायति॥536॥
''सहायानं तित्थस्मिं न्हायन्तानं, थले गहेत्वा निदहिस्स दुस्सं।
खिड्डत्थिको नो च पदुट्ठचित्तो, तेनम्हि नग्गो कसिरा च वुत्ती'' ति॥537॥
''यो कीळमानो पकरोति पापं, तस्सेदिसं कम्मविपाकमाहु।
अकीळमानो पन यो करोति, किं तस्स कम्मस्स विपाकमाहू'' ति॥538॥
''ये दुट्ठसङ्कप्पमना मनुस्सा, कायेन वाचाय च सङ्किलिट्ठा।
कायस्स भेदा अभिसम्परायं, असंसयं ते निरयं उपेन्ति॥539॥
''अपरे पन सुगतिमासमाना, दाने रता सङ्गहितत्तभावा।
कायस्स भेदा अभिसम्परायं, असंसयं ते सुगतिं उपेन्ती'' ति॥540॥

संस्कृतच्छाया- ''यशश्च कीर्तिं च धर्मे स्थितान्, दृष्ट्वा मन्त्रयामि प्रसन्नचित्तः।
तस्यैव कर्मणोऽयं विपाकः, दिव्यः मे गन्धः सततं प्रवाति॥536॥
''सहायानां तीर्थे स्नानं कुर्वताम्, स्थले गृहीत्वा न्यदद्याम् दूष्यम्।
खेलार्थिकः नो च प्रदुष्टचित्तः, तेन अस्मि नग्नः कृशरा च वृत्तिः'' इति॥537॥
''यः क्रीडन् प्रकरोति पापम्, तस्य ईदृशं कर्मविपाकमाहुः।
अक्रीडन् पुनः यः करोति, किं तस्य कर्मणः विपाकमाहुः'' इति॥538॥
''ये दुष्टसङ्कल्पमनसः मनुष्याः, कायेन वचसा च सङ्क्लिष्टाः।
कायस्य भेदाद् अभिसम्परायम्, असंशयं ते निरयम् उपयन्ति॥539॥
''अपरे पुनः सुगतिमाशंसमानाः, दाने रताः सङ्गृहीतात्मभावाः।
कायस्य भेदाद् अभिसम्परायम्, असंशयं ते सुगतिम् उपयन्ति'' इति॥540॥

हिन्दी- मैं धर्मसाधना-रत पुरुषों को देख कर उनकी यश एवं कीर्ति गाथा के विषय में प्रसन्नमन से मन्त्रणा करता रहता था। उसी पुण्यफलस्वरूप मेरे समस्त शरीर से सुगन्ध प्रवाहित होती रहती है॥536॥

मैं स्नान करते हुए अपने साथियों के वस्त्र उठा कर छिपा देता था; यह सब मैं खेल-भावना से ही करता था किसी द्वेषभावना से नहीं; उसी पापकर्मवश मैं नग्न रहता हूँ जिससे मुझको अपनी जीविका में कठिनाई होती है॥537॥

जब खेल-भावना से किये गये पापकर्म का ऐसा परिणाम हुआ, तो वास्तव में किये गये उस वस्त्र छिपाने का क्या दुष्परिणाम होता?॥538॥

जो द्वेषसङ्कल्पयुक्त मन तथा काय एवं वचनसे अशुद्ध कार्य करते हैं वे अवश्य ही नरकगामी होते हैं॥539॥

दूसरे जो, सुगति की इच्छा से, दान में रत रह कर दूसरों के प्रति आत्मीयभाव रखते हैं; वे देहपात के बाद, निःसन्देह सुगति को प्राप्त करते हैं।॥540॥

''तं किन्ति जानेय्यमहं अवेच्च, कल्याणपापस्स अयं विपाको।
किं वाहं दिस्वा अभिसद्दहेय्यं, को वापि मं सद्दहापेय्य एतं'' ति॥541॥
''दिस्वा च सुत्वा अभिसद्दहस्सु, कल्याणपापस्स अयं विपाको।
कल्याणपापे उभये असन्ते, सिया नु सत्ता सुगता दुग्गता वा॥542॥
''नो चेत्थ कम्मानि करेय्युं मच्चा, कल्याणपापानि मनुस्सलोके।
नाहेसुं सत्ता सुगता दुग्गता वा, हीना पणीता च मनुस्सलोके॥543॥
''यस्मा च कम्मानि करोन्ति मच्चा, कल्याणपापानि मनुस्सलोके।
तस्मा हि सत्ता सुगता दुग्गता वा, हीना पणीता च मनुस्सलोके॥544॥
''द्वयज्ज कम्मानं विपाकमाहु, सुखस्स दुक्खस्स च वेदनीयं।
ता देवतायो परिचारयन्ति, पच्चन्ति बाला द्वयतं अपस्सिनो॥545॥

संस्कृतच्छाया- ''तत् किमिति जानीयामहम् अवेत्य, कल्याणपापयोः अयं विपाकः।
किं वा अहं दृष्ट्वा अभिश्रद्दधेयम्, को वा अपि मां श्रद्धापयेत् एतद्'' इति॥541॥
''दृष्ट्वा च श्रुत्वा अभिश्रद्दध्याः, कल्याणपापयोः अयं विपाकः।
कल्याणपापे उभये असतीः, स्युः नु सत्वाः सुगताः दुर्गताः वा॥542॥
''नो चेद् अत्र कर्माणि कुर्युः मर्त्याः, कल्याणपापानि मनुष्यलोके।
न अभविष्यन् सत्वाः सुगता दुर्गता वा, हीनाः प्रणीताश्च मनुष्यलोके॥543॥
''यस्माच्च कर्माणि कुर्वन्ति मर्त्याः, कल्याणपापानि मनुष्यलोके।
तस्मात् हि सत्वाः सुगताः दुर्गताः वा, हीनाः प्रणीताश्च मनुष्यलोके॥544॥
''द्वयमद्य कर्मणां विपाकमाहुः, सुखस्य दुःखस्य च वेदनम्।
तान् देवताः परिचरन्ति, पचन्ति बालाः द्वयम् अपश्यन्तः॥545॥

हिन्दी- कैसे मैं समझूँ कि यह कल्याण या पापकर्म है? और यह कल्याण या पापकर्म का फल है? या तो मैं उसको स्वयं देखकर समझूँ या कोई अन्य मुझे उसके विषय में बतावे॥541॥

कल्याणकर्म या पापकर्म का परिणाम है। देख-सुन कर ही उस पर विश्वास करना चाहिये। यदि लोक में कल्याणकर्म या पापकर्म, दोनो ही न होते तो प्राणी सुगति या दुर्गति कैसे प्राप्त करते!॥542॥

यदि जीव इस मर्त्यलोक में कल्याणकर्म तथा पापकर्म न करे तो मनुष्यलोक के प्राणियों में यह सुगत है या यह दुर्गत है, तथा यह हीन(निकृष्ट) है या यह प्रणीत (उत्तम) है, यह कैसे ज्ञात होगा॥543॥

इस मृत्युलोक में प्राणी कल्याणकर्म तथा पापकर्म करते रहते हैं जिनके कारण वे सुगति या दुर्गति प्राप्त करते रहते हैं तथा हीन या उत्तम स्थिति प्राप्त करते रहते हैं॥544॥

इस संसार में किए गए कर्मो के दो ही फल है- सुखवेदना और दुःखवेदना, इनको जो समझते हैं उनकी देवता भी सेवा-सुश्रूषा करते हैं तथा जो यह नहीं जानते वे घोर नरक में पकते हैं॥545॥

''न मत्थि कम्मानि सयंकतानि, दत्वापि मे नत्थि यो आदिसेय्य।
अच्छादनं सयनमथन्नपानं, तेनम्हि नग्गो कसिरा च वुत्ती'' ति॥546॥
''सिया नु खो कारणं किञ्चि यक्ख, अच्छादनं येन तुवं लभेथ।
आचिक्ख मे त्वं यदत्थि हेतु, सद्धायिकं हेतुवचो सुणोमा'' ति॥547॥
''कप्पितको नाम इधत्थि भिक्खु, झायी सुसीलो अरहा विमुत्तो।
गुत्तिन्द्रियो संवुतपातिमोक्खो, सीतिभूतो उत्तमदिट्ठिपत्तो॥548॥
''सखिलो वदञ्ञू सुवचो सुमुखो, स्वागमो सुप्पटिमुत्तको च।
पुञ्ञस्स खेत्तं अरणविहारी, देवमनुस्सानञ्च दक्खिणेय्यो॥549॥
''सन्तो विधूमो अनीघो निरासो, मुत्तो विसल्लो अममो अवङ्को।
निरूपधी सब्बपपञ्चखीणो, तिस्सो विज्जा अनुप्पत्तो जुतिमा॥550॥

संस्कृतच्छाया- ''न मे सन्ति कर्माणि स्वयंकृतानि, दत्वापि मे नास्ति य आदिशेत्।
आच्छादनं शयनम् अथ अन्नपानम्, तेन अस्मि नग्नः कृशरा च वृत्तिः'' इति॥546॥
''स्यात् नु खलु कारणं किञ्चिद् यक्ष, आच्छादनं येन त्वं लभेथाः।
आचक्ष्व मे त्वं यदस्ति हेतुः, श्रद्धायितं हेतुवचः श्रृणुमः'' इति॥547॥
''कप्पितक नाम्ना इहास्ति भिक्षुः, ध्यायी सुशीलोऽर्हन् विमुक्तः।
गुप्तेन्द्रियः संवृतप्रातिमोक्षः, शी भूत उत्तमदृष्टिप्राप्तः॥548॥
''सखिलः वदान्यः सुवचाः सुमुखः, स्वागमः सुप्रतिमुक्तकश्च।
पुण्यस्य क्षेत्रोऽरण्यविहारी, देवमनुष्याणां च दाक्षिणेयः॥549॥
''शान्तः विधूमोऽनघः निराशः, मुक्तः विशल्यः अममः अवङ्कः।
निरुपधः सर्वप्रपञ्चक्षीणः, तिस्रः विद्या अनुप्राप्तः द्युतिमान्॥550॥

हिन्दी- मेरे कर्म स्वयंकृत नहीं हैं या जो आच्छादन, शयनासन तथा अन्नपान देकर भी कहे कि मेरे पास नहीं है। इसलिए मैं नग्न हूँ जिससे वृत्ति मे कष्ट होता है॥546॥

हे यक्ष! आपको पहनने क लिये वस्त्र मिल सकें, इसका कोई उपाय तो अवश्य होगा। यदि है तो हमें बतावें, हम उसे ध्यानपूर्वक सुनना चाहते हैं॥547॥

यहाँ कप्पितक नामक एक ध्यानी, सुशील, एवं विमुक्त अर्हत् भिक्षु हैं जो जितेन्द्रिय, प्रातिमोक्ष से संवृत, शान्तभूत तथा उत्तम(सम्यक्) दृष्टिप्राप्त हैं॥548॥

जो सखिल(मधुरभाषी), उदार, सुवच(आज्ञाकारी), प्रसन्नमुख, शास्त्रज्ञ, सांसारिकता के जाल से सर्वथा मुक्त और जङ्गल में रहते हैं, देवताओं तथा मनुष्यों के लिये दान के पुण्यस्थल हैं॥549॥

जो शान्त, रागरहित, दुःखरहित, तृष्णारहित तथा मुक्त हैं, जिनका रागद्वेष और मोहरूपी शल्य(काँटा) निकल चुका है, जो ममतारहित, सरलस्वभाव, उपाधिरहित हैं, जिनके सभी प्रपञ्च क्षीण हो चुके हैं, जिन्हें तीनों विद्याएँ प्राप्त हैं और द्युतिमान् हैं॥550॥

''अप्पञ्ञातो दिस्वापि न च सुजानो, मुनीति नं वज्जिसु वोहरन्ति।
जानन्ति तं यक्खभूता अनेजं, कल्याणधम्मं विचरन्तं लोके॥551॥
''तस्स तुवं एकयुगं दुवे वा, ममुद्दिसित्वान सचे ददे थ।
पटिग्गहीतानि च तानि अस्सु, ममञ्च पस्सेथ सन्नद्धदुस्सं'' ति॥552॥
''कस्मिं पदेसे समणं वसन्तं, गन्त्वान पस्सेमु मयं इदानि।
यो मज्ज कङ्खं विचिकिच्छितञ्च, दिट्ठीविसूकानि विनोदयेय्या'' ति॥553॥
''एसो निसिन्नो कपिनच्चनायं, परिवारितो देवताहि बहूहि।
धम्मिं कथं भासति सच्चनामो, सकस्मिमाचेरके अप्पमत्तो'' ति॥554॥
''तथाहं कस्सामि गन्त्वा इदानि, अच्छादयिस्सं समणं युगेन।
पटिग्गहितानि च तानि अस्सु, तुवञ्च पस्सेमु सन्नद्धदुस्सं'' ति॥555॥

संस्कृतच्छाया- ''अप्रज्ञातः दृष्ट्वा अपि न च सुज्ञानः, मुनिः इति तं वज्जिषु व्याहरन्ति।
जानन्ति तं यक्षभूता अनेजम्, कल्याणधर्माणं विचरन्तं लोके॥551॥
''तस्य त्वम् एकयुगं द्वयं वा, मामुद्दिश्य स चेद् दद्याः।
प्रतिगृहीतानि च तानि सन्तु, मां च पश्येः सन्नद्धदूष्यम्'' इति॥552॥
''कस्मिन् प्रदेशे श्रमणं वसन्तं, गत्वा पश्येम वयम् इदानीम्।
यः मम शङ्का विचिकित्सितं च, दृष्टिविशोकानि विनोदय'' इति॥553॥
''एषः निषण्णः कपिनच्चनायां, परिवृतः देवताभिः बहुभिः।
धर्म्यां कथां भाषते सत्यनामा, स्वके अस्मि आचारे अप्रमत्तः'' इति॥554॥
''तथाहं करिष्यामि गत्वा इदानीम्, आच्छादयिष्यामि श्रमणं युगेन।
प्रतिगृहीतानि च तानि सन्तु, त्वां च पश्येम सन्नद्धदूष्यम्'' इति॥555॥

हिन्दी- जिन्हें थोड़े लोग ही जानते हैं, जिन्हें देख कर भी पूर्णतः नहीं जाना जा सकता, जिनके लिए वज्जिगण 'मुनि' शब्द का व्यवहार करते हैं। यक्षगण उन तृष्णाविहीन कल्याणधर्मा को संसार में विचरण करते हुए देखते हैं॥551॥

यदि आप उन्हें एक या दो जोड़े वस्त्र मुझे उद्देश्य करके दे दें तो उनके वे वस्त्र ग्रहण कर लेने पर आप मुझको भी वस्त्र धारण किये हुए, देखेंगे॥ 552॥

किस प्रदेश में वे श्रमण इस समय वास कर रहे हैं, हम तत्क्षण वहाँ जाकर उनके दर्शन करना चाहते हैं। यह जो मेरी शंका, विचिकित्सा तथा दृष्टिदोष है, इसका समाधान करें?॥553॥

इस कपिनच्चना में बहुत से देवताओं से घिरे हुए जो बैठे हैं, जहाँ वे सत्यनाम को धार्मिक कथा का भाषण कर रहे हैं। तथा अपने आचार-विचार में सदा अप्रमत्त(उत्साही) रहते हैं॥554॥

अब मैं वहाँ जाकर ऐसा ही करूँगा कि उन महाश्रमण को वस्त्रयुगल से आच्छादित करूँगा, जिससे, उनके ग्रहण करने के उपरान्त, तुमको भी स्वच्छ वस्त्र पहने हुए देख सकूँ॥555॥

''मा अक्खणे पब्बजितं उपागमि, साधु वो लिच्छवि नेस धम्मो।
ततो च काले उपसङ्कमित्वा, तत्थेव पस्साहि रहो निसिन्नं'' ति॥556॥
तथाति वत्वा अगमासि तत्थ, परिवारितो दासगणेन लिच्छवि।
सो तं नगरं उपसङ्कमित्वा, वासूपगच्छित्थ सके निवेसने॥557॥
ततो च काले गिहिकिच्चानि कत्वा, न्हत्वा पिवित्वा च खणं लभित्वा।
विचेय्य पेळातो च युगानि अट्ठ, गाहापयी दासगणेन लिच्छवि॥558॥
सो तं पदेसं उपसङ्कमित्वा, तं अद्दस समणं सन्तचित्तं।
पटिक्कन्तं गोचरतो निवत्तं, सीतिभूतं रुक्खमूले निसिन्नं॥559॥
तमेनमवोच उपसङ्कमित्वा, अप्पाबाधं फासुविहारञ्च पुच्छि।
''वेसालियं लिच्छविहं भदन्ते, जानन्ति मं लिच्छवि अम्बसक्करो॥560॥

संस्कृतच्छाया- ''मा अक्षणे प्रव्रजितम् उपागाम्, साधुः वः लिच्छवि नैषः धर्मः।
ततश्च काले उपसङ्क्रम्य, तत्रैव पश्येः रहः निषण्णम्'' इति॥556॥
तथा इति उक्त्वा अगमत् तत्र, परिवृतः दासगणेन लिच्छविः।
सः तं नगरम् उपसङ्क्रम्य, वासम् उपागच्छत् स्वके निवेशने॥557॥
ततश्च काले गृहकृत्यानि कृत्वा, स्नात्वा च पीत्वा च क्षणं लब्ध्वा।
विचित्य पेटिकातश्च युगानि अष्ट, ग्राहयित्वा दासगणेन लिच्छविः॥558॥
सः तं प्रदेशम् उपसङ्क्रम्य, तम् अपश्यत् श्रमणं शान्तचित्तम्।
प्रतिक्रान्तं गोचरतः निवृत्तं, शीतीभूतं वृक्षमूले निषण्णम्॥559॥
तमेनमवोचत् उपसङ्क्रम्य, अल्पबाधां फासुविहारं च अप्राक्षीत्।
''वेशाल्यां लिच्छविः अहं भदन्त, जानन्ति मां लिच्छविम् आम्रशर्करः॥560॥

हिन्दी- हे लिच्छवि! असमय में प्रव्रजित के पास जाना उचित नहीं होता। इसलिए उचित समय पर उनके पास जाकर ही यह देखना कि वे एकान्त में बैठे हैं?॥556॥

अच्छा, ऐसा कह कर वह लिच्छवि अपने दासगणों सहित उस नगर में जाकर अपने घर गया॥557॥

वहाँ से कुछ समय पश्चात् अपने गृहकार्य पूर्ण कर वह पुनः स्नान-पान आदि कर, तत्पश्चात् मञ्जूषा से आठ वस्त्रयुगल लेकर अपने दास-दासियों के साथ उस लिच्छवि ने-॥558॥

उन श्रमण के साधनास्थल पर पहुँच कर उन शान्तचित्त श्रमण के दर्शन किये। उस समय वे भिक्षाकर्म से निवृत्त व शान्तचित्त हो एक वृक्ष के नीचे में बैठे थे॥559॥

उनके पास पहुँच कर लिच्छवि ने उन श्रमण से कुशलक्षेम पूछा और कहा— "भदन्त! मैं वैशाली का रहने वाला लिच्छवि हूँ। लिच्छवि लोग मुझको आम्रशर्कर के नाम से जानते हैं॥560॥

''इमानि मे अट्ठ युगा सुभानि, पटिगण्ह भन्ते पददामि तुय्हं।
तेनेव अत्थेन इधागतोस्मि, यथा अहं अत्तमनो भवेय्यं'' ति॥561॥
''दूरतोव समणब्राह्मणा च, निवेसनं ते परिवज्जयन्ति।
पत्तानि भिज्जन्ति च ते निवेसने, सङ्घाटियो चापि विदालयन्ति॥562॥
''अथापरे पादकुठारिकाहि, अवंसिरा समणा पातयन्ति।
एतादिसं पब्बजिता विहेसं, तया कतं समणा पापुणन्ति॥563॥
''तिणेन तेलम्पि न त्वं अदासि, मूळ्हस्स मग्गम्पि न पावदासि।
अन्धस्स दण्डं सयमादियासि, एतादिसो कदरियो असंवुतो तुवं।
अथ त्वं केन वण्णेन किमेव दिस्वा, अम्हेहि सह संविभागं करोसी'' ति॥564॥
''पच्चेमि भन्ते यं त्वं वदेसि, विहेसयिं समणे ब्राह्मणे च।
खिड्डत्थिको नो च पदुट्ठचित्तो, एतम्पि मे दुक्कटमेव भन्ते॥565॥

संस्कृतच्छाया- ''इमानि मे अष्टयुगानि शुभानि, प्रतिगृहाण भदन्त प्रददामि तुभ्यम्।
तेनैव अर्थेन इहागतोस्मि, यथाऽहमात्तमनाः भवेयम्'' इति॥561॥
''दूरत इव श्रमणब्राह्मणाश्च, निवेशनं ते परिवर्जयन्ति।
पात्राणि भिन्दन्ति च ते निवेशने, सङ्घाटीन् चापि विदारयन्ति॥562॥
''अथापरे पादकुठारिकाभिः, अर्वाक्शिरसः श्रमणाः पात्यन्ते।
एतादृशं प्रव्रजिताद् विहिंसां, त्वया कृतं श्रमणाः प्राप्नुवन्ति॥563॥
''तृणेन तैलमपि न त्वम् अदाः, मूढस्य मार्गमपि न प्रावदः।
अन्धस्य दण्डं स्वयमाददासि, एतादृशः कदर्यः असंवृतस्त्वम्।
अथ त्वं केन वर्णेन किम् एवं दृष्ट्वा,
अस्माभिः सह संविभागं करोषि'' इति॥564॥
''प्रत्येमि भदन्त यत् त्वं वदसि, विहिसामि श्रमणे ब्राह्मणे च।
खेलार्थिकः नो च प्रदुष्टचित्तः, एतद् अपि मे दुष्कृतमेव भदन्त॥565॥

हिन्दी- भदन्त! इन आठ शुभ वस्त्रयुगलों को मैं आपको अर्पित करता हूँ, इन्हें ग्रहण करें। इसी कारण से मैं यहाँ आया हूँ। आपके ग्रहण कर लेने से मुझको प्रसन्नता होगी॥561॥

यहाँ के श्रमण ब्राह्मण आपके आवास को दूर ही छोड़ कर बढ़ जाते हैं। तथा कभी कभी आपके आवास में प्रविष्ट होकर आपके पात्र, वस्त्र एवं सङ्घाटि आदि फाड़ देते हैं॥562॥

इसके बाद आप अन्य कुछ श्रमण ब्राह्मणों को उनके पैर पकड़ कर उनका शिर नीचा करके गिरा देते हैं। आपके(प्रव्रजित) के द्वारा इस प्रकार किया अपमान श्रमण पाते रहते हैं॥563॥

तुम तो तृण से एक बूँद तैल भी किसी को निकालकर नहीं देते हो, किसी भटके हुए को मार्ग भी नहीं बताते हो। तुम तो इतने निष्ठुर, ऊद्धत एवं कंजूस हो कि किसी अन्धे की लाठी भी छीन लेते हो। आज तुम मुझको किस प्रयोजनवश यह दान करने आये हो॥564॥

''खिड्डाय यक्खो पसवित्वा पापं, वेदेति दुक्खं असमत्तभोगी।
दहरो युवा नग्गनियस्स भागी, किं सु ततो दुक्खतरस्स होति॥566॥
''तं दिस्वा संवेगमलत्थं भन्ते, तप्पच्चया वापि ददामि दानं।
पटिगण्ह भन्ते वत्थयुगानि अट्ठ, यक्खस्सिमा गच्छन्तु दक्खिणायो'' ति॥567॥
''अद्धा हि दानं बहुधा पसत्थं, ददतो च ते अक्खयधम्ममत्थु।
पटिगण्हामि ते वत्थयुगानि अट्ठ, यक्खस्सिमा गच्छन्तु दक्खिणायो'' ति॥568॥
ततो हि सो आचमयित्वा लिच्छवि, थेरस्स दत्वान युगानि अट्ठ।
'पटिग्गहितानि च तानि अस्सु, यक्खञ्च पस्सेथ सन्नद्धदुस्सं'॥569॥
तमद्दसा चन्दनसारलित्तं, आजञ्ञमारूळ्हमुळारवण्णं।
अलङ्कतं साधुनिवत्थदुस्सं, परिवारितं यक्खमहिद्धिपत्तं॥570॥

संस्कृतच्छाया- ''खेलाय यक्षः प्रसूय पापं, वेदयति दुःखम् असमात्मभोगी।
दहरः युवा नग्नत्वस्य भोगी, किं सु ततः दुःखतरम् भवति॥566॥
''तं दृष्ट्वा संवेगमनर्थं भदन्त, तत्प्रत्ययात् वापि ददामि दानम्।
प्रतिगृहाण भदन्त वस्त्रयुगानि अष्ट, यक्षस्य इमानि गच्छन्तु दक्षिणायै" इति॥567॥
''अद्धा हि दानं बहुधा प्रशस्तं, ददतः च ते अक्षयधर्मः अस्तु।
प्रतिगृह्णामि ते वस्त्रयुगानि अष्ट, यक्षस्य इमानि गच्छन्तु दक्षिणायै" इति॥568॥
ततः हि सः आचम्य लिच्छविः, स्थविराय दत्वा युगानि अष्ट।
'प्रतिगृहीतानि च तानि सन्तु, यक्षं च पश्येः सन्नद्धदूर्श्यम्'॥569॥
तमद्राक्षीः चन्दनसारलिप्तम्, अश्वारूढमुदारवर्णम्।
अलङ्कृतं साधुनिवस्त्रदूर्श्यं, परिवृतं यक्षमहर्द्धिप्राप्तम्॥570॥

हिन्दी- भदन्त! आप जो कह रहे हैं वह मुझे स्वीकार्य है कि मैं श्रमण-ब्राह्मण के प्रति हिंसा करता हूँ; किन्तु परिहासवश न कि विद्वेषभाव से। परन्तु यह मेरा दुष्कृत्य है ही॥565॥

ठीक है कि तुमने यह पाप परिहासवश किया, किन्तु इसका कष्ट उन्हें जिनके पास ये वस्तुएँ अल्प मात्रा में हैं, भोगना ही पड़ा। कोई बालक या युवा, तुम्हारे परिहासवश, नग्न हो जाय तो इससे अधिक दुःखदायी कर्म उसके लिये क्या हो सकता है!॥566॥

हे भदन्त! उन्हीं घटनाओं के कारण ही मुझको पश्चात्ताप हुआ। जिसकी शान्ति हेतु मैं यह दान दे रहा हूँ। भदन्त! आप इन आठ वस्त्रयुगलों की दक्षिणा स्वीकारें तथा इसका संकल्प उस यक्ष हेतु करें॥567॥

निश्चय ही दान बहुधा प्रशंसित है। इस दान के फलस्वरूप तुमको भी अक्षय धर्म की प्राप्ति हो। मैं तुम्हारे ये आठों वस्त्रयुगल स्वीकार करता हूँ, तथा इसकी दक्षिणा उस यक्ष के प्रति जावे॥568॥

तब उस लिच्छवि ने अञ्जलि में जल द्वारा आचमन करते हुए आठ वस्त्रयुगल श्रमण को दान किया। मैं इन वस्त्रयुगलों की दक्षिणा स्वीकार करता हूँ जिससे तुम भी लिच्छवि को वस्त्र धारण किया हुआ देख सको॥569॥

सो तं दिस्वा अत्तमना उदग्गो, पहट्ठचित्तो च सुभग्गरूपो।
कम्मञ्च दिस्वान महाविपाकं, सन्दिट्ठिकं चक्खुना सच्छिकत्वा॥571॥
तमेनमवोच उपसङ्कमित्वा, ''दस्सामि दानं समणब्राह्मणानं।
न चापि मे किञ्चि अदेय्यमत्थि, तुवञ्च मे यक्ख बहूपकारो'' ति॥572॥
''तुवञ्च मे लिच्छवि एकदेसं, अदासि दानानि अमोघमेतं।
स्वाहं करिस्सामि तयाव सक्खिं, अमानुसो मानुसकेन सद्धिं'' ति॥573॥
''गती च बन्धू च परायणञ्च, मित्तो ममासि अथ देवता मे।
याचामि तं पञ्जलिको भवित्वा, इच्छामि तं यक्ख पुनापि दट्ठुं'' ति॥574॥
''सचे तुवं अस्सद्धो भविस्ससि, कदरियरूपो विप्पटिपन्नचित्तो।
त्वं नेव मं लच्छसि दस्सनाय, दिस्वा च तं नोपि च आलपिस्सं॥575॥

संस्कृतच्छाया- सः तं दृष्ट्वा आत्तमना उदग्रः, प्रहृष्टचित्तश्च सुभगरूपः।
कर्म च दृट्वा महाविपाकं, सन्दृष्टं चक्षुषा साक्षात्कृत्य॥571॥
तमेनमुवाच उपसङ्क्रम्य, ''दास्यामि दानं श्रमणब्राह्मणेभ्यः।
न चापि मे किञ्चिद् अदेयमस्ति, त्वं च मे यक्ष बहूपकारकः'' इति॥572॥
''त्वं च मे लिच्छवि एकदेशम्, अदाः दानानि अमोघानि एतानि।
स्वयम् अहं करिष्यामि त्वमिव सख्यम्, अमानुषः मानुषेण सार्धम्'' इति॥573॥
''गतश्च बन्धुश्च परायणं च, मित्र ममासि अथ देवता मे।
याचामि अहं तं प्राञ्जलिको भूत्वा, इच्छामि त्वां यक्ष पुनरपि द्रष्टुम्'' इति॥574॥
''स चेत् त्वम् अश्रद्धः भविष्यसि, कदर्यरूपः विप्रतिपन्नचित्तः।
त्वं नैव मां लप्स्यसे दर्शनाय, दृष्ट्वा च त्वया न अपि च आलपिष्यामि॥575॥

हिन्दी- वह महा ऋद्धिप्राप्त यक्ष अपने शरीर पर चन्दन का लेप किये हुए, स्वच्छवर्णी अश्व पर आरूढ़, अलङ्कारों और सुन्दर वस्त्रों से आवृत एवं सुशोभित था॥570॥

वह उसे(यक्ष को) प्रसन्न एवं प्रमुदित, सौभाग्यसम्पन्न स्थिति में देख कर तथा इस कर्म के इस महाविपाक(महान् फल) को अपनी आँखों से साक्षात्कार कर-॥571॥

वह लिच्छवि उस(यक्ष) के पास जा कर बोला— अब मैं भी श्रमण ब्राह्मणों को दान करूँगा; क्योंकि मेरे पास अदेय कुछ भी नहीं है। अतः मैं सर्वस्व दे सकता हूँ। हे यक्ष! आपने मेरा बहुत उपकार किया॥572॥

हे लिच्छवि! तुमने भी मेरे लिये यह अमोघ दान दे कर मुझको एकाकी रूप से अपना बना लिया है। इसलिए मैं एक अमनुष्य(मनुष्येतर) स्वयं तुम्हारे(मनुष्य के) साथ ही मैत्री करूँगा॥573॥

हे यक्ष! आप ही मेरे शरणस्थल हैं, बन्धु हैं, अन्तिम लक्ष्य है। आप ही मेरे मित्र और देवता भी हैं। मैं आपसे करबद्ध हो पुनः दर्शन की याचना तथा कामना करता हूँ॥574॥

हे लिच्छवि! यदि तुम अश्रद्धालु, कंजूस तथा भ्रान्तचित्त हो जाओगे तो मेरा दर्शन प्राप्त नहीं कर पाओगे। तुम्हें देखकर भी मैं तुमसे कोई सम्भाषण नहीं करूँगा॥575॥

''सचे पन त्वं भविस्ससि धम्मगारवो, दाने रतो सङ्गहितत्तभावो।
ओपानभूतो समणब्राह्मणानं, एवं ममं लच्छसि दस्सनाय॥576॥
''दिस्वा च तं आलपिस्सं भदन्ते, इमञ्च सूलतो लहुं पमुञ्च।
यतो निदानं अकरिम्ह सक्खिं, मञ्ञामि सूलावुतकस्स कारणा॥577॥
''ते अञ्ञमञ्ञं अकरिम्ह सक्खिं, अयञ्च सूलतो लहुं पमुत्तो।
सक्कच्च धम्मानि समाचरन्तो, मुच्चेय्य सो निरया च तम्हा।578॥
कम्मं सिया अञ्ञत्र वेदनीयं॥
''कप्पितकञ्च उपसङ्कमित्वा, तेनेव सह संविभजित्वा काले।
सयं मुखेनूपनिसज्ज पुच्छ, सो ते अक्खिस्सति एतमत्थं॥579॥
''तमेव भिक्खुं उपसङ्कमित्वा, पुच्छस्सु अञ्ञत्थिको नो च पदुट्ठचित्तो।
सो ते सुतं असुतञ्चापि धम्मं, सब्बम्पि अक्खिस्सति यथा पजानं'' ति॥580॥

संस्कृतच्छाया- ''स चेत् पुनस्त्वं भविष्यसि धर्मगौरवः, दाने रतः सङ्गृहीत तत्त्वभावः।
उदपानभूतः श्रमणब्राह्मणानाम्, एवं मां लप्स्यसे दर्शनाय॥576॥
''दृष्ट्वा च त्वाम् आलपिष्यामि भदन्त, इमं च शूलतः लघु प्रमोचय।
यतो निदानम् अकरोत् सख्यस्य, मन्ये शूलावृत कस्य कारणात्॥577॥
''तौ अन्योन्यम् अकुरुतां सख्यम्, अयं च शूलतः लघु प्रमुक्तः।
सत्कृत्य धर्मान् समाचरन्, मुक्तः सः निरयाच्च तस्मात्।
कर्म स्याद् अन्यत्र वेदनीयम्॥578॥
''कप्पितकं चोपसङ्क्रम्य, तेनैव सह संविभज्य काले।
स्वयं मुखेनोपनिषीद्य पृच्छ, सः ते आख्यास्यति एतमर्थम्॥579॥
''तमेव भिक्षुम् उपसङ्क्रम्य, पृच्छ अन्यार्थिकः नो च प्रदुष्टचित्तः।
सः ते श्रुतम् अश्रुतं चापि धर्मम्, सर्वमपि आख्यास्यति यथा प्रजानाति'' इति॥580॥

हिन्दी- यदि तुम धर्म के प्रति गौरवभाव रखोगे तथा दान में रत रहोगे, सबके प्रति आत्मभाव रखोगे और समस्त श्रमण ब्राह्मणों के लिये जलकूप के समान रहोगे! तो तुम मेरे दर्शन प्राप्त कर पाओगे॥576॥

तुमको कहीं देख कर तुमसे मन्त्रणा हेतु तुम्हारे पास आऊँगा। हे भदन्त! इस शूल रूपी वेदना से त्रस्त प्राणि को तत्काल मुक्त करो; क्योंकि यह शूली पर आरूढ़ पुरुष ही मेरी और तुम्हारी मैत्री का मूल आधार है॥577॥

तब वे दोनों प्रगाढ़ मैत्री बन्धन में बँध गये। यह यक्ष भी उस शूली से शीघ्र ही मुक्त हो गया। तत्पश्चात् वह विधिपूर्वक धर्माचरण करता हुआ शीघ्र ही उस दुर्गतिमय नरक से मुक्त हो सुखानुभव करने लगा॥578॥

तदनन्तर कप्पितक श्रमण के पास जा कर उनके साथ समय समय पर दान करता हुआ, उनके सम्मुख बैठ कर धर्मचर्चा करने पर उनसे सुन कर अर्थ को कहता रहा॥579॥

सो तत्थ रहस्सं समुल्लपित्वा, सक्खिं करित्वान अमानुसेन।
पक्कामि सो लिच्छवीनं सकासं, अथ ब्रवि परिसं सन्निसिन्नं॥581॥
''सुणन्तु भोन्तो मम एकवाक्यं, वरं वरिस्सं लभिस्सामि अत्थं।
सूलावुतो पुरिसो लुद्दकम्मो, पणीहितदण्डो अनुसत्तरूपो॥582॥
''एत्तावता वीसतिरत्तिमत्ता, यतो आवुतो नेव जीवति न मतो।
ताहं मोचयिस्सामि दानि, यथामतिं अनुजानातु सङ्घो'' ति॥583॥
''एतञ्च अञ्ञञ्च लहुं पमुञ्च, को तं वदेथ तथा करोन्तं।
यथा पजानासि तथा करोहि, यथामतिं अनुजानाति सङ्घो'' ति॥584॥
सो तं पदेसं उपसङ्कमित्वा, सूलावुतं मोचयि खिप्पमेव।
'मा भायि सम्मा'ति च तं अवोच, तिकिच्छकानञ्च उपट्ठपेसि॥585॥

संस्कृतच्छाया- सः तत्र रहस्यं समुल्लाप्य, सख्यं कृत्वा अमानुषेण।
प्राक्रामीत् सो लिच्छवीनां सकाशे, अथ अब्रवीत् परिषदं सन्निषण्णाम्॥581॥
''श्रृण्वन्तु भवन्तः ममैकवाक्यं, वरं वरिष्यामि लप्स्येऽर्थम्।
शूलावृतः पुरुषः लुब्धकर्मा, प्रणीतदण्डोऽनुपक्वरूपः॥582॥
''एतावता विंशतिरात्रिमात्रं, यत आवृतो नैव जीवति न मृतः।
तमहं मोचयिष्यामि इदानीम्, यथामति अनुजानातु सङ्घः'' इति॥583॥
''एतञ्च अन्यञ्च लघु प्रमुञ्च, कस्त्वां वदति तथा कर्तुम्।
यथा प्रजानासि तथा कुरु, यथामति अनुजानातु सङ्घः'' इति॥584॥
स तं प्रदेशम् उपसङ्क्रम्य, शूलावृतम् अमोचयत् क्षिप्रमेव।
'मा भैः सम्यग्' इति च तम् अवोचत्, चिकित्सकानां च उपास्थापयत्॥585॥

हिन्दी- तुम भी लिच्छवि! उसी(कप्पितक) भिक्षु के सम्मुख जाकर ज्ञानप्राप्ति हेतु न कि द्वेषयुक्त चित्त से धर्मचर्चा करो। वे तुम को अपने प्राप्त ज्ञान के आधार पर श्रुत एवं अश्रुत धर्म का सम्पूर्ण रहस्य बता देंगे॥580॥

उस लिच्छवी ने उन श्रमण से धर्मविषयक एवं जिज्ञासापूर्वक वार्तालाप करते हुए, तथा उस अमानुष(यक्ष) से मैत्री करके अपना नवजीवन आरम्भ किया। तब वह अन्य लिच्छवियों के पास गया तथा वहाँ बैठी हुई परिषद् को ऐसा कहा—॥581॥

आप लोग मेरी एक बात सुनें— मैं आप लोगों से एक वर माँगना चाहता हूँ जिससे मेरा भार हल्का हो जाय। एक व्यक्ति जो अपराधानुसार पापदण्डस्वरूप शूलावृत है॥582॥

शूली पर चढे हुए उसे अबतक बीस रात्रि बीत चुकी है। जहाँ पर चढ़ा हुआ वह न मर रहा है, न जी रहा है। उसको मैं मुक्त कराऊँगा। मुझको सङ्घ विचारपूर्वक इसकी अनुमति दे॥583॥

यह या अन्य छोटे-मोटे कार्यों को पूर्ण करने में तुम्हें कौन रोक रहा है! इस विषय में तुम जैसा ठीक समझो वह करो। सङ्घ तुमको इसकी सर्वसम्मत अनुमति है॥584॥

''कप्पितकञ्च उपसङ्कमित्वा, तेनेव सह संविभजित्वा काले।
सयं मुखेनूपनिसज्ज लिच्छवि, तथेव पुच्छित्थ नं कारणत्थिको॥586॥
''सूलावुतो पुरिसो लुद्दकम्मो, पणीतदण्डो अनुसत्तरूपो।
एत्तावता वीसतिरत्तिमत्ता, यतो आवुतो नेव जीवति न मतो॥587॥
''सो मोचितो गन्त्वा मया इदानि, एतस्स यक्खस्स वचो हि भन्ते।
सिया नु खो कारणं किञ्चिदेव, येन सो निरयं नो वजेय्य॥588॥
''आचिक्ख भन्ते यदि अत्थि हेतु, सद्धायिकं हेतुवचो सुणोम।
न तेसं कम्मानं विनासमत्थि, अवेदयित्वा इध ब्यन्तिभावो'' ति॥589॥
''सचे स धम्मानि समाचरेय्य, सक्कच्च रत्तिन्दिवमप्पमत्तो।
मुच्चेय्य सो निरया च तम्हा, कम्मं सिया अञ्ञत्र वेदनीयं'' ति॥590॥

संस्कृतच्छाया- ''कप्पितकं च उपसङ्क्रम्य, तेनैव सह संविभज्य काले।
स्वयं मुखेनोपनिषद्य लिच्छविः, तथैव पप्रच्छ न कारणार्थिकः॥586॥
''शूलावृतः पुरुषः लुब्धकर्मा, प्रणीतदण्डः अनुषक्तरूपः।
एतावता विंशतिरात्रिमात्रं, यत आवृतो नैव जीवति न मृतः॥587॥
''सः मोचितः गत्वा मया इदानीम्, एतस्य यक्षस्य वचो हि भदन्त।
स्यान्नु खलु कारणं किञ्चिदेव, येन सः निरयं न व्रजेत्॥588॥
''आचक्ष्व भदन्त यदि अस्ति हेतुः, श्रद्धायुतं हेतुवचः श्रृण्मः।
न तेषां कर्मणां विनाशोऽस्ति, अवेद्य इह ब्यन्ति भावः'' इति॥589॥
''स चेत् स धर्मान् समाचरेद्, सत्कृत्य रात्रिन्दिवमप्रमत्तः।
मुच्येत सः निरयात् च तस्मात्, कर्म स्याद् अन्यत्र वेदनीयम्'' इति॥590॥

हिन्दी- तब उस लिच्छवि ने उस स्थान पर जाकर शूली पर चढ़े हुए व्यक्ति को शीघ्र ही शूली से उतार दिया। तथा उसे आश्वस्त किया कि तुम डरो मत। तत्पश्चात् उस को शूली से उतार कर चिकित्सक के पास पहुँचा दिया॥585॥

वह कप्पितक के पास जाकर उनको कुछ भेंट चढ़ा कर, स्वयं उनके सम्मुख बैठ कर उस अपराधी के विषय में चर्चा की॥586॥

उस पापी अपराधी को शूली पर चढ़े हुए आज बीस रात्रि बीत चुकी है। वह शूली पर आवृत हुआ होने से न जी पा रहा है न मर रहा है॥587॥

मेरे द्वारा वहाँ जाकर उसे शूली से उतार दिया गया है। हे देव! कोई ऐसा उपाय है कि जिससे उसका नरकपात न हो?॥588॥

भदन्त! यदि इसका कोई उपाय हो तो बतावें। उसको हम श्रद्धापूर्वक सुनेंगे। क्योंकि उन कृत कर्मों का कभी नाश नहीं होता, और बिना भोगे उनका क्षय भी नहीं होता॥589॥

यदि वह रात-दिन सत्कार व उत्साहपूर्वक धर्माचरण करे तो वह उस नरक से मुक्त हो सकता है, तथा नरक से मुक्त कुशल कर्म करता हुआ अन्यत्र सुखानुभव कर सकता है॥590॥

''अञ्ञातो एसो पुरिसस्स अत्थो, ममम्पि दानि अनुकम्प भन्ते।
अनुसास मं ओवद भूरिपञ्ञ, यथा अहं नो निरयं वजेय्यं'' ति॥591॥
''अज्जेव बुद्धं सरणं उपेहि, धम्मञ्च सङ्घञ्च पसन्नचित्तो।
तथेव सिक्खाय पदानि पञ्च, अखण्डफुल्लानि समादियस्सु॥592॥
''पाणातिपाता विरमस्सु खिप्पं, लोके अदिन्नं परिवज्जयस्सु।
अमज्जपो मा च मुसा अभाणी, सकेन दारेन च होहि तुट्ठो।
इमञ्च अरियं अट्ठङ्गवरेनुपेतं, समादियाहि कुसलं सुखुद्रयं॥593॥
''चीवरं पिण्डपातञ्च, पच्चयं सयनासनं।
अन्नं पानं खादनीयं, वत्थसेनासनानि च।
ददाहि उजुभूतेसु, विप्पसन्नेन चेतसा॥594॥
''भिक्खूपि सीलसम्पन्ने, वीतरागे बहुस्सुते।
तप्पेहि अन्नपानेन, सदा पुञ्ञं पवड्ढति॥595॥

संस्कृतच्छाया- ''अज्ञात एषः पुरुषस्यार्थः, मयि अपि इदानीम् अनुकम्पस्व भदन्त।
अनुशाशि माम् आवद भूरिप्रज्ञ, यथाऽहं नो निरयं व्रजेयम्'' इति॥591॥
''अद्यैव बुद्धं शरणमुपैहि, धर्मं सङ्घं च प्रसन्नचित्तः।
तथैव शिक्षायाः पदानि पञ्च, अखण्डफुल्लानि समाधत्स्व॥592॥
''प्राणातिपाताद् विरम क्षिप्रं, लोके अदत्तं परिवर्जय।
अमद्यपः मा च मृषा भाणीः, स्वकैः दारैश्च भव तुष्टः।
इदम् च अर्याष्टाङ्गवरोपेतं, समादत्स्व कुशलं सुखोद्रवम्॥593॥
''चीवरं पिण्डपातं च, पथ्यं च शयनासनम्।
अन्नं पानं खादनीयं, वस्त्रशयनासनानि च।
देहि ऋजुभूतेभ्यः, विप्रसन्नेन चेतसा॥594॥
''भिक्षून् अपि शीलसम्पन्नान्, वीतरागान् बहुश्रुतान्।
तर्पय अन्नपानेन, सदा पुण्यं प्रवर्धते॥595॥

हिन्दी- भदन्त! शुभ कर्मों के प्रति करणीय यह पुरुषार्थ मुझे भी अज्ञात है। हे भूरिप्रज्ञ, भदन्त! मुझ पर अनुकम्पा करते हुए मुझे भी वह उपाय कहें जिससे मैं भी कभी नरक में न गिरूँ॥591॥

तुम आज ही प्रसन्नचित्त होकर बुद्ध, धर्म एवं संघ की शरण में जाओ। तथा उन भगवान् (बुद्ध) द्वारा उपदिष्ट पाँच शिक्षापदों का हर्षपूर्वक पालन करो॥592॥

प्राणातिपात आदि हिसाकर्म से शीघ्र ही दूर हो जाओ, लोक में बिना दी हुई वस्तु न उठाओ, मद्यपान तथा असत्यभाषण का सर्वथा त्याग करो, तथा स्वकीय धर्मपत्नी के साथ ही सन्तुष्ट रहो। ये जो कुशल कर्म-जनित सुख का उद्भावक अष्टांगयुक्त उपोसथ व्रत है, इसका दृढ़ता से पालन करो॥593॥

शान्त भिक्षुओं को प्रसन्न मन से चीवर, पिण्डपात, पथ्य, शयनासन, अन्न, पान तथा भोज्य वस्तुएँ दो॥594॥

''एवञ्च धम्मानि समाचरन्तो, सक्कच्च रत्तिन्दिवमप्पमत्तो।
मुञ्च तुवं निरया च तम्हा, कम्मं सिया अञ्ञत्र वेदनीयं'' ति॥596॥
''अज्जेव बुद्धं सरणं उपेमि, धम्मञ्च सङ्घञ्च पसन्नचित्तो।
तथेव सिक्खाय पदानि पञ्च, अखण्डफुल्लानि समादियामि॥597॥
''पाणातिपाता विरमामि खिप्पं, लोके अदिन्नं परिवज्जयामि।
अमज्जपो नो च मुसा भणामि, सकेन दारेन च होमि तुट्ठो।
इमञ्च अरियं अट्ठङ्गवरेनुपेतं, समादियामि कुसलं सुखुद्रयं॥598॥
''चीवरं पिण्डपातञ्च, पच्चयं सयनासनं।
अन्नं पानं खादनीयं, वत्थसेनासनानि च॥599॥
''भिक्खू च सीलसम्पन्ने, वीतरागे बहुस्सुते।
ददामि न विकम्पामि, बुद्धानं सासने रतो'' ति॥600॥

संस्कृतच्छाया- ''एवञ्च धर्मान् समाचरन्, सत्कृत्य रात्रिन्दिवमप्रमत्तः।
मुञ्च त्वं निरयाच्च तस्मात्, कर्म स्याद् अन्यत्र वेदनीयम्'' इति॥596॥
''अद्यैव बुद्धं शरणमुपैमि, धर्मं सङ्घं च प्रसन्नचित्तः।
तथैव शिक्षायाः पदानि पञ्च, अखण्डफुल्लानि समाददामि॥597॥
''प्राणातिपाताद् विरमामि क्षिप्रं, लोकेऽदत्तं परिवर्जयामि।
अमद्यपः नो च मृषा भणामि, स्वकैः दारैश्च भवामि तुष्टः।
इमञ्च आर्याष्टाङ्गावरोपितं, समादास्यामि कुशलं सुखोदयम्॥598॥
''चीवरं पिण्डपातं च, पथ्यं च शयनासनम्।
अन्नं पानं खादनीयं, वस्त्रशयनासनानि च॥599॥
''भिक्षूंश्च शीलसम्पन्नान्, वीतरागान् बहुश्रुतान्।
ददामि न विकम्पे, बुद्धानां शासने रतः'' इति॥600॥

हिन्दी- शीलसम्पन्न, वीतराग एवं बहुश्रुत भिक्षुओं को भी अन्नपान के दान द्वारा तृप्त करते रहो। जिससे सदा पुण्यवृद्धि होती रहे।॥595॥

इस प्रकार तुम सत्कारपूर्वक सर्वदा सावधान होकर धर्माचरण करते रहोगे तो उस नरकपात से तुम मुक्त हो जाओगे तथा अन्यत्र शुभ कर्म करते हुए सुखानुभव भी करोगे॥596॥

मैं आज से ही प्रसन्नचित होकर बुद्ध, धर्म एवं संघ की शरण में जाता हूँ। तथा उन भगवान्(बुद्ध) द्वारा उपदिष्ट पाँच शिक्षापदों के हर्षपूर्वक पालन का शपथ लेता हूँ॥597॥

मैं आज से ही प्राणातिपात आदि हिंसाकर्म से शीघ्र ही दूर हो जाऊँगा, लोक में बिना दी हुई वस्तु नहीं ग्रहण करूँगा, मद्यपान तथा असत्यभाषण का सर्वथा त्याग करूँगा, तथा स्वकीय धर्मपत्नी के साथ ही सन्तुष्ट रहूँगा। ये जो कुशल कर्मवश जनित सुख का उद्भावक अष्टांगयुक्त उपोसथ व्रत है, इसका दृढतापूर्वक पालन करूँगा॥598॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 594....॥599॥

एतादिसा लिच्छवि अम्बसक्करो, वेसालियं अञ्ञतरो उपासको।
सद्धो मुदू कारकरो च भिक्खु, सङ्घञ्च सक्कच्च तदा उपट्ठहि॥601॥
सूलावुतो च अरोगो हुत्वा, सेरी सुखी पब्बज्जं उपागमि।
भिक्खुञ्च आगम्म कप्पितकुत्तमं, उभोपि सामञ्ञफलानि अज्झगुं॥602॥
एतादिसा सप्पुरिसान सेवना, महप्फला होति सतं विजानतं।
सूलावुतो अग्गफलं अफस्सयि, फलं कनिट्ठं पन अम्बसक्करो'' ति॥603॥

अम्बसक्करपेतवत्थु पठमं।

2. सेरीसकपेतवत्थु

सुणोथ यक्खस्स वाणिजान च, समागमो यत्थ तदा अहोसि।
यथा कथं इतरितरेन चापि, सुभासितं तञ्च सुणाथ सब्बे॥604॥
यो सो अहु राजा पायासि नाम, भुम्मानं सहब्यगतो यसस्सी।
सो मोदमानोव सके विमाने, अमानुसो मानुसे अज्झभासीति॥605॥

संस्कृतच्छाया- एतादृशः लिच्छविः आम्रशर्करो, वैशाल्याम् अन्यतर उपासकः।
सश्रद्धो मृदुः कार्यकरश्च भिक्षुसङ्घं च सत्कृत्य तदोपतिष्ठते॥601॥
शूलावृतश्च अरोगो भूत्वा, स्वैरी सुखी प्रव्रज्याम् उपागमत्।
भिक्षुं च आगत्य कप्पितकोत्तमम्, उभावपि श्रामण्यफलानि अध्यगाताम्॥602॥
एतादृशं सत्पुरुषाणां सेवनान्महत् फलं भवति सतां विजानताम्।
शूलावृतोऽग्रफलम् अपश्यत्, फलं कनिष्ठं पुनराम्रशर्करः'' इति॥603॥
शृणु यक्षस्य वणिजां च, समागमः यत्र तदाभवत्।
यथा कथम् इतरेतरेण चापि, सुभाषितं तच्च शृणुत सर्वे॥604॥
''यः सोऽभूद् राजा पायासिनामा, भौम्यानां सहगतो यशस्वी।
सः मोदमान इव स्वके विमाने, अमानुषो मानुषैरध्यभाषत इति॥605॥

हिन्दी- शीलसम्पन्न तथा वीतराग एवं बहुश्रुत भिक्षुओं को सदा दान करता रहूँगा, दानकर्म में कोई संकोच नहीं करूँगा। इस प्रकार बुद्ध देशित धर्मशासन में रत रहूँगा॥600॥

ऐसे उस वैशाली निवासी आम्रशर्कर नामक विशिष्ट उपासक श्रद्धा एवं मृदु भाव से उत्साहपूर्वक, भिक्षुसंघ की विधिपूर्वक पूजा-अर्चना करते हुए निरन्तर धर्मसाधना में लग गया॥601॥

और उस शूली पर चढ़ा अपराधी ने भी स्वस्थ होकर स्वतन्त्र एवं सुखीभाव से प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। तथा उस भिक्षु एवं कप्पितक श्रमण नें भी श्रामण्यफल का साक्षात्कार किया॥602॥

सत्पुरुषों की सेवा बुद्धिमान् पुरुषों के लिये ऐसी ही महा फलदायी होती है। उनमें से एक शूली चढ़ा प्राणि अन्त में अग्र फल का भागी हुआ तथा वह आम्रशर्कर लिच्छवि भी धर्मसाधना के आश्रयण से कनिष्ठ फल का भागी हुआ॥603॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 372, विमानवत्थु....॥604॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 373, विमानवत्थु....॥605॥

''वङ्के अरञ्ञे अमनुस्सट्ठाने, कन्तारे अप्पोदके अप्पभक्खे।
सुदुग्गमे वण्णुपथस्स मज्झे, वङ्कंभया नट्ठमना मनुस्सा॥606॥
''नयिध फला मूलमया च सन्ति, उपादानं नत्थि कुतोध भक्खो।
अञ्ञत्र पंसूहि च वालुकाहि च, ततोहि उण्हाहि च दारुणाहि च॥607॥
''उज्जङ्गलं तत्तमिवं कपालं, अनायसं परलोकेन तुल्यं।
लुद्दानमावासमिदं पुराणं, भूमिप्पदेसो अभिसत्तरूपो॥608॥
'''अथ तुम्हे केन वण्णेन, किमासमाना इमं पदेसं हि।
अनुपविट्ठा सहसा समच्च, लोभा भया अथ वा सम्पमूळ्हा''' ति॥609॥
''मगधेसु अङ्गेसु च सत्थवाहा, आरोपयित्वा पणियं पुथुत्तं।
ते यामसे सिन्धुसोवीरभूमिं, धनत्थिका उद्दयं पत्थयाना॥610॥
''दिवा पिपासं नधिवासयन्ता, योग्गानुकम्पञ्च समेक्खमाना।
एतेन वेगेन आयाम सब्बे, रत्तिं मग्गं पटिपन्ना विकाले॥611॥

संस्कृतच्छाया-
''वक्रेऽरण्ये अमनुष्यस्थाने, कान्तारे अल्पोदके अल्पभक्ष्ये।
सुदुर्गमे वर्णूपथस्य मध्ये, वक्रं भयान्नष्टमनसो मनुष्याः॥606॥
''नेह फलानि मूलमयानि च सन्ति, उपादानं नास्ति कुत्रेह भक्ष्यम्।
अन्यत्र पांशुभिश्च बालुकाभिश्च, तप्तभिरुष्णाभिश्च दारुणाभिश्च॥607॥
''उज्जाङ्गलं तप्तमिव कपालम्, अनायसं परलोकेन तुल्यम्।
लुब्धानामावासोऽयं पुराणो, भूमिप्रदेशः अभिशप्तरूपः॥608॥
''अथ यूयं केन वर्णेन, किम् आशास्यमाना इमं प्रदेशं हि।
अनुप्रविष्टाः सहसा समेत्य, लोभाद् भयाद् अथ वा सम्प्रमूढाः'' इति॥609॥
''मगधेष्वङ्गेषु च सार्थवाहाः, आरोप्य पण्यं पृथु।
ते यान्तः आसन् सिन्धुसौवीरभूमिम्, धनार्थिन उदयं प्रार्थयमानाः॥610॥
''दिवा पिपासामधिवासयन्तो, योग्यानुकम्पां च समीक्षमाणाः।
एतेन वेगेन आयाम सर्वे, रात्रौ मार्गं प्रतिपन्नाः विकाले॥611॥

हिन्दी-
पूर्ववत्.....गा० सं० 374, विमानवत्थु....॥606॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 375, विमानवत्थु....॥607॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 376, विमानवत्थु....॥608॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 377, विमानवत्थु....॥609॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 378, विमानवत्थु....॥610॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 379, विमानवत्थु....॥611॥

''ते दुप्पयाता अपरद्धमग्गा, अन्धाकुला विप्पनट्ठा अरञ्ञे।
सुदुग्गमे वण्णुपथस्स मज्झे, दिसं न जानाम पमूळ्हचित्ता॥612॥
''इदञ्च दिस्वान अदिट्ठपुब्बं, विमानसेट्ठञ्च तवञ्च यक्ख।
ततुत्तरिं जीवितमासमाना, दिस्वा पतीता सुमना उदग्गा'' ति॥613॥
''पारं समुद्दस्स इमञ्च वण्णुं, वेत्ताचरं सङ्कुपथञ्च मग्गं।
नदियो पन पब्बतानञ्च दुग्गा, पुथुद्दिसा गच्छथ भोगहेतु॥614॥
''पक्खन्दियान विजितं परेसं, वेरज्जके मानुसे पेक्खमाना।
यं वो सुतं वा अथ वापि दिट्ठं, अच्छेरकं तं वो सुणोम ताता'' ति॥615॥
''इतोपि अच्छेरतरं कुमार, न नो सुतं वा अथ वापि दिट्ठं।
अतीतमानुस्सकमेव सब्बं, दिस्वा न तप्पाम अनोमवण्णं॥616॥
''वेहायसं पोक्खरञ्ञो सवन्ति, पहूतमल्या बहुपुण्डरीका।
दुमा चिमे निच्चफलूपपन्ना, अतीव गन्धा सुरभिं पवायन्ति॥617॥

संस्कृतच्छाया- ''ते दुष्प्रयाता अपरार्द्धमार्गाः, अन्धाकुलाः विप्रनष्टा अरण्ये।
सुदुर्गमे वर्णूपथस्य मध्ये, दिशं न जानीम प्रमूढचित्ताः॥612॥
''इदं च दृष्ट्वा अदृष्टपूर्वं, विमानश्रेष्ठं च त्वं च यक्ष।
तदुत्तरं जीवितम् आशंसन्तः, दृष्ट्वा प्रतीताः सुमनसः उदग्राः'' इति॥613॥
''पारं समुद्रस्य इमं च वर्णम्(वन्यम्), वेत्राचारं शङ्कुपथं च मार्गम्।
नदीः पुनः पर्वतानां च दुर्गान्, पृथग् दिशः गच्छथ भोगहेतोः॥614॥
''<u>प्रस्कन्दि यानं</u> विजितं परेषां, विराज्यके मानुषे प्रेक्षमाणा।
यत् वः श्रुतं वा अथ वापि दृष्टम्, आश्चर्यकं तद् वः श्रोतुं ताताः'' इति॥615॥
''इतोऽपि आश्चर्यतरं कुमार, न तच्छ्रुतं वा अथवाऽपि दृष्टम्।
अतीतमानुष्यकमेव सर्वं, दृष्ट्वा तृप्याम अनवमवर्णम्॥616॥
''विहायसः पुष्करिण्यः स्रवन्ति, प्रभूतमाल्या बहुपुण्डरीकाः।
द्रुमाश्च इमे नित्यफलोपपन्नाः, अतीवगन्धाः सुरभयः प्रवान्ति॥617॥

हिन्दी- पूर्ववत्.....गा० सं० 380, विमानवत्थु....॥612॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 381, विमानवत्थु....॥613॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 382, विमानवत्थु....॥614॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 383, विमानवत्थु....॥615॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 384, विमानवत्थु....॥616॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 385, विमानवत्थु....॥617॥

''वेळूरियथम्भा सतमुस्सितासे, सिलापवाळस्स च आयतंसा।
मसारगल्ला सहलोहितङ्गा, थम्भा इमे जोतिरसामयासे॥618॥
''सहस्सथम्भं अतुलानुभावं, तेसूपरि साधुमिदं विमानं।
रतनन्तरं कञ्चनवेदिमिस्सं, तपनीयपट्टेहि च साधुछन्नं॥619॥
''जम्बोनदुत्तमिदं सुमट्ठो, पासादसोपाणफलूपपन्नो।
दळ्हो च वग्गु च सुसङ्गतो च, अतीव निज्झानखमो मनुञ्ञो॥620॥
''रतनन्तरस्मिं बहुअन्नपानं, परिवारितो अच्छरासङ्गणेन।
मुरजआलम्बरतूरियघुट्ठो, अभिवन्दितोसि थुतिवन्दनाय॥621॥
''सो मोदसि नारिगणप्पबोधनो, विमानपासादवरे मनोरमे।
अचिन्तियो सब्बगुणूपपन्नो, राजा यथा वेस्सवणो नळिन्या॥622॥
''देवो नु आसि उदवासि यक्खो, उदाहु देविन्दो मनुस्सभूतो।
पुच्छन्ति तं वाणिजा सत्थवाहा, आचिक्ख को नाम तुवंसि यक्खो'' ति॥623॥

संस्कृतच्छाया- ''वैदूर्यस्तम्भाः शतम् उच्छ्रिताः, शिलाप्रवालैश्चावतंसिताः।
मसारगल्लाः सहलोहिताङ्गाः, स्तम्भा इमे ज्योतिरसामयाः॥618॥
''सहस्रस्तम्भम् अतुलानुभावं, तेषाम् उपरि साधु इदं विमानम्।
रत्नान्तरं काञ्चनवेदिमिश्रम्, तपनीयपट्टैश्च साधुच्छन्नम्॥619॥
''जाम्बूनदौतप्तमिदं सुमृष्टम्, प्रासादसोपानफलोपपन्नः।
दृढं वल्गुं च सुसङ्गतं च, अतीव निध्यानक्षमं मनोज्ञम्॥620॥
''रत्नान्तरे बह्वन्नपानम्, परिवारितः अप्सरसाङ्गणेन।
मुरजाडम्बरतुर्यघुष्टः, अभिवन्दितः असि स्तुतिवन्दनाय॥621॥
''सः मोदसे नारिगणप्रबोधनो, विमानप्रासादवरे मनोरमे।
अचिन्त्यः सर्वगुणोपपन्नो, राजा यथा वैश्रवणः नलिन्याः॥622॥
''देवः नु आसीः उत वा असि यक्षः, उताहो देवेन्द्रः मनुष्यभूतः।
पृच्छन्ति त्वां वणिजः सार्थवाहाः, आचक्ष्व किं नाम त्वं असि यक्ष'' इति॥623॥

हिन्दी- पूर्ववत्.....गा० सं० 386, विमानवत्थु....॥618॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 387, विमानवत्थु....॥619॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 388, विमानवत्थु....॥620॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 389, विमानवत्थु....॥621॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 390, विमानवत्थु....॥622॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 391, विमानवत्थु....॥623॥

''सेरीसको नाम अहम्हि यक्खो, कन्तारियो वण्णुपथम्हि गुत्तो।
इमं पदेसं अभिपालयामि, वचनकरो वेस्सवणस्स रञ्ञो'' ति॥624॥
''अधिच्चलद्धं परिणामजं ते, सयं कतं उदाहु देवेहि दिन्नं।
पुच्छन्ति तं वाणिजा सत्थवाहा, कथं तया लद्धमिदं मनुञ्ञं'' ति॥625॥
''नाधिच्चलद्धं न परिणामजं मे, न सयं कतं न हि देवेहि दिन्नं।
सकेहि कम्मेहि अपापकेहि, पुञ्ञेहि मे लद्धमिदं मनुञ्ञं'' ति॥626॥
''किं ते वतं किं पन ब्रह्मचरियं, किस्स सुचिण्णस्स अयं विपाको।
पुच्छन्ति तं वाणिजा सत्थवाहा, कथं तया लद्धमिदं विमानं'' ति॥627॥
''ममं पायासीति अहु समञ्ञा, रज्जं यदा कारयिं कोसलानं।
नत्थिकदिट्ठि कदरियो पापधम्मो, उच्छेदवादी च तदा अहोसिं॥628॥
''समणो च खो आसि कुमारकस्सपो, बहुस्सुतो चित्तकथी उळारो।
सो मे तदा धम्मकथं अभासि, दिट्ठिविसूकानि विनोदयी मे॥629॥

संस्कृतच्छाया- ''शिरीषको नाम अहमस्मि यक्षः, कान्तार्यः वर्णुपथे(वन्यपथे) गुप्तः।
इमं प्रदेशम् अभिपालयामि, वचनकरः वैश्रवणस्य राज्ञः'' इति॥624॥
''अधीत्य लब्धं परिणामजं ते, स्वयं कृतम् उताहो देवैः दत्तम्।
पृच्छन्ति त्वां वणिजः सार्थवाहाः, कथं त्वया लब्धमिदं मनोज्ञम्'' इति॥625॥
''नाधीत्य लब्धं न परिणामजं मे, न स्वयं कृतं न हि देवैः दत्तम्।
स्वकैः कर्मभि अपापकैः, पुण्यैः मे लब्धमिदं मनोज्ञम्'' इति॥626॥
''किं ते व्रतं किं पुनः ब्रह्मचर्यम्, कस्य शुचीर्णस्य अयं विपाकः।
पृच्छन्ति त्वां वणिजः सार्थवाहाः, कथं त्वया लब्धमिदं विमानम्'' इति॥627॥
''मम पायासि इति अभूत् समज्ञात्, राज्यं यदा अकार्षं कोशलानाम्।
नास्तिकदृष्टिः कदर्यः पापधर्मा, उच्छेदवादी च तदा अभूवम्॥628॥
''श्रमणश्च खलु आसीत् कुमारकश्यपः, बहुश्रुतः चित्रकथीः उदारः।
सः मे तदा धर्मकथाम् अभाषत, दृष्टिविसूकानि व्यनोदयत् मे॥629॥

हिन्दी- पूर्ववत्.....गा० सं० 392, विमानवत्थु....॥624॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 393, विमानवत्थु....॥625॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 394, विमानवत्थु....॥626॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 395, विमानवत्थु....॥627॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 396, विमानवत्थु....॥628॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 397, विमानवत्थु....॥629॥

''ताहं तस्स धम्मकथं सुणित्वा, उपासकत्तं पटिदेवयिस्सं।
पाणातिपाता विरतो अहोसिं, लोके अदिन्नं परिवज्जयिस्सं।
अमज्जपो नो च मुसा अभाणिं, सकेन दारेन च अहोसि तुट्ठो॥630॥
''तं मे वतं तं पन ब्रह्मचरियं, तस्स सुचिण्णस्स अयं विपाको।
तेहेव कम्मेहि अपापकेहि, पुञ्ञेहि मे लद्धमिदं विमानं'' ति॥631॥
''सच्चं किराहंसु नरा सपञ्ञा, अनञ्ञथा वचनं पण्डितानं।
यहिं यहिं गच्छति पुञ्ञकम्मो, तहिं तहिं मोदति कामकामी॥632॥
''यहिं यहिं सोकपरिद्दवो च, वधो च बन्धो च परिक्किलेसो।
तहिं तहिं गच्छति पापकम्मो, न मुच्चति दुग्गतिया कदाची'' ति॥633॥
''सम्मूळ्हरूपोव जनो अहोसि, अस्मिं मुहुत्ते कललीकतोव।
जनस्सिमस्स तुय्हञ्च कुमार, अप्पच्चयो केन नु खो अहोसी'' ति॥634॥
''इमे च सिरीसवना ताता, दिब्बा गन्धा सुरभी सम्पवन्ति।
ते सम्पवायन्ति इमं विमानं, दिवा च रत्तो च तमं निहन्त्वा॥635॥

संस्कृतच्छाया-
''तस्माद् अहं तस्य धर्मकथां श्रुत्वा, उपासकत्वं प्रत्यवेदिषम्।
प्राणातिपाताद् विरतः अभूवम्, लोके अदत्तं पर्यवर्यजम्।
अमद्यपः नो च मृषा अभणम्, स्वकैः दाराभिः च अभूवम् तुष्टः॥630॥
''तद् मे व्रतं तत् पुनः ब्रह्मचर्यम्, तस्य सुचीर्णस्य अयं विपाकः।
तैः एव कर्मभिः अपापकैः, पुण्यैः मे लब्धमिदं विमानम्'' इति॥631॥
''सत्यं किल आहुः नराः सप्रज्ञाः, अनन्यथा वचनं पण्डितानाम्।
यत्र यत्र गच्छति पुण्यकर्मा, तत्र तत्र मोदते कामकामी॥632॥
''यत्र यत्र शोकपरिद्रवश्च, वधश्च बन्धः च परिक्लेशः।
तत्र तत्र गच्छति पापकर्मा, न मुञ्चन्ति दुर्गतयः कदाचिद्'' इति॥633॥
''सम्मूढरूपः इव जनः अभवत्, अस्मिन् मुहूर्ते कललीकृतः इव।
जनस्य अस्य तुभ्यं च कुमार, अप्रत्ययः केन नु खलु अभूत्'' इति॥634॥
''इमे च शिरीषवनात् ताताः, दिव्याः गन्धाः सुरभयः सम्प्रवान्ति।
ते सम्प्रवाहयन्ति इदं विमानम्, दिवा च रात्रौ च तमः निहत्य॥635॥

हिन्दी-
पूर्ववत्.....गा० सं० 398, विमानवत्थु....॥630॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 399, विमानवत्थु....॥631॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 400, विमानवत्थु....॥632॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 401, विमानवत्थु....॥633॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 402, विमानवत्थु....॥634॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 403, विमानवत्थु....॥635॥

''इमेसञ्च खो वस्ससतच्चयेन, सिपाटिका फलति एकमेका।
मानुस्सकं वस्ससतं अतीतं, यदग्गे कायम्हि इधूपपन्नो॥636॥
''दिस्वानहं वस्ससतानि पञ्च, अस्मिं विमाने ठत्वान ताता।
आयुक्खया पुञ्ञक्खया चविस्सं, तेनेव सोकेन पमुच्छितोस्मी'' ति॥637॥
''कथं नु सोचेय्य तथाविधो सो, लद्धा विमानं अतुलं चिराय।
ये चापि खो इत्तरमुपपन्ना, ते नून सोचेय्युं परित्तपुञ्ञा'' ति॥638॥
''अनुच्छविं ओवदियञ्च मे तं, यं मं तुम्हे पेय्यवाचं वदेथ।
तुम्हे च खो ताता मयानुगुत्ता, येनिच्छकं तेन पलेथ सोत्थिं'' ति॥639॥
''गन्त्वा मयं सिन्धुसोवीरभूमिं, धन्नत्थिका उद्दयं पत्थयाना।
यथापयोगा परिपुण्णचागा, काहाम सेरीसमहं उळारं'' ति॥640॥
''मा चेव सेरीसमहं अकत्थ, सब्बञ्च वो भविस्सति यं वदेथ।
पापानि कम्मानि विवज्जयाथ, धम्मानुयोगञ्च अधिट्ठहाथ॥641॥

संस्कृतच्छाया- ''एषां च खलु वर्षशतोच्चयेन, सिपाटिका फलति एकैका।
मानुष्यकं वर्षशतं अतीतम्, यदग्रे काये इहोपपन्नः॥636॥
''दृष्ट्वाहं वर्षशतानि पञ्च, अस्मिन् विमाने स्थित्वा ताताः।
आयुःक्षयात् पुण्यक्षयात् च विश्वम्, तेनैव शोकेन प्रमूर्च्छितोस्मि'' इति॥637॥
''कथं नु शोचेत् तथाविधः सः, लब्ध्वा विमानम् अतुलं चिराय।
ये च अपि खलु इतरे उपपन्नाः, ते नूनं शोचेयुः प्ररिक्तपुण्याः'' इति॥638॥
''अनुच्छविम् अवदत् च मां तत्, यत् मां यूयं प्रेयोवाचं वदथ।
यूयं च खलु तताः मयानुगुप्ताः, येनेष्टं तेन पलायध्वं स्वस्ति'' इति॥639॥
''गत्वा वयं सिन्धुसौवीरभूमिम्, धनार्थिका उदयं प्रार्थमानाः।
यथाप्रयोगाः परिपूर्णागाराः, कारयिष्यामः शिरीषमहम् उदारम्'' इति॥640॥
''मा चैव शिरीषमहम् कार्षम्, सर्वं च वः भविष्यति यद् वदथ।
पापानि कर्माणि विवर्जयत, धर्मानुयोगं च अधितिष्ठथ॥641॥

हिन्दी- पूर्ववत्.....गा० सं० 404, विमानवत्थु....॥636॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 405, विमानवत्थु....॥637॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 406, विमानवत्थु....॥638॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 407, विमानवत्थु....॥639॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 408, विमानवत्थु....॥640॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 409, विमानवत्थु....॥641॥

''उपासको अत्थि इमम्हि सङ्घे, बहुस्सुतो सीलवतूपपन्नो।
सद्धो च चागी च सुपेसलो च, विचक्खणो सन्तुसितो मुतीमा॥642॥
''सञ्जानमानो न मुसा भणेय्य, परूपघाताय च चेतयेय्य।
वेभूतिकं पेसुणं नो करेय्य, सण्हञ्च वाचं सखिलं भणेय्य॥643॥
''सगारवो सप्पटिस्सो विनीतो, अपापको अधिसीले विसुद्धो।
सो मातरं पितरञ्चापि जन्तु, धम्मेन पोसेति अरियवुत्ति॥644॥
''मञ्ञे सो मातापितूनं कारणा, भोगानि परियेसति न अत्तहेतु।
मातापितूनञ्च यो अच्चयेन, नेक्खम्मपोणो चरिस्सति ब्रह्मचरियं॥645॥
''उजू अवङ्को असठो अमायो, न लेसकप्पेन च वोहरेय्य।
सो तादिसो सुकतकम्मकारी, धम्मे ठितो किन्ति लभेथ दुक्खं॥646॥
''तं कारणा पातुकतोम्हि अत्तना, तस्मा धम्मं पस्सथ वाणिजासे।
अञ्ञत्र तेनिह भस्मी भवेथ, अन्धाकुला विप्पनट्ठा अरञ्ञे।
तं खिप्पमानेन लहुं परेन, सुखो हवे सप्पुरिसेन सङ्गमो'' ति॥647॥

संस्कृतच्छाया- ''उपासकः अस्ति अस्मिन् सङ्घे, बहुश्रुतः शीलव्रतोपपन्नः।
सश्रद्धश्च त्यागी च सुपेशलः च, विचक्षणः सन्तृषित(सन्तुष्टः) स्मृतिमान्॥642॥
''सञ्जानन् न मृषा भणेत्, परोपघाताय न चेतयेत्।
वैभूतिकं पैशुन्यं नो कुर्यात्, श्लक्ष्णां च वाचं सखिलं भणेत्॥643॥
''सगौरवः सप्रतिस्रः(सप्रतिस्रब्धः) विनीतः, अपापकः अधिशीलः विशुद्धः।
सः मातरं पितरं च अपि जन्तुः, धर्मेण पोषयति आर्यवृत्तिः॥644॥
''मन्ये सः मातापित्रोः कारणात्, भोगान् पर्यास्ते न आत्महेतोः।
मातापित्रोश्च योऽत्ययेन, नैष्कर्म्यपूर्णः चरिष्यति ब्रह्मचर्यम्॥645॥
''ऋजुः अवक्रः अशठः अमायः, न लेशकल्पेन च व्यवहार्य।
सः तादृशः सुकृतकर्मकारी, धर्मे स्थितः किम् इति लभेत दुःखम्॥646॥
''तत्कारणात् प्रादुष्कृतोऽस्मि आत्मना, तस्मात् धर्मं पश्यथ वणिजः।
अन्यत्र तेन इह भस्मीभविष्यथ, अन्धाकुलाः विप्रनष्टाः अरण्ये।
तत् क्षिप्यमानेन लघु परेण, सुखदः भवति सत्पुरुषेण सङ्गमः'' इति॥647॥

हिन्दी- पूर्ववत्.....गा० सं० 410, विमानवत्थु....॥642॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 411, विमानवत्थु....॥643॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 412, विमानवत्थु....॥644॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 413, विमानवत्थु....॥645॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 414, विमानवत्थु....॥646॥

''किं नाम सो किञ्च करोति कम्मं, किं नामधेय्यं किं पन तस्स गोत्तं।
मयम्पि नं दट्ठुकामम्ह यक्ख, यस्सानुकम्पाय इधागतोसि।
लाभा हि तस्स यस्स तुवं पिहेसी'' ति॥648॥
''यो कप्पको सम्भवनामधेय्यो, उपासको कोच्छफलूपजीवी।
जानाथ नं तुम्हाकं पेसियो सो, मा खो नं हीळित्थ सुपेसलो सो'' ति॥649॥
''जानामसे यं त्वं पवदेसि यक्ख, न खो नं जानाम स एदिसोति।
मयम्पि नं पूजयिस्साम यक्ख, सुत्वान तुय्हं वचनं उळारं'' ति॥650॥
''ये केचि इमस्मिं सत्थे मनुस्सा, दहरा महन्ता अथवापि मज्झिमा।
सब्बेव ते आलम्बन्तु विमानं, पस्सन्तु पुञ्ञानं फलं कदरिया'' ति॥651॥
ते तत्थ सब्बेव 'अहं पुरे'ति, तं कप्पकं तत्थ पुरक्खत्वा।
सब्बेव ते आलम्बिंसु विमानं, मसक्कसारं विय वासवस्स॥652॥

संस्कृतच्छाया- ''किंनामा सः किं च करोति कर्म, किं नामधेयः किं पुनः तस्य गोत्रम्।
वयमपि नु द्रष्टुकामाः वयं यक्ष, यस्यानुकम्पया इहागतोसि।
लाभः हि तस्य, यस्मै त्वं स्पृहयसि'' इति॥648॥
''यः कल्पकः सम्भवनामधेयः, उपासकः कोच्छ्रफलोपजीवी।
जानीहि तं युष्माकं प्रेषकः सः, मा खलु ते हिण्डध्वे सुपेशलः सः'' इति॥649॥
''जानीमः यत् त्वं प्रवदसि यक्ष, न खलु तं जानीमः सः ईदृश इति।
वयमपि तं पूजयिष्याम यक्ष, श्रुत्वा तव वचनम् उदारम्'' इति॥650॥
''ये केचिद् अस्मिन् सार्थाः मनुष्याः, दहराः महान्तः अथवापि मध्यमाः।
सर्व एव ते आलम्बन्तु विमानम्, पश्यन्तु पुण्यानां फलं कदर्याः'' इति॥651॥
ते तत्र सर्वे एव 'अहं पुरा' इति, तं कल्पकं तत्र पुरस्कृत्य।
सर्वे एव ते आलम्बन्त विमानम्, मसारसारमिव वासवस्य॥652॥

हिन्दी- पूर्ववत्.....गा० सं० 415, विमानवत्थु....॥647॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 416, विमानवत्थु....॥648॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 417, विमानवत्थु....॥649॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 418, विमानवत्थु....॥650॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 419, विमानवत्थु....॥651॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 420, विमानवत्थु....॥652॥

ते तत्थ सब्बेव 'अहं पुरे'ति, उपासकत्तं पटिवेदयिंसु।
पाणातिपाता पटिविरता अहेसुं, लोके अदिन्नं परिवज्जयिंसु।
अमज्जपा नो च मुसा भणिंसु, सकेन दारेन च अहेसुं तुट्ठा॥653॥
ते तत्थ सब्बेव 'अहं पुरे'ति, उपासकत्तं पटिवेदयित्वा।
पक्कामि सत्थो अनुमोदमानो, यक्खिद्धिया अनुमतो पुनप्पुनं॥654॥
गन्त्वान ते सिन्धुसोवीरभूमिं, धनत्थिका उद्दयं पत्थयाना।
यथापयोगा परिपुण्णलाभा, पच्चागमुं पाटलिपुत्तमक्खतं॥655॥
गन्त्वान ते सङ्घरं सोत्थिवन्तो, पुत्तेहि दारेहि समङ्गिभूता।
आनन्दी वित्ता सुमना पतीता, अकंसु सेरीसमहं उळारं।
सेरीसकं ते परिवेणं मापयिंसु॥656॥
एतादिसा सप्पुरिसान सेवना, महत्थिका धम्मगुणान सेवना।
एकस्स अत्थाय उपासकस्स, सब्बेव सत्ता सुखिता अहेसुन्ति॥657॥

सेरीसकपेतवत्थु दुतियं।
भाणवारं ततियं निट्ठितं।

संस्कृतच्छाया- ते तत्र सर्वैव 'अहं पुरा' इति, उपासकत्वं प्रत्यवेदयन्।
प्राणातिपातात् विरता अभूवन्, लोके अदत्तं पर्यवर्जयन्।
अमद्यपाः नो च मृषा अभाणिषुः, स्वकीयैः दारैश्च अभूवन् तुष्टाः॥653॥
ते तत्र सर्वे एव 'अहं पुरा' इति, उपासकत्वं प्रतिवेद्य।
प्राक्रामीत् सार्थः अनुमोदमानः, यक्षर्ध्या अनुमतः पुनः पुनः॥654॥
''गत्वा ते सिन्धुसौवीरभूमिम्, धनार्थिनः उदयं प्रार्थयमानाः।
यथाप्रयोगाः परिपूर्णलाभाः, प्रत्यागमन् पाटलिपुत्रमक्षतम्॥655॥
''गत्वा ते स्वं गृहं स्वस्तिमन्तः, पुत्रैः दारैः समङ्गिभूताः।
आनन्दिवित्ताः सुमनसः प्रतीताः, अकार्षुः शिरीषमहम् उदारम्।
शिरीषकं ते परिवेणं(परिवनं) निरमायिषत॥656॥
एतादृशां सत्पुरुषाणां सेवनात्, महार्थिकाः धर्मगुणानां सेवनात्।
एकस्य अर्थाय उपासकस्य, सर्वाणि एव सत्वानि सुखितानि अभूवन् इति॥657॥

हिन्दी- पूर्ववत्.....गा० सं० 421, विमानवत्थु....॥653॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 422, विमानवत्थु....॥654॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 423, विमानवत्थु....॥655॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 424, विमानवत्थु....॥656॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 425, विमानवत्थु....॥657॥

3. नन्दकपेतवत्थु

राजा पिङ्गलको नाम, सुरट्ठानं अधिपति अहु।
मोरियानं उपट्ठानं गन्त्वा, सुरट्ठं पुनरागमा॥658॥
उण्हे मज्झन्हिके काले, राजा पङ्कं उपागमि।
अद्दस मग्गं रमणीयं, पेतानं तं वण्णुपथं॥659॥
सारथिं आमन्तयी राजा –
''अयं मग्गो रमणीयो, खेमो सोवत्थिको सिवो।
इमिना सारथि याम, सुरट्ठानं सन्तिके इतो''॥660॥
तेन पायासि सोरट्ठो, सेनाय चतुरङ्गिनिया।
उब्बिग्गरूपो पुरिसो, सोरट्ठं एतदब्रवि॥661॥
''कुम्मग्गं पटिपन्नम्हा, भिंसनं लोमहंसनं।
पुरतो दिस्सति मग्गो, पच्छतो च न दिस्सति॥662॥

संस्कृतच्छाया- राजा पिङ्गलकः नाम्ना, सौराष्ट्राणाम् अधिपतिः अभूत्।
मौर्याणाम् उपस्थानं गत्वा, सौराष्ट्रं पुनरागमत्॥658॥
उष्णे मध्याह्ने काले, राजा वक्रम् उपागमत्।
अद्राक्षीत् मार्गं रमणीयं, प्रेतानां तं वर्णुपथम्॥659॥
सारथिम् आमन्त्रयद् राजा –
''अयं मार्गः रमणीयः, क्षेमंकरः सौवस्तिकः शिवः।
अनेन सारथे याम, सौराष्ट्राणाम् अन्तिके इतः''॥660॥
तेन प्रायात् सौराष्ट्रीयः, सेनया चतुरङ्गिण्या।
उद्विग्नरूपः पुरुषः, सौराष्ट्रम् एतदब्रवीत्॥661॥
''कुमार्गं प्रतिपन्नाः स्मः, भीषणं लोमहर्षणम्।
पुरतः दृश्यते मार्गः, पश्चाच्च न दृश्यते॥662॥

हिन्दी- सौराष्ट्र प्रदेश में एक पिङ्गलक नामक राजा थे। वह कभी मौर्यराज्यसभा से होकर पुनः सौराष्ट्र लौट रहे थे॥658॥

तब ग्रीष्मऋतु के मध्याह्न काल में राजा के सम्मुख एक वक्र(टेढ़ा) मार्ग आ गया। वहाँ उसनें उस रमणीय और रेतीले प्रदेश को देखा जो उन प्रेतों का मार्ग था॥659॥

तब राजा ने अपने सारथि से कहा– सारथि! यह मार्ग रमणीय, सुखकर एवं मंगलप्रद प्रतीत होता है। सम्भवतः हम इस मार्ग का अनुसरण कर यहाँ से अपने सौराष्ट्र देश के निकट पहुँच पायँ॥660॥

और वह सौराष्ट्र(राजा) अपनी चतुरङ्गिणि सेना के साथ उसी मार्ग पर चल दिया। परन्तु उनमे से एक पुरुष नें उद्विग्न हो कर राजा से यह कहा–॥661॥

''कुम्मग्गं पटिपन्नम्हा, यमपुरिसान सन्तिके।
अमानुसो वायति गन्धो, घोसो सुय्यति दारुणो''॥663॥
संविग्गो राजा सोरट्ठो, सारथिं एतदब्रवि।
''कुम्मग्गं पटिपन्नम्हा, भिंसनं लोमहंसनं।
पुरतो दिस्सति मग्गो, पच्छतो च न दिस्सति॥664॥
''कुम्मग्गं पटिपन्नम्हा, यमपुरिसान सन्तिके।
अमानुसो वायति गन्धो, घोसो सुय्यति दारुणो''॥665॥
हत्थिक्खन्धं समारुय्ह, ओलोकेन्तो चतुद्दिसं।
अद्दस निग्रोधं रमणीयं, पादपं छायासम्पन्नं।
नीलब्भवण्णसदिसं, मेघवण्णसिरीनिभं॥666॥
सारथिं आमन्तयी राजा, ''किं एसो दिस्सति ब्रहा।
नीलब्भवण्णसदिसो, मेघवण्णसिरीनिभो''॥667॥

संस्कृतच्छाया- ''कुमार्गं प्रतिपन्नाः स्मः, यमपुरुषाणां अन्तिके।
अमानुषः वाति गन्धः, घोषः श्रूयते दारुणः''॥663॥
संविग्नः राजा सौराष्ट्रीयः, सारथिम् एतदब्रवीत्।
''कुमार्गं प्रतिपन्नाः स्मः, भीषणं लोमहर्षणम्।
पुरतः दृश्यते मार्गः, पश्चाच्च न दृश्यते॥664॥
''कुमार्गं प्रतिपन्नाः स्मः, यमपुरुषाणां अन्तिके।
अमानुषः वाति गन्धः, घोषः श्रूयते दारुणः''॥665॥
हस्तिस्कन्धं समारुह्य, आलोकयन् चतुर्दिक्षु।
अद्राक्षीत् न्यग्रोधं रमणीयं, पादपं छायासम्पन्नम्।
नीलाभ्रवर्णसदृशं, मेघवर्णश्रीनिभम्॥666॥
सारथिमामन्त्रयत् राजा, ''किम् एषः दृश्यते बृहन्।
नीलाभ्रवर्णसदृशः, मेघवर्णश्रीनिभः''॥667॥

हिन्दी- कि हमने गलत मार्ग का अनुसरण कर लिया है; क्योंकि यह आगे आगे भीषण एवं रोमांचकारी होता जा रहा है। यहाँ आगे जाने वाला मार्ग तो दिख रहा है, परन्तु पीछे का मार्ग नहीं दिख रहा है॥662॥

यह कुमार्ग का अनुसरण तो हमें मानो मृत्यु के मुख में ले जा रहा है! इस पर कुछ ऐसे गन्ध वाली वायु बह रही है जो मनुष्यलोक में नहीं बहा करती। तथा यहाँ भयंकर एवं चीत्कारयुक्त घोष भी सुनायी दे रहे हैं॥663॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 662....॥664॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 663....॥665॥

तब राजा ने हाथी के पीठ पर चढ़ कर चारों दिशाओं में देखते समय एक काले मेघ के समान छायायुक्त सघन तथा सुन्दर व रमणीय न्यग्रोध(वट) वृक्ष देखा॥666॥

और उसी समय राजा ने सारथि को आमन्त्रित कर पूछा— यह काले मेघ के सदृश काले रंग का यह बृहदाकार क्या दिखायी दे रहा है?॥667॥

''निग्रोधो सो महाराज, पादपो छायासम्पन्नो।
नीलब्भवण्णसदिसो , मेघवण्णसिरीनिभो''॥668॥
तेन पायासि सोरट्ठो, येन सो दिस्सते ब्रहा।
नीलब्भवण्णसदिसो, मेघवण्णसिरीनिभो॥669॥
हत्थिक्खन्धतो ओरुय्ह, राजा रुक्खं उपागमि।
निसीदि रुक्खमूलस्मिं, सामच्चो सपरिज्जनो।
पूरं पानीयसरकं, पूवे वित्ते च अद्दस॥670॥
पुरिसो च देववण्णी, सब्बाभरणभूसितो।
उपसङ्कमित्वा राजानं, सोरट्ठं एतदब्रवि॥671॥
''स्वागतं ते महाराज, अथो ते अदुरागतं।
पिवतु देवो पानीयं, पूवे खाद अरिन्दम''॥672॥

संस्कृतच्छाया- ''न्यग्रोधः सः महाराज, पादपः छायासम्पन्नः।
नीलाभ्रवर्णसदृशः, मेघवर्णश्रीनिभः॥668॥
तेन प्रयासि सौराष्ट्रः, येन सः दृश्यते बृहन्।
नीलाभ्रवर्णसदृशः, मेघवर्णश्रीनिभः॥669॥
हस्तिस्कन्धतः अवरुह्य, राजा वृक्षम् उपागमत्।
न्यषीदद् वृक्षमूले, सामात्यः सपरिजनः।
पूर्णं पानीयसरकं, पूपं वित्तं च अद्राक्षीत्॥670॥
पुरुषश्च देववर्णः, सर्वाभरणभूषितः।
उपसङ्क्रम्य राजानम्, सौराष्ट्रम् एतदब्रवीत्॥671॥
''स्वागतं ते महाराज, अथ त्वम् अतिदूरादागतः।
पिबतु देवः पानीयं, पूपं खाद अरिन्दम''॥672॥

हिन्दी- हे महाराज! यह काले मेघ के सदृश एक छायायुक्त घना वटवृक्ष है॥668॥

तब वह सौराष्ट्र नरेश उस दूर दिखायी देने वाले काले मेघ के सदृश तथा छायायुक्त वृक्ष के पास पहुँचा॥669॥

और हाथी के पीठ से उतर कर वह अपने मन्त्रियों तथा अन्य राजपुरुषों समेत उस वृक्ष के नीचे गया और उस वृक्ष की छाया में बैठ गया। वहाँ उसने एक जलपूर्ण पात्र तथा विपुल मात्रा में रखे हुए मालपूए देखे॥670॥

उस समय वहाँ सर्वालङ्कारभूषित कोई देवस्वरूप पुरुष राजा के सम्मुख आकर यह बोला—॥671॥

महाराज! आपका स्वागत है, आप बहुत दूर से आ रहे हैं, अतः हे देव!, हे शत्रुमर्दन! आप ये मालपूए खाएँ तथा जल ग्रहण करें!॥672॥

पिवित्वा राजा पानीयं, सामच्चो सपरिज्जनो।
पूवे खादित्वा पित्वा च, सोरट्ठो एतदब्रवि॥673॥
''देवता नुसि गन्धब्बो, अदु सक्को पुरिन्ददो।
अजानन्ता तं पुच्छाम, कथं जानेमु तं मयं'' ति॥674॥
''नाम्हि देवो न गन्धब्बो, नापि सक्को पुरिन्ददो।
पेतो अहं महाराज, सुरट्ठा इध मागतो'' ति॥675॥
''किंसीलो किंसमाचारो, सुरट्ठस्मिं पुरे तुवं।
केन ते ब्रह्मचरियेन, आनुभावो अयं तवा'' ति॥676॥
''तं सुणोहि महाराज, अरिन्दम रट्ठवड्ढन।
अमच्चा पारिसज्जा च, ब्राह्मणो च पुरोहितो॥677॥

संस्कृतच्छाया- पीत्वा राजा पानीयं, सामात्यः सपरिजनः।
पूपं खादित्वा पीत्वा च, सौराष्ट्र एतदब्रवीत्॥673॥
''देवता नु असि गन्धर्वः, उत शक्रः पुरन्दरः।
अजानन्तस्त्वां पृच्छामः, कथं जानीमस्त्वां वयम्'' इति॥674॥
''नास्मि देवो न गन्धर्वः, नापि शक्रः पुरन्दरः।
प्रेतोऽहं महाराज, सौराष्ट्राद् इहागतः'' इति॥675॥
''कश्शीलः कः समाचारः, सौराष्ट्रे पुरा तव।
केन ते ब्रह्मचर्येण, आनुभावोऽयं तव'' इति॥676॥
''त्वं श्रृणु महाराज, अरिन्दम राष्ट्रवर्धन।
अमात्याः पारिषदाश्च, ब्राह्मणश्च पुरोहितः॥677॥

हिन्दी- तब राजा ने मन्त्रियों तथा दरबारियों समेत पूए खा कर तथा जल पीकर उस देवस्वरूप पुरुष से यह कहा—॥673॥

आप कोई देवता हैं या गन्धर्व? या साक्षात् देवराज इन्द्र ही हैं। हम आपके विषय में कुछ भी नहीं जानते, अतः आपसे पूछ रहे हैं कि हम आपको किस प्रकार से जानें?॥674॥

न मैं कोई देवता हूँ, न गन्धर्व; न देवराज इन्द्र ही हूँ। मैं तो सौराष्ट्र प्रदेश से यहाँ आया एक प्रेत हूँ॥675॥

पूर्व में सौराष्ट्र में आपका क्या आचार-विचार था? किस ब्रह्मचर्या के द्वारा आपने यह भोग-उपभोग प्राप्त किए हैं?॥676॥

हे राष्ट्रवर्धन् एवं शत्रुमर्दन महाराज! आप अपने मन्त्री, परिषद् एवं पुरोहित व ब्राह्मण समेत मुझे सुनें॥677॥

‘‘सुरट्ठस्मिं अहं देव, पुरिसो पापचेतसो।
मिच्छादिट्ठि च दुस्सीलो, कदरियो परिभासको॥678॥
‘‘‘ददन्तानं करोन्तानं, वारयिस्सं बहुज्जनं।
अञ्ञेसं ददमानानं, अन्तरायकरो अहं॥679॥
‘‘‘विपाको नत्थि दानस्स, संयमस्स कुतो फलं।
नत्थि आचरियो नाम, अदन्तं को दमेस्सति॥680॥
‘‘‘समतुल्यानि भूतानि, कुतो जेट्ठापचायिको।
नत्थि बलं वीरियं वा, कुतो उट्ठानपोरिसं॥681॥
‘‘‘नत्थि दानफलं नाम, न विसोधेति वेरिनं।
लद्धेय्यं लभते मच्चो, नियतिपरिणामजं682॥

संस्कृतच्छाया- ‘‘सौराष्ट्रेऽहं देव, पुरुषः पापचेताः।
मिथ्यादृष्टिश्च दुःशीलः, कदर्यः परिभाषकः॥678॥
‘‘‘ददानान् कुर्वतः, न्यवारयं बहुजनान्।
अन्येभ्यो ददानानाम्, अन्तरायकरोऽहम्॥679॥
‘‘‘विपाको नास्ति दानस्य, संयमस्य कुतः फलम्।
नास्ति आचार्यः नाम्ना, अददानान् कः दमयिष्यति॥680॥
‘‘‘समतुल्यानि भूतानि, कुतः ज्येष्ठापचायिकः।
नास्ति बलं वीर्यं वा, कुत उत्थानपौरुषम्॥681॥
‘‘‘नास्ति दानफलं नाम, न विशोधयति वैरिणम्।
लभ्यं लभते मर्त्यः, नियतिपरिणामजम्॥682॥

हिन्दी- हे देव! मैं सौराष्ट्र में एक पापीचित्त वाला, मिथ्यादृष्टि, दुःशील, कंजूस तथा परनिन्दक पुरुष था॥678॥

मैं दान करने वाले बहुत जनों को वैसा करने से रोका करता था। मैं इन दाताओं के पुण्य क्रियाओं में बाधा भी डालता था॥679॥

मैं लोगों को कहता और समझाता था कि जब दान करने का कोई शुभ फल नहीं होता तो इन्द्रिय-संयम का क्या फल होगा! कोई धर्मोपदेष्टा ऐसा नहीं है, जिसको उपदेश की आवश्यकता न हो, उसको कोई उपदेश करके क्या लाभ पाएगा!॥680॥

जहाँ समस्त प्राणी समान हैं तब उनमें परस्पर पूज्य एवं गौरव भाव क्यों? जहाँ सभी समान बल वीर्य वाले हैं तो किसी एक का अभ्युत्थान व पौरुषभाव क्यों?॥681॥

यह सम्भव नहीं कि दानादि कर्म द्वारा किसी वैरी का चित्त शुद्ध हो जाय। प्राणी अपने भाग्य में लिखा हुआ ही प्राप्त करता है॥682॥

‘‘‘नत्थि माता पिता भाता, लोको नत्थि इतो परं।
नत्थि दिन्नं नत्थि हुतं, सुनिहितं न विज्जति॥683॥
‘‘‘योपि हनेय्य पुरिसं, परस्स छिन्दते सिरं।
न कोचि कञ्चि हनति, सत्तन्नं विवरमन्तरे॥684॥
‘‘‘अच्छेज्जाभेज्जो हि जीवो, अट्ठंसो गुळपरिमण्डलो।
योजनानं सतं पञ्च, को जीवं छेत्तुमरहति॥685॥
‘‘‘यथा सुत्तगुळे खित्ते, निब्बेठेन्तं पलायति।
एवमेव च सो जीवो, निब्बेठेन्तो पलायति॥686॥
‘‘‘यथा गामतो निक्खम्म, अञ्ञं गामं पविसति।
एवमेव च सो जीवो, अञ्ञं बोन्दिं पविसति॥687॥
‘‘‘यथा गेहतो निक्खम्म, अञ्ञं गेहं पविसति।
एवमेव च सो जीवो, अञ्ञं बोन्दिं पविसति॥688॥

संस्कृतच्छाया- ‘‘‘नास्ति माता पिता भ्राता, लोको नास्ति इतः परम्।
नास्ति दत्तं नास्ति हुतं, सुनिहितं न विद्यते॥683॥
‘‘‘योऽपि हन्ति पुरुषं, परस्य छिनत्ति शिरः।
न कश्चित् कञ्चिद् हन्ति, सप्तानां विवरस्यान्तरे॥684॥
‘‘‘अच्छेद्याभेद्यो हि जीवः, अष्टांशः गोलकपरिमण्डलः।
योजनानां शतं पञ्च, कः जीवं छेत्तुमर्हति॥685॥
‘‘‘यथा सूत्रगोलके क्षिप्ते, निम्नस्थानं पलायते।
एवमेव च सः जीवः, निम्नस्थानं पलायते॥686॥
‘‘‘यथा ग्रामतः निष्क्रम्य, अन्यं ग्रामं प्रविशति।
एवमेव च सः जीवः, अन्यं बन्धं प्रविशति॥687॥
‘‘‘यथा गेहतः निष्क्रम्य, अन्यं गृहं प्रविशति।
एवमेव च सः जीवः, अन्यं बन्धं प्रविशति॥688॥

हिन्दी- यहाँ से परे न कोई किसी की माता है, न कोई किसी का पिता और न कोई किसी का भाई! न दान है न कोई परिणाम देने वाला है, न कुछ हवन। अतः यहाँ सुरक्षित कुछ भी नहीं है॥683॥

जो किसी पुरुष की हत्या करता है, या कराता है— ये दोनों ही कर्म कोई महत्त्व नहीं रखते; क्योंकि इन सातों लोकों में कोई किसी की हत्या नहीं कर सकता॥684॥

इन सात विवरों(लोकों) के मध्य जीव अछेद्य एवं अभेद्य है। इस आठ भाग वाले वृत्ताकार गोल में कौन किसकी हत्या कर सकता है!॥685॥

जैसे कोई सूत का गोला भूमि पर फेंकने पर आगे की ओर लुढकता चला जाता है; उसी प्रकार यह जीव भी हत्या के बाद आगे बढ जाता है॥686॥

जिस प्रकार कोई एक ग्राम से निकल कर दूसरे ग्राम में प्रवेश करता है; उसी प्रकार वह जीव भी एक से दूसरे शरीर में प्रविष्ट हो जाता है॥687॥

जिस प्रकार कोई एक घर से निकल कर दूसरे घर को जाता है वैसे ही यह जीव भी एक शरीर से निकलकर दूसरे शरीर में प्रविष्ट हो जाता है॥688॥

‘‘‘चुल्लासीति महाकप्पिनो, सतसहस्सानि हि।
ये बाला ये च पण्डिता, संसारं खेपयित्वान।
दुक्खस्सन्तं करिस्सरे॥689॥
‘‘‘मितानि सुखदुक्खानि, दोणेहि पिटकेहि च।
जिनो सब्बं पजानाति’, सम्मूळ्हा इतरा पजा॥690॥
‘‘एवंदिट्ठि पुरे आसिं, सम्मूळ्हो मोहपारुतो।
मिच्छादिट्ठि च दुस्सीलो, कदरियो परिभासको॥691॥
‘‘ओरं मे छहि मासेहि, कालङ्किरिया भविस्सति।
एकन्तकटुकं घोरं, निरयं पपतिस्सहं॥692॥
‘‘चतुक्कण्णं चतुद्वारं, विभत्तं भागसो मितं।
अयोपाकारपरियन्तं, अयसा पटिकुज्जितं॥693॥

संस्कृतच्छाया- ‘‘‘चतुरशीतिः महाकल्पिनः, शतसहस्राणि हि।
ये बालाः ये च पण्डिताः, संसारं क्षपयित्वा।
दुःखस्य अन्तं करिष्यन्ति॥689॥
‘‘‘मितानि सुखदुःखानि, द्रोणैः पिटकैश्च।
जिनः सर्वं प्रजानाति’, सम्मूढाः इतराः प्रजाः॥690॥
‘‘एवंदृष्टिः पुरा आसम्, सम्मूढः मोहप्रावृतः।
मिथ्यादृष्टिश्च दुःशीलः, कदर्यः परिभाषकः॥691॥
‘‘अपरं मे षड्भिः मासैः, कालक्रिया भविष्यति।
एकान्तकटुकं घोरं, निरये प्रपतिष्यामि अहम्॥692॥
‘‘चतुष्कोणं चतुर्द्वारं, विभक्तं भागशो मितम्।
अयःप्राकारपर्यन्तम्, अयसा प्रतिकुब्जितम्॥693॥

हिन्दी- वे जो चौरासी लाख योनियाँ हैं। यहाँ बुद्धिमान् या मूर्ख सभी इन सुख दुःखों को भोग कर ही संसार के दुःख का अन्त कर पाते हैं॥689॥

इन समस्त सुख-दुःखों का द्रोण या पिटक आदि से सम्पूर्ण माप केवल जिन(बुद्ध) ही जानते हैं। शेष प्रजा, मूर्खतावश भ्रम में रहती है॥690॥

पूर्वजन्म में मेरे ये विचार मोहवश ही थे। जिस कारण मैंने मिथ्यादृष्टियुक्त एवं दुराचारी, कंजूस एवं परनिन्दक रहते हुए अपना जीवन व्यतीत किया॥691॥

आज से छह मास के अन्दर ही मेरा देहपात हो जाएगा, तत्पश्चात् मुझे एकान्ततः कटु घोर नरक में गिरना होगा॥692॥

यह नरक चार कोणों वाला, चार द्वारों वाला, समान भागों में विभक्त, चौतरफा लौह दीवार से घिरा हुआ, तथा लोहे की छत से आच्छादित है॥693॥

''तस्स अयोमया भूमि, जलिता तेजसा युता।
समन्ता योजनसतं, फरित्वा तिट्ठति सब्बदा॥694॥
''वस्सानि सतसहस्सानि, घोसो सुय्यति तावदे।
लक्खो एसो महाराज, सतभागवस्सकोटियो॥695॥
''कोटिसतसहस्सानि, निरये पच्चरे जना।
मिच्छादिट्ठी च दुस्सीला, ये च अरियूपवादिनो॥696॥
''तत्थाहं दीघमद्धानं, दुक्खं वेदिस्स वेदनं।
फलं पापस्स कम्मस्स, तस्मा सोचामहं भुसं॥697॥
''तं सुणोहि महाराज, अरिन्दम रट्ठवड्ढन।
धीता मय्हं महाराज, उत्तरा भद्दमत्थु ते॥698॥
''करोति भद्दकं कम्मं, सीलेसुपोसथे रता।
सञ्ञता संविभागी च, वदञ्ञू वीतमच्छरा॥699॥

संस्कृतच्छाया- ''तस्य अयोमयी भूमिः, ज्वलिता तेजसा युता।
समन्ताद् योजनशतं, स्फुरित्वा तिष्ठति सर्वदा॥694॥
''वर्षाणि शतसहस्राणि, घोषः श्रूयते तावान्।
लक्षः एषः महाराज, शतभागवर्षकोटयः॥695॥
''कोटिशतसहस्राणि, निरये पच्यन्ते जनाः।
मिथ्यादृष्टयः च दुःशीलाः, ये च आर्योपवादिनः॥696॥
''तत्राऽहं दीर्घमध्वानं, दुःखं वेदयिष्यामि वेदनाम्।
फलं पापस्य कर्मणः, तस्मात् शोचामि अहं भृशम्॥697॥
''तच्छृणु महाराज, अरिन्दम राष्ट्रवर्धन।
दुहिता मम महाराज, उत्तरा भद्रमस्तु तस्याः॥698॥
''करोति भद्रकं कर्म, शीलेषूपोसथे रता।
संयता संविभागिनी च, वदान्या वीतमत्सरा॥699॥

हिन्दी- उसकी लौह निर्मित भूमि भी है, जो भयंकर प्रज्वलित अंगारों से युक्त है। इसका क्षेत्रफल सौ योजन विस्तृत है। यह सदा अपराधियों से भरा रहता है॥694॥

महाराज! इस नरक का एक भाग एक लाख वर्ष का होता है। और इसके सौ भाग होते हैं, अतः यह एक करोड़ वर्ष का कहलाता है, ऐसा सुनाई देता है॥695॥

इस नरक में एक अरब प्राणी प्रायः दण्ड भोगते रहते हैं जो मिथ्यादृष्टियुक्त, दुःशील एवं आर्यों के निन्दक रहे हैं॥696॥

वहाँ मैं दीर्घकाल तक, पापकर्मों के फलस्वरूप कष्ट भोगूँगा— अतः अब मैं प्रायः व्यथित रहता हूँ॥697॥

हे शत्रुमर्दन, राष्ट्रवर्धन! महाराज! आप सुनें— महाराज! मेरी एक उत्तरा नाम की पुत्री है, उसका कल्याण हो॥698॥

वह कुशल कर्म करती रहती है। शील एवं उपोसथव्रत का सदा पालन करती है। वह अपने व्यवहार में संयम रखती है, प्रायः दानकर्म में प्रवृत्त रहती है तथा अभिमानरहित एवं उदारस्वभाव है॥699॥

''अखण्डकारी सिक्खाय, सुण्हा परकुलेसु च।
उपासिका सक्यमुनिनो, सम्बुद्धस्स सिरीमतो॥700॥
''भिक्खु च सीलसम्पन्नो, गामं पिण्डाय पाविसि।
ओक्खित्तचक्खु सतिमा, गुत्तद्वारो सुसंवुतो॥701॥
''सपदानं चरमानो, अगमा तं निवेसनं।
'तमद्दस महाराज, उत्तरा भद्दमत्थु ते'॥702॥
''पूरं पानीयसरकं, पूवे वित्ते च सा अदा।
'पिता मे कालङ्कतो, भन्ते तस्सेतं उपकप्पतु'॥703॥
''समनन्तरानुद्दिट्ठे, विपाको उदपज्जथ।
भुञ्जामि कामकामीहं, राजा वेस्सवणो यथा॥704॥

संस्कृतच्छाया- ''अखण्डकारिणी शिक्षायाः, स्नुषा परकुलस्य च।
उपासिका शाक्यमुनेः, सम्बुद्धस्य श्रीमतः॥700॥
''भिक्षुश्च शीलसम्पन्नः, ग्रामं पिण्डाय प्राविशत्।
अवक्षिप्तचक्षुः स्मृतिमान्, गुप्तद्वारः सुसंवृतः॥701॥
''सः पद्भ्यां चरन्, अगमत् तन्निवेशनम्।
'तमद्राक्षीत् महाराज, उत्तरा भद्रमस्तु तस्याः॥702॥
''पूरं पानीयसरकं, पूपं वित्तं च सा अदात्।
'पिता मे कालगतः, भदन्त तस्मै इदम् उपकल्पताम्'॥703॥
''समनन्तरमनुद्दिष्टे, विपाक उदपद्यत।
भुनज्मि कामकामी अहं, राजा वैश्रवणो यथा॥704॥

हिन्दी- धार्मिक शिक्षा का अखण्ड पालन करती है। वह एक उच्च कुल की पुत्रवधू है तथा भगवान् बुद्ध की उपासिका है॥700॥

कभी कोई भिक्षु भिक्षाहेतु उसके ग्राम में प्रविष्ट हुआ। वह स्मृतिपूर्वक तथा ऐन्द्रिय संयमपूर्वक नीची दृष्टि किये हुए था॥701॥

वह पग भरता हुआ उसके(गृह-) द्वार पर आया। हे महाराज! तब उसको उत्तरा ने देखा, उसका कल्याण हो॥702॥

उसने उन भिक्षु को जलपूर्ण पात्र एवं भरपूर मालपुए भिक्षा में दान किये और साथ ही यह संकल्प किया कि, भदन्त! मेरे पिता कालगत हो चुके हैं, अतः यह दान उनके लिए हो॥703॥

इस दान के सुपरिणामस्वरूप तत्काल मुझे ये दिव्य काम-भोग प्राप्त हो गये। तथा मैं राजा वैश्रवण के समान दिव्य काम-भोगों को भोगने लगा॥704॥

''तं सुणोहि महाराज, अरिन्दम रट्ठवड्ढन।
सदेवकस्स लोकस्स, बुद्धो अग्गो पवुच्चति।
तं बुद्धं सरणं गच्छ, सपुत्तदारो अरिन्दम॥705॥
''अट्ठङ्गिकेन मग्गेन, फुसन्ति अमतं पदं।
तं धम्मं सरणं गच्छ, सपुत्तदारो अरिन्दम॥706॥
''चत्तारो च पटिपन्ना, चत्तारो च फले ठिता।
एस सङ्घो उजुभूतो, पञ्ञासीलसमाहितो।
तं सङ्घं सरणं गच्छ, सपुत्तदारो अरिन्दम॥707॥
''पाणातिपाता विरमस्सु खिप्पं, लोके अदिन्नं परिवज्जयस्सु।
अमज्जपो मा च मुसा अभाणी, सकेन दारेन च होहि तुट्ठो'' ति॥708॥
''अत्थकामोसि मे यक्ख, हितकामोसि देवते।
करोमि तुय्हं वचनं, त्वंसि आचरियो मम॥709॥

संस्कृतच्छाया- ''तच्छ्रुणु महाराज, अरिन्दम राष्ट्रवर्धन।
सदेवकस्य लोकस्य, बुद्धोऽग्र्यः प्रोच्यते।
तं बुद्धं शरणं गच्छ, सपुत्रदारः अरिन्दम॥705॥
''अष्टाङ्गिकेन मार्गेण, स्पृशन्ति अमृतं पदम्।
तं धर्मं शरणं गच्छ, सपुत्रदारः अरिन्दम॥706॥
''चत्वारश्च प्रतिपन्नाः चत्वारश्च फले स्थिताः।
एष सङ्घः ऋजुभूतः, प्रज्ञाशीलसमाहितः।
तं सङ्घं शरणं गच्छ, सपुत्रदारः अरिन्दम॥707॥
''प्राणातिपाताद् विरम क्षिप्रं, लोके अदत्तं परिवर्जय।
अमद्यपः मा च मृषा भाणीः, स्वकीयैः दारैश्च भव तुष्टः'' इति॥708॥
''अर्थकामोऽसि मे यक्ष, हितकामोऽसि दैवत।
करोमि तव वचनं, त्वमसि आचार्यो मम॥709॥

हिन्दी- हे शत्रुमर्दन! राष्ट्रवर्धन! महाराज! आप सुनें! यहाँ देवलोकसहित भगवान् बुद्ध सर्वश्रेष्ठ कहलाते हैं, आप सपुत्र एवं सपत्नीक् उन भगवान् बुद्ध की शरण में जाएँ॥705॥

तथा आर्याष्टाँगिक मार्ग का आश्रय लेते हुए अमृत(निर्वाण) पद प्राप्त करें तथा आप सपुत्र एवं सपत्नीक् उन भगवान् बुद्ध के धर्म की शरण में जाएँ॥706॥

हे अरिमर्दन! आप पुत्रस्त्रीसहित प्रज्ञा एवं शील से समाहित चार मार्गारूढ़ तथा चार फलप्राप्त इस प्रकार संख्या में आठ, इन सरल भिक्षुसङ्घ की शरण ग्रहण करें।॥707॥

आप प्राणातिपात से भी शीघ्र ही दूर होवें, चौरकर्म का त्याग करें, मद्यपान एवं असत्य भाषण का सर्वथा त्याग करें। तथा अपनी धर्मपत्नी से ही सन्तुष्ट रहें॥708॥

हे यक्ष! आप मेरे अर्थसाधक तथा हितचिन्तक हैं। मैं आपके वचनों का पालन करूँगा; अतः आज से आप मेरे आचार्य हैं॥709॥

''उपेमि सरणं बुद्धं, धम्मञ्चापि अनुत्तरं।
सङ्घञ्च नरदेवस्स, गच्छामि सरणं अहं॥710॥
''पाणातिपाता विरमामि खिप्पं, लोके अदिन्नं परिवज्जयामि।
अमज्जपो नो च मुसा भणामि, सकेन दारेन च होमि तुट्ठो॥711॥
''ओफुणामि महावाते, नदिया सीघगामिया।
वमामि पापिकं दिट्ठिं, बुद्धानं सासने रतो''॥712॥
इदं वत्वान सोरट्ठो, विरमित्वा पापदस्सना।
नमो भगवतो कत्वा, पामोक्खो रथमारुहीति॥713॥

नन्दकपेतवत्थु ततियं।

4. रेवतीपेतवत्थु

''उट्ठेहि रेवते सुपापधम्मे, अपारुतद्वारे अदानसीले।
नेस्साम तं यत्थ थुनन्ति दुग्गता, समप्पिता नेरयिका दुखेना'' ति॥714॥

संस्कृतच्छाया- ''उपैमि शरणं बुद्धं, धर्मं चापि अनुत्तरम्।
सङ्घं च नरदेवस्य, गच्छामि शरणम् अहम्॥710॥
''प्राणातिपाताद् विरमामि क्षिप्रं, लोकेऽदत्तं परिवर्जयामि।
अमद्यपः नो च मृषा भणामि, स्वकीयैः दारैश्च भवामि तुष्टः'' इति॥711॥
''अप्सु स्नापयामि(वाहयामि) महावाते, नद्यां शीघ्रगामिन्याम्।
वमामि पापिकां दृष्टिं, बुद्धानां शासने रतः''॥712॥
इदम् उक्त्वा सौराष्ट्रः, विरम्य पापदर्शनात्।
नमः भगवते कृत्वा, प्रमुच्य रथमारुहत् इति॥713॥
''उत्तिष्ठ रेवति सुपापधर्मिणि, अपावृतद्वारे अदानशीले।
नेष्यामि त्वां यत्र धुन्वन्ति दुर्गताः, समर्पिताः नैरयिकाः दुःखेन'' इति॥714॥

हिन्दी- मैं भगवान् बुद्ध तथा उनके द्वारा उपदिष्ट अनुपम धर्म की एवं उन पुरुषोत्तम द्वारा स्थापित भिक्षुसंघ की शरण में जाता हूँ॥710॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 708....॥711॥

मैं अब बुद्ध-शासन में रत रहता हुआ अपनी पापमयी मिथ्यादृष्टि को किसी तीव्रगामी नदी में बहा दूँगा॥712॥

ऐसा कह कर वह सौराष्ट्राधिपति अपनी पापदृष्टियों से पूर्णरूपेण मुक्त होकर, भगवान् को प्रणाम कर, अपने रथ पर आरूढ़ हो गया॥713॥

अयि रेवति! पापधर्मिणि उठ! तूँने कभी दानादि पुण्य क्रियाएँ न कर अपने लिये अमृतद्वार की प्राप्ति का मार्ग बन्द कर लिया है। इसलिए अब हम तुमको वहाँ ले जाएँगे जहाँ दुर्गति प्राप्त पापी धुने जाते हैं और नारकीय दुःख को भोगते हैं॥714॥

इच्चेव वत्वान यमस्स दूता, ते द्वे यक्खा लोहितक्खा ब्रहन्ता।
पच्चेकबाहासु गहेत्वा रेवतं, पक्कामयुं देवगणस्स सन्तिके॥715॥
''आदिच्चवण्णं रुचिरं पभस्सरं, ब्यम्हं सुभं कञ्चनजालछन्नं।
कस्सेतमाकिण्णजनं विमानं, सुरियस्स रंसीरिव जोतमानं॥716॥
''नारीगणा चन्दनसारलित्ता, उभतो विमानं उपसोभयन्ति।
तं दिस्सति सुरियसमानवण्णं, को मोदति सग्गपत्तो विमाने'' ति॥717॥
''बाराणसियं नन्दियो नामासि, उपासको अमच्छरी दानपति वदञ्ञू।
तस्सेतमाकिण्णजनं विमानं, सुरियस्स रंसीरिव जोतमानं॥718॥
''नारीगणा चन्दनसारलित्ता, उभतो विमानं उपसोभयन्ति।
तं दिस्सति सुरियसमानवण्णं, सो मोदति सग्गपत्तो विमाने'' ति॥719॥
''नन्दियस्साहं भरिया, अगारिनी सब्बकुलस्स इस्सरा।
भतु विमाने रमिस्सामि दानहं, न पत्थये निरयदस्सनाया'' ति॥720॥

संस्कृतच्छाया- इत्येवम् उक्त्वा यमस्य दूताः, तौ द्वौ यक्षौ लोहिताक्षौ बृहन्तौ।
प्रत्येकं बाह्वौ गृहीत्वा रेवतीं, प्राक्रामतां देवगणस्य अन्तिके॥715॥
''आदित्यवर्णं रुचिरं प्रभास्वरं, विमानं शुभं काञ्चनजालच्छन्नम्।
कस्यैतद् आकीर्णजनं विमानम्, सूर्यस्य रश्मिरिव द्योतमानम्॥716॥
'' 'नारीगणाश्चन्दनसारलिप्ताः, उभयतः विमानम् उपशोभयन्ति।
ते पश्यन्ति सूर्यसमानवर्णम्, कः मोदते स्वर्गप्राप्तः विमाने'' इति॥717॥
''वाराणस्यां नन्दियनामा आसीत्, उपासकोऽमात्सर्य दानपतिः वदान्यः।
तस्यैतद् आकीर्णजनं विमानम्, सूर्यस्य रश्मिरिव द्योतमानम्॥718॥
''नारीगणाश्चन्दनसारलिप्ताः, उभयतः विमानम् उपशोभयन्ति।
तत् पश्यति सूर्यसमानवर्णम्, कः मोदते स्वर्गप्राप्तः विमाने'' इति॥719॥
''नन्दियस्याहं भार्या, अगारिणी सर्वकुलस्य ईश्वरी।
भर्तुः विमाने रंस्ये इदानीम् अहम्, न प्रार्थये निरयं दर्शनाय'' इति॥720॥

हिन्दी- ऐसा कह कर वे दोनों रक्तवर्णी आँखों एवं बृहदाकार यमदूत, उस रेवती की प्रत्येक बाहु को पकड़ कर देवता के सम्मुख ले चले॥715॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 9, विमानवत्थु....॥716॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 10, विमानवत्थु....॥717॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 11, विमानवत्थु....॥718॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 12, विमानवत्थु....॥719॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 13, विमानवत्थु....॥720॥

''एसो ते निरयो सुपापधम्मे, पुञ्ञं तया अकतं जीवलोके।
न हि मच्छरी रोसको पापधम्मो, सग्गूपगानं लभति सहब्यतं'' ति॥721॥
''किं नु गूथञ्च मुत्तञ्च, असुची पटिदिस्सति।
दुग्गन्धं किमिदं मीळ्हं, किमेतं उपवायती'' ति॥722॥
''एस संसवको नाम, गम्भीरो सतपोरिसो।
यत्थ वस्ससहस्सानि, तुवं पच्चसि रेवते'' ति॥723॥
''किं नु कायेन वाचाय, मनसा दुक्कटं कतं।
केन संसवको लद्धो, गम्भीरो सतपोरिसो'' ति॥724॥
''समणे ब्राह्मणे चापि, अञ्ञे वापि वनिब्बके।
मुसावादेन वञ्चेसि, तं पापं पकतं तया॥725॥
''तेन संसवको लद्धो, गम्भीरो सतपोरिसो।
तत्थ वस्ससहस्सानि, तुवं पच्चसि रेवते॥726॥

संस्कृतच्छाया- ''एष ते निरयः सुपापधर्मे, पुण्यं त्वया अकृतं जीवलोके।
न हि मत्सरी रोषकः पापधर्मा, स्वर्गोपगानं लभते सहवस्तुम्'' इति॥721॥
''किं नु गूथं च मूत्रं च, अशुचि प्रतिदृश्यते।
दुर्गन्धं किमिदं मीडम्, किमेतद् उपवाति'' इति॥722॥
''एष संस्रवकः नाम्ना, गम्भीरः शतपूरुषः।
यत्र वर्षसहस्राणि, त्वं पक्ष्यसि रेवति'' इति॥723॥
''किं नु कायेन वचसा, मनसा दुष्कृतं कृतम्।
केन संस्रवको लब्धः, गम्भीरः शतपूरुषः'' इति॥724॥
''श्रमणे ब्राह्मणे चापि, अन्यस्मिन् वापि वनीयके(वन्यके)।
मृषावादेन वञ्चयसि, तत् पापं प्रकृतं त्वया॥725॥
''तेन संस्रवको लब्धः, गम्भीरः शतपूरुषः।
तत्र वर्षसहस्राणि, त्वं पक्ष्यसि रेवति'' इति॥726॥

हिन्दी- पूर्ववत्.....गा० सं० 14, विमानवत्थु....॥721॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 15, विमानवत्थु....॥722॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 16, विमानवत्थु....॥723॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 17, विमानवत्थु....॥724॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 18, विमानवत्थु....॥725॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 19, विमानवत्थु....॥726॥

''हत्थेपि छिन्दन्ति अथोपि पादे, कण्णेपि छिन्दन्ति अथोपि नासं।
अथोपि काकोळगणा समेच्च, सङ्गम्म खादन्ति विफन्दमानं'' ति॥727॥
''साधु खो मं पटिनेथ, काहामि कुसलं बहुं।
दानेन समचरियाय, संयमेन दमेन च।
यं कत्वा सुखिता होन्ति, न च पच्छानुतप्परे'' ति॥728॥
''पुरे तुवं पमज्जित्वा, इदानि परिदेवसि।
सयं कतानं कम्मानं, विपाकं अनुभोस्ससी'' ति॥729॥
''को देवलोकतो मनुस्सलोकं, गन्त्वान पुट्ठो मे एवं वदेय्य।
'निक्खित्तदण्डेसु ददाथ दानं, अच्छादनं सेय्य मथन्नपानं।
न हि मच्छरी रोसको पापधम्मो, सग्गूपगानं लभति सहब्यतं'॥730॥
''साहं नून इतो गन्त्वा, योनिं लद्धान मानुसिं।
वदञ्ञू सीलसम्पन्ना, काहामि कुसलं बहुं।
दानेन समचरियाय, संयमेन दमेन च॥731॥

संस्कृतच्छाया-
''हस्तौ अपि छिन्दन्ति अथापि पादौ, कर्णौ अपि छिन्दन्ति अथापि नासाम्।
अथापि काकोलूकगणाः समेत्य, सङ्गम्य खादन्ति विपद्यमानम्'' इति॥727॥
''साधु खलु मां प्रतिनयथ, करिष्यामि कुशलं बहु।
दानेन समचर्यया, संयमेन दमेन च।
यत् कृत्वा सुखिताः भवन्ति, न च पश्चाद् अनुतप्यन्ते'' इति॥728॥
''पुरा त्वं प्रमज्य, इदानीम् परिदेवसे।
स्वयं कृतानां कर्मणाम्, विपाकम् अनुभोक्ष्यसे'' इति॥729॥
''कः देवलोकात् मनुष्यलोकं, गत्वा पृष्टः मे एवं वदेत्।
'निक्षिप्तदण्डेभ्यः दद्यात् दानम्, आच्छादनं शय्याम् अथ अन्नपानम्।
न हि मत्सरी रोषकः पापधर्मः, स्वर्गोपगैः लभते सहवस्तुम्'' इति॥730॥
''सा अहं नूनम् इतो गत्वा, योनिं लब्ध्वा मानुषीम्।
वदान्या शीलसम्पन्ना, करिष्यामि कुशलं बहु।
दानेन समचर्यया, संयमेन दमेन च॥731॥

हिन्दी-
पूर्ववत्.....गा० सं० 20, विमानवत्थु....॥727॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 21, विमानवत्थु....॥728॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 22, विमानवत्थु....॥729॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 23, विमानवत्थु....॥730॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 24, विमानवत्थु....॥731॥

''आरामानि च रोपिस्सं, दुग्गे सङ्कमनानि च।
पपञ्च उदपानञ्च, विप्पसन्नेन चेतसा॥732॥
''चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।
पाटिहारियपक्खञ्च, अट्ठङ्गसुसमागतं॥733॥
''उपोसथं उपवसिस्सं, सदा सीलेसु संवुता।
न च दाने पमज्जिस्सं, सामं दिट्ठमिदं मया'' ति॥734॥
इच्चेवं विप्पलपन्तिं, फन्दमानं ततो ततो।
खिपिंसु निरये घोरे, उद्धंपादं अवंसिरं॥735॥
''अहं पुरे मच्छरिनी अहोसिं, परिभासिका समणब्राह्मणानं।
वितथेन च सामिकं वञ्चयित्वा, पच्चामहं निरये घोररूपे'' ति॥736॥

रेवतीपेतवत्थु चतुत्थं।

5. उच्छुपेतवत्थु

''इदं मम उच्छुवनं महन्तं, निब्बत्तति पुञ्ञफलं अनप्पकं।
तं दानि मे न परिभोगमेति, आचिक्ख भन्ते किस्स अयं विपाको॥737॥

संस्कृतच्छाया-
''आरामान् च रोपयिष्यामि, दुर्गे सङ्क्रमणानि च।
प्रपां च उदपानं च, विप्रसन्नेन चेतसा॥732॥
''चतुर्दश्यां पञ्चदश्याम्, या च पक्षस्य अष्टमी।
प्रातिहार्यपक्षं च, अष्टाङ्गसुसमागतम्॥733॥
''उपोसथम् उपवत्स्यामि, सदा शीलेषु संवृता।
न च दाने प्रमदिष्यामि, सम्यग् दृष्टमिदं मया'' इति॥734॥
इत्येवं विलपन्तीम्, उच्छलन्तीं ततस्ततः।
चिक्षिपुः निरये घोरे, ऊर्ध्वपादाम् अवाक्शिरसीम्॥735॥
''अहं पुरा मत्सरिणी अभूवम्, प्रतिभाषिका श्रमणब्राह्मणानाम्।
वितथेन च स्वामिनं वञ्चयित्वा, पचाम्यहं निरये घोररूपे'' इति॥736॥
''इदं मम इक्षुवनं महत्, निर्वर्त्तते पुण्यफलम् अनल्पकम्।
तद् इदानीं मे न परिभोगम् एति, आचक्ष्व भदन्त कस्य अयं विपाकः॥737॥

हिन्दी- पूर्ववत्.....गा० सं० 25, विमानवत्थु....॥732॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 26, विमानवत्थु....॥733॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 27, विमानवत्थु....॥734॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 28, विमानवत्थु....॥735॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 29, विमानवत्थु....॥736॥

भदन्त! मुझको यह महान् इक्षुवन मेरे महान् पुण्य प्रताप से प्राप्त हुआ है; परन्तु कष्ट यह है कि मैं इस इक्षुवन का उपभोग नहीं कर पा रहा हूँ। कृपया बतावें कि यह मेरे किस पाप का परिणाम है?॥737॥

''हञ्ञामि खज्जामि च वायमामि, परिसक्कामि परिभुञ्जितुं किञ्चि।
स्वाहं छिन्नथामो कपणो लालपामि, किस्स कम्मस्स अयं विपाको॥738॥
''विघातो चाहं परिपतामि छमायं, परिवत्तामि वारिचरोव घम्मे।
रुदतो च मे अस्सुका निग्गलन्ति, आचिक्ख भन्ते किस्स अयं विपाको॥739॥
''छातो किलन्तो च पिपासितो च, सन्तस्सितो सातसुखं न विन्दे।
पुच्छामि तं एतमत्थं भदन्ते, कथं नु उच्छुपरिभोगं लभेय्यं'' ति॥740॥
''पुरे तुवं कम्ममकासि अत्तना, मनुस्सभूतो पुरिमाय जातिया।
अहञ्च तं एतमत्थं वदामि, सुत्वान त्वं एतमत्थं विजान॥741॥
''उच्छुं तुवं खादमानो पयातो, पुरिसो च ते पिट्ठितो अन्वगच्छि।
सो च तं पच्चासन्तो कथेसि, तस्स तुवं न किञ्चि आलपित्थ॥742॥
''सो च तं अभणन्तं अयाचि, 'देहय्य उच्छु'न्ति च तं अवोच।
तस्स तुवं पिट्ठितो उच्छुं अदासि, तस्सेतं कम्मस्स अयं विपाको॥743॥

संस्कृतच्छाया-

''हन्मि खादामि च वा वमामि, परिशक्नोमि परिभोक्तुं किञ्चित्।
सोऽहं छिन्नस्थामः कृपणो लालपामि, कस्य कर्मणोऽयं विपाकः॥738॥
''विहतः चाहं परिपतामि क्षमायां, परिवर्त्ते वारिचर इव घर्मे।
रुदतश्च मे अश्रूणि निर्गलन्ति, आचक्ष्व भदन्त कस्य अयं विपाकः॥739॥
''क्षामो विकलश्च पिपासितश्च, संत्रस्तः सातं सुखं न विन्दामि।
पृच्छामि त्वाम् एतदर्थं भदन्त, कथं नु इक्षुपरिभोगं लभेयम्'' इति॥740॥
''पुरा त्वं कर्माकार्षीः आत्मना, मनुष्यभूतः पूर्वस्यां जातौ।
अहं च त्वाम् एतदर्थं वदामि, श्रुत्वा त्वम् एतदर्थं विजानीहि॥741॥
''इक्षुं त्वं खादन् प्रयातः, पुरुषश्च ते पृष्ठतोऽन्वगच्छत्।
सः च त्वां प्रत्याशंसमानोऽकथयत्, तस्य त्वं न किञ्चिद् आलपः॥742॥
''सः च त्वाम् अभणत् अयाचत, 'देहि इक्षुम्' इति च त्वाम् अवोचत्।
तस्मै त्वं पृष्ठत इक्षुम् अदाः, तस्यैतस्य कर्मणोऽयं विपाकः॥743॥

हिन्दी- मैं कुछ खाने के लिये वहाँ बार बार जाता हूँ, प्रयास करता हूँ; परन्तु मैं इनको खा नहीं पाता। ऐसा प्रयास करते हुए मैं कृपण एवं लालची, थक जाता हूँ। यह मेरे किस पापकर्म का विपाक(परिणाम) है?॥738॥

उस समय मैं भूखवश तड़पता हुआ भूमि पर गिरा वैसे ही छटपटाने लगता हूँ जैसे धूप में मछली तड़पती है। उस समय मुझको रोते-रोते आँसू टपकने लगते हैं। हे भदन्त! यह मेरे किस पापकर्म का परिणाम है, कृपया कहें?॥739॥

उस अवस्था में मैं भूखा-प्यासा दुःखी एवं त्रस्त ही रहता हूँ; कोई भी सुख-शान्ति मुझको नहीं मिल पाती। इसलिए भदन्त! मैं आपसे यही पूछता हूँ कि मैं इस इक्षुवन का उपभोग कैसे कर पाऊँगा?॥740॥

पूर्व में तुमने मनुष्यलोक में रहते हुए जो कर्म किया था, जिसका आज तुम यह फल भोग रहे हो, उसे मैं तुमको बताता हूँ। उसको तुम सुनकर भलीभाँति समझ लो॥741॥

एक समय, तुम कभी ईख खाते हुए कहीं जा रहे थे। वहाँ एक पुरुष भी तुम्हारा अनुगमन् कर रहा था। उसने तुमसे दान की आशा रखते हुए कुछ कहा। तुमने उसको कोई उत्तर नहीं दिया॥742॥

''इङ्घ त्वं गन्त्वान पिट्ठितो गण्हेय्यासि, गहेत्वान तं खादस्सु यावदत्थं।
तेनेव त्वं अत्तमनो भविस्ससि, हट्ठो चुदग्गो च पमोदितो चा'' ति॥744॥
गन्त्वान सो पिट्ठितो अग्गहेसि, गहेत्वान तं खादि यावदत्थं।
तेनेव सो अत्तमनो अहोसि, हट्ठो चुदग्गो च पमोदितो चाति॥745॥

उच्छुपेतवत्थु पञ्चमं।

6. कुमारपेतवत्थु

''सावत्थि नाम नगरं, हिमवन्तस्स पस्सतो।
तत्थ आसुं द्वे कुमारा, राजपुत्ताति मे सुतं॥746॥
''सम्मत्ता रजनीयेसु, कामस्सादाभिनन्दिनो।
पच्चुप्पन्नसुखे गिद्धा, न ते पस्सिंसुनागतं॥747॥
''ते चुता च मनुस्सत्ता, परलोकं इतो गता।
तेध घोसेन्त्यदिस्सन्ता, पुब्बे दुक्कटमत्तनो॥748॥

संस्कृतच्छाया- ''इह त्वं गत्वा पृष्ठतो गृहाण, गृहीत्वा त्वं खाद यावदर्थम्।
तेनैव त्वम् आत्तमनाः भविष्यसि, हृष्टः च उदग्रश्च प्रमुदितश्च'' इति॥744॥
गत्वा सः पृष्ठतः अग्रहीत्, गृहित्वा तं खादितवान् यावदर्थम्।
तेनैव स आत्तमना अभूत्, हृष्टश्च उदग्रश्च प्रमुदितश्च इति॥745॥
''श्रावस्तिनाम नगरं, हिमवतः पार्श्वतः।
तत्र आस्तां द्वौ कुमारौ, राजपुत्रौ इति मे श्रुतम्॥746॥
''सम्मत्तौ रञ्जनीयेषु, कामस्वादाभिनन्दिनौ।
प्रत्युत्पन्नसुखे गृद्धौ, न तौ अपश्यताम् अनागतम्॥747॥
''तौ च्युतौ च मनुष्यत्वात्, परलोकम् इतः गतौ।
तौ इह अघोषयताम् अपश्यन्तौ, पूर्वं दुष्कृतम् आत्मनः॥748॥

हिन्दी- वह तुम्हारे कुछ भी न बोलने पर तुमसे, इक्षु दो, ऐसा कहा। तब तुमने उपेक्षापूर्वक पीछे हाथ बढ़ा कर उसे इक्षु दान कर दिया। उसी उपेक्षापूर्वक कृत दानकर्म का ही यह परिणाम है॥743॥

इसलिए अब तुम भी यहाँ अपना हाथ अपनी पीठ के पीछे करके इस इक्षु को पकड़ो और पकड़कर खाओ तो ही तुम सन्तुष्ट, तृप्त एवं प्रमुदित हो सकोगे॥744॥

तब वह(प्रेत) वहाँ(इक्षुवन में) जाकर पीठ के पीछे हाथ कर उन इक्षुदण्डों को ग्रहण कर उनका यथेच्छ उपभोग करने लगा। उससे ही वह सन्तुष्ट, तृप्त, हृष्ट-पुष्ट एवं प्रमुदित हो पाया॥745॥

हिमालय पर्वत के पीछे एक श्रावस्ती नामक नगर थी। वहाँ दो कुमार रहते थे। वे राजपुत्र थे— ऐसा मैंने सुना है॥746॥

वे दोनों रागादि धर्मों में आसक्त रहते थे, कामभोगों के आस्वाद में रत रहते थे। वे केवल भौतिक सुख के लोभी थे, वे अपने भविष्य की ओर नहीं देखते थे॥747॥

समय आने पर मनुष्यत्त्व से च्युत होकर यहाँ से परलोक को गये। वे वहाँ अपने पूर्वजन्मों के दुष्कृत्यों को देख नहीं पाते थे॥748॥

‘‘‘बहूसु वत सन्तेसु, देय्यधम्मे उपट्ठिते।
नासक्खिम्हा च अत्तानं, परित्तं कातुं सुखावहं॥749॥
‘‘‘किं ततो पापकं अस्स, यं नो राजकुला चुता।
उपपन्ना पेतिविसयं, खुप्पिपाससमप्पिता॥750॥
‘‘सामिनो इध हुत्वान, होन्ति असामिनो तहिं।
भमन्ति खुप्पिपासाय, मनुस्सा उन्नतोनता॥751॥
‘‘एतमादीनवं ञत्वा, इस्सरमदसम्भवं।
पहाय इस्सरमदं, भवे सग्गगतो नरो।
कायस्स भेदा सप्पञ्ञो, सग्गं सो उपपज्जती’’ ति॥752॥

कुमारपेतवत्थु छट्ठं।

7. राजपुत्तपेतवत्थु

पुब्बे कतानं कम्मानं, विपाको मथये मनं।
रूपे सद्दे रसे गन्धे, फोट्ठब्बे च मनोरमे॥753॥

संस्कृतच्छाया- ‘‘‘बहुषु बत सत्सु, देयधर्मे उपस्थिते।
नाशक्नुयाव च आत्मानौ, परत्र कर्तुं सुखावहौ॥749॥
‘‘‘किं ततः पापतरम् अस्मात्, यद् नौ राजकुलात् च्युतौ।
उपपन्नौ प्रेतिविषयं क्षुत्पिपासासमर्पितौ॥750॥
‘‘स्वामिन इह भूत्वा, भवन्ति अस्वामिनस्तत्र।
भ्रमन्ति क्षुत्पिपासाभ्यां, मनुष्या उन्नतावनताः॥751॥
‘‘एतमादीनवं ज्ञात्वा, ऐश्वर्यमदसम्भवम्।
प्रहायैश्वर्यमदं, भवे स्वर्गगतः नरः।
कायस्य भेदात् सम्प्रज्ञः, स्वर्गं स उपपद्यते’’ इति॥752॥
पूर्वं कृतानां कर्मणां, विपाको मथ्नाति मनः।
रूपे शब्दे रसे गन्धे, स्प्रष्टव्ये च मनोरमे॥753॥

हिन्दी- हमारे पास दान योग्य बहुत कुछ रहने पर भी हमने स्वयं को परलोक में सुखी रखने हेतु कोई दानादि पुण्यकर्म नहीं किया॥749॥

उसका इससे अधिक पापमय फल और क्या हो सकता था कि हम मनुष्यलोक में राजपुत्र होते हुए भी यहाँ आज प्रेतलोक में उत्पन्न हो, भूखे प्यासे व्याकुल होकर इधर उर भटक रहे हैं॥750॥

यहाँ मनुष्यलोक में स्वामित्व पाकर भी आज वहाँ(प्रेतलोक में) भिखमंगे होकर भूखे प्यासे रह कर साधारण मानव के समान भ्रमण कर रहे हैं॥751॥

ऐश्वर्यमद से उद्भूत इस दोष को जानकर, कोई प्राणी इस ऐश्वर्यमद का त्याग करके ही स्वर्ग का उपभोग कर सकता है। ऐसा बुद्धिमान् प्राणी ही कायभेदनोपरान्त स्वर्गसुख भोग सकता है॥752॥

पूर्वकृत दुष्कर्मों का परिणाम आज भी प्रिय एवं अनुकूल रूप, शब्द, रस, गन्ध तथा स्प्रष्टव्य विषयों में मेरे मन को दुःख दे रहा है॥753॥

नच्चं गीतं रतिं खिड्डं, अनुभुत्वा अनप्पकं।
उय्याने परिचरित्वा, पविसन्तो गिरिब्बजं॥754॥
इसिं सुनेत्त मद्दक्खि, अत्तदन्तं समाहितं।
अप्पिच्छं हिरिसम्पन्नं, उञ्छे पत्तगते रतं॥755॥
हत्थिक्खन्धतो ओरुय्ह, लद्धा भन्तेति चाब्रवि।
तस्स पत्तं गहेत्वान, उच्चं पग्गय्ह खत्तियो॥756॥
थण्डिले पत्तं भिन्दित्वा, हसमानो अपक्कमि।
''रञ्ञो कितवस्साहं पुत्तो, किं मं भिक्खु करिस्ससि''॥757॥
तस्स कम्मस्स फरुसस्स, विपाको कटुको अहु।
यं राजपुत्तो वेदेसि, निरयम्हि समप्पितो॥758॥
छळेव चतुरासीति, वस्सानि नवुतानि च।
भुसं दुक्खं निगच्छित्थो, निरये कतकिब्बिसो॥759॥

संस्कृतच्छाया- नृत्यं गीतं रतिं क्रीडाम्, अनुभूय अनल्पकम्।
उद्याने परिचर्य, प्रविशन्तः गिरिव्रजम्॥754॥
ऋषिं सुनेत्रमद्राक्षीत्, आत्मदान्तं समाहितम्।
अल्पेच्छम् ह्रीसम्पन्नम्, उञ्छे पात्रगते रतम्॥755॥
हस्तिस्कन्धतः अवरुह्य, लब्ध्वा भन्तेति चाब्रवीत्।
तस्य पात्रं गृहीत्वा, उच्चं प्रगृह्य क्षत्रियः॥756॥
स्थण्डिले पात्रं भित्वा, हसन् अपाक्रामत्।
''राज्ञः कितवस्याहं पुत्रः, किं मम भिक्षो करिष्यसि''॥757॥
तस्य कर्मणः परुषस्य, विपाकः कटुकोऽभूत्।
यं राजपुत्रोऽवेदीत्, निरये समर्पितः॥758॥
षडेव चतुरशीतिः, वर्षाणि अयुतानि च।
भृशं दुःखं न्यगच्छत्, निरये कृतकिल्बिषः॥759॥

हिन्दी- नृत्य, गीत में तथा खेलकूद में ही रत रहते हुए साथ ही अतिशय सुख भोगते हुए तथा उद्यान में भ्रमण कर पुनः गिरिव्रज को लौटते हुए मैंने-॥754॥

एक दर्शनीय, आत्मसंयमी, समाधिनिष्ठ, सन्तोषी एवं लज्जासम्पन्न, एक भिक्षु को भिक्षारहित रिक्त पात्र हाथ में लिये आते देखा॥755॥

उसने हाथी की पीठ से उतर कर, उस भिक्षु से पूछा— भदन्त! कुछ भिक्षा प्राप्त हुई? उसके निषेध करने पर उसने उसके हाथ से भिक्षापात्र लेकर, ऊपर उठा कर भूमि पर गिरा दिया॥756॥

उसके पात्र को भूमि पर गिरा कर हँसते हुए यह मान कर वह आगे बढ़ गया कि मैं तो राजा के साथ द्यूतक्रीड़ा करने वाले का पुत्र हूँ, यह भिक्षु मेरी क्या हानि करेगा? ॥757॥

उस कर्म का वह दुःसह्य परिणाम हुआ कि मनुष्य-लोक में जिसे लोग राजपुत्र के रूप में जानते थे वह आज नरक में पड़ा हुआ है॥758॥

नरक में गिरे हुए उसे 90+90=180 वर्ष बीत चुके हैं। नरक में गिरा हुआ वह महा दुःख भोग रहा है॥759॥

उत्तानोपि च पच्चित्थ, निकुज्जो वामदक्खिणो।
उद्धंपादो ठितो चेव, चिरं बालो अपच्चथ॥760॥
बहूनि वस्ससहस्सानि, पूगानि नहुतानि च।
भुसं दुक्खं निगच्छित्थो, निरये कतकिब्बिसो॥761॥
एतादिसं खो कटुकं, अप्पदुट्ठप्पदोसिनं।
पच्चन्ति पापकम्मन्ता, इसिमासज्ज सुब्बतं॥762॥
सो तत्थ बहुवस्सानि, वेदयित्वा बहुं दुखं।
खुप्पिपासहतो नाम, पेतो आसि ततो चुतो॥763॥
एतमादीनवं ञत्वा, इस्सरमदसम्भवं।
पहाय इस्सरमदं, निवातमनुवत्तये॥764॥
दिट्ठेव धम्मे पासंसो, यो बुद्धेसु सगारवो।
कायस्स भेदा सप्पञ्ञो, सग्गं सो उपपज्जतीति॥765॥

राजपुत्तपेतवत्थु सत्तमं।

संस्कृतच्छाया-

उत्तानोऽपि च पच्यते, निकुब्जो वामदक्षिणयोः।
ऊर्ध्वपादः स्थितः चैव, चिरं बालः अपच्यत॥760॥
बहूनि वर्षसहस्राणि, पूगानि नहुतानि च।
भृशं दुःखं न्यगच्छत्, निरये कृतकिल्बिषः॥761॥
एतादृशं खलु कटुकम्, अप्रदुष्टप्रदोषिणम्।
पचन्ति पापकर्मान्तम्, ऋषिमासज्य सुव्रतम्॥762॥
सः तत्र बहुवर्षाणि, विदित्वा बहु दुःखम्।
क्षुत्पिपासाहतो नाम, प्रेत आसीत् ततश्च्युतः॥763॥
एतमादीनवं ज्ञात्वा, ऐश्वर्यमदसम्भवम्।
प्रहायैश्वर्यमदं, निवातमनुवर्तयेत्॥764॥
दृष्ट्वैव धर्मे प्रशंसां, यः बुद्धेषु सगौरवः।
कायस्य भेदात् सम्प्रज्ञः, स्वर्गं स उपपद्यते इति॥765॥

हिन्दी- उस पापवश, सीधा लेटा हुआ भी, वाम या दक्षिण पार्श्व से लेटा हुआ भी, ऊपर पैर उठाकर खड़ा हुआ भी— सभी प्रकार से दुःख ही भोग रहा है॥760॥

भविष्य में कई हजार वर्षों तक या कई दश हजार वर्षों तक वह इस नरक में पड़ा हुआ दुःख भोगेगा॥761॥

ऐसे द्वेषरहित एवं सुव्रती ऋषि के साथ द्वेषारोपण करने वाले पापी के लिए उसके पापकर्म इसी प्रकार दुःखदायी हो जाते हैं॥762॥

वह वहाँ(उस नरक) में असङ्ख्य वर्षों तक दुःख भोगता हुआ, भूखे-प्यासे रह कर उस नरक योनि से च्युत हो कर प्रेतयोनि में आ गया॥763॥

ऐश्वर्यमद जनित इस दोष को जान कर ज्ञानीजन उस ऐश्वर्यमद का त्याग कर उससे सदा दूर रहने का प्रयत्न करें॥764॥

जो व्यक्ति बुद्ध की पूजा-अर्चना करता है, उसकी प्रशंसा ही होती है इस कायभेदोपरान्त(देहच्युति के बाद) वह सम्प्रज्ञ स्वर्ग में उत्पन्न होता है॥765॥

8. गूथखादकपेतवत्थु

''गूथकूपतो उग्गन्त्वा, को नु दीनो पतिट्ठसि।
निस्संसयं पापकम्मन्तो, किं नु सद्दहसे तुवं'' ति॥766॥
''अहं भदन्ते पेतोम्हि, दुग्गतो यमलोकिको।
पापकम्मं करित्वान, पेतलोकं इतो गतो'' ति॥767॥
''किं नु कायेन वाचाय, मनसा दुक्कटं कतं।
किस्स कम्मविपाकेन, इदं दुक्खं निगच्छसी'' ति॥768॥
''अहु आवासिको मय्हं, इस्सुकी कुलमच्छरी।
अज्झोसितो मय्हं घरे, कदरियो परिभासको॥769॥
''तस्साहं वचनं सुत्वा, भिक्खवो परिभासिसं।
तस्स कम्मविपाकेन, पेतलोकं इतो गतो'' ति॥770॥
''अमित्तो मित्तवण्णेन, यो ते आसि कुलूपको।
कायस्स भेदा दुप्पञ्ञो, किं नु पेच्च गतिं गतो'' ति॥771॥

संस्कृतच्छाया- ''गूथकूपत उद्गत्य, कः नु दीनः प्रतितिष्ठसि।
निःसंशयं पापकर्मान्तः, किं नु संदहसि त्वम्'' इति॥766॥
''अहं भदन्त प्रेतोऽस्मि, दुर्गतो यमलौकिकः।
पापकर्म कृत्वा, प्रेतलोकम् इतो गतः'' इति॥767॥
''किं नु कायेन वाचा, मनसा दुष्कृतं कृतम्।
कस्य कर्मणो विपाकेन, इदं दुःखं निगच्छसि'' इति॥768॥
''अभूद् आवासिको मम, ईर्ष्यालुः कुलमत्सरी।
अध्यासितो मम गृहे, कदर्यः परिभाषकः॥769॥
''तस्याहं वचनं श्रुत्वा, भिक्षून् पर्यभाषे।
तस्य कर्मणो विपाकेन, प्रेतलोकम् इतो गतः'' इति॥770॥
''अमित्रं मित्रवर्णेन, यस्तव आसीत् कुलूपकः।
कायस्य भेदाद् दुष्प्रज्ञः, कां नु प्रेत्य गतिं गतः'' इति॥771॥

हिन्दी- तुम कौन, पुरुषमल से भरे इस कूप से मुख निकाल कर दीन हीन से बैठे हो? निस्सन्देह ही तुम कोई पापी होगे? या तुमको अन्य क्या समझा जाय?॥766॥

भदन्त! मैं एक प्रेत हूँ जो कि दुर्गतिवश यमलोक को प्राप्त हूँ। मनुष्य लोक में पापकर्म कर वहाँ से च्युत होकर प्रेतलोक में आया हूँ॥767॥

तुमने काय, वाणी तथा मन से क्या दुष्कर्म किया था? जिसके दुष्परिणामस्वरूप यह कष्ट भोग रहे हो?॥768॥

मेरे घर में रहने वाला मेरा एक मित्र दूसरों के साथ ईर्ष्यालु प्रवृत्ति वाला, कुल के बड़े बूढ़ों के साथ अभिमान करने वाला, कंजूस तथा परनिन्दक था॥769॥

उसकी बाते सुनकर कर मैं भी भिक्षुजनों की निन्दा में लग गया। उस कर्म के दुष्परिणामस्वरूप मैं आज उस लोक से च्युत होकर इस प्रेतलोक में आ पहुँचा हूँ॥770॥

तुम्हारे साथ जो पारिवारिक मित्ररूपी अमित्र था, उसकी देहच्युति के बाद कौन सी गति हुई?॥771॥

''तस्सेवाहं पापकम्मस्स, सीसे तिट्ठामि मत्थके।
सो च परविसयं पत्तो, ममेव परिचारको॥772॥
''यं भदन्ते हदन्तञ्ञे, एतं मे होति भोजनं।
अहञ्च खो यं हदामि, एतं सो उपजीवती'' ति॥773॥

गूथखादकपेतवत्थु अट्ठमं।

9. गूथखादकपेतिवत्थु

''गूथकूपतो उग्गन्त्वा, का नु दीना पतिट्ठसि।
निस्संसयं पापकम्मन्ता, किं नु सद्दहसे तुवं'' ति॥774॥
''अहं भदन्ते पेतीम्हि, दुग्गता यमलोकिका।
पापकम्मं करित्वान, पेतलोकं इतो गता'' ति॥775॥
''किं नु कायेन वाचाय, मनसा दुक्कटं कतं।
किस्स कम्मविपाकेन, इदं दुक्खं निगच्छसी'' ति॥776॥
''अहु आवासिको मय्हं, इस्सुकी कुलमच्छरी।
अज्झोसितो मय्हं घरे, कदरियो परिभासको॥777॥

संस्कृतच्छाया- ''तस्यैवाहं पापकर्मण:, शीर्ष्णि तिष्ठामि मस्तके।
स च परविषयं प्राप्त:, ममैव परिचारक:॥772॥
''यद् भदन्त हदन्ति, एतद् मम भवति भोजनम्।
अहञ्च खलु यद् हदामि, एतत् स उपजीवति'' इति॥773॥
''गूथकूपत उद्गत्य, को नु दीन: प्रतितिष्ठसि।
नि:संशयं पापकर्मान्त:, किं नु संदहसि त्वम्'' इति॥774॥
''अहं भदन्त प्रेतोऽस्मि, दुर्गत: यमलौकिक:।
पापकर्म कृत्वा, प्रेतलोकम् इतो गत:'' इति॥775॥
''किन्नु कायेन वाचा, मनसा दुष्कृतं कृतम्।
कस्य कर्मणो विपाकेन, इदं दु:खं निगच्छसि'' इति॥776॥
''अभूद् आवासिको मम, ईर्ष्यालु: कुलमत्सरी।
अध्यासितो मम गृहे, कदर्य: परिभाषक:॥777॥

हिन्दी- उसी पापकर्म के कारण, मैं उसके शीर्ष पर ही वास करता हूँ। वह भी, वहाँ से च्युत्योपरान्त, मेरे परिचारक के रूप में यहाँ आ गया॥772॥

भदन्त! आपके द्वारा जो मलत्याग किया जाता है वही मेरा भोजन होता है, तथा मैं जो मलत्याग करता हूँ उसको वह खाता है॥773॥

पूर्ववत्.....गा० सं० 766....॥774॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 767....॥775॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 768....॥776॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 769....॥777॥

''तस्साहं वचनं सुत्वा, भिक्खवो परिभासिसं।
तस्स कम्मविपाकेन, पेतलोकं इतो गता'' ति॥778॥
''अमित्तो मित्तवण्णेन, यो ते आसि कुलूपको।
कायस्स भेदा दुप्पञ्ञो, किं नु पेच्च गतिं गतो'' ति॥779॥
''तस्सेवाहं पापकम्मस्स, सीसे तिट्ठामि मत्थके।
सो च परविसयं पत्तो, ममेव परिचारको॥780॥
''यं भदन्ते हदन्तञ्ञे, एतं मे होति भोजनं।
अहञ्च खो यं हदामि, एतं सो उपजीवती'' ति॥781॥
गूथखादकपेतिवत्थु नवमं।

10. गणपेतवत्थु

''नग्गा दुब्बण्णरूपात्थ, किसा धमनिसन्थता।
उप्फासुलिका किसिका, के नु तुम्हेत्थ मारिसा'' ति॥782॥
''मयं भदन्ते पेताम्हा, दुग्गता यमलोकिका।
पापकम्मं करित्वान, पेतलोकं इतो गता'' ति॥783॥
''किं नु कायेन वाचाय, मनसा दुक्कटं कतं।
किस्स कम्मविपाकेन, पेतलोकं इतो गता'' ति॥784॥

संस्कृतच्छाया-
''तस्याहं वचनं श्रुत्वा, भिक्षून् पर्यभाषे।
तस्य कर्मणो विपाकेन, प्रेतलोकम् इतो गतः'' इति॥778॥
''अमित्रं मित्रवर्णेन, यस्तव आसीत् कुलूपको।
कायस्य भेदाद् दुष्प्रज्ञः, कां नु प्रेत्य गतिं गतः'' इति॥779॥
''तस्यैवाहं पापकर्मणः, शीर्ष्णि तिष्ठामि मस्तके।
स च परविषयं प्राप्तः, मम एव परिचारकः॥780॥
''यद् भदन्त हदन्ति, एतद् मम भवति भोजनम्।
अहं च खलु यद् हदामि, एतत् स उपजीवति'' इति॥781॥
''नग्नाः दुर्वर्णरूपाः स्थ, कृशा धमनीश्रन्थिताः।
गुल्फपार्श्वास्थिनः कृशिकाः, के नु यूयं स्थ मारिषाः'' इति॥782॥
''वयं भदन्त प्रेताः स्म, दुर्गताः यमलौकिकाः।
पापकर्म कृत्वा, प्रेतलोकम् इतो गता':' इति॥783॥
''किं नु कायेन वाचा, मनसा दुष्कृतं कृतम्।
कस्य कर्मणो विपाकेन, प्रेतलोकम् इतः गताः'' इति॥784॥

हिन्दी- पूर्ववत्.....गा० सं० 770....॥778॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 771....॥779॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 772....॥780॥
पूर्ववत्.....गा० सं० 773....॥781॥

आप लोग नग्न, दुर्वर्ण तथा कृशकाय(दुर्बल) हैं। आपका सम्पूर्ण शरीर धमनियों से ढका हुआ क्यों है। आपकी प्रत्येक पँसुली(पार्श्वास्थि) गिनी जाने योग्य है। हे मार्ष! आप लोग कौन हैं?॥782॥

भदन्त! हम सभी दुर्गति एवं यमलोक को प्राप्त प्रेत हैं। हम उस लोक से पापकर्म के परिणामस्वरूप च्युत होकर इस प्रेतलोक में आ गए हैं॥783॥

''अनावटेसु तित्थेसु, विचिनिम्हद्धमासकं।
सन्तेसु देय्यधम्मेसु, दीपं नाकम्ह अत्तनो॥785॥
''नदिं उपेम तसिता, रित्तका परिवत्तति।
छायं उपेम उण्हेसु, आतपो परिवत्तति॥786॥
''अग्गिवण्णो च नो वातो, डहन्तो उपवायति।
एतञ्च भन्ते अरहाम, अञ्ञञ्च पापकं ततो॥787॥
''अपि योजनानि गच्छाम, छाता आहारगेधिनो।
अलद्धाव निवत्ताम, अहो नो अप्पपुञ्ञता॥788॥
''छाता पमुच्छिता भन्ता, भूमियं पटिसुम्भिता।
उत्ताना पटिकिराम, अवकुज्जा पतामसे॥789॥
''ते च तत्थेव पतिता, भूमियं पटिसुम्भिता।
उरं सीसञ्च घट्टेम, अहो नो अप्पपुञ्ञता॥790॥

संस्कृतच्छाया- ''अनावृतेषु तीर्थेषु, विचिनुमः अर्धमासम्।
सत्सु देयधर्म्मेषु, द्वीपं न अकरवाम आत्मनः॥785॥
''नदीम् उपैमस्तृषिताः, रिक्तका परिवर्त्तते।
छायाम् उपैम उष्णेसु, आतपे परिवर्त्तते॥786॥
''अग्निवर्णश्च नः वातः, दहन् उपवाति।
एतच्च भदन्त अर्हामः, अन्यच्च पापकं ततः॥787॥
''अपि योजनानि गच्छामः, प्सातार आहारगर्धिनः।
अलब्ध्वा एव निवर्त्तामहे, अहो नः अल्पपुण्यता॥788॥
''प्सातारः प्रमूर्च्छिताः भदन्त, भूम्यां प्रतिशुम्भिताः।
उत्तानाः प्रतिकुर्मः, अवकुब्जाः पतामः॥789॥
''ते च तत्रैव पतिताः, भूम्यां प्रतिशुम्भिताः।
उरश्शीर्षे च घट्टयामः, अहो नोऽल्पपुण्यता॥790॥

हिन्दी- आप लोगों ने ऐसा कौन सा कायिक, वाचिक तथा मानसिक दुष्कृत्य किया था कि परिणामस्वरूप आप सब को जीवलोक से च्युत होकर इस प्रेतलोक में आना पड़ा?॥784॥

हम लोग खुले तीर्थक्षेत्रों में अर्धमास(पन्द्रह दिन) तक घूमे। वहाँ, दानयोग्य वस्तु होने पर भी, हमने सन्तों में तथा धार्मिक कार्यों में कोई भी दान नहीं कर अपने लिए किसी द्वीप का निर्माण नहीं किया॥785॥

फलस्वरूप आज हम प्यास लगने पर जिस किसी नदी पर जाते हैं वह जल विहीन हो जाती है। धूप में त्रस्त होकर यदि हम किसी छायायुक्त वृक्ष के नीचे जाते हैं तो वह छाया धूप में बदल जाती है॥786॥

शीतल वायु भी हमें अग्नि के समान जलाती हुई बहती है। भदन्त! हमारी इस दुर्गति में अन्य पापों के साथ साथ, दानयोग्य वस्तु होने पर भी, हमने सन्तों में तथा धार्मिक कार्यों में कोई भी दान नहीं किया, इस दुर्गति में कारण है॥787॥

इस प्रकार हम भूखे, प्यासे, आहार की खोज में कई योजन भी क्यों न चले जाएँ, वहाँ से कुछ पाये बिना हमको भूखे ही लौटना पड़ता है। यही है हमारी अल्पपुण्यता! ॥788॥

हे भदन्त! प्रमूर्च्छित(बेहोश) एवं भ्रान्त होकर भूमि पर कहीं भी गिर पड़ते हैं। हम सीधे लेटे हों तो उलट जाते हैं। नीचे झुकने पर गिर पड़ते हैं॥789॥

''एतञ्च भन्ते अरहाम, अञ्ञञ्च पापकं ततो।
सन्तेसु देय्यधम्मेसु, दीपं नाकम्ह अत्तनो॥791॥
''ते हि नून इतो गन्त्वा, योनिं लद्धान मानुसिं।
वदञ्ञू सीलसम्पन्ना, काहाम कुसलं बहुं'' ति॥792॥

गणपेतवत्थु दसमं।

11. पाटलिपुत्तपेतवत्थु

''दिट्ठा तया निरया तिरच्छानयोनि,
पेता असुरा अथवापि मानुसा देवा।
सयमद्दस कम्मविपाकमत्तनो,
नेस्सामि तं पाटलिपुत्तमक्खतं।
तत्थ गन्त्वा कुसलं करोहि कम्मं''॥793॥
''अत्थकामोसि मे यक्ख, हितकामोसि देवते।
करोमि तुय्हं वचनं, त्वंसि आचरियो मम॥794॥

संस्कृतच्छाया- ''एतच्च भदन्त अर्हामः, अन्यच्च पापकं ततः।
सत्सु देयधर्म्मेषु, द्वीपं न अकरवाम आत्मनः॥791॥
''ते हि नूनम् इतो गत्वा, योनिं लब्ध्वा मानुषीम्।
वदान्याः शीलसम्पन्नाः, करिष्यामः कुशलं बहु'' इति॥792॥
''दृष्टास्त्वया नैरयिकाः तिरश्चीनयोनयः,
प्रेता असुरा अथवापि मानुषाः देवाः।
स्वयम् अदृशः कर्मविपाकमात्मनः, नेष्यामि त्वां पाटलिपुत्रमक्षतम्।
तत्र गत्वा कुशलं करोषि कर्म''॥793॥
''अर्थकामोऽसि मे यक्ष, हितकामोऽसि दैवत।
करोमि तव वचनं, त्वमसि आचार्यो मम॥794॥

हिन्दी- इस प्रकार वहीं भूमि पर पड़े हुए लोटते पोटते रहते हैं तथा अपना शिर एवं छाती पीटते रहते हैं। यही हमारी अल्पपुण्यता है!॥790॥

भदन्त! हमारी इस दुर्गति में अन्य पापों के साथ साथ, देयवस्तु के रहते हुए भी दान न करना ही कारण है कि अवसर होने पर भी हम अपना कोई शरणस्थल नहीं बना पाये॥791॥

अतः हम, यहाँ से च्युत हो, मनुष्ययोनि प्राप्त कर शीलयुक्त आचरण द्वारा उदारभाव से अनेक कुशल कर्म करेंगे॥792॥

तुमने 1. नरक, 2. तिरश्चीन(पशु), 3. प्रेत, 4. असुर एवं 5. मानव तथा 6. देव योनियाँ स्वयं देख लीं, जहाँ शुभाशुभ कर्मों के विपाकस्वरूप ही तुम्हारी उत्पत्ति विभिन्न योनियों में होती रहती है। अब मैं तुम्हें पाटलिपुत्र ले चलूँगा, जहाँ जाकर तुम अक्षय कुशल कर्म कर पाओगे॥793॥

हे यक्ष! आप मेरे अर्थसाधक व हितकारी हैं। मैं आपके वचन का पालन करूँगा। आज से आप मेरे आचार्य हैं॥794॥

''दिट्ठा मया निरया तिरच्छानयोनि, पेता असुरा अथवापि मानुसा देवा।
सयमद्दसं कम्मविपाकमत्तनो, काहामि पुञ्ञानि अनप्पकानी'' ति॥795॥
पाटलिपुत्तपेतवत्थु एकादसमं।

12. अम्बवनपेतवत्थु

''अयञ्च ते पोक्खरणी सुरम्मा, समा सुतित्था च महोदका च।
सुपुप्फिता भमरगणानुकिण्णा, कथं तया लद्धा अयं मनुञ्ञा॥796॥
''इदञ्च ते अम्बवनं सुरम्मं, सब्बोतुकं धारयते फलानि।
सुपुप्फितं भमरगणानुकिण्णं, कथं तया लद्धमिदं विमानं''॥797॥
''अम्बपक्कं दकं यागु, सीतच्छाया मनोरमा।
धीताय दिन्नदानेन, तेन मे इध लब्भति''॥798॥
''सन्दिट्ठिकं कम्मं एवं पस्सथ, दानस्स दमस्स संयमस्स विपाकं।
दासी अहं अय्यकुलेसु हुत्वा, सुणिसा होमि अगारस्स इस्सरा'' ति॥799॥
अम्बवनपेतवत्थु द्वादसमं।

संस्कृतच्छाया- ''दृष्टाः मया नैरयिकाः तिरश्चीनयोनयः, प्रेता असुरा अथवापि मानुषाः देवाः।
स्वयम् अद्दशः कर्मविपाकमात्मनः, करिष्यामि पुण्यानि अनल्पकानि'' इति॥795॥
''इयञ्च ते पुष्करिणी सुरम्या, समा सुतीर्था च महोदका च।
सुपुष्पिता भ्रमरगणानुकीर्णा, कथं त्वया लब्धेयं मनोज्ञा॥796॥
''इदं च ते आम्रवणं सुरम्यं, सर्वर्तुकानि धारयति फलानि।
सुपुष्पितं भ्रमरगणानुकीर्णं, कथं त्वया लब्धमिदं विमानम्''॥797॥
''आम्रं पक्वम् उदकं यवागूः, शीतच्छाया मनोरमा।
दुहित्र्या दत्तेन दानेन, तेन मया इह लभ्यते''॥798॥
''सान्दृष्टिकं कर्म एवं पश्य, दानस्य दमस्य संयमस्य विपाकम्।
दासी अहम् आर्यकुलेषु भूत्वा, स्नुषा भवामि अगारस्य ईश्वरस्य' इति॥799॥

हिन्दी- मेरे द्वारा नरक, पशु, प्रेत, असुर, मानव एवं देव योनियाँ देख ली गई हैं, जहाँ मैनें अपनें शुभाशुभकर्मों का फल भी स्वयं देख लिया है। अब मैं वहाँ विविध पुण्यकर्म करूँगा॥795॥

तुम्हारी यह पुष्करिणी सुरम्य(रमणीय) है, यह समतल है, इसके घाट भी सुन्दर हैं और यह महान् जलराशि वाली है। यह सुपुष्पित वृक्षों से युक्त है, जहाँ भ्रमरगण(भँवरे) प्रायः मँडराते रहते हैं। तुमने यह मनोज्ञ(मनोरम) पुष्करिणी कैसे प्राप्त की?॥796॥

तुम्हारा यह आम्रवन भी रमणीय है। सभी ऋतुओं में इसके वृक्ष फलों से लगे रहते हैं। यह सदा सुपुष्पित रहता है जिस पर भँवरे भरे रहते हैं। यह विमान आपको किस प्रकार उपलब्ध हुआ?॥797॥

ये पके आम, शीतल जल, यवागू, मनोरम शीतल छाया— यह सब कुछ मेरी पुत्री द्वारा दिये गए दान के माध्यम से ही मुझे प्राप्त हुआ है॥798॥

यह दान, इन्द्रियदमन, आत्मसंयम का ही दिखायी देने वाला परिणाम है। मैं प्रारम्भ में किसी आर्यकुल में दासी होकर भी बाद में किसी ऐश्वर्यशाली घर की पुत्रवधू तथा स्वामिनी थी॥799॥

13. अक्खरुक्खपेतवत्थु

''यं ददाति न तं होति, देथेव दानं दत्वा उभयं तरति।
उभयं तेन दानेन गच्छति, जागरथ मापमज्जथा'' ति॥800॥

अक्खरुक्खपेतवत्थु तेरसमं।

14. भोगसंहरपेतवत्थु

''मयं भोगे संहरिम्ह, समेन विसमेन च।
ते अञ्ञे परिभुञ्जन्ति, मयं दुक्खस्स भागिनी'' ति॥801॥

भोगसंहरपेतवत्थु चुद्दसमं।

15.सेट्ठिपुत्तपेतवत्थु

''सट्ठिवस्ससहस्सानि, परिपुण्णानि सब्बसो।
निरये पच्चमानानं, कदा अन्तो भविस्सति''॥802॥
''नत्थि अन्तो कुतो अन्तो, न अन्तो पटिदिस्सति।
तथा हि पकतं पापं, तुय्हं मय्हञ्च मारिसा॥803॥
''दुज्जीवितमजीवम्ह , ये सन्ते न ददम्हसे।
सन्तेसु देय्यधम्मेसु, दीपं नाकम्ह अत्तनो॥804॥

संस्कृतच्छाया- ''यद् ददाति न तद् भवति, ददातु एव दानं दत्वा उभयं तरति।
उभयं तेन दानेन गच्छति, जागृहि मा प्रमदः'' इति॥800॥
''वयं भोग्यं संहरामः, समेन विषमेण च।
तद् अन्ये परिभुञ्जते, वयं दुःखस्य भागिनः'' इति॥801॥
षष्टिवर्षसहस्राणि, परिपूर्णानि सर्वशः।
निरये पच्यमानानां, कदा अन्तो भविष्यति''॥802॥
''नास्ति अन्तः कुतोऽन्तः, नान्तः प्रतिदृश्यते।
हि प्रकृतं पापं, त्वया मया च मारिष॥803॥
''दुर्जीवितम् जीवामः, यत् सते न अदाम।
सत्सु देयधर्मेषु, दीपं न अकरवम् आत्मनः॥804॥

हिन्दी- जो दे देते हो, वह तुम्हारा नहीं रहता, फिर भी देते रहो; दान देकर तुम दोनों लोकों से पार चले जाते हो। दोनों लोक दान के द्वारा पार किये जा सकते हैं, अतः इसमें कोई प्रमाद न करो। सदा जाग्रत् रहो॥800॥

हमलोग सम(उचित) या विषम(अनुचित) विधियों से कामभोगों का संग्रह करते हैं और अन्य लोग उनका उपभोग करते हैं। किन्तु हम केवल संग्रह किये गए दुःख के ही भागी होते हैं॥801॥

हमें इस नरक में पकते हुए साठ हजार वर्ष पूर्ण हो चुके हैं। इन कष्टों का कब अन्त होगा?॥802॥

हे मार्ष! इसका कोई अन्त नहीं है, कहाँ से अन्त हो सकता है! इसका अन्त नहीं दिखता; क्योंकि आपके और हमारे द्वारा पाप ही ऐसा किया गया है॥803॥

हम कष्टपूर्ण जीवन ही जी रहे हैं; क्योंकि हमने अपने पास देयवस्तुओं के रहते हुए भी याचकों को कुछ भी नहीं दिया। तथा हमने आत्मरक्षार्थ भी कोई शरणस्थल नहीं बनाया॥804॥

''सोहं नून इतो गन्त्वा, योनिं लद्धान मानुसिं।
वदञ्ञू सीलसम्पन्नो, काहामि कुसलं बहुं'' ति॥805॥
सेट्ठिपुत्तपेतवत्थु पन्नरसमं।

16. सट्ठिकूटपेतवत्थु

''किं नु उम्मत्तरूपोव, मिगो भन्तोव धावसि।
निस्संसयं पापकम्मन्तो, किं नु सद्दायसे तुवं'' ति॥806॥
''अहं भदन्ते पेतोम्हि, दुग्गतो यमलोकिको।
पापकम्मं करित्वान, पेतलोकं इतो गतो॥807॥
''सट्ठि कूटसहस्सानि, परिपुण्णानि सब्बसो।
सीसे मय्हं निपतन्ति, ते भिन्दन्ति च मत्थकं'' ति॥808॥
''किं नु कायेन वाचाय, मनसा दुक्कटं कतं।
किस्स कम्मविपाकेन, इदं दुक्खं निगच्छसि॥809॥

संस्कृतच्छाया- ''सोऽहं नूनम् इतो गत्वा, योनिं लब्ध्वा मानुषीम्।
वदान्यः शीलसम्पन्नः, करिष्यामि कुशलं बहु'' इति॥805॥
''किन्नु उन्मत्तरूप इव, मृगो भ्रान्त इव धावसि।
निःसंशयं पापकर्मान्तः, किन्नु शब्दायसे त्वम्'' इति॥806॥
''अहं भदन्त प्रेतोऽस्मि, दुर्गतो यमलौकिकः।
पापकर्म कृत्वा, प्रेतलोकम् इतो गतः॥807॥
''षष्टिकूटसहस्राणि, परिपूर्णानि सर्वशः।
शीर्ष्णि मम निपतन्ति, ते भिन्दन्ति च मस्तकम्'' इति॥808॥
''किन्नु कायेन वाचा, मनसा दुष्कृतं कृतम्।
कस्य कर्मणो विपाकेन, इदं दुःखं निगच्छसि'' इति॥809॥

हिन्दी- इसलिए अब हम यहाँ से मानवयोनि प्राप्त कर उदारतापूर्वक एवं शीलसम्पन्न हो बहुत से कुशल धर्मों को करेंगे॥805॥

क्यों भ्रान्त मृग के समान उन्मत्त होकर इधर उधर दौड़ रहे हो□ निस्सन्देह ही तुमने ऐसे पापकर्म किये हैं, तो अब क्यों हल्ला कर रहे हो?॥806॥

भदन्त! मैं एक दुर्गतिप्राप्त और यमलोकवासी प्रेत हूँ। पापकर्म के परिणामवश इस लोक से प्रेतलोक में पहुँचा हूँ॥807॥

यहाँ साठ हजार मुद्गर मेरे शिर पर गिरते रहते हैं जिनके प्रहारवश मेरा शिर-भेदन होता रहता है॥808॥

यह तुम्हारे किस काय, वाक् या मानसिक दुष्कर्म का परिणाम है कि तुमने यह दुःख प्राप्त किया?-॥809॥

''सट्ठि कूटसहस्सानि, परिपुण्णानि सब्बसो।
सीसे तुय्हं निपतन्ति, ते भिन्दन्ति च मत्थकं'' ति॥810॥
''अथद्दसासिं सम्बुद्धं, सुनेत्तं भावितिन्द्रियं।
निसिन्नं रुक्खमूलस्मिं, झायन्तं अकुतोभयं॥811॥
''सालित्तकप्पहारेन, भिन्दिस्सं तस्स मत्थकं।
तस्स कम्मविपाकेन, इदं दुक्खं निगच्छिसं॥812॥
''सट्ठि कूटसहस्सानि, परिपुण्णानि सब्बसो।
सीसे मय्हं निपतन्ति, ते भिन्दन्ति च मत्थकं'' ति॥813॥
''धम्मेन ते कापुरिस, सट्ठिकूटसहस्सानि, परिपुण्णानि सब्बसो।
सीसे तुय्हं निपतन्ति, ते भिन्दन्ति च मत्थकं'' ति॥814॥

सट्ठिकूटपेतवत्थु सोळसमं।
महावग्गो चतुत्थो निट्ठितो।

संस्कृतच्छाया- षष्टिकूटसहस्राणि, परिपूर्णानि सर्वशः।
शीर्ष्णि तव निपतन्ति, ते भिन्दन्ति च मस्तकम्'' इति॥810॥
''अथ अपश्यं सम्बुद्धं, सुनेत्रं भावितेन्द्रियम्।
निषण्णं वृक्षमूले, ध्यायन्तम् अकुतोभयम्॥811॥
''सलिसकप्रहारेण, अभिन्दं तस्य मस्तकम्।
तस्य कर्मणः विपाकेन, इदं दुःखं न्यगच्छम्॥812॥
षष्टिकूटसहस्राणि, परिपूर्णानि सर्वशः।
शीर्ष्णि तव निपतन्ति, ते भिन्दन्ति च मस्तकम्'' इति॥813॥
''धर्मेण ते कापुरुष, षष्टिकूटसहस्राणि, परिपूर्णानि सर्वशः।
शीर्ष्णि तव निपतन्ति, ते भिन्दन्ति च मस्तकम्'' इति॥814॥

हिन्दी- जिससे तुम्हारे शिर पर साठ हजार मुद्गर पड़ते रहते हैं जिससे तुम्हारे शिर व मस्तक फूटते गिरते रहते है?॥810॥

एक बार मैंन सम्बुद्ध, सुनेत्र व समाहितेन्द्रिय, निर्भय एवं ध्यानाभ्यासरत को एक वृक्ष के नीचे विराजमान देखा॥811॥

मैंने उनके शिर पर गुलेल से एक पत्थर मारा। उससे उनका शिर फूट गया। उस पापकर्म के विपाकस्वरूप ही आज मैं यह कष्ट भोग रहा हूँ॥812॥

पूर्वबत्.....गा॰ सं॰ 810....॥813॥

रे कापुरुष! तब तो ये साठ हजार भारी मुद्गर तेरे शिर व मस्तक को ठीक ही फोड़ रहे हैं; क्योंकि तूँने एक निरपराध भिक्षु के शिर पर आघात किया था॥814॥

तस्सुद्दानं –

अम्बसक्करो सेरीसको, पिङ्गलो रेवति उच्छु।
द्वे कुमारा दुवे गूथा, गणपाटलिअम्बवनं॥
अक्खरुक्खभोगसंहरा, सेट्ठिपुत्तसट्ठिकूटा।
इति सोळसवत्थूनि, वग्गो तेन पवुच्चति॥

अथ वग्गुद्दानं –

उरगो उपरिवग्गो, चूळमहाति चतुधा।
वत्थूनि एकपञ्ञासं, चतुधा भाणवारतो॥

संस्कृतच्छाया- तस्योद्दानम् –

आम्रशर्करः शिरीषकः, पिङ्गलः रेवति इक्षु।
द्वौ कुमारौ द्वे गूथे, गणपाटल्याम्रवनम्॥
अक्षवृक्षभोगसंहराः, श्रेष्ठिपुत्रषष्टिकूटाः।
इति षोडशवस्तूनि, वर्गस्तेन प्रोच्यते॥
अथ वल्गुदानम् –
उरग उपरिवर्गः, चूलमहा इति चतुर्धा।
वस्तूनि एकपर्णाशं, चतुर्धा भाणवारतः॥

हिन्दी- इस वर्ग (में व्याख्यात प्रेतवस्तुओं) की सूची

इस वर्ग में क्रमशः 16 प्रेतकथाएं वर्णित हुई हैं; जैसे— 1. आम्रशर्करप्रेतवस्तु, 2. शिरीषकप्रेतवस्तु, 3. नन्दक(पिङ्गल) प्रेतवस्तु, 4. रेवतीप्रेतवस्तु, 5. इक्षुप्रेतवस्तु, 6. कुमारप्रेतवस्तु, 7. राजपुत्रप्रेतवस्तु, 8. गूथखादकप्रेतवस्तु, 9. गूथखादकप्रेतीवस्तु, 10. गणप्रेतवस्तु, 11. पाटलिपुत्रप्रेतवस्तु, 12. आम्रवनप्रेतवस्तु, 13. अक्षवृक्षप्रेतवस्तु, 14. भोगसंहारप्रेतवस्तु, 15. श्रेष्ठिपुत्रप्रेतवस्तु एवं 16. षष्टिकूटप्रेतवस्तु।

इस ग्रन्थ में व्याख्यात वर्ग आदि की सूची

यह ग्रन्थ चार वर्गों में विभक्त किया गया है; यथा— 1. उरगवर्ग, 2. उब्बरिवर्ग, 3. चूळवर्ग एवं 4. महावर्ग।

इस पालिग्रन्थ में 51 प्रेतकथाओं का वर्णन है।

चार भाणवारों में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ है।

॥पेतवत्थुपाळि निट्ठिता॥

॥प्रेतवस्तुपालि निष्ठिता॥
॥प्रेतवस्तुपालि सम्पन्न॥

****

इत्थिविमानं-

अ
अंसबद्धकं अहमदासिं, 541 - 548
अकण्टको अगहनो, 164
अक्कोसानं वधानञ्च, 834
अक्खामि ते बुद्ध महानुभाव, 74, 100, 107, 115, 123, 135, 14, 22, 240, 257, 269, 277, 285, 30, 336, 344, 352, 360, 368, 376, 384, 392, 400, 408, 416, 424, 436, 444, 452, 460, 52, 628, 7, 718, 761, 768, 775, 782, 794, 825, 84, 92, 616
अच्छरानं सतसहस्सं, 203, 210, 222, 251, 263, 671, 234
अट्ठङ्गिकं अपरिमितं सुखावहं, 216
अट्ठङ्गुपेतं अनुधम्मचारिनी, 313
अट्ठेव पिण्डपातानि, 626
अथ त्वं केन वण्णेन, 624
अद्दसं विरजं बुद्धं, 275, 113, 121, 20, 28, 283
अनुकम्पकस्स कुसलस्स, 846
अपि सक्कोव देविन्दो, 157
अप्पस्स कम्मस्स फलं ममेदं, 19, 27, 274
अप्पायुकी कालकता ततो चुता, 710
अभिक्कन्तेन वण्णेन, 108, 116, 124, 173, 217, 229, 246, 258, 270, 278, 329, 337, 345, 353, 361, 369, 377, 385, 393, 401, 409, 417, 429, 437, 445, 453, 711, 719, 729, 75, 755, 762, 769, 776, 826, 85, 819
अभिक्खणं नन्दनं सुत्वा, 241
अभिप्पसादेहि मनं, 196
अमञ्जपा नो च मुसा अभाणिं, 105
अम्बकञ्जिकं अहमदासिं, भिक्खुनो, 517-524
अलङ्कता मणिकञ्चनाचितं, 705
अलम्बुसा मिस्सकेसी च, 851
असोकं नन्दनं रम्मं, 854
अहं अन्धकविन्दम्हि, 723
अहं तया बहुतरे भिक्खू, 629
अहं ते सरणं होमि, 328
अहं भद्दन्ते चण्डाली, 201
अहं भद्दे सुभद्दासिं, 621
अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूता, 5, 104, 112, 12, 120, 161, 282, 289, 309, 320, 47, 57, 68, 694, 788, 80, 823, 89, 97
अहं राजगहे रम्मे, 670
अहं सुमना सुमनस्स सुमनमकुळानि, 780
अहञ्च बाराणसियं, 715
अहो दानं वराकिया, 190
आ
आमन्तनिका रञ्ञोम्हि, 165
आयोगपट्टं अहमदासिं, 549 - 556
आलम्बो गग्गरो भीमो, 166
आसज्ज दानं अदासिं, 90
इ
इतिस्सा सस्सु परिभासि, 292
इदं दुक्खन्ति मंवोच, 845
इदं वत्वान चण्डाली, 205
इदं विमानं रुचिरं पभस्सरं, 150
इदं सुत्वा तिदसाधिपति, 802
इदानि भन्ते इममेव गामं, 299
इदानि भन्ते इममेव गामं, 811
इदानेवाहं जानामि, 634
इन्दीवरानं हत्थकं अहमदासिं, 759
इमाश्च ते अच्छरायो समन्ततो, 308
इमासाहं धम्मं सुत्वा, 618
इस्सा च मच्छेरमथो पळासो, 128
उ
उच्छुखण्डिकं अहमदासिं, 433
उदकरुहा च येत्थि पुप्फजाता, 651
उदके ठिता उदकमदासिं, 389
उपड्ढं पद्ममालाहं, 39
उपासिका चक्खुमतो, 162
उपाहनं अहमदासिं, भिक्खुनो, 589 - 596
उपोसथं उपवसिस्सं, 130, 180, 212, 224,236, 253, 265, 673, 233, 677, 286
ए
एणीफस्सा सुफस्सा च, 168
एता चञ्ञा च सेय्यासे, 852
एतादिसं अब्भुतदस्सनेय्यं, 743, 314, 304, 305, 816, 817, 645, 754
एळालुकं अहमदासिं, 457
एवं अहं अमतदसम्हि देवता, 147
एसो हि सङ्घो विपुलो महग्गतो, 643, 752
एहि मातलि अम्हेपि, 805
ओ
ओदनं कुम्मासं डाकं, 178
ओदातमूलकं हरितपत्तं, 773
ओभासयित्वा पथविं सदेवकं, 296, 808

क
कक्कारिकं अहमदासिं, 449
कल्लचित्तञ्च मं ञत्वा, 844
का एसा देवता भद्दे, 635
का कम्बुकायूरधरे, 659
का नाम त्वं विसालक्खि, 666
कामं भिज्जतुयं कायो, 163
कामग्गपत्तानं यमाहुनुत्तरं, 139
कायबन्धनं अहमदासिं, 533-540
किं कम्ममकरी भद्दे, 797
किं त्वं पुरे कम्ममकासि अत्तना, 810, 298
किं त्वं पुरे सुचरितमाचरी भद्दे, 699
किं त्वं पुरे सुचरितमाचरीध, 140
किस्स संयमदमस्सयं विपाको, 652
कीव चिरं विमानम्हि, 243
कुञ्जरो ते वरारोहो, 31
कुतो नु आगम्म अनोमदस्सने, 153
कूटागारा निवेसा ते, 64
कूटागारा निवेसा मे, 72, 738
केन कायं उपपन्ना, 208
केन तेतादिसो वण्णो, 9, 109, 2, 117, 125, 158, 16, 174, 218, 24, 247, 259, 271, 279, 330, 338, 346, 354, 362, 370, 378, 386, 394, 402, 410, 418, 430, 438, 44, 446, 454, 54, 65, 712, 720, 756, 76, 763, 770, 777, 785, 820, 86
केन त्वं विमलोभासा, 77
केनासि भद्दे पतिनो पियतरा, 319
केवट्टद्वारा निक्खम्म, 177
कोचि कोचि एत्थ मयूरसुस्सरो, 661
कोञ्चा मयूरा दिविया च हंसा, 93
कोसातकी नाम लतत्थि भन्ते, 798
ख
खीणासवं विगतरजं अनेजं, 199
खीरोदनं अहमदासिं, 413
ग
गन्धपञ्चङ्गुलिकं अहमदासिं, 373
गन्धुत्तमदायिका नारी, 349
गुत्तिन्द्रियो झानरतो, 840
घ
घायसे तं सुचिगन्धं, 686, 693, 735, 832
च
चण्डालि वन्द पादानि, 195
चतुन्नमपि दीपानं, 194
चतुन्नमपि दीपानं, 728
चत्तारो च पटिपन्ना, 641, 750
चातुद्दसिं पञ्चदसिं, 129, 179, 211, 223, 235, 264, 312, 672, 252
चोदिता भावितत्तेन, 197
छ
छत्तं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय, 581-588
ज
जम्बुयो पनसा ताला, 741
ञ
ञत्वानहं विरजपदं असङ्खतं, 145
त
तं आपगा अनुपरियन्ति सब्बदा, 49, 59, 70,
तं तं वदामि भद्दन्ते, 702
तं भूमिभागेहि उपेतरूपं, 50, 60, 71
तं मे बुद्धो वियाकासि, 640
ततो मं अवधी गावी, 800
ततो मे सस्सु कुपिता, 293
तत्थच्छसि देवि महानुभावे, 94
तत्थद्दसासिं सम्बुद्धं, 837
तत्रूपपन्ना पुरिमच्छरा इमा, 151
तथेव सद्धा इध अरियसाविका, 326
तदाहं सस्सुयाचिक्खिं, 291
तदेव कम्मं कुसलं कतं मया, 302, 303, 814, 815
तन्त्याभिनन्दामसे स्वागतञ्च ते, 156
तमेनं अवधी गावी, 198
तम्हा विमाना ओरुय्ह, 690
तया बहुतरं दत्वा, 630
तस्मा हि अत्तकामेन, 42
तस्मिं रथे कञ्चनबिम्बवण्णे, 663
तस्स कम्मकुसलस्स, 40
तस्स नागस्स खन्धम्हि, 35
तस्स पक्कममानस्स, 34
तस्सा ते नच्चमानाय, 681, 682, 730, 731, 827, 828
तस्सा मे अहु संवेगो, 838
तस्सा मे ञातिकुला दासी, 676
तस्सा मे पस्स विमानं, 334, 342, 350, 358, 366, 374, 382, 390, 398, 406, 414, 422, 434, 442, 450, 458, 614
ता मं कालेनुपागन्त्वा, 169
तायेव ते सुद्धनुमोदनाय, 744, 737
तालवण्टं अहमदासिं, 565-572

ताहं कम्मं करित्वान, 665, 688, 696,
ताहं गिरं सुणित्वान, 843
तिट्ठन्ते निब्बुते चापि, 806
तिम्बरुसकं अहमदासिं, 441
तुय्हंन्विदं इस्सरियं अथो मम, 301, 813
तुय्हञ्च इध पत्ताय, 668
तुवंसि इस्सरा तेसं, 288
तुवञ्च भन्ते अनुकम्पकं विदुं, 306, 818
तेन कम्मेन देविन्द, 678, 801
तेन मे अम्बवनं रम्मं, 791
तेन मेतादिसो वण्णो, 51, 13, 6, 615, 106, 114, 122, 134, 183, 21, 239, 256, 268, 276, 284, 29, 335, 343, 351, 359, 367, 375, 383, 391, 399, 407, 415, 423, 435, 443, 451, 459, 61, 62, 627, 717, 73, 760, 767, 774, 781, 793, 82, 824, 91, 9, 183, 228
तेनहञ्ञेपि समादपेथ, 747
तेनाहं विमलोभासा, 83
तेसं सहब्यकामानं, 172
तेसं सुदिन्नं सुहुतं सुयिट्ठं, 644, 753

द

दद्दल्लमाना वण्णेन, 619
दळ्हं पासं करित्वान, 836
दस्सनं नाभिजानामि, 620
दानस्स ते इदं फलं, 36
दासी अहं पुरे आसिं, 833
दिब्बं ते अम्बवनं रम्मं, 783
दिस्वा मुनिं मुदितमनम्हि पीणिता, 149
दिस्वान गुणसम्पन्नं, 38
देविद्धिपत्तासि महानुभावे, 102, 707, 95
देवेहि त्वं परिवुता सक्कता चसि, 141
दोणिनिम्मज्जनिं अहमदासिं, 525-532

ध

धम्मेन पुब्बे भगिनी, 637

न

नगन्तरे नगरवरे सुमापिते, 142
नत्थि चित्ते पसन्नम्हि, 804
नन्दा चेव सुनन्दा च, 167
नयिदं अकतपुञ्ञानं, 170
नाकासिं सत्थु वचनं, 242
नागस्स दन्तेसु दुवेसु निम्मिता, 706
नानातूरियसङ्घुट्ठं, 742
नानापदुमसञ्छन्ना, 740
नानासन्तानकपुप्फरुक्खविविधा, 654
निद्दाति ममं अञ्ञंसु, 250
निम्बमुट्ठिं अहमदासिं, 509-516
निम्मानरतिनो नाम, 189
नीला पीता च काळा च, 206
नीलुप्पलहत्थकं अहमदासिं, 766
पजापती तस्स सुनिम्मितस्स, 746
पञ्चसिक्खापदे रता, 226 - 227, 132, 182, 214, 238, 255, 267, 675
पञ्चेत्थ नारियो आगमंसु न्हायितुं, 317
पतापेन वण्णेन उत्तरितरा, 704
पतीसु धम्मं पचराम सब्बा, 324
पदीपं तत्थ जालेत्वा, 790
पदीपो चेत्थ जलति, 784, 792
पदुमकुमुदुप्पलकुवलयं, 649
पदुमानुसटं मग्गं, 33
पदुमि पद्म पत्तक्खि, 32
पभस्सरं अच्चिमन्तं, 687
पभस्सरवरवण्णनिभे, 697
परकम्मकरी आसिं, 405
परमगतिगतञ्च पूजयित्वा, 657
परियोसिते विहारे, 789
पल्लङ्कसेट्ठे मणिसोण्णचित्ते, 307
पल्लङ्को च ते महग्घो, 698
पस्स मातलि अच्छेरं, 803
पहूतकतकल्याणा, 204, 623
पाणातिपाता विरता अचोरिका, 311
पाणातिपाता विरता, 131, 181, 213, 225, 237, 254, 266, 674
पारिच्छत्तके कोविळारे, 680
पासादिकं पसादनीयं, 839
पिण्डाय ते चरन्तस्स, 185, 700, 187
पिप्फल्या लसुणेन च, 724
पीठं ते वेळुरियमयं उळारं, 23
पीठं ते वैदूर्यमयम् उदारम्, 8
पीठं ते सोवण्णमयं उळारं, 1, 15
पीतपासादसयने, 796
पीतवत्थे पीतधजे, 658, 795
पुच्छामि तं देवि महानुभावे, 55, 318, 297, 10, 17, 3, 110, 118, 126, 159, 175, 219,231, 248, 25, 260, 272, 280, 331, 347, 349, 355, 363, 371, 379, 387, 395, 403, 411, 431, 439, 447, 45, 455, 66, 713, 721, 757, 764, 771, 778, 78, 786, 821, 87
पुच्छामि तं उप्पलमालधारिनी, 809

पुच्छितो हि मया बुद्धो, 638
पुप्फकमुट्ठिं अहमदासिं, 493-500
पुप्फुत्तमदायिका नारी, 341
पूवं अहमदासिं, भिक्खुनो पिण्डाय 597-604
पोक्खरञ्ञो च मे एत्थ, 739
पोक्खरो च सुफस्सो च, 850
फ
फलिकरजतहेमजालछन्नं, 646
फलुत्तमदायिका नारी, 357
फाणितं अहमदासिं, 421
फारुसकं अहमदासिं, 469-476
ब
बहूनं वत अत्थाय, 807, 856
बाराणसियं उपसङ्कमित्वा, 708
बुद्धे च धम्मे च पसन्नमानसा, 155
बुद्धो च मे इसिनिसभो विनायको, 143
बुद्धो च मे कञ्चनसन्निभत्तचो, 709
भ
भद्दित्थिकाति मं अञ्ञंसु, 209
भयभेरवो दुरासदो, 841
भाति च दस दिसा नभेव सुरियो, 647
भिक्खू च अहं भिक्खुनियो च, 381
भिक्खू चाहं परमहितानुकम्पके, 215
म
मगधवरपुरत्थिमेन, 655
मञ्जिट्ठके विमानस्मिं, 689
मनुस्सभूता दहरा अपापिका, 310
मनुस्सभूता दहरा अपापिका, 321
मनुस्सभूता देविन्द, 636
मनोभावनीयो भिक्खु, 631
मन्दारवानं पुप्फानं, 207
मम च, भन्ते, वचनेन भगवतो 136
मम च, भन्ते, वचनेन भगवतो पादे..184
मा त्वं उपोसथे भायि, 245
मुसतीव नयनं सतेरताव, 648
मूलकं अहमदासिं, भिक्खुनो ...पे. 501-508
मोदकं अहमदासिं, भिक्खुनो.. 05-612
मोदेन्ति परिवारेन्ति, 287
मोरहत्थं अहमदासिं, 573-580
य
यं मग्गं मग्गाधिपती अदेसयि, 748
यजमानानं मनुस्सानं, 639, 639, 751
यञ्च सीलवती आसिं, 679
यथा च मे अधिगतमिदं विमानं, 653
यदा देवा तावतिंसा, 667
यमेतं सक्क अनुपुच्छसे ममं, 154
यसं एतादिसं पत्ता, 625
यस्स यस्सेव सालस्स, 691
या ते अदासि आचामं, 186
या महेसित्तं कारेय्य, 191, 725
या मे अदासि आचामं, 188
या सा अहु मय्हं सखी भदन्ते, 745
यापि ते सिरस्मिं माला, 734, 831, 685
युत्ता च ते परमअलङ्कता हया, 137
ये पुग्गला अट्ठ सतं पसत्था, 749
येन कम्मेन देविन्द, 669
येसं अत्थि सद्धा बुद्धे, 703
यो अन्धकारम्हि तिमीसिकायं, 81
यो वे किलन्तस्स पिपासितस्स, 58
यो वे किलन्तान पिपासितानं, 48, 69
यो वे सम्माविमुत्तानं, 41
र
रथो च ते सुभो वग्गु, 662
रसुत्तमदायिका नारी, 365
ल
लता च सज्जा पवरा च देवता, 316
लद्धानहं अमतवरं विसेसनं, 146
व
वटंसकञ्च सुकतं, 695
वटंसका वातधुता, 684, 733, 830
वत्थुत्तमदायिका नारी, 333
वल्लिफलं अहमदासिं, 461-468
वातेरितं सालवनं, 692
वन्दितुं अनधिवरं उपागमिं, 148
विधूपनं अहमदासिं, 557-564
विपथे कुटं निक्खिपित्वा, 835
विमानपासादवरे मनोरमे, 315
विवत्तमाना कायेन, 683, 732, 829
वेळुरियथम्भं रुचिरं पभस्सरं, 101
स
सक्खलिकं अहमदासिं, 613
सच्चे ठिता मोसवज्जं पहाय, 98
सट्ठितुरियसहस्सानि, 849, 849, 244
सतं निक्खा सतं अस्सा, 192, 726
सतं हेमवता नागा, 193, 727

सततन्तिं सुमधुरं, 327
सत्थु सरीरमुद्दिस्स, 799
सद्धा सीलेन सम्पन्ना, 290
सळललबुजभुजक संयुत्ता, 650
ससी अधिग्गय्ह यथा विरोचति, 152
सस्सु च पच्छा अनुयुञ्जते ममं, 812, 300
सस्सुञ्चाहं ससुरञ्च, 397
सा अहं कायस्स भेदा, 294, 622
सा तिट्ठसि रथवरे अलङ्कता, 138
सा दक्खिणा सङ्घगता, 633
सा देवता अत्तमना, 11, 4, 18, 26, 46, 56, 67, 79, 88, 96, 103, 111, 119, 127, 160, 176, 220, 232, 249, 261, 273, 281, 332, 340, 348, 356, 364, 37, 372, 380, 388, 396, 404, 412, 420, 432, 440, 448, 456, 714, 722, 758, 765, 772, 779, 787, 822
साकमुट्ठिं अहमदासिं, 485-492
सावत्थियं मय्हं सखी भदन्ते, 736
साहं अवट्ठितापेमा, 847
साहं तेन कुसलेन कम्मुना, 322
साहं रमामि कीळामि, 848
साहं वन्दित्वा पादानि, 202
साहं सकेन सीलेन, 133
साहमपचितत्थधम्मकुसलं, 656
सीहो यथा पब्बतसानुगोचरो, 325
सुक्खाय अलोणिकाय च, 716
सुखं अकतपुञ्ञानं, 171
सुखञ्च कतपुञ्ञानं, 855
सुतं नु तं भासति यं अयं लता, 323
सुत्वानहं अमतपदं असङ्खतं, 144
सुनिद्दाति मं अञ्ञंसु, 262
सुवण्णच्छदनं नावं, 43, 53, 63
सुवण्णवण्णा जलिता महायसा, 200
सो मं मुदूहि वाचाहि, 842
सो मे अत्थपुरेक्खारो, 632
सोणदिन्नाति मं अञ्ञंसु, 221
सोवण्णजालं मणिसोण्णचित्तितं, 664
सोवण्णमया लोहितङ्गमया च, 660
स्वागतं वत मे अज्ज, 617

ह

हत्थप्पतापकं अहमदासिं, 477-484
हन्द नच्चाम गायाम, 853
होति च मेऽनुतापो, 701

अ
अच्छरियं वत अब्भुतं वत, 366
अज्जेव बुद्धं सरणं वजाहि, 367
अञ्ञा सुवेणी सुसु मिस्सकेसियो, 172
अट्ठंसा सुकता थम्भा, 279
अट्ठेव मुत्तपुप्फानि, 109
अत्थकामोसि मे यक्ख, 369
अत्थाय वत मे बुद्धो, 76
अत्थाय वत मे भिक्खु, 85
अथ तुम्हे केन वण्णेन, 377
अथ तेनागमा भिक्खु, 296
अदस्सनेनहं तस्स, 336
अद्दसं विरजं भिक्खुं, 102
अधिच्चलद्धं परिणामजं ते, 393
अनुच्छविं ओवदियञ्च मे तं, 407
अनेकचित्तावततो रथो अयं, 163
अनेकवण्णं दरसोकनासनं, 343
अप्पं पि कतं महाविपाकं विपुलं, 50
अप्पं वा बहुं वा नाद्दसाम, 363
अब्बही वत मे सल्लं, 359
अभिरूळ्हञ्च मं ञत्वा, 333
अमज्जपो नो च मुसा अभाणिं, 117
अम्बो च सित्तो समणो च न्हापितो, 300
अलङ्कतो मट्ठकुण्डली, 351
अलङ्कतो मल्यधरो सुवत्थो, 238, 245, 304
अस्सकाधिपतिस्साहं, 126
अहं अन्धकविन्दस्मिं, 287
अहं कपिलवत्थुस्मिं, 329
अहं पुरे मच्छरिनी अहोसिं, 29
अहं भदन्ते अहुवासि पुब्बे, 347
अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूतो,116, 228, 234, 242, 249, 255, 261, 267, 275, 308, 101
अहञ्च भरिया च मनुस्सलोके, 195, 201, 216
अहम्पि दट्ठुं गच्छिस्सं, 340
अहिंसा सब्बपाणीनं, 132
आ
आदिच्चवण्णं रुचिरं पभस्सरं, 9
आदित्तं वत मं सन्तं, 358
आबाधिकोहं दुक्खितो गिलानो, 364
आयुञ्च वण्णञ्च सुखं बलञ्च, 190
आरति समचरिया च, 133
आरामानि च रोपिस्सं, 25
आवेळिनियो पदुमुप्पलच्छदा, 173
इ
इच्चेवं विप्पलपन्तिं, 28
इच्चेव वत्वान यमस्स दूता, 8
इतोपि अच्छेरतरं कुमार, 384
इदञ्च दिस्वान अदिट्ठपुब्बं, 381
इदम्पि पानीयं सीतं, 129
इमस्मिं लोके परस्मिं वा पन, 314
इमा च नाभ्यो मनसाभिनिम्मिता, 162
इमासु वीणासु बहूसु वग्गूसु, 178
इमे च वाळी मणिचन्दकप्पिता, 165
इमे च सब्बे सहिता चतुक्कमा, 166
इमे च सिरीसवना ताता, 403
इमेसञ्च खो वस्ससतच्चयेन, 404
इसयो चापि ये सन्ता, 141
उ
उच्चमिदं मणिथूणं विमानं, 426, 204, 225, 270, 290, 54, 62, 70, 79, 88, 96
उच्चमिदं मणिथूणं विमानं...पे., 231-232
उच्छागारं तिणागारं, 124
उजू अवङ्को असठो अमायो, 414
उज्जङ्गलं ततमिवं कपालं, 376
उट्ठेहि रेवते सुपापधम्मे, 7
उपासको अत्थि इमम्हि सङ्घे, 410
उपेमि सरणं बुद्धं, 149, 370
उपोसथं उपवसिस्सं, 27
उय्यानभूम्या च दुवद्धतो ठिता, 177
ए
एतादिसा सप्पुरिसान सेवना, 425
एतेनुपायेन इमं निरग्गळं, 189
एत्तकमिदं अनुस्सरामि कुसलं ततो, 47
एस संसवको नाम, 16
एसो ते निरयो सुपापधम्मे, 14
क
कण्ठेसु ते यानि पिळन्धनानि, 75
कतमं स्वाहं जनपदं गन्त्वा, 135

कतरस्मिं सो जनपदे, 145
कथं नु सोचेय्य तथाविधो सो, 406
करणीयानि पुञ्ञानि, 75, 84
कल्याणी वत ते वाचा, 130
का ते रति वने विहरतो, 131
किं ते वतं किं पन ब्रह्मचरियं, 395
किं त्वं पुरे कम्ममकासि अत्तना, 181
किं नाम सो किञ्च करोति कम्मं, 416
किं नु कायेन वाचाय, 17
किं नु गूथञ्च मुत्तञ्च, 15
किमिदं कुसलं किमाचरेम, 51
किस्स संयमस्स अयं विपाको, 38
केन तेतादिसो वण्णो, 428, 56, 64,
केन तेतादिसो वण्णो...पे॰ 98-99, 272-273, 292-293, 113-114, 81-82, 90-91, 72-73
को देवलोकतो मनुस्सलोकं, 23
को नु दिब्बेन यानेन, 120
को मे वन्दति पादानि, 1

ख

खतिया ब्राह्मणा वेस्सा, 139
खीणायुकञ्च मं ञत्वा, 156

ग

गन्त्वा मयं सिन्धुसोवीरभूमिं, 408
गन्त्वान ते सङ्घरं सोत्थिवन्तो, 424
गन्त्वान ते सिन्धुसोवीरभूमिं, 423
गमनागमनम्पि दिस्सति, 356
गिम्हानं पच्छिमे मासे, 295

च

चन्दो यथा विगतवलाहके नभे, 213
चातुद्दसिं पञ्चदसिं, 26
चित्रा मनोरमा भूमि, 281, 318
चिरप्पवासिं पुरिसं, 5

छ

छिन्दति रंसी पभङ्करस्स, 34

ज

जम्बोनदुत्तमिदं सुमट्ठो, 388
जानामसे यं त्वं पवदेसि यक्ख, 418
जितिन्द्रियं बुद्धमनोमनिक्कमं, 85
जिनवरपवरं उपेहि सरणं, 40

त

तं कारणा पातुकतोम्हि अत्तना, 415
तं मे गिरं सुणन्तस्स, 332
तं मे वतं तं पन ब्रह्मचरियं, 399
तञ्च अच्छेन वारिना, 299
तञ्च दिस्वान आयन्तं, 297
तत्थ गन्धञ्च मालञ्च, 288
तत्थच्छसि पिवसि खादसि च, 427, 205, 271, 291, 55, 63, 71, 80, 89, 97
तथूपमं इदं ब्यम्हं, 316
तथेव कतपुञ्ञम्पि, 6
तदेव एत्तकं कम्मं, 301
तदेव कम्मं कुसलं कतं मया, 312, 350
तमद्दसं कुञ्जरमोघतिण्णं, 186
तमन्नपानं अथवापि चीवरं, 187
तमन्नपानेन च चीवरेन च, 188
तवेवाहं महामुनि, 209
तस्मा हि फलं अलमेव दातुं, 210
तस्मिं विमाने पवरे, 284, 326
तस्स अदासहं भागं, 235
तस्स तम्बनखे पादे, 335
तस्स मे अनुकम्पाय, 298
तस्सा ते उभतो पस्से, 321
तस्सेव आनुभावेन, 337
ता कम्बुकेयूरधरा सुवाससा, 71
ता मालिनियो पदुमुप्पलच्छदा, 174
ता रत्तरत्तम्बरपीतवाससा, 170
ताहं गन्धेहि मालेहि, 157
ताहं तस्स धम्मकथं सुणित्वा, 398
ते तत्थ सब्बेव 'अहं पुरे'ति, 422, 421, 420
ते दुप्पयाता अपरद्धमग्गा, 380
तेन मेतादिसो वण्णो, 432, 196, 202, 211, 60
तेन मेतादिसो वण्णो...पे॰ 256-257, 94-95, 229-230, 236-237, 243-244, 250-251, 262-263, 268-269, 276-277, 118-119, 217-218, 223-224, 110-111, 68-69, 77-78, 86-87, 103-104
तेन संसवको लद्धो, 19

द

दळ्हधम्मा निसारस्स, 125

दानस्स ते इदं फलं, 183, 285, 327
दिब्बं ममं वस्ससहस्समायु, 67
दिब्बा च वीणा पवदन्ति वग्गुं, 239, 246, 305
दिब्बा ते विविधा रूपा, 325
दिवा पिपासं नधिवासयन्ता, 379
दिस्वान देवं पटिपुच्छि भिक्खु, 303
दिस्वानहं वस्ससतानि पञ्च, 405
दुन्निक्खितं मालं सुनिक्खिपित्वा, 431
देवता नुसि गन्धब्बो, 121, 361
देवपुत्तो अत्तमनो...पे....यस्स- 74
देविद्धिपत्तासि महानुभावे, 206
देविद्धिपत्तोसि महानुभावा, 214, 107, 193
देविद्धिपत्तोसि महानुभावो, 199
देविद्धिपत्तोसि महानुभावो, 226, 240, 247, 253, 259, 265, 306, 345
देवो नु आसि उदवासि यक्खो, 391
द्वयञ्ज किच्चं उभयञ्च कारियं, 309

ध

धुनन्ति वग्गन्ति पतन्ति चम्बरे, 167

न

न च पुरिसस्स अपेति सञ्ञा, 45
न तथा तपति नभे सूरियो, 33
न मासि दानं न च मत्थि दातुं, 349
न विज्जते सो पदेसो, 136
नन्दने च वने रम्मे, 158, 289, 302
नन्दियस्साहं भरिया, 13
नम्हि देवो न गन्धब्बो, 122
नयिध फला मूलमया च सन्ति, 375
नयिमस्मिं लोके परस्मिं वा पन, 191
नयीदमप्पस्स कतस्स कम्मुनो, 182
नरनारियो बहुकेत्थनेकवण्णा, 37
नागस्स दन्तेसु दुवेसु निम्मिता, 106
नाधिच्चलद्धं न परिणामजं मे, 394
नानापदुमसञ्छन्ना, 320
नारीगणा चन्दनसारलित्ता, 12

प

पक्खन्दियान विजितं परेसं, 383
परेसं विजितं गन्त्वा, 334
पस्स कतिपयाय देसनाय सुगतिं, 49
पस्स खणमुहुत्तसञ्ञमस्स, 48
पाणातिपाता विरमस्सु खिप्पं, 368, 150, 371
पारं समुद्दस्स इमञ्च वण्णुं, 382
पुच्छाम देवं सुधम्मं, 123
पुच्छामि 'तं देव महानुभाव, 429, 57, 65
पुण्णमासे यथा चन्दो, 315
पुरत्थिमस्मिं जनपदे, 146
पुरे तुवं पमज्जित्वा, 22

फ

फलदायी फलं विपुलं लभति, 208

ब

बहुकारो अनुकम्पको च सत्था, 52
बहुपदुमविचित्रपुण्डरीकं, 35
बालो खो त्वं असि माणव, 355

भ

भावितत्तापि अरहन्तो, 142
भेरिसङ्खमुदिङ्गाहि, 324

म

मगधेसु अङ्गेसु च सत्थवाहा, 378
मञ्ञे सो मातापितूनं कारणा, 413
मण्डूकोहं पुरे आसिं, 2
मधुरमिमं पगुणं सुविभत्तं, 31
ममं पायासीति अहु समञ्ञा, 396
महद्धना महाभोगा, 137
महन्तं नागं अभिरुय्ह, 112
मा च परजनस्स रञ्ञितं पि- 42
मा च परजनस्स रञ्ञितायो- 43
मा च पाणवधं विविधं चरस्सु असुचिं, 41
मा च वितथं अञ्ञथा, 44
मा चेव सेरीसमहं अकत्थ, 409
मा मं त्वं सरणं गच्छ, 144
मिगे गवेसमानोहं, 127
मुहुत्तं चित्तपसादस्स, 3

य

यं ददाति न तं होति, 93
यञ्च कन्दसि यञ्च रोदसि, 362
यञ्च मे अहुवा हासो, 338
यतो च खो परिनिब्बुतो, 148
यत्थ च दिन्न महप्फलमाहु, 32

यथा वनं चित्तलतं पभासति, 192, 198, 258
यथा वनं नन्दनं पभासति, 264
यदा च गीतानि च वादितानि च, 179
यदा सो अड्ढरत्तायं, 330
यदि ते सुता अन्धकवेण्डुपुत्ता, 138
यहिं यहिं सोकपरिद्दवो च, 401
या देवराजस्स सभा सुधम्मा, 252
ये केचि इमस्मिं सत्थे मनुस्सा, 419
ये च ते दीघमद्धानं, 4
ये चिध पजहन्ति कामरागं, 53
ये मन्तं परिवत्तेन्ति, 140
ये वदतं पवरो मनुजेसु, 30
यो कप्पको सम्भवनामधेय्यो, 417
यो सो अहु राजा पायासि नाम, 373

र

रतनन्तरस्मिं बहुअन्नपानं, 389
रत्तम्बरपीतवससाहि, 36
रथस्स घोसो अपिळन्धनान च, 168
रथे ठिता ता मिगमन्दलोचना, 169
रम्मा च ते पोक्खरणी, 319

व

वङ्के अरञ्ञे अमनुस्सट्ठाने, 374
वातस्स वेगेन च सम्पकम्पिता, 176
वाराणसियं नन्दियो नामासि, 11
विसोधेत्वा दिट्ठिगतं, 342
वेदिया चतस्सो तत्थ, 283
वेळुरियसुवण्णस्स, 280, 317
वेळूरियथम्भा सतमुस्सितासे, 386
वेहायसं पोक्खरञ्ञो सवन्ति, 385

स

सगारवो सप्पटिस्सो विनीतो, 412
सचे हि बुद्धो तिट्ठेय्य, 147
सचे हि भन्ते गच्छेय्यासि, 339
सच्चं किराहंसु नरा सपञ्ञा, 400
सच्चं खो वदेसि माणव, 357
सञ्जानमानो न मुसा भणेय्य, 411
सतिसमुप्पादकरो, 59
सत्थिं आकोटयित्वान, 331
सदेवके लोके समारके च, 313
सन्तिके मरणं तुय्हं, 134
सब्बाभरणसञ्छन्ना, 323
समणे ब्राह्मणे चापि, 18
समणो च खो आसि कुमारकस्सपो, 397
समस्समो नत्थि कुतो पनुत्तरो, 344
सम्मूळ्हरूपोव जनो अहोसि, 402
सयमिध पथे समेच्च माणवेन, 39
सहस्सथम्भं अतुलानुभावं, 387
सहस्सयुत्तं हयवाहनं सुभं, 159
सहस्सरंसीव यथा महप्पभो, 151
साधु खो मं पटिनेथ, 21
साहं नून इतो गन्त्वा, 24
सिरस्मिं चित्तं मणिचन्दकप्पितं, 164
सीसञ्चिदं वेळुरियस्स निम्मितं, 153
सुजातो नामहं भन्ते, 155
सुणोथ यक्खस्स च वाणिजान च, 372
सुभासिता अत्थवती, 143
सुवण्णजालावततो रथो अयं, 161
सुवण्णपट्टेहि समन्तमोत्थटो, 152
सुसुक्कखन्धं अभिरुय्ह नागं, 105
सूरियो यथा विगतवलाहके नभे, 219-222
सेरीसको नाम अहम्हि यक्खो, 392
सो कतञ्ञू कतवेदी, 341
सो तिट्ठसि हेमरथे अधिट्ठितो, 54
सो देवपुत्तो अत्तमनो, 108, 115, 184, 194, 200, 207, 207, 430, 58, 66
सो देवपुत्तो अत्तमनो...पे॰- 233, 241, 248, 254, 260, 266, 274, 286, 294, 307, 328, 83, 92, 354, 346, 100, 227
सो मासखेत्तं तुरितो अवासरिं, 310
सो मोदसि तुरियगणप्पबोधनो, 180
सो मोदसि नारिगणप्पबोधनो, 390
सोपाणानि च चत्तारि, 282
सोवण्णपादे पल्लङ्के, 322
सोवण्णमयं मणिमयं, 353
सोवण्णमया ते रथकुब्बरा उभो, 160
सोवण्णमये पब्बतस्मिं, 278
सोवण्णमयो पभस्सरो, 352
सोहं सुमेधस्स जिनस्स सत्थुनो, 348
स्वागतं ते महापुञ्ञ, 128

स्वाहं अट्टोम्हि दुक्खेन पीळितो, 311
स्वाहं अब्बूळ्हसल्लोस्मि, 360
स्वाहं इध पञ्च सिक्खा करित्वा, 46
स्वाहं मुदितमनो पसन्नचित्तो, 365
ह
हत्थेपि छिन्दन्ति अथोपि पादे, 20

अ
अकम्मकामा अलसा, 397
अक्कोधनो निच्चपसन्नचित्तो, 535
अखण्डकारी सिक्खाय, 700
अग्गिवण्णो च नो वातो, 787, 469
अङ्कतो अङ्कं गच्छन्ति, 404
अङ्गीरसस्स गहपतिनो, 284
अच्छरियं वत अब्भुतं वत, 201
अच्छेज्जाभेज्जो हि जीवो, 685
अच्छेररूपं सुगतस्स ञाणं, 453
अज्जेव बुद्धं सरणं उपेमि, 597, 592
अज्जेव बुद्धं सरणं वजाहि, 202
अञ्ञमञ्ञं वधित्वान, 80
अञ्ञातो एसो पुरिसस्स अत्थो, 527, 591
अट्टीयामि हरायामि, 59
अट्ठङ्गिकेन मग्गेन, 706
अत्तनोहं अनत्थाय, 503
अत्थकामोसि मे यक्ख, 204, 709, 794
अत्थि च मे एत्थ निक्खित्तं, 475, 471
अथ तुम्हे केन वण्णेन, 609
अथद्दसासिं सम्बुद्धं, 811
अथापरे पादकुठारिकाहि, 563
अदा अन्नञ्च पानञ्च, 292
अदानमतिदानञ्च, 301
अदासि मे अकासि मे, 22
अद्धा पटिञ्ञा मे तदा अहु, 528
अद्धा हि दानं बहुधा पसत्थं, 568
अधिच्चलद्धं परिणामजं ते, 625
अनब्भितो ततो आगा, 87
अनावटेसु तित्थेसु, 467, 785
अनुकम्पका मय्हं नाहेसुं भन्ते, 98
अनुकम्पस्सु कारुणिको, 415
अनुच्छविं ओवदियञ्च मे तं, 639
अनेकभागेन गुणेन सेय्यो, 525
अन्तलिक्खस्मिं तिट्ठन्तो, 507
अपरे पन सुगतिमासमाना, 540
अपि योजनानि गच्छाम, 788
अप्पं वा बहुं वा नाद्दसाम, 198
अप्पञ्ञातो दिस्वापि न च सुजानो, 551
अब्बही वत मे सल्लं, 194, 223, 381, 51
अभिक्कन्तेन वण्णेन, 104, 126, 162, 180
अभिज्जमाने वारिम्हि, 387
अमानुसा पारिसज्जा, 500
अमित्तो मित्तवण्णेन, 771, 779
अम्बपक्कं दकं यागु, 798
अयं कुमारो सीवथिकाय छड्डितो, 454
अयं पुरे मातरं हिंसति, 448
अयं मग्गो रमणीयो, 660
अयं सीतोदिका गङ्गा, 334
अयं सो इन्दको यक्खो, 324
अयञ्च खो दक्खिणा दिन्ना, 13, 24
अयञ्च ते पोक्खरणी सुरम्मा, 796
अलङ्कतो मट्ठकुण्डली, 186
अलमेव कातुं कल्याणं, 280
अवञ्झानि च कम्मानि, 452
अविरोधकरेसु पाणिसु, 480
असीति सकटवाहानं, 231
अस्सद्धो मच्छरी चासिं, 233
अहं ते सकिया माता, 117
अहं नन्दा नन्दिसेन, 169, 183
अहं पुरे पब्बजितस्स भिक्खुनो, 341
अहं पुरे मच्छरिनी अहोसिं, 736
अहं पुरे संयमिस्सं, 238
अहं भदन्ते पेतीम्हि, 27, 36, 465, 775, 96
अहं भदन्ते पेतोम्हि, 228, 767, 807
अहं मत्ता तुवं तिस्सा, 135, 165
अहं मनुस्सेसु मनुस्सभूता, 449
अहं राजगहे रम्मे, 479, 491, 510
अहु आवासिको मय्हं, 769, 777
अहु इत्थी अहु पुरिसो, 379
अहु राजा ब्रह्मदत्तो, 368
अहू मय्हं दुवे पुत्ता, 40
अहो वत रे अहमेव दज्जं, 302

आ
आचिक्ख भन्ते यदि अत्थि हेतु, 589
आतुमे इत्थिभूताय, 378
आदिच्चवण्णं रुचिरं पभस्सरं, 716

आदित्तं वत मं सन्तं, 193, 222, 380, 50
बाधिकोहं दुक्खितो गिलानो, 199, 316
आरामानि च रोपिस्सं, 732
आलोपस्स फलं पस्स, 109
आहिण्डमाना खञ्जाम, 435

इ

इङ्घ त्वं गन्त्वान पिट्ठितो, 744
इच्चेवं विप्पलपन्तिं, 735
इच्चेव मच्चा परिदेवयन्ति, 81
इच्चेव वत्वान यमस्स दूता, 715
इतो अहं वस्ससतानि पञ्च, 99
इतो चुतो लिच्छवि एस पोसो, 524
इतोपि अच्छेरतरं कुमार, 616
इत्तरं हि धनं धञ्ञं, 83
इदं मम उच्छुवनं महन्तं, 737
इदं वत्वान सोरट्ठो, 713
इदं विमानं विरजं समे ठितं, 444
इदञ्च ते अम्बवनं सुरम्मं, 797
इदञ्च दिस्वान अदिट्ठपुब्बं, 613
इदञ्च सुत्वा वचनं ममेसो, 526
इदानि भूतस्स पिता, 155
इध धम्मं चरित्वान, 167, 185
इधेव कुसलं कत्वा, 3
इमं यक्खं गहेत्वान, 258
इमा च ते पोक्खरणी समन्ता, 441
इमा च पस्स आयन्तियो, 514
इमानि मे अट्ठ युगा सुभानि, 561
इमे च सिरीसवना ताता, 635
इमे पादा इदं सीसं, 48
इमेसञ्च खो वस्ससतच्चयेन, 636
इसयो वापि ये सन्ता, 220
इसिं सुनेत्त मद्दक्खि, 755
इसि च तत्थ आगच्छि, 370

उ

उच्छुं तुवं खादमानो पयातो, 742
उजू अवङ्को असठो अमायो, 646
उज्जङ्गलं तत्तमिवं कपालं, 608
उज्जङ्गले यथा खेत्ते, 325
उट्ठेहि कण्ह किं सेसि, 207
उट्ठेहि रेवते सुपापधम्मे, 714
उण्हे मज्झन्हिके काले, 659
उत्तानोपि च पच्चित्थ, 760
उद्धं चतूहि मासेहि, 239, 69
उन्नमे उदकं वुट्ठं, 20
उपासको अत्थि इमम्हि सङ्घे, 642
उपेमि सरणं बुद्धं, 205, 710
उपोसथं उपवसिस्सं, 734
उप्पण्डुकिं किसं छातं, 107
उभिन्नं समकं आसि, 151
उय्यानभूमिं गन्त्वान, 356
उरगोव तचं जिण्णं, 85

ए

एतं अच्छादयित्वान, 62
एतं बीजं कसि खेत्तं, 2
एतं ते परलोके, 340
एतञ्च अञ्ञञ्च लहुं पमुञ्च, 584
एतञ्च भन्ते अरहाम, 791
एतमादीनवं ञत्वा, 752, 764
एतस्मिं पादानि पतिट्ठपेत्वा, 533
एतादिसं उत्तमकिच्छपत्तं, 457
एतादिसं उत्तमकिच्छप्पत्तं, 522
एतादिसं खो कटुकं, 762
एतादिसा लिच्छवि अम्बसक्करो, 601
एतादिसा सप्पुरिसान सेवना, 603, 657
एते च दानानि अदंसु पुब्बे, 78
एत्तावता वीसतिरतिमत्ता, 583
एवं करोन्ति सप्पञ्ञा, 225, 53
एवं चे कण्ह जानासि, 214
एवं दत्वा यजित्वा च, 313
एवं ददन्ति ञातीनं, 16
एवं सो खादतत्तानं, 505
एवंदिट्ठि पुरे आसिं, 691
एवञ्च धम्मानि समाचरन्तो, 596
एस संसवको नाम, 723
एसो ते निरयो सुपापधम्मे, 721
एसो निसिन्नो कपिनच्चनायं, 554

ओ

ओफुणामि महावाते, 712

ओरं मे छहि मासेहि, 692
ओलोकेत्वान सम्बुद्धो, 321
क
कत्थ गच्छाम भद्दं वो, 273
कथं नु सोचेय्य तथाविधो सो, 638
कथं हि दानं ददमानो, 288
कप्पितकञ्च उपसङ्कमित्वा, 579, 586
कप्पितको नाम इधत्थि भिक्खु, 548
करोति भद्दकं कम्मं, 699
करोहि कम्मं इध वेदनीयं, 445
कस्मिं पदेसे समणं वसन्तं, 553
कस्स इदं आळाहनं, 371
का नु अन्तोविमानस्मिं, 58
कायेन सञ्ञतो आसिं, 5
कायो ते सब्बसोवण्णो, 4
कालेन पञ्च पुत्तानि, 28
कालेन सत्त पुत्तानि, 37
काळी दुब्बण्णरूपासि, 168
किं ततो पापकं अस्स, 750
किं तुम्हाकं भोजनं किं सयानं, 79
किं ते वतं किं पन ब्रह्मचरियं, 627
किं नाम सो किञ्च करोति कम्मं, 648
किं नु उम्मत्तरूपोव, 209, 46, 806
किं नु कायेन वाचाय, 136, 170, 229, 30, 336, 359, 39, 466, 490, 502, 509, 724, 768, 776, 784, 809, 97
किं नु गूथञ्च मुत्तञ्च, 722
किंसीलो किंसमाचारो, 269, 676
किमिलायं गहपति, 360
किस्स वतं किं पन ब्रह्मचरियं, 459
कुण्डिनागरियो थेरो, 408
कुम्मग्गं पटिपन्नम्हा, 662, 663, 665
कूटागारे च पासादे, 403, 488
केन ते अङ्गुली कुणा, 283
केन तेतादिसो वण्णो, 105, 127, 163, 181
केसा चस्सा अतिदीघा, 332
को छत्तिच्छति गन्धञ्च, 294
को छातो को च तसितो, 293
को देवलोकतो मनुस्सलोकं, 730
कोटिसतसहस्सानि, 696
कोसेय्यकम्बलीयानि, 425
ख
खत्तिया ब्राह्मणा वेस्सा, 218
खिड्डाय यक्खो पसवित्वा पापं, 566
खेत्तूपमा अरहन्तो, 1
ग
गती च बन्धू च परायणञ्च, 574
गन्त्वा मयं सिन्धुसोवीरभूमिं, 640
गन्त्वान ते सङ्घरं सोत्थिवन्तो, 656
गन्त्वान ते सिन्धुसोवीरभूमिं, 655
गन्त्वान सो पिट्ठितो अग्गहेसि, 745
गन्त्वान हत्थिनिं पुरं, 470
गमनागमनम्पि दिस्सति, 191
गामा गामं विचरन्ती, 385
गूथकूपतो उग्गन्त्वा, 766, 774
गूथञ्च मुतं रुहिरञ्च पुब्बं, 54, 57
घ
घरेन पानीयदानेन, 438
च
चण्डी च फरुसा चासिं, 137, 171
चतस्सो कुटियो कत्वा, 123
चतुक्कण्णं चतुद्वारं, 240, 693, 70
चत्तारो च पटिपन्ना, 707
चत्तारो च महाराजे, 11
चत्तारो भिक्खू सङ्घतो, 158
चातुद्दसिं पञ्चदसिं, 733
चिरं जीवन्तु नो ञाती, 18
चीवरं पिण्डपातञ्च, 338, 594, 59
चुन्दट्ठिलं गमिस्सामि, 388
चुल्लासीति महाकप्पिनो, 689
चोदितो भावितत्तेन, 323
छ
छड्डितं खिपितं खेळं, 118, 130
छळासीतिसहस्सानि, 374, 512
छळेव चतुरासीति, 759
छाता पमुच्छिता भन्ता, 789
छातो किलन्तो च पिपासितो च, 740

ज
जम्बोनदुत्तमिदं सुमट्ठो, 620
जानामसे यं त्वं पवदेसि यक्ख, 650
ट
टच्छुभिक्खं दत्वान, 314
ठ
ठत्वान सो वस्ससतं इधेव, 463
ड
डय्हमानो न जानाति, 86, 88, 90, 92, 94
तं
तं कारणा पातुकतोम्हि अत्तना, 647
तं किन्ति जानेय्यमहं अवेच्च, 541
तं त्याहं नारद ब्रूमि, 6
तं दिस्वा संवेगमलत्थं भन्ते, 567
तं मे वतं तं पन ब्रह्मचरियं, 631
तं वो वदामि भद्दं वो, 243
तं सुणोहि महाराज, 677, 698, 705
तञ्च ते न्हापयित्वान, 63
तञ्च दिस्वा महामत्तो, 389
तञ्च दिस्वान अच्छेरं, 515
ततो उद्दस्सयी भाता, 420
ततो च काले गिहिकिच्चानि कत्वा, 558
ततो च राजा निपतित्वा तावदे, 254
ततो ते कण्णमुण्डो सुनखो, 357
ततो त्वं अङ्गपच्चङ्गी, 358
ततो पंसुं गहेत्वान, 141
ततो बहुतरा भन्ते, 111
ततो मे दानं ददतु, 472, 476
ततो मे सामिको कुद्धो, 41
ततो रत्या विवसाने, 489
ततो सत्थं गहेत्वान, 508
ततो सुद्धा सुचिवसना, 103, 125, 161, 179, 65
ततो सुवत्थवसनो, 391
ततो हि सा दानमदा, 477
ततो हि सो आचमयित्वा लिच्छवि, 569
ततो हि सो निवत्तित्वा, 291
तत्थ न्हत्वा पिवित्वा च, 434
तत्थ याचनका यन्ति, 272
तत्थ याचनके दिस्वा, 285
तत्थाहं दीघमद्धानं, 242, 697, 72
तत्थाहं परिसं गन्त्वा, 504
तथा'ति वत्वा अगमासि तत्थ, 251, 557
तथाहं कस्सामि गन्त्वा इदानि, 555
तथेव दानं बहुकं, 326
तथेव सीलवन्तेसु, 328
तदस्सा माता कुपिता, 43
तदेव मं त्वं अवच, 152
तप्पेहि अन्नपानेन, 175
तमद्दसा चन्दनसारलित्तं, 570
तमद्दसा देवमनुस्सपूजितो, 458
तमवोच राजा "अनुभवियान तम्पि, 250
तमेनमवोच उपसङ्कमित्वा, 560, 572, 580
तयिदं तया नारद सामं दिट्ठं, 506, 9
तव गन्धञ्च मालञ्च, 149
तव दिन्नेन दानेन, 166
तव दिन्नेन दानेन, 184
तस्स अयोमया भूमि, 241, 694, 71
तस्स आळाहनं गन्त्वा, 369
तस्स इदं आळाहनं, 373
तस्स कम्मस्स कुसलस्स, 486, 497, 68
तस्स कम्मस्स फरुसस्स, 758
तस्स कम्मस्स विपाकं, 364
तस्स कम्मस्स विपाकेन, 34, 45, 451
तस्स तं वचनं सुत्वा, 208, 383
तस्स तुवं एकयुगं दुवे वा, 552
तस्स भाता वितरित्वा, 411
तस्स माता पिता भाता, 409
तस्स मे सहायो सुहृदयो, 481, 492
तस्स वतं तं पन ब्रह्मचरियं, 462
तस्सा त्याजानमानाय, 144, 147
तस्सा द्वेमासिको गब्भो, 32
तस्सा मे पेक्खमानाय, 140
तस्सायं मे भरिया च, 511
तस्साहं वचनं सुत्वा, 483, 494, 770, 778
तस्सेव कम्मस्स विपाकमन्वया, 343
तस्सेवाहं पापकम्मस्स, 772
तस्सेवाहं पापकम्मस्स, 780

ताव महद्धनस्सापि, 232
तावतिंसे यदा बुद्धो, 317
ताहं तस्स धम्मकथं सुणित्वा, 630
ताहं देव नमस्सामि, 366
तिणेन तेलम्पि न त्वं अदासि, 564
तिरोकुट्टेसु तिट्ठन्ति, 14
तिसहस्सानि सूदानि हि, 307
तुन्नवायो पुरे आसिं, 270
तुम्हे पन मुग्गरहत्थपाणिनो, 74
तुवञ्च मे लिच्छवि एकदेसं, 573
ते अञ्ञमञ्ञं अकरिम्ह सक्खिं, 578
ते खुप्पिपासूपगता परत्थ, 82
ते घरा ता च दासियो, 154, 398
ते च तत्थ पपतिता, 394
ते च तत्थ वियाकंसु, 372
ते च तत्थ समागन्त्वा, 17
ते च तत्थेव पतिता, 790
ते चुता च मनुस्सत्ता, 748
ते तत्थ सब्बेव 'अहं पुरे'ति, 652, 653, 654
ते दुग्गता सूचिकट्टा, 410, 414
ते दुप्पयाता अपरद्धमग्गा, 612
ते मयं परिदहाम, 426
ते हि नून इतो गन्त्वा, 792
तेन पाणि कामददो, 275, 277
तेन पायासि सोरट्ठो, 661, 669
तेन मे अङ्गुली कुणा, 286
तेन संसवको लद्धो, 726
तेसं सहब्यकामानं, 407
त्वञ्च देव बहुकारो, 365

थ

थण्डिले पत्तं भिन्दित्वा, 757
थालकस्स च पानीयं, 113
थेरो करणं पूरेत्वा, 431
थेरो चरित्वा पिण्डाय, 416
थेरो चामनसिकत्वा, 412
थेरो पण्णकुटिं कत्वा, 427
थेरो सङ्कारकूटम्हा, 421
थेरो सब्बेव ते आह, 417
थेरो सिपाटिकं लद्धा, 436

द

दत्वा अन्वादिसी थेरो, 422
ददतो मे न खीयेथ, 299
ददन्तानं करोन्तानं, 679
दद्दल्लमाना आभेन्ति, 430
दद्दल्लमाना यससा यसस्सिनी, 443
दससु लोकधातूसु, 318
दसहि ठानेहि अङ्कुरं, 315
दस्सामन्नञ्च पानञ्च, 282, 290
दिट्ठा तया निरया तिरच्छानयोनि, 793
दिट्ठा मया अकतेन साधुना, 347
दिट्ठा मया निरया तिरच्छानयोनि, 795
दिट्ठेव धम्मे पासंसो, 765
दिब्बं सुभं धारेसि वण्णधातुं, 7
दिवा पिपासं नधिवासयन्ता, 611
दिवाविहारगतं भिक्खुं, 331
दिस्वा च तं आलपिस्सं भदन्ते, 577
दिस्वा च सुत्वा अभिसद्दहस्सु, 542
दिस्वान पेतं पुनदेव आगतं, 252
दिस्वानहं वस्ससतानि पञ्च, 637
दुज्जीवितमजीवम्ह, 804
दूरतोव समणब्राह्मणा च, 562
दूरे एके पधावित्वा, 393
देवता नुसि गन्धब्बो, 196, 674
देवो नु आसि उदवासि यक्खो, 623
देहि पुत्तक मे दानं, 121
द्वयञ्ज कम्मानं विपाकमाहु, 545

ध

धम्मेन ते कापुरिस, 287, 814
धीता च मय्हं लपते अभिक्खणं, 249

न

न ओग्गतत्तस्स भवन्ति मित्ता, 520
न किर त्वं अदा दानं, 276
न कोचि देवो वण्णेन, 319
न मत्थि कम्मानि सयंकतानि, 546
न मनुस्सेसु ईदिसं, 352
न मनुस्सेसु ईदिसा, 429
न मन्ता मूलभेसज्जा, 216
न यं लब्भा मनुस्सेन, 215

न सब्बवित्तानि परे पवेच्छे, 300
न हि अन्नेन पानेन, 47
न हि तत्थ कसि अत्थि, 19
न हि रुण्णं वा सोको वा, 12, 23
नगरं अत्थि पण्णानं, 230
नग्गा दुब्बण्णरूपात्थ, 782
नग्गा दुब्बण्णरूपाम्हि, 156
नग्गा दुब्बण्णरूपासि, 116, 134, 26, 35, 464, 95
नग्गो किसो पब्बजितोसि भन्ते, 246
नग्गो दुब्बण्णरूपोसि, 227
नच्चं गीतं रतिं खिड्डं, 754
नत्थि अन्तो कुतो अन्तो, 803
नत्थि दानफलं नाम, 682
नत्थि माता पिता भाता, 683
नदिं उपेम तसिता, 786
नदिं उपेमि तसिता, 468
नन्दियस्साहं भरिया, 720
नयिदं अकतपुञ्ञानं, 405
नयिध फला मूलमया च सन्ति, 607
नयिमस्स रक्खं विदहिंसु केचि, 456
नरनारिपुरक्खतो युवा, 478
नवानि वत्थानि सुभानि चेव, 55
नाधिच्चलद्धं न परिणामजं मे, 626
नानादिजगणाकिण्णा, 351
नानारुक्खेहि सञ्छन्ना, 349
नाम्हि देवो न गन्धब्बो, 268, 675
नाय्यकस्स हत्थपादा, 49
नारीगणा चन्दनसारलित्ता, 717, 719
नावाय तिट्ठमानाय, 390
नाहं पजानामि असय्हसाहिनो, 279
नाहं देवेन वा मनुस्सेन वा, 266
नाहमेते ससे इच्छे, 212
निग्रोधो सो महाराज, 668
निय्यादयिंसु थेरस्स, 418
निवेसनञ्च मे आसि, 271
निहीनत्तो सब्बभोगेहि किच्छो, 521
नो चेत्थ कम्मानि करेय्युं मच्चा, 543

प

पक्खन्दियान विजितं परेसं, 615
पग्गय्ह दक्खिणं बाहुं, 274
पच्चेमि भन्ते यं त्वं वदेसि, 565
पञ्च दासिसता तुय्हं, 353
पञ्चपण्णासवस्सानि, 236, 333
परिडय्हति धूमायति, 29, 38
पल्लङ्का बहुका तुय्हं, 354
पस्सानुभावं अपरिमितं ममयिदं, 256
पहूतं अन्नपानम्पि, 396
पहूते अन्नपानम्हि, 15
पाणातिपाता विरमस्सु खिप्पं, 203, 593, 708, 206, 598, 711
पाणि ते सब्बसो वण्णो, 267
पाणिमत्तस्स चोळस्स, 110
पारं समुद्दस्स इमञ्च वण्णुं, 614
पिवित्वा राजा पानीयं, 673
पुच्छामि तं देवि महानुभावे, 128, 164, 182, 106
पुत्तो मे उत्तरो नाम, 337
पुप्फाभिकिण्णं रमितं विमानं, 342
पुब्बलोहितं भक्खामि, 120
पुब्बलोहितं भक्खिस्सं, 132
पुब्बे कतानं कम्मानं, 753
पुब्बे च कतकल्याणा, 401
पुब्बेव दाना सुमनो, 305
पुरतोव यो गच्छति कुञ्जरेन, 75
पुरतोव सेतेन पलेति हत्थिना, 73
पुरिसो च देववण्णी, 671
पुरे तुवं कम्ममकासि अत्तना, 741
पुरे तुवं पमज्जित्वा, 729
पूरं पानीयसरकं, 703

ब

बहुं बहूनं पादासि, 311
बहू मासे च पक्खे च, 312
बहूनि वस्ससहस्सानि, 761
बहूसु वत सन्तेसु, 749
बाराणसियं नन्दियो नामासि, 718
बाराणसी नगरं दूरघुट्ठं, 247
बालो खो त्वं असि माणव, 190
बुद्धञ्च सङ्घं परिविसियान राज, 253
बुद्धपमुखस्स भिक्खुसङ्घस्स, 460

भ
भरिया ममेसा अहू भदन्ते, 56
भावितत्ता अरहन्तो, 221
भिक्खु च सीलसम्पन्नो, 701
भिक्खुनो चरमानस्स, 67
भिक्खू च सीलसम्पन्ने, 177, 600
भिक्खूनं आलोपं दत्वा, 108
भिक्खूपि सीलसम्पन्ने, 595
भुत्ता अमानुसा कामा, 367
भुसानि एको सालिं पुनापरो, 447
भेसज्जहारी उभयो, 143
म
मगधेसु अङ्गेसु च सत्थवाहा, 610
मञ्ञे सो मातापितूनं कारणा, 645
मत्तेय्या होथ पेत्तेय्या, 245
ममं पायासीति अहु समञ्ञा, 628
मयं पुब्बे पापधम्मा, 395
मयं भदन्ते पेताम्हा, 783
मयं भोगे संहरिम्ह, 801
महद्धना महाभोगा, 217
महादानं तया दिन्नं, 322
महानुभावोसि तुवं, 501
मा अक्खणे पब्बजितं उपागमि, 556
मा चेव सेरीसमहं अकत्थ, 641
माकासि पापकं कम्मं, 493, 482
माता पिता च ते भन्ते, 413
मातुया वचनं सुत्वा, 122
माली किरिटी कायूरी, 499
मितानि सुखदुक्खानि, 690
मुसावादेन छादेमि, 450
मेत्ताचित्तं आभावेत्वा, 386
य
यं किञ्चहं चक्खुना पस्सिस्सामि, 529
यं किञ्चारम्मणं कत्वा, 10
यं त्वं मय्हं अकामाय, 339
यं ददाति न तं होति, 800
यं भदन्ते हदन्तञ्ञे, 773, 781
यञ्च कन्दसि यञ्च रोदसि, 197
यत्थ त्वं वासूपगता, 355
यथा गामतो निक्खम्म, 687
यथा गेहतो निक्खम्म, 688
यथा वारिवहा पूरा, 21
यथा सुतगुळे खित्ते, 686
यथापि दारको चन्दं, 91
यथापि ब्रह्मे उदकुम्भो, 93
यथापि भद्दके खेत्ते, 327
यसञ्च कित्तिञ्च धम्मे ठितानं, 536
यस्मा च कम्मानि करोन्ति मच्चा, 544
यस्स अत्थाय गच्छाम, 257
यस्स एतादिसा होन्ति, 226
यस्स याचनके दिस्वा, 303, 304
यस्स रुक्खस्स छायाय, 259, 260, 261, 262
यस्सेकरत्तिम्पि घरे वसेय्य, 263, 264
यहिं यहिं सोकपरिद्दवो च, 633
या सा च पच्छा सिविकाय नीयति, 77
यानि यानि निहीनानि, 400
यावता नन्दराजस्स, 424
ये केचि इमस्मिं सत्थे मनुस्सा, 651
ये च खो थूपपूजाय, 513
ये च ते सततानुयोगिनो, 487, 498
ये ञातका दिट्ठसुता सुहज्जा, 519
ये ते एवं पजानन्ति, 84
ये दुट्ठसङ्कप्पमना मनुस्सा, 539
ये मन्तं परिवत्तेन्ति, 219
यो कप्पको सम्भवनामधेय्यो, 649
यो कीळमानो पकरोति पापं, 538
यो पुब्बे कतकल्याणो, 265
यो राजा चूळनीपुतो, 375
यो संयमो सो विनासो, 237
यो सो अहु राजा पायासि नाम, 605
यो सो दानमदा भन्ते, 278
यो सो मज्झे अस्सतरीरथेन, 76
योजनानि दस द्वे च, 320
योपि हनेय्य पुरिसं, 684
र
रतनन्तरस्मिं बहुअन्नपानं, 621
राजा पिङ्गलको नाम, 658
व
वङ्के अरञ्ञे अमनुस्सट्ठाने, 606

वणिकानञ्च यं घान, 119, 131
वण्णो च ते कनकस्स सन्निभो, 440
वण्णो च ते सब्बदिसा पभासति, 534
वत्थञ्च अन्नपानञ्च, 173
वन्दामि तं अय्य पसन्नचित्ता, 100
वस्सानि सतसहस्सानि, 695
वामतो मं त्वं पच्चेसि, 153
विघातो चाहं परिपतामि छमायं, 739
विचेय्य दानं दातब्बं, 329
विचेय्य दानं सुगतप्पसत्थं, 330
विपाको नत्थि दानस्स, 234, 680
विपुला च महग्घा च, 112
वेजयन्ते च पासादे, 402
वेणी वा अवञ्ञा होन्ति, 399
वेळुरियथम्भं रुचिरं पभस्सरं, 439
वेळूरियथम्भा सतमुस्सितासे, 618
वेसालिया नगरस्स मज्झे, 532
वेसाली नाम नगरत्थि वज्जीनं, 517
वेहायसं पोक्खरञ्ञो सवन्ति, 617

स

संविग्गो राजा सोरट्ठो, 664
सक्को चे ते वरं दज्जा, 297, 298
सखिलो वदञ्ञू सुवचो सुमुखो, 549
सगारवो सप्पटिस्सो विनीतो, 644
सचाहं तं अतिचरामि, 363
सचाहं भन्ते गङ्गाय, 335
सचे तं पापकं कम्मं, 244
सचे तुवं अस्सद्धो भविस्ससि, 575
सचे पन त्वं भविस्ससि धम्मगारवो, 576
सचे रोदे किसा अस्सं, 89
सचे स धम्मानि समाचरेय्य, 590
सच्चं अहम्पि जानामि, 142, 145, 148, 150
सच्चं किराहंसु नरा सपञ्ञा, 632
सच्चं खो वदेसि माणव, 192
सच्चप्पटिञ्ञा तव मेसा होतु, 530
सञ्जानमानो न मुसा भणेय्य, 643
सट्ठि कूटसहस्सानि, 808, 810, 813, 308, 306, 802
सत्त तुवं वस्ससता इधागता, 344
सत्तेव वस्सानि इधागताय मे, 345
सन्ति अञ्ञेपि ससका, 211
सन्तो विधूमो अनीघो निरासो, 550
सन्दिट्ठिकं कम्मं एवं पस्सथ, 799
सपती मे गब्भिनी आसि, 31
सपदानं चरमानो, 702
सब्बं अहम्पि जानामि, 138
सब्बे वाहेसुं राजानो, 376
सब्बेसं अनुपुब्बेन, 377
समणे ब्राह्मणे चापि, 725
समणो अहं पापोतिदुट्ठवाचो, 8
समणो च खो आसि कुमारकस्सपो, 629
समतुल्यानि भूतानि, 681
समनन्तरानुद्दिट्ठे, 437, 102, 124, 160, 178, 419, 423, 428, 432, 64, 704
सम्मत्ता रजनीयेसु, 747
सम्मूळ्हरूपोव जनो अहोसि, 634
सहस्सथम्भं अतुलानुभावं, 619
सहायानं तित्थस्मिं न्हायन्तानं, 537
सहायानं समयो आसि, 146
सा च पब्बजिता सन्ता, 384
सा मं तत्थ समादपेसि, 474
सातुन्नवसना एके, 392
साधु खो मं पटिनेथ, 728
साधू'ति सो तस्सा पटिस्सुणित्वा, 446
साधू'ति सो पटिस्सुत्वा, 473
साधूति सा पटिस्सुत्वा, 159
साधूति सो पटिस्सुत्वा, 101, 176
सामिनो इध हुत्वान, 751
सारथिं आमन्तयी राजा, 667
सारिपुत्तस्स दानेन, 133
सारिपुत्तस्साहं माता, 129
सालित्तकप्पहारेन, 812
सालोहितो एस अहोसि मय्हं, 523
सावत्थि नाम नगरं, 746
साहं अब्बूळ्हसल्लास्मि, 382
साहं घोरञ्च सपथं, 33, 362, 44
साहं नून इतो गन्त्वा, 731
साहं पदुट्ठमनसा, 42
साहं रमामि कीळामि, 115

सिया नु खो कारणं किञ्चि यक्ख, 547
सीतोदिका सुप्पतित्था, 433
सीसंन्हाता तुवं आसि, 139
सुखं अकतपुञ्ञानं, 406
सुखं सुपति अङ्कुरो, 295
सुखं सुपति अङ्कुरो, 296
सुचित्तरूपं रुचिरं, 66
सुणन्तु भोन्तो मम एकवाक्यं, 582
सुणोथ यक्खस्स वाणिजान च, 604
सुनखापिमस्स पलिहिंसु पादे, 455
सुरट्ठस्मिं अहं देव, 678
सुरभिं सम्पवायन्ति, 350
सूलावुतो च अरोगो हुत्वा, 602
सूलावुतो पुरिसो लुद्दकम्मो, 587
सेतेन अस्सेन अलङ्कतेन, 531
सेतोदका सुप्पतित्था, 114
सेय्या निसज्जा नयिमस्स अत्थि, 518
सेरीसको नाम अहम्हि यक्खो, 624
सो च तं अभणन्तं अयाचि, 743
सो ञातिधम्मो च अयं निदस्सितो, 25
सो तं गहेत्वान पसय्ह बाहायं, 346
सो तं दिस्वा अत्तमना उदग्गो, 571
सो तं पदेसं उपसङ्कमित्वा, 559, 585
सो तं वितक्कं पविनोदयित्वा, 461
सो तत्थ बहुवस्सानि, 763
सो तत्थ रहस्सं समुल्लपित्वा, 581
सो तत्थ रहस्सं समुल्लपित्वा, 581
सो पूजितो अतिविय सोभमानो, 255
सो मं अतिचरमानाय, 361
सो मं पुन भूरिसुमेधसो, 484, 495
सो माणवो तस्स पावदि, 189
सो मोचितो गन्त्वा मया इदानि, 588
सो मोदसि नारिगणप्पबोधनो, 622
सो सूचिकाय किलमितो तेहि, 248
सो हि नून इतो गन्त्वा, 281, 289
सोण्णसोपानफलका, 348
सोळसित्थिसहस्सानि, 309, 310
सोवण्णमयं मणिमयं, 188, 210
सोवण्णमयो पभस्सरो, 187
सोहं नून इतो गन्त्वा, 516, 805
स्वागतं ते महाराज, 672
स्वाहं अकतकल्याणो, 235
स्वाहं अब्बूळ्हसल्लोस्मि, 195, 52, 224
स्वाहं दिवा हनित्वा पाणिनो, 485, 496
स्वाहं मुदितमनो पसन्नचित्तो, 200

ह

हंसा चिमे दस्सनीया मनोरमा, 442
हञ्ञामि खज्जामि च वायमामि, 738
हत्थिक्खन्धं समारुय्ह, 666
हत्थिक्खन्धतो ओरुय्ह, 756
हत्थेन हत्थे ते दिन्नं, 174, 61
हत्थेपि छिन्दन्ति अथोपि पादे, 727
हन्द किं वा त्याहं दम्मि, 157
हन्दुत्तरीयं ददामि ते, 172, 60



पालि-अध्ययन-केन्द्रम्

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् (मानितविश्वविद्यालयः)

Accredited by 'NAAC' with 'A' Grade

(केन्द्रीय-मानव-संसाधन-विकास-मन्त्रालयाधीनम्)

लखनऊ-परिसरः